श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित सार समुच्चय

सद् देशना

भाग -4



देशनाकार

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित ''सारसमुच्चय''

पर

सद्-देशना

(भाग-4)

[श्लोक 161 से 219 तक]

देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

प्रकाशक

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ मूलकृति – श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित 'सार-समुच्चय'

❖ **प्रस्तुत कृति** – **''सद्-देशना'' (भाग-4)**
(सारसमुच्चय ग्रंथ के श्लोक क्रमशः 161 से 219 पर, आगरा में, वर्ष 2012 में किये गये टीकात्मक प्रवचन)

❖ **देशनाकार** – **श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनिराज**

❖ **संकलन** – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**

❖ संपादन – पंडित शिवचरण लाल जैन, मैनपुरी

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल
ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना

❖ आवृत्ति – प्रथम, वर्ष 2016, 2200 प्रतियाँ

❖ प्रकाशक – श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ पुण्यार्जक –
- शांति कुमार जैन, बूँदी (राजस्थान)
- अनिल कासलीवाल, भिलाई (छत्तीसगढ़)
- आजाद कुमार-रवि देवी जैन, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
- लक्ष्मी डिपार्टमेंटल स्टोर, चौरई, छिन्दवाड़ा (मध्य प्रदेश)

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
- नेमीचंद जैन बड़कुल, इन्दौर मो. 09425053171
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ न्यौछावर – रु. 250/- (पुनर्प्रकाशनार्थ)

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
	सम्पादकीय	VI
	ध्यातव्य / निवेदन	XI
	प्रारम्भिक मंगलाचरण	XII
	ग्रंथ का मुख्य मंगलाचरण	XII
161	करने योग्य कार्य	1
162	मनुष्य-भव की सफलता	1
163	करने योग्य कर्तव्य	29
164-65	अभव्य संसारी प्राणी	29
166	धन्यवाद का पात्र	45
167	संक्लेश न करने का आदेश	59
168	संक्लेश परिणामों का फल	71
169	उत्तम धन का वर्णन	89
170	महापुरुषों का लक्षण	104
171	दृढ़ता ही परम रक्षक	120
172	शान्ति का कारण	134
173	परिणामों का फल	145
174	चित्त-विशुद्धि का फल	145
175	रोको अपने को	160
176	मन को रोको	173
177	कर्मफल कटु है	186
178	ज्ञान की महिमा	200

श्लोक क्रं.	विषय	पृष्ठांक
179	सुखाभास के दु:ख	212
180	मायाचारी का फल	225
181	पुण्य की पूँजी	239
182	संसार-सागर से पार	239
183	बान्धवों में बँधा प्राणी	252
184	गर्भावस्था के दु:ख	252
185	भव-भ्रमण	266
186	वैराग्य क्यों नहीं आता?	279
187	सामर्थ्य प्रकट करो	279
188	अज्ञानी/ज्ञानी	293
189	तपरहित जीवन निष्फल	307
190	मानवजन्म की सफलता	318
191	स्वात्माधीन सुख प्राप्त करो	330
192	करनेयोग्य कार्य	341
193	करनेयोग्य कार्य	341
194	परमपद प्राप्ति का कारण	356
195	परमपद प्राप्ति का कारण	356
196	उत्तम पात्र साधु के गुण	368
197	उत्तम पात्र साधु के गुण	368
198	उत्तम पात्र साधु के गुण	368
199	ज्ञानभावना से कर्म क्षय	407
200	उत्तम पात्र की पात्रता	407

श्लोक क्रं.	विषय	पृष्ठांक
201	योगियों के आभूषण	422
202	योगियों के आभूषण	422
203	साधुओं के गुण और श्रावक का कर्त्तव्य	435
204	साधुओं के गुण और श्रावक का कर्त्तव्य	435
205	साधुओं के गुण और श्रावक का कर्त्तव्य	435
206	साधुओं के गुण और श्रावक का कर्त्तव्य	435
207	साधुओं के गुण और श्रावक का कर्त्तव्य	435
208	मोक्षार्थी का लक्षण	462
209	धीरों के धीर	477
210	शूरवीर कौन है	492
211	विशुद्ध ध्यान	503
212	पण्डित और ठग	515
213	उत्तम पद को प्राप्त करने वाले	533
214	शूर का लक्षण	546
215	शूर का लक्षण	546
216	परमपद को प्राप्त करनेवाले	563
217	ज्ञानाभ्यास का पात्र	563
218	आत्महित की प्राप्ति	571
219	प्रशंसनीय जीवन	584
	संदर्भ ग्रंथ सूची	596

सम्पादकीय

वन्दे वागीश्वरीं नित्यं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतां।
वाक्शुद्धयै नयसिद्ध्यै च जिनस्याद्वादामृतगर्भिणीं ॥

विश्ववन्द्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि के अर्थ व्याख्यान की साकार शब्दरूपता रूप गणधरों के ग्रन्थ कर्त्तृव्य-जैन वाङ्मय में परम्पराचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने प्रथम-करण-चरण-द्रव्यानुयोग के विषयों को अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान शासन नायक भगवान् श्री महति महावीर वर्द्धमान के सर्वलोकहित उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने का महत्कार्य संपादित किया है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी से लेकर वर्तमान तक श्रमणों द्वारा अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह की त्रिवेणी में प्रवहमाण जैन अध्यात्म-दर्शन, आचार और विचार के ढाँचे में ढलकर विश्वमैत्री और सह-अस्तित्व का प्रभावक संवाहक बना हुआ है।

आचार्य कुलभद्र—ये निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य दशवीं शताब्दी (937 ई.) में इस पावन भारत भूमि को अपने विशिष्ट ज्ञान-ध्यान-तप द्वारा संस्कृत कर रहे थे। जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार यह कालावधि प्रकट है। श्रद्धेय ब्र. शीतल प्रसादजी ने हजार वर्ष पूर्व का मानकर अपनी टीका में उल्लेख किया है।

यह ज्ञातव्य है कि लगभग इसी समयान्तराल में आचार्य गुणभद्र, आचार्य अमितगति आदि प्रतापी आचार्यों ने जिनवाणी की महती शोभा की है। कुलभद्राचार्य की संभवतः एक ही कृति 'सार-समुच्चय' उनको उसी समकक्षता में लाने में समर्थ है। उन्हें इस महनीय उपकार के कारण समादृत स्थान प्राप्त है। उनका जीवन परिचय, संघ-परम्परा, ग्रंथ रचना आदि गवेषणा का विषय है।

सारसमुच्चय—328 अनुष्टप् छन्दों में,

संस्कृत भाषा में रचित कुलभद्राचार्य की यह रचना 'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं' के मूलविषय द्रव्यानुयोग के सारभूत अध्यात्म के केन्द्र पर शोभायमान है। सुख के शाश्वत रूप मोक्षप्राप्ति हेतु रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का भी साधन रूप तप है, वह सार है तथा उसका भी सार ध्यान है जो मोक्षोपयोगी निर्जरा का कारण है। यह वर्णित है।

वर्तमान में मनीषियों के प्रयास से इसकी टीकाओं सहित छह-सात प्रकाशन होचुके हैं। इसमें पं. दौलतराम कासलीवाल कृत भाषा वचनिका तथा 104 हिन्दी पद्यों में संक्षिप्त रचना (वि. सं. 1805), ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद कृत हिन्दी अनुवाद व टीका (सन् 1935) सूरत व नरियां वाराणसी से, इससे पूर्व 1922 में माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से "सिद्धान्तसारादिसंग्रह

(संभवतः मूल) के नाम से तथा पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती जी का भाषा टीकानुवाद (प्रकाशित सन् 2007) भी सम्मिलित हैं। इससे प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ अध्यात्म-रसिकों के लिए कण्ठहार बना हुआ है।

सारसमुच्चय की विशेषतायें—निम्न बिन्दुओं से संक्षिप्त अवगम्य हैं।

(1) यह रचना संसार, शरीर और भोगों के प्रति संवेग और निर्वेद-वैराग्य हेतु परम औषधि है। प्रशम, आस्तिक्य और ध्यान की प्रेरणा देने वाले इस ग्रंथ में झलकता है कि—अध्यात्म ही सार-समुच्चय है।

(2) इसकी रचना संसार-भ्रमण, जन्म-मरण का नाश करने हेतु की गई है, स्वयं ही मार्दव के अंगभूत लाघव-भाव के धारण करने वाले आचार्य ने यह व्यक्त किया है, दृष्टव्य है।

अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥325॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्रात्स्यन्ति शाश्वत्॥326/सा.स.॥

बालस्वभाव वाले कुलभद्र ने इस सारसमुच्चय ग्रंथ को संसार की स्थिति छेदने के लिए लिखा है। जो भक्ति के साथ इसकी भावना करेंगे, जो कि संसार कारणों का नाशक है, वे शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे।

(3) रस की एकरूप निष्पत्ति के लिए मात्र अनुष्टप छन्द में लिखा है।

(4) भाषा सरल है, सामान्य संस्कृत-ज्ञानी भी भाव हृदयंगम कर सकता है।

(5) शैली सरस आध्यात्मिक रूप से प्रवाहपूर्ण है, उपदेशात्मक है, मधुर-प्रिय है।

(6) यह श्रावक और श्रमण दोनों के लिए समान रूप से पथ्य रूप में है।

(7) इसकी भाषा-शैली की तुलना गीता, आत्मानुशासन, सुभाषित रत्नसंदोह, क्षत्रचूड़ामणि से की जा सकती है, इसमें जटिल, क्लिष्ट व अति समस्तपद नहीं है।

(8) नीतियों, उदाहरणों, सिद्धान्त प्रस्तुति आदि से भावों में वैराग्योत्पादक है।

वस्तुतः यह जिनवाणी प्रसून पाठकों में भाव-विशुद्धि का मुख्य कारण है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज—

वर्तमान श्रमण जगत् में परमपूज्य आचार्य श्री निर्दोष साधु-चर्या के धनी एवं ज्ञान-ध्यान-तपोलीन श्रमण के रूप में संघ नायक का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। आध्यात्मिकता को लिए आपकी वाणी सर्वोदय हेतु अर्थात् जैन परम्परा के साधु व श्रावक सभी के लिए परम रसायण का कार्य कर रही है। वे सतत स्वाध्यायी, कुशाग्र

चिन्तक, न्याय विद्याविशारद, सिद्धान्त शिरोमणि, समयसारादि शुद्ध-अध्यात्म के रसिक तथा लोकनीति व समाजनीति के दृष्टा हैं। प्रवचन कला की निपुणतामय उनकी लगभग पचासों कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें समाज चाव से पढ़ता है। ये सभी देशना की संज्ञा से विभूषित हैं। समयसार पर समयदेशना के सोलह खण्ड प्रकाश्य हैं। ये प्रवचन समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।''

रूर (भिण्ड) ग्राम में जन्मे राजेन्द्र ने अन्तःकरण से विरक्त होकर मात्र बीस वर्ष की आयु में श्रमणाचार्य श्री विराग सागर जी से बाल ब्रह्मव्रत सहित मुनिदीक्षा ग्रहण की एवं 31.03.2007 महावीर जयंती के पावन दिवस पर औरंगाबाद में आचार्यपद ग्रहण किया। अद्यावधि अपने रत्नत्रय के तेज से आत्मा को तथा ज्ञानदान, तप और जिनेन्द्र भक्ति से वीतराग जैन शासन रूप धर्म को, जिसे वे 'नमोऽस्तुशासन' (मूलाचार टीका के आधार पर) कहते हैं, प्रकाशित, प्रभावनायुक्त कर रहे हैं।

सद् देशना—आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने ऊपर वर्णित ग्रन्थ 'सार-समुच्चय' पर विस्तृत देशना प्रदान की है। सत् शब्द का अर्थ समीचीन, प्रशंसनीय, कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ होता है। यह 'सद् देशना' 'संज्ञा सार्थक' है। इसमें सुष्ठु व्याख्यान है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुआयामी उपदेश दिया है। साथ ही ब्र.शीतल प्रसाद जी के कतिपय शीर्षकों से समन्वित, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी द्वारा प्रयुक्त शीर्षकों को भी लिया गया है, यह आचार्य श्री की गुणग्राहकता तथा प्रवचन वात्सल्य का द्योतक है। इससे ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होता है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि शीर्षक द्वारा संकेत प्राप्त होता है, तो पाठक को विषय को समझने में सुविधा होती है। मूल ग्रन्थ के आशय के अनुरूप कतिपय शीर्षक ही देशना के महत्व को प्रस्थापित करते दृष्टिगत होते हैं, यथा आत्म-भावना ही विधेय है, ज्ञान भावना पूर्वक तप करणीय है, आत्म चिकित्सा की प्रेरणा, संसार दुःख नाशक सम्यग्दर्शन आदि।

सद् देशना की भाषा शैली—

प्रस्तुत देशना देश-देश व घाट-घाट का पानी पीने वाले पदयात्री-करपात्री पहुँचे हुए आत्मनिष्ठ यायावर श्रमण के मुख-कमल से निःसृत सर्वहारा सूत्ररूपी सुरभित पुष्पों का हार है। आचार्य श्री की उभय लोक हित करूणा के दर्शन हम यहाँ आचार्य गुणभद्रस्वामी के निम्न श्लोक द्वारा करना चाहेंगे,

जनाः धनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिताः।
दुर्लभाः हयान्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः ॥

वृथाही अहंकार से भरे वाचाल वक्ता अधिक संख्या में सुलभ हैं, किन्तु करूणारस पूरित हृदय वाले जगत् के हिताकांक्षी उपदेशक दुर्लभ हैं। आचार्य श्री परोपकार की मूर्ति हैं। जिनमें

स्वात्मकल्याण प्रमुखता से लक्ष्यभूत है।

उक्तगुणों से युक्त देशनाकार की सद्देशना की भाषा लोक भाषा है जिसमें अपेक्षित रूप में आचार्यों के उद्धरण मणिकाञ्चन योग को सार्थक बनाते हैं।

भाषा सरल, सुगम, अवगम्य है। आवश्यकतानुसार तत्वज्ञान के निरूपण में आगमिक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं। श्रोताओं को आचार्य विशुद्धसागर जी प्रायः ज्ञानी, मुमुक्षु आदि सम्बोधनों से प्रतिबोधित के शब्दों की बहुलता है। देशना की शैली ओज, प्रसाद माधुर्य गुण से युक्त है। श्रोता ऊबता नहीं, भले ही अध्यात्म, वैराग्य-प्रधान देशना है।

यह कहा जा सकता है कि—देशना अमृतधारा से लबालब भरी हुई एक प्रवहमाण शीतल वृक्षावली के मध्य से गुजरने वाली नय-प्रमाण रूपी तटों से संयत पावन सरिता के समान प्रतीत होती है। शैली प्रभावकारक एक आगमोक्त व प्रामाणिक रूप में प्रकट है। यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

"आचार्यप्रवर कुलभद्रस्वामी जगत् के जीवों को श्रद्धा का बोध करा रहे हैं। अर्हन्त जिनेन्द्र की वह गम्भीर दिव्य-देशना, जो अभद्रों को भी समन्तभद्र कर देती है, कितने ही अभद्र प्राणी हों, जिनेन्द्र की देशना को सुनते ही समन्तभद्र हो जाते हैं। वह देशना 'देशना' नहीं जिससे अभद्र को समन्तभद्रता प्राप्त न हो।"

जिससे चित्त की निर्मलता हो और आत्म विशुद्धि हो, उतना ही ज्ञान 'ज्ञान' है, उतना ही सम्यक्त्व 'सम्यक्त्व' है, उतना ही चारित्र 'चारित्र' है, जिससे निज के परिणामों में विशुद्धि है। धर्म के लिये भी हाय-हाय मत करना। धर्म के लिए भी मन में हाय-हाय चल रही है, तो वह धर्म नहीं है। (पृ.13)

वस्त्र की कालिमा को पानी से धो सकते हो, चेहरे की कालिमा को तुम साबुन से धो सकते हो, परन्तु मन की कालिमा धोना है तो अरहन्त की देशना चाहिये। बिना जिनवाणी के मन की कालिमा धुलने वाली नहीं है। जगत् में सुन्दर सलिल अरहन्त की देशना है। (पृ.17)

पर को अपना मानना समाप्त कर दो, उसी क्षण तुम्हारा संकट दूर हो जायेगा।(पृ.64)

बिना किसी के प्रेरित किये यदि भाव आये कि आज तो मुझे जिनदेव की पूजा करना है, तो विश्वास रखना तेरे प्रबल पुण्य का दिन है। (पृ.117)

अशुभ करने वाला, अशुभ कहने वाला, अशुभ सोचने वाला, यह तीनों ही भविष्य में नियम से दुर्गति के पात्र होंगे। (पृ.169)

अशुद्ध से शुद्ध कैसे प्रकट किया जाये, यह विद्या चारित्र है। त्रैकालिक ध्रुव आत्मा की भगवत्ता को उद्घाटित करने की विद्या का नाम संयमाचरण है। (पृ. 364)

जहाँ समत्व प्रारम्भ हो जाता है, वहाँ समकित का जन्म होता है। समकित से सामायिक होती है। बिना समकित के सामायिक होती ही नहीं है। बिना समत्व के सामायिक आती ही नहीं है। (पृ.529)

कुल मिलाकर "सद्-देशना" पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि—आचार्य कुलभद्र के श्लोकों पर यह बहुत विस्तार को लिए हुए एवं लोकहित तथा श्रोताओं के समूह के लिए विषयान्तरता को समाहित किए हुए भी यह अमृत रसायन है। इससे जन्म-जरा-मरण के कष्टकारक रोगों से मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पूर्व में प्रकाशित 'सार-समुच्चय' में भाषानुवाद एवं भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है, पर इस देशना में तो आर्षमार्ग व चतुरनुयोग के तथा लोकस्थिति के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत व्याख्या या व्याख्यान समीचीन रूप से प्रकट है। यह भी ज्ञातव्य है कि भाषण या प्रवचन में विरोधाभास भी संभव है, पर 'देशना' शब्द स्वयं ही सत्यार्थ का ही बोधक है।

"सद्-देशना" प्रकाशित हो रही है। अपने श्रेष्ठ रूप और गेटअप, मुद्रण आदि दृष्टियों एवं भाषा-शब्दों की प्रूफरीडिंग सावधानी से की गई है, फिर भी अशुद्धि संभव होती हैं इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक व प्रबुद्ध मनीषियों से प्रार्थना है कि—भूल सुधारकर लेवें।

पुनश्च परम पूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज को शतशः नमन। उनके मार्ग प्रभावना एवं प्रवचन वात्सल्य से ही यह कार्य, जिनवाणी के भण्डार में वृद्धि करेगा। समाज पर भी उनका उपकार अमिट छाप छोड़ने वाला है। इस हेतु उनका भूरि-भूरि आभार। **श्री वाय.के. जैन आगरा, श्री मनीष मोनाजी इंदौर एवं अन्य भी जो सहयोगकर्त्ता, प्रकाशक तथा मुद्रक आदि सभी साधुवाद के पात्र हैं।**

आशा और विश्वास है कि—सुधी पाठकगण इस देशना का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके पारमार्थिक आनन्द का अनुभव करेंगे। मंगल कामना है कि—यह "सद्देशना" यावच्चन्द्र दिवाकरौ चिरंजीवी होकर जनता जनार्दन को सुख शान्ति का सन्देश देकर जाज्वल्यमान रहे।

समयसारस्य सारोऽयं, सर्वसारस्य चाप्ययं।
सद्देशनेति व्याख्यानं, विशुद्धकीर्तिं प्रकाशते ॥ (स्वोपज्ञ)

(इत्यलं)

श्यामभवन, बजाजा
मैनपुरी-205001 (उ. प्र.)
मो. 09219160350

पं.शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष-तीर्थंकर
ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक
अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद्

ध्यातव्य

एक गूढ़वादी के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बड़ा विद्वान् हो और न ही वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु मानव-समाज को दु:खी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिए प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जन-सामान्य के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अत: उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा का अपनाना ही महत्त्व रखता है। अध्यात्म में भाषा नहीं, भाव महत्वपूर्ण होते हैं। भाषा का बोध विद्वत्ता नहीं, विषय का बोध विद्वत्ता है।

निवेदन

इस ग्रन्थ में प्रमादवश व अज्ञानतावश टंकण, मुद्रण, शब्द संयोजन, शब्द संशोधन, शब्द विन्यास में रही त्रुटियों के लिए सुधी पाठक-विद्वत्जन से क्षमायाचना करता हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें और उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे त्रुटियों का यथास्थान संशोधन करें तथा उन संशोधनों/त्रुटियों से मुझे भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उन संशोधनों को समाहित किया जा सके। माँ जिनवाणी की सेवा में मेरा यह शिशुवत् प्रयास है, अत: त्रुटियों से अवगत कराने वाले सुधी पाठकों का मैं कृतज्ञ होऊँगा।

जिनेन्द्र कुमार जैन
ए-60, पद्मनाभ नगर, भोपाल 462023
दूरभाष-2759084
चलित-8989405479

मंगलाचरण

ॐकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः॥

अविरल शब्दघनौघ, प्रक्षालितसकलभूतल कलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्यगुरवे नमः

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री **'सारसमुच्चय नामधेयं'** अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री कुलभद्राचार्यदेव विरचितम्, तस्य भाषा टीका आचार्य श्री विशुद्धसागरेण विरचिता, एषः **'सद्देशना'** नाम ग्रन्थः।

श्रोतारः सावधानतया श्रण्वन्तु।

मङ्गलं भगवान वीरो, मङ्गलं गौतमोगणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलं॥
सर्वमङ्गल माङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

ग्रन्थ का मुख्य मंगलाचरण :

देवदेवं जिनं नत्वा, भवोद्भव विनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां कांचिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः॥ (1/सा.स.)

"करनेयोग्य कार्य"

यथा च जायते चेतः सम्यक्-शुद्धिं सुनिर्मलाम्।
तथा ज्ञानविदा कार्यं प्रयत्नेनापि भूरिणा ॥ 161 ॥

अन्वयार्थ-ज्ञानविदा = ज्ञानी को **यथा च चेतः सुनिर्मलाम् सम्यक् शुद्धिं जायते** = जिस प्रकार यह मन निर्मल हो जावे और भले प्रकार आत्मा की शुद्धि हो जावे **तथा भूरिणा प्रयत्नेन अपि कार्यं** = उसी प्रकार बहुत प्रयत्न करके भी आचरण करना चाहिए।

भावार्थ-जिससे चित्त की निर्मलता और आत्मविशुद्धि हो, वही कार्य ज्ञानी को बहुत प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए।

"मनुष्यभव की सफलता"

विशुद्धं मानसं यस्य रागादिमलवर्जितम्।
संसाराग्र्यं फलं तस्य सकलं समुपस्थितम्॥ 162॥

अन्वयार्थ-यस्य = जिसका **मानसं** = मन **रागादिमलवर्जितम्** = रागादि मैल से रहित **विशुद्धं** = शुद्ध है **तस्य** = उसी को **संसाराग्र्यं फलं** = इस जगत का मुख्यफल **सकलं** = सकल रूप से **समुपस्थितं** = प्राप्त हुआ है।

भावार्थ-जिसका मन रागादि मैल से रहित (शुद्ध) है, उसी के संसार का मुख्य फल (मानवजन्म का मुख्य फल) सफलतापूर्वक उपस्थित हुआ है।

॥ सद्-देशना ॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते

हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य प्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आज उस परमज्ञान की चर्चा कर रहे हैं, जिस ज्ञान की सत्ता में जीव की पहचान होती है। ज्ञान के अभाव में जीवत्व की पहचान का अभाव है। जड़द्रव्यों से चैतन्य की पहचान नहीं है। चैतन्य की पहचान ज्ञानगुण से है। ज्ञान व दर्शन, इन दो गुणों से शून्य विश्व में कोई जीव नाम की वस्तु नहीं है। जैसे बाँझ के बेटे दिखाई नहीं देते, ऐसे ही ज्ञानशून्य कोई जीवद्रव्य दिखाई नहीं देता। ज्ञान ही का अभाव हो गया तो जीवत्व का अभाव हो जायेगा। जीव की पहचान ज्ञान-दर्शन से ही है। ज्ञानी होकर ज्ञानीपने को नहीं पहचाना, तो तू ज्ञानी कैसा? जिससे तुम जान रहे हो, जिससे तुम पहचान रहे हो, वह वस्तु कौन है? अमुख जीवित है, अमुख मर गया है, यह जड़ है, यह चैतन्य है, यह किससे जाना? ज्ञानी जी रहा है, किससे जाना? ज्ञान से। फिर भी यह जीव अपने आप को ज्ञानी नहीं मानता। वह ज्ञान द्वैत्वभूत है। सामान्य रूप से जगत् का प्राणिमात्र ज्ञानी है, पर वही ज्ञान का उपयोग विषय-कषाय में ले जाता है तो वही जीव अज्ञानी हो जाता है और जब उसी ज्ञान का उपयोग निज आत्मकल्याण की ओर ले जाता है, तो उस जीव का ज्ञान, ज्ञानी को 'ज्ञानी' कहला देता है। आचार्य कुलभद्र स्वामी समझा रहे हैं, भो ज्ञानी! यदि एक का सिक्का भी तू कमा कर लाता है तो उसे उपयोग करने के लिये सोचता है कि उसका उपयोग क्या करूँ?

ज्ञानी! कितना ही पैसा घर में आ जाये, तब भी चिन्तन करता है कि पैसे का उपयोग कैसे करूँ? निज द्रव्य नहीं है, निज वस्तु नहीं है, पैसा तेरा निज स्वभाव नहीं है, पैसा तेरी निज वस्तु नहीं है, आत्मा से अत्यन्त भिन्न है, आत्मभूत नहीं है, निज स्वरूप नहीं है, फिर भी सर्वाधिक दृष्टि पैसे पर ही है। जब एक पैसे को जीव समझता है कि वह मेरी वस्तु नहीं है, मेरी वस्तु नहीं होने पर भी उपयोग कितना समीचीन रूप से करता है, क्योंकि उसको मैंने बड़े पुरुषार्थ से कमाया है। पैसे का उपयोग करने के लिये तुझे कितना सोचना पड़ता है कि

मैंने पसीना बहा-बहा कर कमाया है। जब लोग भवनों में होते हैं तब तू रोड़ पर पसीना बहाता होता है। जब लोग भवनों में होते हैं तब बरसात में तू शरीर गीला किये घूमता है, शीतकाल में सी-सी करता घूमता है पैसों के पीछे। पूरी पर्याय को, शरीर की कोमलता को, शरीर की ऋजुता को पैसे के राग में कैसे विलीन कर दिया?

बेटा! जैसा तुम्हारा शरीर अभी सुकुमाल है, कोमल है, तेरे पिता का शरीर भी ऐसा ही होगा। परन्तु बेचारे ने क्या किया? पैसे के राग में शरीर को भूल गया, फिर ऐसा भी दिन आता है कि शरीर के राग में पैसे को भी भूल जाते हैं।

जीव पहले पैसे के राग में शरीर को भूलता है, फिर शरीर के राग में पैसे को भूलता है। जब आक्सीजन लग जाती है, तब पैसे को भूल जाता है। फिर कहता है, 'डाक्टर साब! जितना चाहिये हो उतना ले लो, पर हमें बचालो।' कौन बचाने वाला है? जब वैद्य का समय आ जायेगा, तब वैद्य को ही कोई बचानेवाला नहीं होगा। कितने सारे लोग जंतर-मंतर वाले हो गये, कितने धनवान-बलवान हो गये। यमराज कहता है कि मेरे सामने सब चूहा ही होते हैं। आयुकर्म कहता है कि मैं तीर्थंकरों को नहीं छोड़ता हूँ, मैं स्वर्ग के देव इन्द्र को नहीं छोड़ता हूँ, आप कौन होते हो? आयुकर्म कहता है कि मेरे सामने हाथ मत जोड़ो। हाथ जोड़ना ही है तो श्री जी के सामने जोड़ो, क्योंकि मैं तुम्हें छोड़नेवाला नहीं हूँ। जब आयुकर्म क्षीण होता ही है, वह तुझे छोड़नेवाला नहीं है, फिर टकटकी लगा कर देखेगा, कि मैंने ललितपुर छोड़करके भोपाल में बिल्डिंग खड़ी की, लेकिन यह भी मुझे छोड़कर जाना पड़ रही है। ज्ञानियो! यह कोई नयी बात नहीं है। इस स्थान पर लोग लोटा-डोरी लेकर आये थे, आज भवन बनाकर धनपति बनकर बैठ गये हैं। लेकिन विश्वास रखना, यह भी छोड़कर जाना पड़ेगा। श्री कहती है कि मैं किसी की होती नहीं हूँ। मैं तो पुण्य की चेरी हूँ। पुण्य विलीन हो जायेगा तो मैं भी चली जाऊँगी, इसलिये तू मेरे पीछे राग मत कर।

श्री को मत निहारो। निहारने की इच्छा है तो श्री जी को निहारो, जो कभी तुझे छोड़ेंगे नहीं। श्री के राग में जीव श्री जी को भूल जाता है। तुम्हारे पास दो ही तो अलौकिक वस्तुयें हैं, श्री और स्त्री, जिनके पीछे जीव श्री जी को भी भूल जाता है। जो दिन में तीन बार दर्शन करने जाता था, शादी होते ही एक बार भी समय मिल जाये तो चला जाता है, नहीं तो ठीक है भगवान् को यहीं से ढोक लगाये लेता हूँ, वो भी ध्यान रहा तो। धिक्कार हो ऐसे राग को। याद करो उन दिनों की जब योगियों के चरणों में घूमा करते थे, अरहन्तों की भक्ति में लीन हुआ करते थे। श्री क्या बढ़ गई, श्रीमती क्या मिल गई, मेरी मति ही भ्रष्ट हो गई। श्रीमती भ्रष्ट नहीं करती। यदि श्रीमति भ्रष्ट करती होती, तो कितने सारे लोग श्री का उपयोग दान में करते हैं, कितने लोग मन्दिर बनाने में करते हैं, कितने लोग श्री का उपयोग गुरुओं की सेवा में कर रहे हैं। श्री किसी की मति भ्रष्ट नहीं करती है और श्रीमती भी भ्रष्ट नहीं करती है। वह चौका लगाती है तो तुम पड़गाहन करने खड़े हो जाते हो। श्रीमती ने मति भ्रष्ट कहाँ की? **मति भ्रष्ट न श्री कर रही है न श्रीमती कर रही है। मति भ्रष्ट कोई कर रहा है तो तेरी काम और विकार बुद्धि कर रही है।** उपयोग करने की शैली होनी चाहिये। जगत् में किसी को समझाने का विचार मत करना। किसी को सुधारने का विचार मत करना। यदि कर सको तो अपनी बुद्धि को ठीक कर लेना। कितनी गम्भीर बात है। सारे जगत् के लोग तुम्हें अशुभ दिखाई दे रहे हैं, तू उनको नाश करने का विचार कर रहा है।

यदि गैससिलेन्डर की गैस रिसने लगे (लीकेज हो जाये) तो तू कमरे में उसको पकड़ने कहाँ-कहाँ जायेगा? पूरे कमरे में दुर्गन्ध, धीरे-धीरे पूरे मकान में दुर्गन्ध। कहीं तीली चल गई तो.....? मेरे मित्रो! आप कक्ष की गैस ही को बन्द कर दो यदि बन्द नहीं कर पा रहे हो तो सिलेण्डर को जमीन में गाड़ दो, उसमें ऊपर से मिट्टी डाल दो, जिससे कम-से-कम ऊपर तो आग न लगे। ऐसे ही तुम दुनियाँ के लोगों के परिणामों को तो ठीक नहीं कर सकते हो, अपने ही परिणाम का

सिलेण्डर बन्द कर दो तो तेरी चिन्ता समाप्त हो जाये।

हे ज्ञानी! ज्ञान का उपयोग सम्यक् करो। जितने नष्ट हुये, हो रहे हैं, ज्ञान के दुरुपयोग से। बालको! ज्ञान ही तुझे विषयों की ओर ले जायेगा, ज्ञान ही तुझे मन्दिर की ओर लेकर आया है। तू मचल करके अपने पिता को जाने कहाँ-कहाँ ले जा सकता था। पिता की बुद्धि पुत्र की इच्छापूर्ति के लिये लग सकती है तो तेरी निज की बुद्धि भी तेरी इच्छा की पूर्ति के लिये लग सकती है। जब निज की बुद्धि निज की इच्छापूर्ति में लग जाती है, जब इच्छा तेरे हाथ में है, तो अशुभ इच्छा को शुभ इच्छा कर दो, तो तेरी आत्मा में सुभिक्ष छा जायेगा। यदि अशुभ इच्छा करोगे, तो तेरी आत्मा में शुभ इच्छा का दुर्भिक्ष छा जायेगा। देश में अकाल पड़ जाये, दुर्भिक्ष हो जाये, तो शासन सहयोग करने के लिये तैयार हो जाता है। लेकिन मेरे मित्रो! यदि मेरे भावों में शुभ-उपयोग का दुर्भिक्ष पड़ जाये तो जगत् का कोई शासन सहयोग करने नहीं आ पायेगा। जितनी लोक की सुरक्षायें हैं, व्यवस्थायें हैं, वे इन्द्रिय और देह मात्र को सहयोग करने की व्यवस्थायें हैं, लेकिन भावों की विशुद्धि का दुर्भिक्ष पड़ने पर कोई व्यवस्था नहीं है। गम्भीर क्यों हो रहे हो? जो है, सो है। सत्य बात को समझो। कहीं पानी न बरसे तो दूसरे स्थान से तुम ट्रकों/टैंकों में भर कर मँगा सकते हो। कहीं अनाज न रहे तो दूसरे देश या दूसरे प्रान्त से अनाज भी आ सकता है, लेकिन किसी के परिणामों से धर्म विलीन हो जाये तो दूसरे के परिणामों से धर्म नहीं बुलाया जा सकता है। **आपके पास से कोई धन खींचना चाहे, धरती खींचना चाहे तो, विकल्प मत करना, परन्तु कोई तेरी श्रद्धा को तोड़ना चाहे, तो कह देना, 'सबकुछ दे सकता हूँ, लेकिन श्रद्धा नहीं दे सकता।'** कोई कहे कि भूमि दे दो, मकान दे दो मन्दिर बनाना है तो कह देना कि ले लो। लेकिन कोई कहे कि पंचपरमेष्ठी से श्रद्धा छोड़ दो तो कह देना कि बस, मैं सबकुछ देने को तैयार था, पर जिसकी वजह से मैंने सबकुछ छोड़ा है, उस धर्म को नहीं छोड़ सकता।

पंचमकाल में भी आप शान्ति की श्वास ले पा रहे हो तो ध्यान रखना ये धन से नहीं, धर्म से ही ले पा रहे हो। यह प्रमाणपत्र है कि आप सब का भूत कितना पवित्र होगा। भूत की पवित्रता ही वर्तमान में तुझे साधुओं के पास बिठाये हुये है। भूत में तूने कितना पुण्य अर्जित किया होगा। जितना आपको वर्तमान की पर्याय पर प्रसन्न नहीं होना चाहिये, उससे कहीं ज्यादा आपको अपने भूत की पर्याय का गद्गद् भाव आना चाहिये, कि मेरी भूत की पर्याय ने ऐसा पुण्य न किया होता तो वर्तमान में इतने पवित्र भाव कैसे आते? कभी-कभी आप अपने माता-पिता पर प्रसन्न होते हो कि अहो मेरे पुण्यात्मा माता-पिता! आपने मुझे धर्मसभा में आगे बैठने का पात्र तो बना दिया। ऐसे भाव आते हैं।

अहो मेरे जनक-जननी! आपने मेरे साथ इतना बड़ा उपकार किया कि आज धर्मात्माओं के बीच में मुझे बैठने को मिलता है। सज्जन लोग मुझे सज्जन तो कह पाते हैं। जैसे माता-पिता के प्रति तुम्हारे अन्दर एक अनुराग भाव आता है, ऐसे ही अपने भूत की पर्याय के प्रति भी आना चाहिये। मेरे भूत के परिणाम विशुद्ध न होते, तो वर्तमान में देव-शास्त्र-गुरु के पास आने के परिणाम न होते। नगर में कितने लोग रहते हैं, कोई बेचारे यमुना के किनारे बैठे होंगे जाल फैलाये। प्रातः सूर्य उदय नहीं हो पाया और कन्धे पर जाल रख कर चल दिया। ऐसे भी मनुष्य हैं। ऐसे भी मनुष्य हैं जैसे एक योगी प्रातः से ध्यान में बैठा हुआ भगवान् को निहार रहा है, निज आत्मा को देख रहा है। ऐसे ही पापी जाल बिछाये मछली का ध्यान कर रहा है। वह भी एक जीव है, मनुष्यपर्याय का क्या उपयोग कर रहा है? कहो दिन भर में एक भी मछली जाल में न आये, लेकिन कोटि-कोटि मछलियों की हिंसा का भाव करके पाप का बन्ध कर ही लिया है।

मित्रो! यमुना के किनारे बैठ करके जाल फैलानेवाले के समान, अपने जीवन में कभी ज्ञान का ऐसा जाल मत बुनना कि मेरे एकान्त पक्ष में लोग फँस जायें। वे आखेटक ढीमर के समान ही होंगे जो अपने मिथ्यात्व के जाल में लोगों को फँसा रहे होंगे। जीवन में कभी ऐसी भूल मत करना। जो वीतराग मार्ग है, जो

सत्यार्थ मार्ग है, उस वीतराग मार्ग से किसी को दूर मत करना।

ज्ञानी! एक दिन ऐसा आना चाहिये कि आप अपनी पत्नि से भी बोलें—मेरे मित्र! वासना में तो तुमने मेरा बहुत सहयोग किया है कि मैं पर घर में भटक कर बदनाम नहीं हो पाया। सत्यता यह है कि मेरा तेरे में राग नहीं था। सत्य को कहने में चूक मत करना। जिसने तुम्हें अपना जीवन सौंप दिया हो, उसके साथ छल मत करना। एक दिन तो सत्य बोल देना। बेटे की माँ से कहना कि मेरा आपसे कोई प्रेम नहीं था। यथार्थ मानो, जो प्रेम उमड़ता था, जो प्रीति उमड़ती थी, वह मेरी इच्छा की पूर्ति की होती थी। पर सत्य मानो, आज मेरा आपसे प्रेम उत्पन्न हो रहा है। अभी तक नहीं था। अभी तक वासना का राग था। आज प्रीति उत्पन्न हुई है, किस बात की? मुझे भान हुआ है तत्त्व-उपदेश सुन करके, कि मैंने एक जीव की चमड़ी में राग करके और अपनी चमड़ी में दूसरे को उलझा करके, जाल फैला करके, परस्पर के शील की सन्तान का नाश किया था, परन्तु आज प्रीति इस बात की उत्पन्न हो रही है कि मेरे मित्र! न मैं तेरे साथ जा पाऊँगा, न आप मेरे साथ जा पायेंगी। हम दोनों की प्रीति कषायों की थी, इच्छाओं की थी; पर साथ वही जायेगा जो वीतराग धर्म है। वही मेरा है, वही तेरा है, उसे दोनों न भूलें। मैं भूलने लग जाऊँ तो मेरे कान में तू बोल देना और यदि तू भूलेगी तो मैं बोलूँगा। बस, आज दोनों की मित्रता पक्की है। मण्डप में जो गठबन्धन हुआ था, वह रागियों ने राग की पुष्टि के लिये कराया था; पर आज पक्का गठबन्धन मेरा है कि मेरी मृत्यु पहले हो तो तुम मुझे णमोकार सुनाओगी और तेरी मृत्यु पहले होगी तो मैं तुझे णमोकार सुनाऊँगा। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते हो तो विश्वास रखो, तुम वासनाओं मात्र के स्वार्थी हो।

ज्ञानी! आज जाकर अपने बेटे की माँ से बोल देना-अभी तक राग की मित्रता थी, पर आज मैं सत्य मित्र बनकर कह रहा हूँ, क्योंकि जब पुरुष वृद्ध-अवस्था में आता है, तब तक माता-पिता जा चुके होते हैं। बेटा अपने मन की व्यथा अपनी माँ से कहने की ताकत रखता है। कुछ विषय पिता को बता पाता है,

कुछ बातें मित्र को बताता है। जब मित्र माता-पिता दोनों नहीं होते हैं तो पत्नी ही सबकुछ है। **युवाओ! ध्यान दो, पत्नि को पत्नि मात्र मानकर मत चलिये। उसको आप मित्र भी बनाइये, मन्त्री भी बनाइये और आवश्यकता पड़े तो गुरु भी बना लेना। यही बात माताओं से कह रहा हूँ कि पति को मात्र वासनाओं का पति बनाकर मत चलना। उसको मित्र भी बनाना। चाहो तो गुरु भी बनाना।**

ज्ञानी! टोकनी में सुगन्धित आम रखे थे, उठा-उठा कर तू खा रहा था और नहीं उठा पा रहा था सो बार-बार आँखें जा रहीं थीं और जहाँ आँखें नहीं पहुँच पा रही थीं, वहाँ नाक जा रही थी। सुगन्धित आम के फल रखे हुये हों तो बार-बार आँख दौड़ती है, नाक जाती है, उठाने के भाव आते हैं कि आम हाथ लग जाये। मुख में बाद में ले जाता है, पहले उसके प्रति प्रीति को प्रकट करता है। उसी टोकनी में एकाध आम सड़ जाये तो उनके साथ तेरा व्यवहार क्या होता है? धीरे-से उठाकर फेंक देता है। मेरे मित्र! ध्यान दो, जब तक सड़ांध नहीं है, तब तक बेटे तुमको टोकनी में रखे हैं। जिस दिन सड़ांध आने लग जायेगी, उस दिन फेंक देते हैं। आज के बेटे ऐसे हो चुके हैं, सड़े आम की भाँति आपको किनारे कर देंगे। मेरी बात मानो, बेटे भी साथ नहीं दे पायेंगे। जब तक अच्छे पके हैं, तब तक चूस रहे हैं। चुसो, चुसो। चुस रहे हैं। आज बूढ़े लोग समझ नहीं रहे हैं। जब तक तेरा सुहावना चेहरा दिख रहा है, तब तक पिताजी, पिताजी। बाद में बेटे भी नहीं सुनेंगे। जब तेरा ही उत्पन्न किया नहीं सुनेगा, तो दूसरे की बेटी क्यों सुनेगी? मालूम मैं ये सब आपको क्यों सुना रहा हूँ? आज से मेरी बात मानो, विश्वास रखो, पत्नि के साथ जो वासना वाली प्रीति थी, उसको छोड़करके मित्र वाली प्रीति प्रारम्भ करो, क्योंकि जो तुम्हारे साथ घटित होगा, वह पत्नि के साथ भी घटित होगा, फिर एक दूसरे का कौन होगा? तुम दो ही तो होगे। तो धीरे-से कहना कि मेरे मित्र! अब मैं किसी को नहीं सुना सकता हूँ। मेरी अन्तिम श्वास के समय मुझे सद्गुरु के चरणों में बिठाल देना। मुझे किसी ऐसे

स्थान पर मत ले जाना जहाँ नाक में नली पड़ जाये, कण्ठ में नली पड़ जाये। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा हो तो उस समय आप मुझे जिनवाणी सुना देना।

हे ज्ञानी! तुझे अपना अपमान करवाना हो तो नाई के यहाँ जाओ और अपना अपमान करवाना हो तो डाक्टरों के घर जाओ। मुझे तो समझ में आ गया था, इसलिये जीवन-पर्यन्त के लिये नाई की दुकान में जाने का त्याग कर दिया है। तेरे गालों को, तेरे कानों को कोई नहीं छू सकता होगा, लेकिन वह तेरी मुण्डी तक को घुमा देता है कि ऐसा कर। तुझे अपना अपमान सहन न होता हो तो केशलोंच करना सीख लो। मेरे तो समझ में आ गया था, सो मैंने कहा-'अंतिम है। तू जितना खींचना चाहे खींच ले। अगली बार मैं तेरी दुकान में कभी नहीं आऊँगा।' आचार्यश्री बोले-क्या करना है? जगत् में सबसे स्वाधीन मुद्रा निर्ग्रन्थ मुद्रा है, वहाँ किसी के अपमान नहीं होते। दुनियाँ के जितने भेष हैं, वहाँ अपमान-ही-अपमान है। हे भिखारियो! सुनो, मैं क्या कह रहा हूँ? सुबह से उठते ही तुम्हारा माँगना प्रारम्भ हो जाता है। माँ से कहता है कि दूध दो, चाय दो। हे भिखारी! सोते-सोते भी तू माँगता है। अहो! धन्य हैं वे निर्ग्रन्थ योगी। वे नहीं कहते कि दे दो। उनसे कहते हैं कि ले-लो, ले-लो। जगत् में सारे सम्प्रदायों में साधु भी बन जाते हैं तो माँग कर लाना पड़ता है। एकमात्र जैनमुनि ऐसे होते हैं जिनको माँगना नहीं पड़ता है। लोग मनाते हैं कि हे स्वामी! और ले लो। ज्ञानी! अब ये अपमान के भेष छोड़ो। पहले माँ से माँगता था, अब बेटे की माँ से माँगता है। सबकुछ कमाकर लाने के बाद भी कहता है दे दो। शरम नहीं लगती? स्वयं कमा कर लाते हैं, फिर भी पत्नि से कहता है कि दे दो। जीवन का सबसे बड़ा अपमान 'दे दो' में है। दे दो शब्द कहना ही आत्मा का अपमान है।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि **ज्ञान का उपयोग ऐसा होना चाहिये जिससे तेरी आत्मा का अपमान होना बन्द हो जाये। जहाँ वीतराग भाव है, शुद्धात्मा की अनुभूति है, वहाँ कोई अपमान नहीं है। निज में कषायभाव के उत्पन्न**

होते ही निज का अपमान होना प्रारम्भ हो जाता है। जीव यही समझता है कि योग-संयोग ये सब होते रहेंगे, पर उपयोग को बदलना है। पर-सहयोग का काम नहीं है, मेरे निज पुरुषार्थ का काम है। वस्तुओं का मिलना, वस्तुओं का बिछुड़ना योग-संयोग है, परन्तु उस काल में उपयोग को सँभालकर रखना निज का पुरुषार्थ है, परवस्तु का काम नहीं है। पदार्थ का मिलना लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम है, पदार्थ का बिछुड़ना लाभान्तराय कर्म का उदय है; परन्तु दोनों समय में परिणामों को साम्य रखना निज का पुरुषार्थ है।

जंगल में राम द्वारा सीता को छुड़वाना कर्म का उदय है। वज्रजंघ का सीता को अपनी बहिन बनाकर जंगल से ले जाना पुण्य का उदय है। दोनों जगह साम्य भाव रखना, यह सीता का पुरुषार्थ है। द्रव्य का मिलना, द्रव्य का बिछुड़ना, यह कर्मसापेक्ष हो सकता है, लेकिन निज के भावों को सँभालना, यह कर्मनिरपेक्ष है। किसी का गाली देना उसकी जिह्वा का काम है, गाली का सुनने में आना कर्ण इन्द्रिय का काम है और गाली को नहीं स्वीकारना निज के समता परिणामों का काम है। कुछ नहीं देनेवाला स्वतन्त्र है, कानों का सुनना स्वतन्त्र है, परिणामों को ऊपर-नीचे करना या नहीं करना निज पुरुषार्थ का काम है। विषय की गहराई में जाइये। सब बातें छोड़ दो।

यमुना के किनारे एक स्तम्भ खड़ा हुआ है, जिस पर नम्बर लगे हुये हैं। जलविभाग का खम्बा है कि पानी कितने स्तर पर है। देखनेवाले देख जाते हैं कि आज इतना कम हो गया, आज इतना बढ़ गया। पानी उतर रहा है, पानी चढ़ रहा है, क्योंकि आता है और जाता है; लेकिन खम्बा जैसा है वैसा ही है। पानी चढ़ता है, पानी उतरता है, पर खम्बा ज्यों-का-त्यों होता है। जगत् के लोग आते हैं, जाते हैं। कोई रोते हैं, कोई हँसते हैं, कोई गाते हैं, परन्तु तत्त्वज्ञानी जीव कहता है कि पानी का आना-जाना है, मैं तो मात्र ज्ञायक -स्वभावी हूँ। विषयों में शान्ति नहीं है। आपके ऊपर पंखा चल रहा है। चलनेवाला घूम रहा है। घूम कोई-और रहा है, पर जिस पर घूम रहा है, उसको देखो, वह धुरी स्थिर है। धर्म धुरी है, सो जगत् के पंखे घूमते रहे, लेकिन धर्म को नहीं घुमाना चाहिये। स्वभाव

धुरी है, द्रव्य धुरी है, पंखा पर्याय है। पर्याय घूमती है, परिणाम घूमते हैं, पर द्रव्य ध्रुव है। द्रव्यदृष्टि ध्रुव है। जिसकी द्रव्यदृष्टि है, जिसकी दृष्टि द्रव्य पर टिकी है, वह समझ रहा है कि घूमने दो, लेकिन धुरी तो ध्रुव है।

चक्की के पाटों के बीच में भी एक कीला होता है। कुम्भकार के चके में भी एक कीला होता है। कुम्भकार का चाक घूमता रहता है। जो घूमता है, वह नाना प्रकार के बर्तनों को उत्पन्न करता रहता है, लेकिन कील अपने आप में स्थिर है। ऐसे ही जो द्रव्यदृष्टि है, वह ध्रुव है। तत्त्वज्ञानीजीव नयनों में नीर क्यों नहीं बहाता? तत्त्वज्ञानीजीव चेहरे में मुस्कराहट क्यों नहीं लाता? तत्त्वज्ञानी जीव चेहरे की लालिमा क्यों नहीं बढ़ाता? उसे मालूम है कि दाने आयेंगे, पाटे से पिसेंगे, पर मेरा कुछ भी बिगड़नेवाला नहीं है। जिस पर पाटा घूम रहा है, उस कील का कुछ नहीं बिगड़ता, लेकिन पाटे के बीच में जो आता है, वह पिस जाता है।

कषाय के बीच में जो आता है, वह पिस जायेगा। जो धुरी पर टिका रहेगा, उसका कुछ नहीं बिगड़ना है। धम्मं शरणं पव्वज्जामि। जो धर्म की धुरी को पकड़े है, कितने ही दाने पिसते रहें, परन्तु तेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। यदि दानों को बचना है, तो कील के पास में पहुँच जाओ।

माँ! हाथ की चक्की के पाटे को कभी उठाया? कुछ दाने उसमें सुरक्षित मिलते हैं। पाटा हजारों बार चक्कर काट चुका है। कितना आटा तूने निकाल लिया है, तब भी कुछ गेहूँ के दाने बच कैसे गये? **मेरे मित्रो! कितने ही पाटे के चक्कर चलें, पर दाने वे ही बच पाते हैं जो कील के पास रहते हैं।** जो धर्म के साथ रहते हैं, वे पिसते नहीं हैं। जो धर्म छोड़ देते हैं, वे पिस जाते हैं। भैया! अपना तो जगत् में कोई है नहीं, बस कील ही है। कोई किसी का नहीं होता, बस कील के सहारे रहो। जो दुनियाँ कहती है कि मैं तेरा मैं तेरा, सुन, समय पर सब हाथ उठा लेते हैं। इसलिये ध्यान रखो, कोई किसी का होता नहीं, अतः कील के सहारे रहो।

इस संसार में यदि कोई पाप से बच सकता है, कर्म से बच सकता है, दुःख से बच सकता है, तो वही जो धर्म की कील के सहारे होता है। बाकी सब पाटे-ही-पाटे हैं। वे तो चाहते ही हैं कि तुम आओ, मैं तुम्हें पीसूँ। सबके पेट खाली हैं, सब खा जायेंगे। ज्ञानियो! कील के सहारे रहो। हे गेहूँ के दानो! तुमको सब पीस कर खा जायेंगे। अतः कील के सहारे हो जाओ। परिवार ऊपर नीचे के पाटे हैं, सब पीस देंगे। इसलिये मात्र 'धम्मं शरणं पव्वज्जामि', मेरी आत्मा की शरण धर्म है। वह ही बचा सकता है। आपने रामायण को सुना है और महाभारत का नाम सुना है, यथार्थ बोलिये, कौन सहारा हुआ है? श्री राम ने भी अपनी सीता को जंगल में छुड़वा दिया था, अग्निकुण्ड में डलवा दिया, उस समय सीता का कौन था? द्रोपती का कौन था जब दुश्शासन चीरहरण कर रहा था? पाँचों पाण्डव देखते रहे, कौन तेरा सहारा हुआ? जब जीव को कोई नहीं दिखता, तब भगवान् का नाम समझ में आता है। जब तक आदमी को अपना बल समझ में आता है, तब तक भगवान् को नहीं बुलाता। जब देखता है कि कुछ नहीं दिख रहा है, फिर कहता है कि भगवान्! एक आप ही हो।

एक ग्राम पति जो होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवे।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुःख मेटो अन्तर्यामी॥अ.पा.॥

ये कब बोलते हो? जब देख लिया कि कोई नहीं बचा, तब कहता है। हे स्वामी! गाँव का मुखिया भी अपने ग्रामवासियों का संकट दूर करता है, आप तीनलोक के नाथ हो, आप मेरी रक्षा करो। तभी बोलते हो जब कोई नहीं मिलता। सत्य यह है, न नाथ रक्षा करते हैं, न अनाथ रक्षा करते हैं। मेरे वीतराग परिणाम ही मेरी रक्षा करते हैं। चत्तारि शरणं व्यवहार से हैं, निश्चय से तो अप्पा शरणं गच्छामि। मेरी निज आत्मा ही मेरी शरण है। कौन शरण है? निज आत्मा ही शरण है, कोई जगत् में शरण नहीं है। भगवान् के तो हम दर्शन ही कर पायेंगे, भावों को तो मुझे ही सँभालना पड़ेगा।

शरण कौन है? तुझे कितना ही बुखार आ जाये, फोड़ा हो जाये, तो माँ सिर

पर हाथ फेर सकती है, पिता पट्टी रख सकता है, पर रोना है या नहीं, यह किसका निर्णय है? स्वयं का। बस, बेटा! भगवान् भी होंगे, जिनवाणी भी होगी, गुरु भी होंगे, ये सब मात्र ऊपर की सान्त्वना दिलायेंगे, लेकिन भावों को कलुषित करना है या नहीं करना है, ये भगवान् के हाथ में नहीं है, ये तेरी आत्मा के हाथ में है। ज्ञानियो! कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है। बेटा! भूलना मत। यह तेरा पुण्योदय है कि तुझे इस छोटी-सी उम्र में सुनने को मिल रहा है। पण्डित टोडरमल जी, बनारसी दास, दौलतराम, भूधरदास ये अपने कमरे में नंगे होकर बैठते थे और कहते थे 'भैया! क्या मुनिराज ऐसे होते होंगे? बेचारों को जीवन में कभी दिगम्बर मुनि के दर्शन नहीं हुये। धन्य हो आज के बेटों के पुण्य को, जो ये नहीं कहते कि ऐसे महाराज होते होंगे। वे ये कहते हैं कि ये महाराज होते हैं।

उन कवियों को लिखना पड़ गया-'ते गुरु मेरे उर बसो'। उनको गुरु के दर्शन नहीं हुये। ऐसा मध्यकाल आया जब मुनियों का बहुत अल्प संयोग मिलता था। एक दो साधु होते थे। वे भी दक्षिण भारत में। दरबारीलाल कोठिया जी कह रहे थे कि आज मेरा सौभाग्य है जो मैं मुनियों के बीच में बैठा हूँ। एक बार जब मैं साढूमल में पढ़ता था, आठ वर्ष की उम्र थी। आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज (छाणी) निकले, तो सारे विद्यार्थी बैलगाड़ियों में भर-भर कर गये थे उनके दर्शन करने। नगर-नगर के लोग इकट्ठे हुये थे कि महाराज होते कैसे हैं? छतरपुर के पास शाहगढ़ गाँव है, जंगल के बीचोंबीच। वहाँ विशाल-विशाल मन्दिर हैं। वहाँ एक 80 वर्ष के दादा जी थे। जैसे ही संघ पहुँचा, वे बच्चों से चिल्लाये-बताओ बालको! महाराज देखूँ तो कैसे हैं? मुझे आश्चर्य हुआ कि ये बाबा ऐसे क्यों बोल रहे हैं? बोले-इन बाबा ने कभी बस में पैर नहीं रखा, इस गाँव के बाहर नहीं गये और इस गाँव में कभी साधु आते नहीं थे, ये पहली बार साधु आये हैं, इनने पहली बार दिगम्बर मुनि को देखा है। आज भी भारत में ऐसे नगर हैं जहाँ कभी दिगम्बर मुनि के चरण नहीं पड़े। अब सोचो कि वे बेचारे क्या

सोचते होंगे? जैसे आज अपन कहते हैं कि महावीर स्वामी कैसे होते होंगे? कुन्दकुन्द स्वामी कैसे होंगे? ऐसे कई नगर के लोग ये सोचते हैं कि मुनिराज कैसे होते होंगे? ये अहोभाग्य है, लेकिन निज दृष्टि को खो मत देना। ज्ञान का उपयोग सम्यक् करो। वही ज्ञान 'ज्ञान' है, जिससे आत्मा की विशुद्धि हो।

जिससे चित्त की निर्मलता हो और आत्मविशुद्धि हो, उतना ही ज्ञान 'ज्ञान' है, उतना ही सम्यक्त्व 'सम्यक्त्व' है, उतना ही चारित्र 'चारित्र' है, जिससे निज के परिणामों में विशुद्धि है। धर्म के लिये भी हाय-हाय मत करना। धर्म के लिये भी मन में हाय-हाय चल रही है, तो वह धर्म नहीं है। मुझे इस वेदी में पूजा करना, मुझे उस वेदी पर पूजा करना, ये मन्दिर, वो मन्दिर। कुछ नहीं। भक्ति करना है परिणामों की विशुद्धि के लिये, चाहे बड़े भगवान् हों चाहे छोटे भगवान् हों। इन कदों को मत देखो, वीतरागता को देखो। नहीं तो आजकल भाषायें शुरू हो गई हैं। छोटे बाबा, बड़े बाबा, छोटे भगवान्, बड़े भगवान्। तुम वीतरागता को देख रहे हो कि छोटे/बड़े को देख रहे हो? क्या तुम मूर्तियों के कद को देख रहे हो? क्या तुम मुनियों के कद को देख रहे हो? क्या तुम जिनवाणी के कद को देख रहे हो? ये कद मत देखो, वस्तुस्वरूप देखो, जिससे परिणामों की विशुद्धि हो।

ज्ञानी! तू कहाँ भटक रहा है? तेरा शरीर तेरा नहीं है, तो तू दुनियाँ को अपना बनाने कहाँ भटक रहा है? देखो, मैं तो किसी का नहीं हूँ, पक्का। आप मेरे हो क्या? आप भी मेरे नहीं हो, मात्र राग के कर्ता हो। वात्सल्य भाव तो हो सकता है, परन्तु कोई किसी का होता नहीं है। कण-कण स्वतन्त्र है। इस झंझट में पड़ मत जाना, बगल में बैठा जीव भी तेरा नहीं है। शरीर के निमित्तकर्ता हैं, आत्मा के कर्ता नहीं हैं। आत्मा तो अहेतुक है। किसी हेतु से उत्पन्न नहीं हुई है। इसलिये तो मैं किसी को कुछ नहीं समझता हूँ। जो है, सो है। वस्तुस्वरूप तो पानी की धार है। तुम ग्लास में भर कर पी जाते हो, फिर भी मैं तेरा नहीं होता हूँ। बाहर आ जाऊँगा, तुम देखते रह जाओगे। ऐसे ही जगत् का प्रत्येक द्रव्य अपने आप में स्वतन्त्र है। कोई किसी का होता नहीं है, मात्र एक दूसरे

के राग में लिप्त होकर द्वेष में लिप्त हो करके हर्ष-विषाद कर रहे हैं। वस्तुस्वभाव तो जो है, सो है। इतनी विद्या सीख लो तो घर-घर के द्वन्द समाप्त हो जायें। ऐसे ही काम करना चाहिये जिससे परिणामों की निर्मलता हो और आत्मा की विशुद्धि हो। जिसका मन रागादिक के मैल से रहित है, वही शुद्ध है, वही अमृतभूत है, वही पवित्र है, बाकी के कोई पवित्र नहीं हैं। जिसका मन रागादिक से शून्य है, वही ज्ञानीजीव है। उस मानव का जीवन सफल हो गया। मनुष्यपर्याय उसी की सफल है, जिसने राग-द्वेष के मल को हृदय से निकाल दिया है।

आप ध्यान रखना, जितना बन सके, न राग करना न द्वेष करना। जैसा थाली में आ जाये, वैसा ग्रहण कर लेना, परन्तु अभक्ष्य मत खा लेना। चाहे नमक मिले या न मिले, मीठा मिले या न मिले, वहाँ सोचना 'जो है सो है।'

विभाव धर्म का नाश ही स्वभाव धर्म की प्राप्ति है और कर्मों का आवरण ही स्वभाव का आच्छादन है। आवश्यकता स्वभाव को समझने की है, आवश्यकता विभाव को छोड़ने की है। पुरुषार्थ स्वभाव पर नहीं चलता है, पुरुषार्थ विभाव पर चलता है। जो स्वभाव है, वह वस्तु का यथार्थ रूप है। यथार्थ रूप को खोजा नहीं जाता है, वह होता है। आवृत है, अभाव नहीं है। वस्तु है, इसलिये ढक्कन है। वस्तु है, इसलिये आच्छादित है। अवस्तु पर कोई आच्छादन नहीं होता। आत्मा की त्रैकालिक शुद्ध सत्ता कर्मों से आवृत है। उस सत्ता का अभाव नहीं है। सत्ता को प्रकट करना है तो कर्म को हटाने की आवश्यकता है। शक्तिरूप परमात्मा को जानते हुये उस परमात्मा को उद्घाटित करने की सामर्थ्य पुरुष में है। कर्मों से आच्छादित आत्मा की ध्रुव अखण्ड धारा, जिसको जीव भोगवृत्ति में भूल गया, रागवृत्ति में भूल गया। भूताविष्ट को ठीक करने में देर नहीं लगती, परन्तु मोहाविष्ट को ठीक करने में देर लगती है। जीव अनादि से मोहाविष्ट है।

ज्ञानी! यदि किसी को व्यन्तर लग गया तो मात्र वर्तमान की पर्याय को दु:खी कर रहा है, परन्तु आपको मोह कब से लगा है और तू कितनी पर्याय में दु:खी

हो चुका है? **भूत लग जाये तो कितनी जगह अपनी परेशानी को दूर कराने जाता है, कितना उपक्रम करता है; पर मोह का जो व्यन्तर लगा हुआ है, इसको दूर कराने का पुरुषार्थ जीव क्यों नहीं करता है?** पंचपरमेष्ठी के पादमूल में ज्ञानी जीव अन्य उद्देश्य को लेकर नहीं जाता है, मात्र इतनी दृष्टि लेकर जाता है कि हे परमेश्वर! मैं अनादि से मोहाविष्ट हूँ। मैं मोह से विगलित कैसे होऊँ? और परमब्रह्म की सिद्धि कैसे हो? उसके लिये आचार्य महाराज कह रहे हैं-मानव जीवन का सार है विशुद्ध मनसं। देह को पवित्र किया, देह को स्नान कराया, कितने कोटि-कोटि जीवों का घात पानी में कर दिया। मन विशुद्ध हो गया होता, तो पानी में नहाने की क्या आवश्यकता थी? मन विशुद्ध नहीं हुआ तो पानी में नहाने से होता क्या है?

धन्य हैं वे दिगम्बर तपोधन, धरती के देवता, जिन्होंने जीवनपर्यन्त के लिये स्नान का त्याग कर दिया हो। 'ब्रह्मचारी सदा शुचि:' ब्रह्मचारी सदा पवित्र है। स्नान वे करें, जिनके चित्त अब्रह्म में लीन हैं। निज के ब्रह्म-नीर में अवगाहन करने वाले को जड़ नीर में डूबने की आवश्यकता नहीं है। वह चिदानन्द चैतन्य भगवत्स्वरूप में लवलीन हो रहा है। ऐसे योगी को जड़-पानी में डूबने की आवश्यकता नहीं है। कीचड़ का एक छींटा भी सफेद कुर्ते पर आ जाये तो जब-जब दृष्टि जाती है-'ओ हो! मेरा वस्त्र मलीन हो गया।' एक विकल्प रहता है कि कब मौका पाऊँ, पानी मिले, उसे छुड़ा लूँ। कभी किसी ने बोल दिया कि आपके चेहरे पर कलोंच है, फिर तो देखो क्या विकल्प आता है। हर क्षण तू देखता है कि कब दर्पण मिले और मैं शीघ्र उसको छुड़ा लूँ।

मित्रो! **चेहरे की कलोंच के लिये तड़प रहे हैं कि कब कालौंच छुटा लूँ। इस आत्मा में कब से कर्मों की कालौंच लगी है, तुम तड़प क्यों नहीं रहे हो, कि सर्वज्ञ का मुझे दर्पण मिल जाये, उसमें झाँक करके निज के द्रव्य-गुण-पर्याय को देख करके अपनी कालौंच को छुटा लूँ।** वह सर्वज्ञ के ज्ञान में ही झलकता है। निज के द्रव्य, गुण, पर्याय को समझना है तो अरहन्त

के द्रव्य, गुण, पर्याय को समझना होगा। अरहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय को नहीं समझ पा रहे हो तो निज के द्रव्य, गुण, पर्याय को नहीं समझ पाओगे और तब तक मोह विगलित होने वाला नहीं है।

जब तक मोह विगलित नहीं हो रहा है, तब तक वह विशुद्ध मन कैसे हो गया? **वस्त्र की कालिमा को पानी से धो सकते हो, चेहरे की कालिमा को तुम साबुन से धो सकते हो, परन्तु मन की कालिमा धोना है तो अरहन्त की देशना चाहिये। बिना जिनवाणी के मन की कालिमा धुलनेवाली नहीं है। जगत् में सुन्दर सलिल अरहन्त की देशना है।** एक बार भी पवित्र परिणामों से जिनवाणी सुन ली होती तो विश्वास रखना, इस खोटे काल में नहीं आना पड़ता। जो भावी भगवान् है, वही जिनवाणी को पवित्र परिणामों से सुन सकेगा।

ज्ञानी! जिसकी भवितव्यता पवित्र नहीं है, वह अरहन्त देशना को सुन नहीं सकता है। क्या किया आज तक? हमारा पुरुषार्थ चला तो किस ओर चला? कपड़े को धोने के लिये पुरुषार्थ कर रहा है, साबुन-पानी खोज रहा है, पर ये जगत् की लीला देखो, मन को विशुद्ध करने का पुरुषार्थ कर ही नहीं रहा है। मेरी भूमि, मेरा भवन, ये मन को विशुद्ध कर रहे हैं क्या? धन को देखकरके चित्त प्रसन्न हो रहा है, तो आप समझ रहे हो कि मेरे अन्दर हर्षित भाव आ रहे हैं, जबकि यह आत्मा को कलुषित करने का उपाय चल रहा है। आपके चैतन्य गुणत्त्व दृष्टि का वह तत्त्व-उपदेश कहाँ गया? हे वर्द्धमान! आपके पादमूल में पहुँचते ही सिंह और गाय के अन्दर प्रीति उत्पन्न हो जाती थी, नकुल और सर्प एकसाथ बैठ लेते थे। यह वर्द्धमान के विशुद्ध मन का फल था। कैवल्य प्रकट हो गया। कैवल्य की महिमा देखो, जन्म-जात विरोधी जीव एकसाथ बैठ करके तत्त्व-उपदेश सुनने की आकांक्षा लिये हैं। यह भीतर का रसायन है। भैया सामने मधुर सरस भोजन की थाली आते ही चित्त में कुछ परिणमन होता है कि नहीं? होता है। हर विषय को आप ज्ञेय बनाकर समझो। अज्ञानी बनकर भोजन भी नहीं करना, भोजन भी करना तो ज्ञानी बनकर करना। मैं यह समझता था

कि पर वस्तु को परिणमाने में पर कर्त्ता नहीं हो रहा है, लेकिन यहाँ तो सरस भोजन की थाली सामने आने पर चित्त में परिणमन प्रारम्भ हुआ है और रूखी-सूखी थाली सामने दिख जाये तो फिर देखो तेरा मन क्या कहता है? 'ओ हो! आज तो इसी से पेट भरना पड़ेगा।' भावों में मलिनता आ गई।

युवाओ! आपकी इच्छित सामग्री सामने दिख जाये तो चित्त प्रसन्न हो जाता है और रूखी-सूखी सामग्री दिखने पर चित्त खिन्न हो जाता है। यह तो भिन्न वस्तु थी। जब भोजन की थाली को देखकर परिणामों में परिवर्तन हो सकता है, तो हे मुमुक्षु! अरहन्त की वीतरागी मुद्रा, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु को देखकर परिणामों में परिवर्तन न हो, ऐसा होता नहीं है। नियम से परिणामों में परिणमन होता है। इस जीव के अन्दर में ऐसा क्षण भी आता है कि जो भाव होने के लिये कभी चिन्तन भी नहीं किया था, लेकिन वीतरागी अरहन्त की मुद्रा देखकर वे भाव कब प्रकट हो जाते हैं? 'विशुद्धं मानसं' की जो बात है, उसके लिये तो विशुद्ध साधन भी चाहिये। द्रव्य भी विशुद्ध हो, क्षेत्र भी विशुद्ध हो, काल भी विशुद्ध हो, तब भाव विशुद्ध होंगे। प्रारम्भ में इनकी खोज करना होगी। जिन-प्रतिमा की प्रतिष्ठा, धार्मिक अनुष्ठान, इनकी आवश्यकता क्या है? एक जीव कहेगा कि यह तो पैसे का अपव्यय है। सारे उपक्रमों को करने की क्या आवश्यकता है? एक दृष्टि। जिसको द्रव्यदृष्टि है, उसको पैसे का अपव्यय दिख रहा है जिसकी द्रव्यदृष्टि है, उसको लोभकषाय का त्याग दिख रहा है। एक कह रहा है; लेकिन कि तुम पंचकल्याणक कराके पैसे को क्यों बरबाद कर रहे हो? दूसरा यूँ कह रहा है कि **"बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः"** बहुत आरम्भ-परिग्रह करके नरक-आयु का बन्ध न हो जाये, इसलिये मैं पंचकल्याणक करवाके इनके द्रव्य का सदुपयोग कराके इनको स्वर्ग भेजना चाहता हूँ। दृष्टि देखो। विशुद्धं मानसं। वह विशुद्ध मन कैसे बनेगा? आप मन्दिर की ओर आने लगे तो किसी ज्ञानीजीव ने पूछा कि कहाँ जा रहे हो? टैक्सी में व्यय करके वहाँ जाने की क्या आवश्यकता है? आप घर बैठकर शास्त्र पढ़ लेना, उपदेश सुनने जाने की क्या

आवश्यकता है?

हे ज्ञानी! शास्त्र स्वाध्याय करने से विशुद्धि आती है। उन्हीं भगवान् की वाणी है, लेकिन जब साक्षात् तीर्थंकर भगवान् होते हैं, तब शास्त्र से शब्द पढ़ने में तो आ जायेगा, लेकिन निर्ग्रन्थों के चरणों में जायेगा तो शास्त्र भी सुनाई देगा और अरहन्त भी दिखेंगे और निर्ग्रन्थ भी दिखेंगे। अरहन्तों से अरहन्त नहीं बनते। सिद्धों से सिद्ध नहीं बनते।साध्य सिद्ध नहीं होता, साध्य असिद्ध होता है। जो विषय न्यायालय से सिद्ध हो चुका है, उसके लिये आप क्यों परेशान हो रहे हो? जिसकी सिद्धि नहीं है, उसकी सिद्धि करके बताइये। साध्य असिद्ध होता है, साध्य प्रसिद्ध होता है, फिर भी असिद्ध होता है। इष्ट हो, अबाधित हो, असिद्ध हो, उसका नाम साध्य है। मैं परेशान क्यों होऊँगा? चींटी भी उसी ओर दौड़ती है जहाँ उसका इष्ट होता है। यदि इष्ट नहीं है, तो वहाँ पुरुषार्थ किस बात का? इष्ट हो, किसी से बाधित नहीं होना चाहिये। लोक में असिद्ध दिखाई देना चाहिये, उसको मैं साध्य स्वीकारता हूँ। उसकी सिद्धि के लिये नय और प्रमाण की आवश्यकता होती है।

मेरा जो साध्य है, वह इष्ट है। चिद्रूप भगवान्-आत्मा हूँ। मेरा साध्य अबाधित है, किसी से बाधित नहीं है; लेकिन असिद्ध है, वर्तमान में वह प्रकट नहीं है। असिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है। जो सिद्ध हो चुके हैं, वे प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धालय में हैं और जो सिद्ध नहीं हुये हैं, वे प्रसिद्ध असिद्ध इस भवन में हैं। जो प्रसिद्ध असिद्ध हैं, वे ही होंगे प्रसिद्ध सिद्ध। असिद्ध सिद्ध नहीं होंगे तो सिद्ध 'सिद्ध' कहाँ से होंगे? इसलिये भैया! पहले आपको असिद्ध की खोज करना पड़ेगी। उसमें आपको प्रसिद्ध असिद्ध दिखेगा। उस प्रसिद्ध असिद्ध में भविष्य का सिद्ध होगा। भाषा कठिन हो गई, भाषा को सरल कर दो। जो अनिर्मित है, उसे निर्मित किया जाता है। निर्मित को निर्मित नहीं किया जाता, उसका भोग किया जाता है, परन्तु उत्पन्न नहीं किया जाता है। वस्तु है, उसकी पर्यायों को बदलना ही निर्मितपना है। अवस्तु में न निर्मित है, न अनिर्मित है। आटा रखा हुआ है तो

रोटी अनिर्मित है, पूड़ी अनिर्मित है; परन्तु राख में न पूड़ी निर्मित है, न अनिर्मित है। संसार के भव्यजीवों में भगवान् अनिर्मित है। अभव्यों में भगवान् न निर्मित है, न अनिर्मित है। जहाँ उपादान की योग्यता है, वहाँ ही साध्य की सिद्धि होगी। जहाँ उपादान की योग्यता नहीं है, वहाँ साध्य की सिद्धि किञ्चित् भी नहीं होगी।

ज्ञानी! साधन तभी तक है, जो साध्य की सिद्धि में सहकारी है। पर साधन साध्य को सिद्ध तभी कर पायेंगे, जब जिसको तुम सिद्ध करना चाहते हो उसकी उपादान की योग्यता है। यदि उपादान में योग्यता नहीं है, तो साधन उस साध्य की सिद्धि के लिये अकिञ्चित्कर है, जैसे बंध्या स्त्री के लिये युवा पुरुष भी सन्तान उत्पत्ति में अकिंचित्कर है। बाँझ स्त्री के लिये कितना ही पौरुषवान् पुरुष हो, क्या सन्तान उत्पन्न कर सकता है? जैसे बाँझ स्त्री के लिये पुरुष सन्तान उत्पत्ति में सहकारी नहीं है, वैसे ही जो जीव स्वयं श्रुत को नहीं सुनना चाहता, जो जीव स्वयं आत्मा को विशुद्ध नहीं करना चाहता है, उस जीव के लिये पंचपरमेष्ठी भी अकिञ्चित्कर हैं, कुछ कर सकते नहीं हैं। भगवान् की देशना भी भव्यों को फलित होती है। भगवान् की देशना अभव्यों को फलित नहीं होती है। यह नियत है कि जिन जीवों का पुण्य प्रबल है, वे ही श्रुत को समझ पायेंगे। जिनका पुण्य न्यून है, वे तीर्थंकर के समवसरण में नहीं पहुँचेंगे। जबरजस्ती कोई पकड़कर रथ में बिठाल भी लेगा तो महावीर की मौसी की भाँति आँखों में सूजा डाल लेगा। उसको आप क्या कर सकते हो? इसलिये कुन्दकुन्द स्वामी के सूत्र को कभी मत भूलना-**'णाणा जीवा णाणा कम्मं'** यदि जीवन में अपनी प्रसन्नता को नष्ट नहीं करना चाहते हो तो इस सूत्र को प्रतिक्षण प्रतिपल निहारना।

हम उपदेश दे सकते हैं, हम आदेश दे सकते हैं, पर किसी का परिणमन नहीं करा सकते हैं। नाना जीव हैं, नाना कर्म हैं, सभी जीवों के अपने -अपने क्षयोपशम हैं, अपने-अपने क्षयोपशम के अनुसार ही कार्य करेंगे। पर के निमित्त से कभी कार्य होता नहीं है। परनिमित्त कार्य में सहकारी तब होता है, जब सामनेवाले का उपादान पवित्र होता है। आप शरीर को लेकर आये हो कि शरीर

आपको लेकर आया है? आप शरीर को लेकर आये हैं। आप जो हैं, वही आत्मा है। जो दो धारायें विभक्त हो गई हैं कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, जो पाप-पुण्य कर रहा है वह पुद्गल कर रहा है, शरीर कर रहा है।

ज्ञानी! इस भ्रम में मत पड़ जाना। शरीर सहकारी अवश्य है, पर शरीर कार्यकारी नहीं है। यहाँ तुझे तेरा शरीर लेकर नहीं आया, आत्मा के परिणाम लेकर आये हैं। जैसे आत्मा ने भाव किये, सो शरीर ने चल दिया है। साइकिल चल रही है, चक्के भी घूम रहे हैं, पर जाती किस ओर है? जिस ओर पैडल घूमता है, उस ओर जाती है, कि जिस ओर हैंडल घूमता उस ओर जाती है ? तेरे मन का हैण्डल घूमता है, वहीं साइकिल का हैण्डल घूम जाता है। व्यवहारी उपचार से कहता है कि साइकिल आ गई। सत्य यह है कि साइकिल नहीं लायी, लानेवाली भगवान्-आत्मा ही है। इसने विकार न किया होता तो ये परिणमन होता ही नहीं। आचार्य शुभचन्द्र स्वामी 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ में लिखते हैं-ये चालक कुछ-और है, चलनेवाला कुछ-और है। चालक न हो तो चले कैसे? चलनेवाला न हो तो चालक करे क्या?

अजङ्गमं जङ्गमनेययंत्रं, यथा तथा जीव-घृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथाऽत्रेपि हितंत्वमाख्यः॥स्व.स्त।

अजंगम यन्त्र को चलानेवाला कोई है, तो जंगम पुरुष है। यन्त्र तो है, लेकिन चालक नहीं है, तो यन्त्र क्या करेगा? **यन्त्र देह है, चालक आत्मा है। ये चालक निकल जाय तो ये वाहन चलनेवाला नहीं है। इसलिये पुद्गल की शुद्धि में मत पड़ जाना। पुद्गल की शुद्धि अनेक दर्शनों में की है। जैनदर्शन शरीर की शुद्धि नहीं करता है, जैनदर्शन मन विशुद्ध करता है। मन विशुद्ध हो जायेगा तो तन से रहित हो जायेगा।** लोक में जितनी साधनाएँ हैं, वे तन को अच्छा करने के लिये हैं। कोई योगा कर रहा है, कोई प्राणायाम कर रहा है, कोई आसन लगा रहा है, कोई दान दे रहा है, कोई उपवास कर रहा है। इन सबके लक्ष पर दृष्टिपात करो तो बैकुण्ठधाम/स्वर्ग तक सीमा है। स्वर्ग से मतलब

वैक्रियक शरीर मिलेगा, सुन्दर शरीर मिलेगा। यहाँ जो नाक का एक छेद खोलता है, दूसरा बन्द करता है, क्यों? योगा कर रहा हूँ। क्यों कर रहे हो? शरीर स्वस्थ रहेगा।

मेरे मित्र! **चित्त शुद्ध रहा, तो शरीर की शुद्धि स्वयमेव होती है। चित्त शुद्ध नहीं रहा, तो शरीर कभी शुद्ध होनेवाला नहीं है। रोग उनको ही सताते हैं, जिनको तनाव रहते हैं। हार्मोन्स उनके बदलते हैं, श्वेत कणिकायें उनकी समाप्त होती हैं, जिनके मस्तिष्क में तनाव रहेगा, उनका सिरदर्द करेगा।** अब वह विषय अलग है कि वह बताये ना। सत्यता यह है कि जितनी आँखें खराब नहीं होती हैं, उतने माथे खराब होते हैं। अधिकांशतः जब सिर दर्द होता है, तो मानसिक तनाव से होता है।

ज्ञानी! आँख से नाक देखो और चित्त से चैतन्य देखो तो कैवल्य प्रकट हो जायेगा। कैवल्य दर्शन प्रगट हो जायेगा, फिर ये चक्षु किस काम के? आँख से नाक देखो, चित्त से चैतन्य देखो, फिर सारे चश्में उतर जायेंगे। जो आँख से नाक नहीं देख पा रहे हैं और चित्त से चैतन्य नहीं देख पा रहे हैं, उनके चश्में नहीं उतर पा रहे हैं। क्या आप विश्वास मान रहे हैं मेरी बात पर? नहीं तो आँखोंवाले डाक्टर से पूछ लेना। जिन-जिन को चश्मे उतारना हो, आँख से नाक देखना प्रारम्भ कर देना। एक तो आपका चश्मा उतर जायेगा और दूसरा आपकी अच्छी समाधि हो जायेगी। जब तक आँख से नाक दिखती रहेगी, तब तक तुम्हारा आयुकर्म शेष है। जिस दिन तुम्हारी आँख से नाक दिखना बन्द हो जाये, उस दिन तुम ध्यानस्थ बैठ जाना, यह तेरा अन्तिम दिन है। यदि महामन्त्र की एक माला नासाग्रदृष्टि से कर लेता है, तो दुनियाँ के आँखों के व्यायाम करने की आवश्यकता ही नहीं है और श्वासोच्छवास के साथ फेर लेता है तो प्राणायाम की भी आवश्यकता नहीं है। ये सारी विद्यायें तुम्हारे पास हैं। आँख से नाक देखो तो व्यायाम हो गया और श्वासोच्छवास से महामन्त्र की माला फेर लो तो प्राणायाम हो गया। अब तुझे अलग से पेट पिचकाने की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति घण्टों-घण्टों

प्राणायाम में समय दे देता है, लेकिन महामन्त्र की जाप करने का मन नहीं करता है। यहीं देखा जाता है कि पर्यायदृष्टि है कि द्रव्यदृष्टि है।

एक जीव सुबह घूमने जाता है, कोटि-कोटि जीवों की हत्या कर रहा है। बेचारा पापी है। सुबह घूमने जा रहा है, प्रमादचर्या कर रहा है, कोटि-कोटि जीवों की हिंसा कर रहा है। एक धर्मात्मा जीव है, वह कभी घूमने नहीं जाता, वह तो छीपीटोला के जिनालय के दर्शन करके हरिपर्वत के मन्दिर के दर्शन करने जाता है। पैदल देख-देख कर जाता है जिससे जीवों की हिंसा न हो। इस नगर में कितने जिनमन्दिर हैं। आप प्रतिदिन एक जिनमन्दिर के दर्शन करो नंगे पैर, प्रमाद को छोड़ करके। आपको घूमने की क्या आवश्यकता? **सम्यग्दृष्टि जीव विशुद्ध मन से हर क्रिया में निर्जरा करता है, संवर करता है और अशुभ आस्रव को रोक लेता है। मिथ्यादृष्टि जीव हर क्रिया में आस्रव-बन्ध ही करता है। इसलिये कर्म की निर्जरा करने के लिये भी ज्ञान चाहिये, विवेक चाहिये। बिना प्रज्ञा के तुम कर्म की निर्जरा भी नहीं कर सकते हो और संवर भी नहीं कर सकते हो। बिना प्रज्ञा के मोक्ष भी नहीं जा सकते हो।**

ज्ञानी! जैसे आप कहते हो कि पैसे कमाने के लिये भी बुद्धि चाहिये पड़ती है, ऐसे ही पुण्य कमाने के लिये भी बुद्धि चाहिये। मैं इस बात को नहीं स्वीकारता हूँ कि जो मन्दबुद्धि है उसको कोई कषाय नहीं है, वह तो बहुत पुण्य कमा रहा होगा। नहीं, भैया! मन्दबुद्धि है, उसकी पाप में बुद्धि नहीं जा रही है तो आप एक तरफ से क्यों लगा रहे हो? जो गाड़ी जाम हो गई, अब आप व्यवहारी हो सो व्यवहार से सुनो-जो गाड़ी जाम हो गई, आगे नहीं खिसक पा रही है, भैया! वह पीछे भी नहीं खिसक पा रही है। ऐसे ही जिसकी बुद्धि पाप में नहीं जा पा रही है, उसकी बुद्धि पुण्य में भी नहीं जा पाती है। दोनों तरफ के लिये प्रज्ञा चाहिये। इसलिये सातवें नरक में एकेन्द्रिय नहीं जाता। सातवें नरक जाने के लिये, बज्रवृषभनाराच संहनन और मनुष्यपर्याय चाहिये। या तो महामत्स्य हो या मनुष्य हो। इसके बिना कोई सातवें नरक नहीं जा पाता है। नारी भी सातवें नरक नहीं

जा सकती है। स्त्री की सीमा छटवें नरक तक है। प्रज्ञा चाहिये। क्योंकि बाहर के दृश्यों को देखने के लिये जितना क्षयोपशम चाहिये पड़ता है, ऐसे ही भीतर के दृश्य को देखने के लिये भी तीव्र क्षयोपशम चाहिये पड़ता है। क्या लुहार के घन से घड़ी के काँटे ठीक होंगे? घड़ी ठीक करने की छोटी-छोटी चिमटियाँ होती हैं। पुरुषार्थ किसको ज्यादा करना पड़ता है? मेहनत किसको ज्यादा करनी पड़ती है? देखा जाये तो पसीना-पसीना हो रहा है लोहार। एक अन्दर बैठा है, पंखा चल रहा है, घड़ी के काँटों को ठीक कर रहा है, पर सत्य बताना, क्षयोपशम किसका ज्यादा लग रहा है? घड़ी सुधारनेवाले का।

मित्रो! जो शरीर को सुरक्षित रख रहे हैं, ये तो लुहार के समान हैं। जो चैतन्य भगवान्-आत्मा को निहार रहे हैं, वे एक-एक चिमटी से घड़ी के काँटों को ठीक कर रहे हैं। अपने परिणामों को सुधारो, इस कवच को मत देखो। कवच बदल जायेंगे। जगत् में जितने आगम पुराण हैं, सारे तेरी आत्मा की सिम में हैं। शरीर में कुछ भी नहीं है, मात्र कवच है। अज्ञानी कवच को निहार रहा है। ये तो मात्र साधन है। जो कुछ है, वह तेरी आत्मा के भीतर है।

कैसे करें मन विशुद्ध? रागादिक मल से रहित है, वही विशुद्ध मन है। भैया! जगत् के बीच में तो रहो, परन्तु जिन-जिन निमित्तों से राग-द्वेष बढ़े, उनसे अपनी आत्मा को थोड़ा सुरक्षित रखना। क्यों? न समाज शाश्वत् साथ देनेवाली है, न परिवार शाश्वत् साथ देनेवाला है। मित्र भी शाश्वत् नहीं हैं। शाश्वत् तो तेरा निर्मल आत्मा ही है। यदि उसको मलिन कर लिया, तो ये कोई साथ देनेवाले नहीं हैं। नरक में जाना पड़ा तो अकेले जायेंगे, स्वर्ग जाना पड़ा तो अकेले जायेंगे। सिद्ध भी बना तो अकेला ही जायेगा। 'अहमिक्को'।

ज्ञानियो! **जैसे साँप-गुहेरा के जहर से, सिंह से अपनी रक्षा करते हो, ऐसे ही अशुभ परिणामों से अपनी रक्षा करो।**

भैया! जीवन में इतना अवश्य कर लेना कि जिनसे किञ्चित् भी विकल्प हो, उनसे आज क्षमा माँग लेना। कहना, भैया! मैंने जिनवाणी को सुना, समझा और जाना है। घड़ी खराब हो जाती तो मैं तुरन्त जाता हूँ घड़ी सुधारने वाले के पास। मैं जीवन की घड़ी को ठीक कराने आगरा गया था और ठीक करवाके आया हूँ। मैं अपनी आत्मा को तेरे राग-द्वेष में डाल करके अपनी विडम्बना करना नहीं चाहता। कल किसी से तू-तू मैं-मैं हो गई हो तो आज जाकर उसके पैर पड़ लेना और कह देना कि मैंने एक सूत्र सीखा है 'विशुद्धं मनसं' और विशुद्ध मन कब होगा? जब रागादिक मल से रहित होगा, तब विशुद्ध मन होगा।

ज्ञानियो! जगत् की बातों को सुन करके चित्त को अशुद्ध मत करना। बुंदेल खण्ड में कहते हैं कि हड़िया पर पारा रखा जा सकता है, मटके पर ढक्कन रखा जा सकता है, पर जगत् के बोलनेवालों के मुख पर कोई ढक्कन नहीं होता है। इसलिये तुम जगत् को ढकने मत जाओ, अपने परिणामों को पवित्र रखो। तुम किस-किस का मुख बन्द करने जाओगे? उसका मुख स्वतन्त्र है, तेरे कान स्वतन्त्र हैं। जब तुम साइकल के हैण्डल को मोड़ करके मार्ग बदल सकते हो, तो अपने चित्त को मोड़ दो, मार्ग बदल दो। जगत् में कौन क्या कह रहा है, इसे सुनने का प्रयास करोगे तो तुम कभी भी अपनी विशुद्धि की रक्षा नहीं कर पाओगे।

ज्ञानियो! जितने महातपोधन हुये हैं, महामुनि हुये हैं, उन्होंने क्या-क्या नहीं सुना, फिर भी नहीं सुना। कुलभूषण, देशभूषण महाराजों को देखो। व्यन्तर ने महामाया दिखाई और कैसी खूँखार आवाजें कीं। सुनते रहे, फिर भी नहीं सुना। ज्ञेय बनाकर देखा। वेदक भाव से देखा, वेदना से नहीं देखा। पूर्व बैरी देव ने कुन्थलगिरि क्षेत्र में कितना घोर उपसर्ग किया, फिर भी वे ध्यानस्थ खड़े रहे। श्रीराम लक्ष्मण ने आकरके उपसर्ग को दूर किया। एक उपसर्ग दूर कर रहा था, दूसरा उपसर्ग कर रहा था; फिर भी योगीश्वर न दूर करनेवाले को देख रहे थे न उपसर्ग करनेवाले को देख रहे थे; वे तो देखनहार को देख रहे थे, इसलिये

वे जगत्दृष्टा बन गये, केवली भगवान् बन गये देशभूषण कुलभूषण महामुनिराज।

ज्ञानी! जब तुम्हारे ऊपर कोई उपसर्ग करने आ जाये, तो उसे अपना परम मित्र स्वीकारना, क्योंकि तुम्हारी समता की परीक्षा की घड़ियाँ हैं।

हे मुमुक्षु! कितना ही मस्त/बलवान छात्र हो, लेकिन परीक्षा हाल में पहुँचते ही एक क्षण को कैसा लगता है? क्या मालूम क्या आने वाला है? काँपने लगता है। भले डरते-डरते डर लग रहा हो, फिर भी धैर्य रख करके पेपर करता है। जब पेपर पूर्ण हो जाता है, उसका परिणाम आता है, तभी तो अगली कक्षा में पहुँचता है।

ज्ञानी! साधना करेगा तो उपसर्ग आयेंगे। उपसर्ग के काल में परिणामों को पतित नहीं करना है। तुम्हारे परिणाम पवित्र हुये तो तेरी अगली श्रेणी आगे बढ़ जायेगी। कैसे-कैसे महामुनि हुये जिनको घानी में पेल दिया, वसूले से छील दिया, सिगड़ी सिर पर रख दी, तब भी 'आह' नहीं निकली। अपने जीवन में क्या कष्ट है? 'तो तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्युमहोत्सव भारी।'

भैया! इस भवन में और नगर के सभी जिनालय में, पता नहीं वह पुरानी चित्रकला कहाँ चली गई, कभी गजकुमार के ऊपर सिगड़ी रखी दिखती थी, कभी सुकुमाल सुकौशल पर उपसर्ग दिखता था। ये चित्र फिर से बनवाइये। प्रत्येक मन्दिर में ये चित्र होना चाहिये। योगी बन कर भी ऐसे भाव न बन जायें कि मेरे ऊपर उपसर्ग क्यों? स्वामी! तुम्हारे ऊपर क्या उपसर्ग है? उपसर्ग ये है। रक्त बह रहा है और निर्ग्रन्थ कह रहे हैं 'हे छीलनहार! तू उसे ही छील सकता है जो छिल सकता है। जिसको छीलना चाहता है, उसे छीलने की सामर्थ्य तेरे में नहीं है। इन चित्रों को टाँगे रहना। कभी किसी जीव के परिणाम विचलित होने लग गये तो निहार लो। एक हजार पृष्ठ का ग्रन्थ पढ़ने में समय लगेगा, पर एक चित्र को देखने से हजार पृष्ठ का ग्रन्थ पढ़ जायेगा। इसलिये प्राचीनकाल में जिनालयों में चित्रशालायें भी हुआ करती थीं। वे चित्रशालायें निर्ग्रन्थों और

अरहन्तों की होती थीं। नहीं तो कोई ज्ञानी कहे 'ठीक है, महाराज! मैं अपने पिताजी का भी लगवा दूँगा।' नहीं भाई! लगवा मत देना। न अपना, न पिताजी का। नहीं तो लोग उन पर भी चावल चढ़ायेंगे और अरहन्त की प्रतिमा की असादना तेरे निमित्त से होगी। आजकल तीर्थों में मन्दिरों में अपने-अपने स्टेच्यू खड़े कर दिये हैं, ऐसे अहंकारी लोग हैं। कुछ लोगों ने तो जीते-जीते खड़ी कर दी हैं, बाकी आप समझदार हो। ऐसे काम आप नहीं करना जिससे भविष्य में मिथ्यात्व बढ़े। श्री जिनालयों में निर्ग्रन्थों और अरहन्तों के अलावा किसी अन्य का चित्र होना ही नहीं चाहिये। भविष्य को निहारो। कहीं आपने सरागी का चित्र रख दिया, लोग कहीं उनको भी भगवान् मानकर पूजने लग गये, तो तेरे निमित्त से मिथ्यात्व फैल जायेगा।

अब तुम मुझे गाली भी दे दो तो मुझे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है, क्योंकि मैं रागादि मल से रहित होना चाहता हूँ। एक क्षण भी मन में आ गया, तो विश्वास रखना, आपने भविष्य में अरहन्त बनने का संस्कार मन में डाल लिया। **कुम्भकार तुरन्त मिट्टी घोलकरके चाक पर मटका नहीं बनाता। पहले घोलता है, फिर रौंदता है, फिर लौंदा बनाकर छोड़ देता है। मिट्टी के अन्दर थोड़ा लोच बढ़े, संस्कार पड़े, फिर लौंदा बनाकर चाक पर रखता है। ऐसे ही जो जिनवाणी तुम सुन रहे हो, उससे आत्मा में संस्कार पड़ रहे हैं। एक दिन का उपदेश भी भविष्य का अरहन्त बनायेगा।**

असिद्ध ही सिद्ध बनेंगे, सिद्ध 'सिद्ध' नहीं बनेंगे। हमारा साध्य इष्ट है, असिद्ध है, अबाधित है। इसलिये आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि जो विशुद्ध मन से युक्त है, रागादि मल से रहित है, ऐसा पुरुष का मानवजीवन सारभूत है। वही नरों में तिलक है। तिलक ललाट पर होता है। जो नरों में तिलक है, वह तीर्थंकर है और भगवन्तों में कोई तिलक है तो वे सिद्ध भगवान् हैं। तीनलोक का तिलक है। इन सब की प्राप्ति 'विशुद्धं मानसं'। भो ज्ञानी! आत्मा का कल्याण करना है तो 'विशुद्धं मानसं'। जिसने 'अणु-अणु स्वतन्त्र' समझ लिया, उसका मन

विशुद्ध हो सकता है। आचार्य महाराज ने कह दिया कि यह सब कथन भव्यों के लिये है, अभव्यों के लिये कोई कथन नहीं है।

आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"करने योग्य कर्त्तव्य"

संसारध्वंसने हीष्टं धृतिमिन्द्रियनिग्रहे।
कषायविजये यत्नं नाभव्यो लब्धुमर्हति॥ 163॥

अन्वयार्थ-अभव्यः = अभव्य जीव **संसारध्वंसने हीष्टं** = संसार के नाश में प्रेम **इन्द्रियनिग्रहे धृतिं** = इन्द्रियों के जीतने में धैर्य, **कषायविजये यत्नं** = कषायों के विजय में यत्न **हि लब्धुं न अर्हति** = निश्चय से नहीं कर सकता है, उसके योग्यता का अभाव है।

भावार्थ-अभव्य जीव संसार के नाश में प्रेम, इन्द्रियों को जीतने में धैर्य और कषायों को जीतने में प्रयत्न निश्चय से प्राप्त नहीं कर सकता।

अभव्य संसारीप्राणी

एतदेव परंब्रह्म न विन्दन्तीह मोहिनः।
यदेतच्चित्तनैर्मल्यं रागद्वेषादिवर्जितम्॥ 164॥

अन्वयार्थ-यत् एतत् = जो यह **रागद्वेषादिवर्जितम्** = रागद्वेषादि रहित **चित्तनैर्मल्यं** = चित्त की निर्मलता है, **एतत् एव परंब्रह्म** = यह ही परब्रह्म का स्वरूप है, **इह मोहिनः न विन्दन्ति** = परन्तु संसार के मोही जीव इस बात का अनुभव नहीं करते हैं, अतः संसार में उनका भ्रमण होता है।

भावार्थ-संसार में मोही प्राणी यह नहीं जानते हैं कि रागद्वेष रहित जो चित्त की निर्मलता है, वही परमब्रह्म है।

तथानुष्ठेयमेतद्धि पण्डितेन हितैषिणा।
यथा न विक्रियां याति मनोऽत्यर्थं विपत्स्वपि॥ 165॥

अन्वयार्थ-हितैषिणा पण्डितेन = आत्महित वांछक पण्डित का कर्तव्य है कि **विपत्स्वपि** = विपत्तियों के पड़ने पर भी **यथा मनः अत्यर्थं विक्रियां न याति** = जिस तरह मन में अत्यधिक विकार उत्पन्न न हो, **तथा एतत् हि अनुष्ठेयम्** = उस तरह ही आचरण करना चाहिए।

भावार्थ-आत्महित वाञ्छक ज्ञानी को ऐसा अनुष्ठान-आचरण करना चाहिए जिससे विपत्तियों के आने पर भी मन अधिक विकार को प्राप्त न हो।

॥ सद्-देशना ॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य प्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में जीव की भवितव्यता, अभवितव्यता की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि संसार में दो प्रकार के जीव हैं, भव्य और अभव्य। जैसे कालिया नाग गुड़ मिश्रित दुग्ध का भी पान करे, तब भी वह अपने विष को नहीं छोड़ पाता है, ऐसे ही अभव्य जीव साक्षात् तीर्थंकर देव के विराजमान होने पर भी, जिनवाणी के गुँजायमान होने पर भी, उन तत्त्वों को ज्ञान का विषय तो बना लेता है, लेकिन कल्याण का विषय नहीं बना पाता है, जैसे कि प्रवचन की सी. डी.। जैसा वक्ता बोल रहा है, वैसा ज्यों-का-त्यों उसके अन्दर भर जाता है, लेकिन वह सी. डी. एक शब्द का भी वेदन नहीं करती है, क्योंकि वह जड़ है, उसके अनुभूति नहीं है। जैसे सी. डी. शब्दों को संग्रहीत करने पर भी कभी उसकी कल्याणदृष्टि नहीं होती है, ऐसे ही अभव्य जीव ग्यारह अङ्ग का ज्ञान प्राप्त करके भी उसको आत्मश्रद्धान जाग्रत नहीं होता कि मैं कल्याण करूँ। उस जीव का नियोग ही ऐसा है।

प्रत्येक जीव को अपने-अपने अनुसार अपने इष्ट की भावना रहती है। संसार का नाश भव्य मात्र को ही इष्ट है, अभव्य को नहीं है। धैर्य, इन्द्रिय निग्रह, कषाय

की विजय, यत्न ये सब भव्य मात्र ही कर पायेगा। अभव्य तो इनकी प्राप्ति की इच्छा भी प्रकट नहीं करेगा। सारा उपदेश किसको है?

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपना कल्याण॥ छ.ढा.॥

यदि अपना कल्याण चाहते हो तो हे भव्यो! अरहन्त की पवित्र वाणी को सुनो। यदि कल्याण की दृष्टि नहीं है, तो अरहन्त की वाणी के सुनने के भाव आ ही नहीं सकते हैं।

संसार में दु:ख है, यह दृष्टि अभव्य को कभी समझ में नहीं आती। संसार में क्लेश है, यह दृष्टि अभव्य को कभी नहीं आती। मैं पाप से लिप्त हो करके संसार में भ्रमण करूँगा, यह दृष्टि अभव्य के मन में कभी नहीं आती। पाप करके भी पश्चाताप के भाव न आते हों तो समझ लेना कि मेरा संसार कितना दीर्घ है। हो सकता है कि अज्ञानता में अशुभ हो जाय, हो सकता है कि कषाय के आवेग में अशुभ हो जाये, लेकिन जीव ठण्डे होने पर तो कम-से-कम सोचता है कि हाय मैंने क्या कर लिया? भैया! किसी की ओर मत निहारना, मात्र अपने चित्त को चित्त से देखना। अशुभ होने के बाद भी हर्षित भाव आ रहे हैं, पाप करने के बाद भी प्रसन्नचित्त हो रहा है, तो कितना आर्त्तध्यान से युक्त जीव है। अशुभ करने पर, अशुभ बोलने पर प्रसन्नता झलक रही हो, अशुभ सोचने पर प्रसन्नता झलक रही हो, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी 'बारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में लिख रहे हैं, हे मुमुक्षु! यही त्रियोग की अशुभता है। मन में भी अशुभ चिन्तवन चल रहा है, वचन में भाषण भी अशुभ ही निकल रहे हैं, तन से क्रिया भी अशुभ ही हो रही है, तो किसी से पृच्छना की आवश्यकता नहीं है कि मेरी दशा क्या होगी? तटस्थ होकर निज में लीन होकर सुनो, निज में लीन होकर सोचो।

मित्रो! वही अपना पुण्य मानना, यही अपना धर्म का प्रेम मानना, जिस समय किसी ने कहा नहीं कि आगरा जाकर महाराज के दर्शन कर आओ, आहार दे आओ, अरहन्त का अभिषेक करो, फिर भी मन उल्लसित हो रहा है कि चलो, बहुत दिन हो गये भगवान् का अभिषेक नहीं कर पाया, गुरुचरणों में नहीं पहुँच

सका, चलो, अपन महाराज के दर्शन करने चलते हैं। बिना किसी के कहे जो अन्तरङ्ग में उमङ्ग दौड़ रही है, यही पुण्योदय है, यही पुण्य प्रवृत्ति है। प्रेरणा से फिरके किया, तो क्या किया? निज के भावों से किया है, वह धर्म है। अंतरङ्ग में भाव उमड़ रहे हैं, हिलोरें दौड़ रही हैं, जैसे दरिद्री को धन मिलने पर प्रसन्नता होती है, वैसे ही भव्यजीव को भगवान् से मिलने पर प्रसन्नता होती है। एक मोद होता है, एक प्रमोद होता है। **मोद, प्रमोद। मोद तो मोदक के खाने पर भी हो जाता है। 'मोदक' नाम सुनते ही मन मुदित हो जाता है। इष्ट वस्तु के मिलने पर जो हर्ष होता है, वह मोद है। धर्म-धर्मात्मा को देखकर जो अत्यन्त आनन्द आता है, उसका नाम प्रमोद है। मोद के ऊपर होता है प्रमोद। जिसमें विषयानुभूति है, वह मोद है और जिसमें धर्मानुभूति है, उसका नाम प्रमोद है।** धर्म-धर्मात्मा को देख करके हृदय प्रमुदित न हो, तो वात्सल्य अङ्ग कहाँ? संवेग भाव कैसा? संवेग भाव के अभाव में सम्यग्दर्शन कैसा?

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि संसार के नाश करने में जिसकी दृष्टि है, वह भव्य है। जिसको संसार नाश करने का भाव ही नहीं आ रहा है, वही अभव्य है।

ये तो अपना अहोभाग्य है कि ऐसे खोटे काल में आने के बाद भी साँची जिनवाणी अपन को मिल गई। कितने लोग क्या-क्या पढ़ रहे होंगे। जो-जो पढ़ रहे होंगे, उनके परिणाम वैसे होते हैं। शास्त्र पढ़ते समय चित्त एकाग्र हो जाता है, जो ग्रन्थ पढ़ता है, उसमें इतना लीन हो जाता है कि चाहे वह विपरीत हो तो विपरीत को भी सत्य मान लेता है। इसलिये शास्त्र में कोई कथन हो तो वह आगम का आगमभूत ही हो। वाचना के बाद कुछ बाहर के श्रावक आकर बैठ गये। एक तो रूमाल निकाल कर आँसू पौंछ रहा था। मैंने कहा-क्या हो गया भाई? कहता है मैं 'सर्वोदयी देशना' ग्रन्थ पढ़ रहा हूँ महाराज! उस ग्रन्थ को पढ़करके लगा कि कब आपके दर्शन कर लूँ। उस व्यक्ति के भावों को देखो, शास्त्र को पढ़ करके चित्त की विशुद्धि कितनी होती है। एक बेटी ने घर में

बैठ करके 'पंचशील सिद्धान्त' पुस्तक को पढ़ लिया। वह बहन किसी गुरु के पास नहीं गई, भगवान् के पास भी नहीं गई। उस छोटी-सी पुस्तक को पढ़ करके उसने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और माता-पिता से कह दिया कि वस्तुस्वरूप ये है, मेरा शादी कराने का त्याग है। जिसके भीतर भगवती वाणी प्रवेश कर जाये, उसका भगवान् तो नियम से प्रकट होगा।

पानी की एक बूँद यदि छिद्र पाकरके मकान के अन्दर प्रवेश कर जाये, तो पूरे मकान को ढहा देती है। एक-एक बूँद मालूम नहीं चलता। पूरे मकान को धराशायी करनेवाली बूँद अरहन्त की वाणी है। एक बूँद भी अन्दर चली गई तो मिथ्यात्व का भवन गिरना-ही-गिरना है। वट के वृक्ष का बीज फूँक दो तो उड़ जाये। वही दाना अंकुरित हो करके पर्वत को नष्ट कर देता है। बड़े-बड़े मन्दिर, बड़े-बड़े भवन ध्वस्त कर देता है। आपने ध्यान नहीं दिया, कहीं मन्दिर की छत पर पीपल का या वट का वृक्ष उग गया, तो पता चला कि उसने पूरे मन्दिर या भवन को ही नष्ट कर दिया। हमारे बहुत सारे मन्दिर तो ऐसे ही नष्ट हुये। एक अंकुर ने इतने बड़े महल को नष्ट कर दिया। पानी की बूँद ने मिथ्यात्व के महल को नष्ट किया है। **जैसे वट का अंकुर भवन को नष्ट कर देता है, ऐसे ही चारित्र का अंकुर प्रकट हो जाये तो असंयम का भवन नष्ट होगा और नियम से शिवालय की ओर गमन होगा।**

ज्ञानी! जितने कर्मों की क्षपणा एक अज्ञानी जीव हजारों वर्षों में तपस्या करने पर कर पाता है, उतने कर्मों का क्षय ज्ञानीजीव श्वास मात्र में कर लेता है। कौन ज्ञानी? त्रिगुप्ति से गुप्त, वीतराग चारित्र से युक्त। वीतराग ज्ञानी श्वास मात्र में कर लेता है।

श्वास के एक करोड़वें भाग प्रमाण भी यदि आपने भावसंयम धारण कर लिया, उस जीव का समाधिसहित मरण हुआ तो मात्र आठभव में निर्वाण होगा अन्यथा बत्तीसवें भव तक नियम से निर्वाण होगा।

बालको! भले ही पाँच मिनिट का त्याग क्यों न करो, लेकिन करो अवश्य। तुमसे नहीं छूटते पाप, मैं मानता हूँ, तुम नहीं छोड़ पा रहे हो, लेकिन पाँच मिनिट तो छोड़ सकते हो? इतना घोर पापी तो कोई नहीं होगा जो किसी पाप को पाँच मिनिट भी न छोड़ पाये। पर विश्वास रखना, पाँच मिनिट में भी तेरी परीक्षा हो जायेगी। ज्ञानी ने पाँच मिनिट का मौन लिया, जैसे ही कायोत्सर्ग किया, घण्टी बजना चालू हो गई, बेटे का फोन आ रहा था। मित्र! पाँच मिनिट भी कितने कठोर लग रहे हैं? अब घड़ी देख रहा है कि कब बात करूँ? नहीं, ज्ञानी! तूने नियम लिया है इसलिये रख दो।

हे मुमुक्षु! विश्वास रखो, पाँच मिनिट का संयम पंचमगति दिला देगा। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। ये पाप यदि तूने पाँच मिनिट के लिये भी छोड़ दिये, तो विश्वास रखो, जो दृश्य तुमने कभी देख लिया था, वह दृश्य कभी तेरे स्वप्न में भी आ जाता है, तो पाँच मिनट तो बहुत लम्बे होते हैं, एक सेकेण्ड का भूकम्प का झटका कई भवनों को ध्वस्त कर देता है। और पाँच मिनिट का संयम कर्मों को न हिला सके, यह हो ही नहीं सकता। आप लेकर तो देखो। पाँच मिनिट का संयम ग्रहण करने पर संस्कार तो आ गया। फिर एक दिन ऐसा आयेगा कि आज का पाँच मिनिट का नियम अन्तिम श्वास के समय समझ में आयेगा।

आज अन्दर की एक अज्ञानता को निकाल देना। यदि बेटा नियम ले लेता है और उससे नियम भङ्ग हो गया, तो माँ बहुत ताने-बाने देती है और कहती है कि न लेता तो अच्छा था। नहीं, माँ! ऐसा मत बोलो कि न लेता तो अच्छा था आप तो ये बोलो 'बेटा! तूने बहुत अच्छा किया जो नियम लिया। पर ये अच्छा नहीं किया कि आपने भङ्ग कर दिया।' फिर भी माँ! मत डाँटना। लोक में भ्रम फैला रखा है कि तोड़ने की अपेक्षा से न लेना अच्छा है। यदि उससे टूट भी गया, भङ्ग भी हो गया, आप विश्वास रखो, वह जीवन में एक बार जरूर कहेगा कि मैंने कभी व्रत लिया था। और वह शब्द उसके अन्दर गूँजता रहेगा

कि मैंने तोड़ दिया था, व्रत लेकर के छोड़ दिया था, उसके मन में विकल्प रहेगा। लोग मेरे पास प्रायश्चित्त लेने आते हैं। जिसने व्रत लिया है, यदि वह एक दिन भी उपदेश सुन लेता है तो उसका मन कहता है कि मेरे से बड़ा उन्मार्गी कौन होगा? जिनमार्ग को प्राप्त करके मैंने उन्मार्ग की इच्छा प्रकट की है, **व्रत लेकरके लोक में व्रती कहलाया और भीतर में अव्रत का सेवन किया, तो मेरे से बड़ा पापी कौन होगा? सारा लोक आपको नमस्कार कर रहा है, वन्दना कर रहा है, पूज्यता दे रहा है और आपने पूज्यता को भङ्ग किया है, तो आपसे बड़ा पापी कौन होगा?** ये कौन बोल रहा है? उसका व्रत बोल रहा है। हजारों के बीच में व्रत ले लिया, फिर घर जाकर भङ्ग कर दिया, ठण्डे दिमाक से जब बैठेगा, तो भीतर का गुरु कहेगा कि वत्स! इससे बड़ी माया क्या होगी? इससे बड़ा महापाप क्या होगा?

"पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया"

मेरे से ऐसा दुष्कृत्य कैसे हो गया? कुछ भी हो, लोकलाज-वश मानप्रतिष्ठा के वश नहीं प्रकट कर पा रहा है, तब भी विश्वास रखना, अन्तिम श्वास के आते-आते उस जीव ने भी प्रायश्चित्त ले लिया। आपको मालूम होना चाहिये कि प्रायश्चित्त अन्तरङ्ग तप है। तपसः निर्जरा च', तपस्या से कर्म की निर्जरा होती है। जिसने व्रत लेकर तोड़ दिया था, उसको तो प्रायश्चित्त लेने के परिणाम हो जायेंगे; पर जिसने व्रत लिये बिना पाप किया है, वह प्रायश्चित्त भी नहीं लेगा। बड़ा पापी वह है जिसने कभी व्रत लिया ही नहीं है। व्रत लेने के बाद उसमें दोष लगने पर उसके मन में ये भाव आ रहा है कि मुझे प्रायश्चित्त लेना चाहिये। ये भाव किसके मन में आयेगा? व्रत लेने के बाद पाप किया है, वह तो प्रायश्चित्त के भाव करेगा; परन्तु जिसने व्रत नहीं लिया, वह क्या पाप नहीं कर रहा? वह तो मस्ती में पाप कर रहा है, लेकिन उस जीव को कभी भी प्रायश्चित्त लेने के परिणाम ही नहीं होंगे, क्योंकि वह यह कहेगा कि मैंने व्रत भङ्ग किया ही नहीं है।

अव्रती को कहीं कर्मों से समझौता नहीं हो जाता कि व्रत को तोड़ने वाले को अधिक बन्ध हो रहा है और मैं व्रत लिये बिना पाप कर रहा हूँ तो क्या तुझे बन्ध नहीं होगा? इसलिये सन्तुष्ट मत हो जाना कि मैंने व्रत नहीं लिया तो मुझे कोई बन्ध नहीं होगा। उनको भी बन्ध होगा और अज्ञानता में भी बन्ध होगा। आपको जगत् में कुछ ऐसे भी अज्ञानी मिल जायेंगे जो बोलें कि मैं नहीं जानना चाहता हूँ, मैं नहीं समझना चाहता हूँ। एक व्यक्ति के सोले के कपड़े पड़े थे, किसी ने छू लिये। वही कपड़े पहन करके तू आ गया। एक ज्ञानी ने बोल दिया कि तेरे कपड़े छू गये हैं, आप आहार मत दो। 'आपने बताया क्यों? मुझे थोड़े-ही मालूम था।' गुस्सा कर रहा है कि आपने बताया क्यों? मेरे तो सोले के ही थे। ऐसे जगत् में जीव हैं जो तत्त्व को जानना नहीं चाह रहे हैं। ये अज्ञान नाम का मिथ्यात्व है। मैं नहीं जानना चाहता हूँ। जानूँगा तो विकल्प आयेंगे। मैं तो मनमानी करूँगा। जो जाने सो पापी, न-जाने तो क्यों पापी? इसलिये यहाँ कह रहे हैं कि जो जानना ही नहीं चाहता है, क्योंकि अभव्य जीव तो तत्त्व को जानने के भाव ही नहीं करता है। अज्ञानता से बन्ध होता है। ये मत कहना कि मैं जानता नहीं था तो मुझे क्यों बन्ध होता है? अच्छा, एक बात पूछूँ? आपका हाथ एक तवे में पड़ गया, आपको मालूम नहीं था कि यह ठण्डा है या गर्म, तो हाथ जलेगा या नहीं? जलेगा। क्यों? आपको तो मालूम नहीं था। अज्ञानता से तो बन्ध होता नहीं है तो फिर जलना भी नहीं चाहिये? ज्ञानी ने हल्ला करके रखा था कि ज्यादा जानोगे तो ज्यादा बन्ध होगा, इसलिये जानो मत। सारे जगत् को पागल करके रख दिया।

ध्यान दो। चाहे तुम अज्ञानता में पाप करो तब भी बन्ध होगा, चाहे तुम जान कर पाप करो तब भी बन्ध होगा। पर अन्तर इतना है-

अज्ञानात् कृतं पापं सद्ज्ञानात् विमुच्यते।
ज्ञातःज्ञानं कृतं पापं बज्रलेपो भविष्यति॥

अज्ञान से किया पाप सद्ज्ञान से छूट सकता है, लेकिन जो जान-जान कर

भी पाप कर रहा है, उसको बज्र का लेप होगा। बज्र का अर्थ है हीरा। जब हमारे अरहन्त की प्रतिमायें बनती हैं तो प्राचीन काल में शुद्ध हीरे का लेप बनाया जाता था। आहार जी में शान्तिनाथ प्रतिमा पर बज्र का लेप है। बुन्देलखण्ड में देशी पाषाण की जो प्रतिमायें हैं, उनके ऊपर हीरे का लेप है। कुछ भी हो जाये, लेप हटता नहीं है। ऐसे ही कर्म का ऐसा लेप हो जाता है कि वह हटता नहीं है। जो जान-जान करके छुपछुप करके पाप करता है, वैसे अज्ञानता में कोई पाप करता नहीं है, हर व्यक्ति जानकर ही पाप करता है। अज्ञानता में तुम कुछ भी नहीं करते हो। यदि अज्ञानी हो जाओगे तो जड़ हो जाओगे और जड़ को तो वेदन होता नहीं है। इस दृष्टि से तो चींटी भी जीव को खा रही है, वह भी वेदन करके खा रही है। ऐसा ही है।

ऐसे भी वृक्ष हैं जो मनुष्य को खाद्य बना लेते हैं। विदेशों में ऐसे नरभक्षी वृक्ष हैं जिनके सामने से मनुष्य निकले तो झाड़ियाँ गिर जाती हैं, फिर वह अपनी ओर खींच लेती हैं। कितनी कषाय है? एकेन्द्रिय जीव की कषाय देखो कि मनुष्य तक को भक्षण कर गया। यह दृष्टि देखो। इसलिये माताओ! परिवार ही सबकुछ नहीं है, समाज ही सबकुछ नहीं है, देश ही सबकुछ नहीं है। जरा स्वदेश पर भी ध्यान रखो। अपने बेटे के राग में भाई के बेटे के गाल पर चाँटा मत मार देना। इस सत्य को लोग समझ नहीं रहे हैं, लेकिन समय बतायेगा।

ज्ञानियो! सारी शंकाओं का समाधान समय होता है। मेरे मित्र! अपने बेटे के राग में अपने भाई के बेटे के गाल पर चाँटा मत मार देना। हो सकता है कि अन्तिम दिन पानी पिलाने का समय आ जाये, तेरा बेटा विदेश में हो, तो भाई का बेटा तुझे मुख में पानी पिला रहा होगा। ऐसा भी हुआ है। तब भी वह कह रहा था कि मेरा काका है। महाराज! कुछ भी हो, वंश तो मेरा है। मैं कैसे तड़पते छोड़ सकता हूँ? एक युवा अभी मेरे पास आया। वह कह रहा था, महाराज! मेरे काका जी को मैंने अपने ही घर में रख लिया। यद्यपि मेरी इतनी शक्ति नहीं है कि मैं इनका निर्वाह कर सकूँ, तब भी सोचता हूँ कि जब मैंने

इनको प्रथम दिन भोजन कराया, तब भी कुछ खाली नहीं हुआ, बराबर हम जैसे थे वैसे ही हैं। इसलिये मैंने सोच लिया है कि इनको घर-घर नहीं भटकाऊँगा, अपने घर में ही रखूँगा। स्वयं के बेटे विदेश में हैं।

हे ज्ञानी! अपने बेटे के राग में अपने भाई के बेटे के गाल पर चाँटा नहीं मारना। जैसे तेरे भाई का बेटा तेरा नहीं है, वैसे, सत्य समझना, स्वभाव से तेरा बेटा भी तेरा नहीं है। किसके राग में किसी को शत्रु बना रहा है, किसके द्वेष में किसको शत्रु बना रहा है?

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्॥ अ.अ.क.॥

जिनवाणी ज्यादा सीख पाओ या न सीख पाओ, जैसे णमोकार की तुम पाँच माला फेरते हो, तो कम-से-कम पाँच मिनिट इसका ध्यान/पाठ कर लिया करो। आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्। मेरी बात मान लो। आज नहीं मानोगे तो नरक में जाकर जब बोध होगा तब कहोगे कि हाँ, महाराज जी ने तो कहा था। ऐसा मैं इसलिये कह रहा हूँ कि भगवान् की माला तो भक्ति को प्रकट करा रही है, परन्तु 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं' यह भेदविज्ञान को प्रकट करा रहा है।

जब तक पर से ममत्व नहीं छूटेगा, तब तक निज का भगवान् समझ में नहीं आयेगा। मेरा आत्मद्रव्य परद्रव्यों से अत्यन्त भिन्न है। जैसे मैं पुद्गल से भिन्न हूँ, विश्वास रखना, ऐसे ही मैं परजीवों से भिन्न ही हूँ। जैसे इससे (मोहक शरीर से) मेरा सम्बन्ध नहीं है, ऐसे ही इस देह से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जब मेरे स्वयं के कर्म-नोकर्म मेरे साथ नहीं रहेंगे, तो दूसरे के कर्म-नोकर्म मेरे साथ कैसे रहेंगे? वीतरागी दिगम्बर मुद्रा को धारण करके भी ऐसी निर्ममत्व बुद्धि ने जन्म नहीं लिया, तो विश्वास रखना, जीव पिच्छी-कमण्डल का वजन तो ढोता रहेगा, लेकिन निर्वाणमार्ग तय नहीं कर सकेगा।

हे ज्ञानी! किसी के राग में किसी से द्वेषबुद्धि मत करना। द्वेष तो बन्ध का ही कारण है। जब राग बन्ध का कारण है, तो द्वेष अबन्ध का कारण कैसे होगा?

बन्ध का ही कारण होगा। कदाचित् किसी के मन में राग-द्वेष चल रहा हो और आपको समझ में आ जाये, तो सब काम छोड़ देना, यदि किञ्चित् भी दया है तो उस जीव को उस राग-द्वेष से निकालने का प्रयास करना, कर सको तो। परन्तु उसके राग-द्वेष को छुड़ाने के राग में अपने आप को ही द्वेष में मत डाल लेना। अन्यथा यह मालुम चला कि एक जीव कीचड़ में फँस रहा है, ज्ञानी निकालने गया, उसका ही पैर फिसल गया और दोनों ही एकसाथ चले गये। ऐसा कभी मत करना। पहले अपना पैर मजबूत करो, इसके बाद दूसरे का सहयोग करना। क्योंकि आत्मदृष्टि बहुत ऊपर की दृष्टि है और दयादृष्टि मध्यम दृष्टि है। एक क्षण ऐसा आयेगा जब परम चरम सीमा में पहुँच जायेगा, तो दया का भाव भी समाप्त हो जायेगा। इसका मतलब यह नहीं समझना कि मैं दया करने का निषेध कर रहा हूँ, क्योंकि लोक में अज्ञानता ज्यादा है, वे समझेंगे कि महाराज ने कह दिया कि दया ही नहीं करना।

भाई! तुम तो दया करना। 'धम्मो दयाविसुद्धो।' लेकिन जब तक निज आत्मा पर दया नहीं है, तब तक पर आत्मा में 'धम्मो दया विसुद्धो' निज से धम्मो दया विसुद्धो और व्यवहार-धम्मो दया विसुद्धो नहीं। मुझे तो ऐसा विकल्प आता है कि एक शब्द को सुनने से भी जीव विपर्यास में न चला जाये, क्योंकि **अस्त्र से मारनेवाला जितना घातक नहीं होता उतना शास्त्र का विपरीत कथन करनेवाला घातक होता है। अस्त्र मारेगा तो एक पर्याय नष्ट होगी और शास्त्र का विपर्यास कर दिया तो मारीचि से पूछो, कितने जीवों के भव-भव बिगाड़ कर चले गये,** स्वयं महावीर बन गये। इन्द्रिय और कषाय पर विजय का यत्न अभव्य जीव कभी भी नहीं करता।

हे मुमुक्षु! जब तक सराग दशा है, तबतक उपकारी के उपकार का भाव तो मन में आता है, पंचपरमेष्ठी के प्रति बहुमान आता ही है। पंचपरमेष्ठी के प्रति बहुमान नहीं आ रहा है तो समझना चाहिये कि हमारे सम्यक् में गड़बड़ी है। हे आचार्य! श्रुत का निबन्धन करके आपने महान् उपकार किया है। आज इस

खोटे काल में हम लोगों को सच्ची जिनवाणी देकरके हमारे कल्याणमार्ग को प्रशस्त किया है।

ऐसा भी दिन कभी-कभी आता है कि जिनका मन जिनमें रखा था, वे भी अपना मन मोड़ लेते हैं जीवन में ध्यान रखना, जिनसे आप जन्मे हो और जिनको आपने जन्म दिया है, मेरे मित्र! ऐसा भी दिन आता है कि दोनों तुझे देखना पसन्द नहीं करते। व्यवहार से कह रहा हूँ। जिनसे तू जन्मा है, जिनको तूने जन्माया है, जब अशुभ कर्म का जन्म होता है तो दोनों ही मुख मोड़ लेते हैं। जिनसे न तू जन्मा है, जिसको न तूने जन्माया है, जब शुभ के दिन आते हैं तो वे भी तुझे सिर पर बिठाल लेते हैं। जब मेरे जन्माये और जिनसे मैं जन्मा, वे ही मुझे न देखें, तो फिर देखनहार कौन होगा? कोई नहीं। मात्र आगम के पास जाकर बैठ जाना। माँ भी अपनी गोद से फेंकने लग जाय, तो माँ जिनवाणी की गोद में बैठ जाना। वह कभी तुमको फेंकेगी नहीं। पालने में झुलानेवाली माँ। पालना नहीं जानते? अब वह भी म्यूजियम में देखने जाना पड़ेगा। कुछ भी हो जाये, बच्चे को एक बार पालने में अवश्य रखना चाहिये।

कुलभद्र स्वामी ने पालने का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। चार रस्सियों और टोकनी वाला पालना। एक रस्सी टोकनी से बंधी है, इधर माँ भोजन कर रही है, वहाँ रस्सी भी खींच कर झुला रही है। माँ की दृष्टि हर समय पालने पर है। बेटा पालने में पल रहा है। पर कभी-कभी बच्चा तो बच्चा, लेटे-लेटे एक पैर बाहर निकाल लेता है। पर धन्य हो उस शिशु को, किसने सिखाया? जैसे ही पालने के बाहर पैर निकालता है और धीरे-से संकुचित कर लेता है। उस बच्चे को भी पता है कि उस पालने में रहूँगा तब तक पलता रहूँगा और पालने के नीचे गिर पड़ा तो हाथ-पैर टूट जायेंगे।

मुमुक्षु! माँ जिनवाणी का पालना है, जिसमें चार अनुयोग की चार रस्सियाँ हैं और भेदविज्ञान की डोरी से भगवती माँ जिनवाणी खींचे रहती है। मेरे शिशु! हे बालक, हे निर्ग्रन्थ तपोधन! तुम बालकवत् हो। चारित्र के पलने में पलते रहोगे

तो तुम बड़े होकरके आगे खड़े हो जाओगे। कहीं चारित्र के पलने से पैर गिर गया, तो हड्डी-पसली टूट जायेगी। वह बालक श्रेष्ठ है जो पालने के बाहर पैर नहीं करता है। तुम कैसे बालक हो जो कषाय के आवेश में आकर चारित्र के पालने से नीचे टपक रहे हो? ज्ञानी कौन? वह शिशु ज्ञानी है जो पालने से नीचे नहीं गिर रहा है उस ज्ञानी की अपेक्षा से जो चारित्र के पालने से कषाय के गड्ढे में गिर रहा है। माँ पालने में सुलाने के लिये झुला रही है। माँ जिनवाणी का जो चार रस्सियों से युक्त पालना है, वह जगाने के लिये झुला रही है कि मेरे बेटे! जाग जाओ। तुम भी अरहन्त हो, तुम भी भगवन्त हो,

सिद्धोहं सुद्धोहं अणंत णाणाइ समिद्धोहं।
देह पमाणो णिच्चो असंख देसो अमुत्तो य॥28/त.सा.॥

जिनवाणी माँ के पालने में झूलते हुए बालक को माँ जिनवाणी क्या कह रही है? सुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि। बेटा तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है। अपने चिद्रूप को भूल मत जाना। भीड़ में किसी अपने से बात करना हो, आपको उसे यहाँ से निकालना हो, तो धीरे-से बोल देता है कि यहाँ से निकल जाना। ऐसे ही माँ जिनवाणी धीरे-से कान में कह रही है, मेरे लाल! एक सौ अड़तालीस ताले हैं, मैं तुझे चाबी दिये देती हूँ। तू भक्ति की चाबी ले जा। यदि न खोल पाये तो रत्नत्रय के हथौड़े से तोड़ देना और धीरे-से निकल जाना, इन एक सौ अड़तालीस तालों से तू मुक्त हो जायेगा।

ज्ञानी! शुद्ध सत्य है, एक क्षण को सत्य का बोध हो जाये तो नियम से आत्मा का शोध हो जाये। पर बोध के बाद ही शोध होता है। पहले बोध फिर शोध।

परम उपादेशभूत है-अहं ब्रह्मोऽस्मि। एक क्षण को ध्यानस्थ हो जाओ। वह परमब्रह्म जैसा सिद्धशिला पर विराजा है, वैसा ब्रह्म मेरी देहदेवालय में है। जैसे नाली में नीर है, तिल में जैसे तेल है, काष्ठ में जैसे अग्नि है, वैसा शक्तिरूप परमब्रह्म मेरे देहदेवालय में है। वही ब्रह्म तद्भूत ही है, अन्यभूत नहीं है,

अन्यथा-भूत नहीं है; लेकिन जो परमब्रह्म है, वह मोही प्राणी को दिखाई देता नहीं है। मोह की सत्ता में सत्य कहाँ दिखता है? जिसको सत्य दिखता है, उसको मोह पसन्द आता नहीं। जहाँ वासनाओं की व्यथा सताती है, कामनाओं की व्यथा सताती है, तब परमात्मा पर दृष्टि नहीं है। जहाँ परमात्मा पर दृष्टि है, वहाँ न कामना है न कामिनी है। जब भगवान् की भक्ति का आनन्द आता है, तो वहाँ कोई दिखाई नहीं देता है। जरा भी कोई दिख रहा है तो भगवान् नहीं दिखेगा। आँख खुली रहेगी, पर आँख देख नहीं पायेगी। इसलिये जो परमब्रह्म है, उसे संसारी मोही प्राणी जानते नहीं हैं। क्यों? जो निर्मल आत्मा का चिद्भाव है, वही परमब्रह्म को जान सकता है। जो राग-द्वेष से रहित होकर अपनी निर्मल दशा से युक्त है, वही जान सकता है। आप यथार्थ मानिये, चित्त भ्रमित है तो सुई के छेद में भी धागा नहीं डाला जा सकता है।

जिसका चित्त चंचल है, जिसकी आँखें इधर-उधर जा रही हैं, वह सुई के छेद में भी धागा नहीं पिरो सकता है। सुई के छेद में धागा पिरोने के लिये आपको एक आँख बन्द करनी पड़ती है, चित्त को स्थिर करना पड़ता है। जब सुई में धागा पिरोने के लिये इतनी एकाग्रता चाहिये पड़ती है, तो निज आत्मा में जिनवाणी के सूत्रों को पिरोने के लिये कितनी एकाग्रता चाहिये है? निर्मल चित्त चाहिये। पानी में पड़ा मोती भी तभी दिखता है, जब पानी शान्त हो जाता है, स्थिर हो जाता है। तेरे चेतन का चिद्रूप परमब्रह्म तभी दिखेगा, जब तेरा स्वयं का चित्त स्थिर हो जायेगा।

हे मुमुक्षु! उसी का अनुष्ठान करना चाहिये। जो आत्महित के वांछक हैं, इच्छुक हैं, ऐसे जीवों को वही आचरण करना चाहिये जिससे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिससे विपत्तियों के आने पर भी मन विपरीतता को प्राप्त न हो। अच्छे दिनों में तो हर व्यक्ति अच्छे से रह लेता है। जिस समय तेरी प्रशंसा होती रहे, उस समय तू उसको अपना माने, यह तो बहुत सरल विषय है। आपके द्वार पर जो सुबह-शाम आकर बैठ जाता है, उसको भी तुम प्रेम से रोटी डालते रहोगे

तो वह भी पूँछ हिलाकर तुम्हारे सामने खड़ा हो जायेगा। स्वार्थ के होने पर तुम उससे बँध कर रहो, यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। जिससे स्वार्थ सिद्ध न होता हो, तब भी तुमको धर्म दिखे, उसका नाम वात्सल्य है, उसका नाम समता परिणाम है। अपनों में अपनापन रख लेना कोई बड़ी बात नहीं है। मैंने चिड़िया को देखा, चोंच से कीड़ों को मार कर लाती है और बच्चों के मुख में रखती है। पर चिड़िया भूल गई। तू कितनी भी हिंसा करके लाये, उसके पंख हो जायेंगे तो वह भी उड़ जायेगा, तुझे छोड़कर चला जायेगा।

ज्ञानियो! ध्यान दो। जैसे चिड़िया के बच्चों के पंख हो जायें तो वह माता-पिता दोनों को छोड़ कर भाग जाते हैं, ऐसे ही तेरे बच्चों के भी पंख हो जायेंगे तो वे भी तुझे छोड़कर भाग जायेंगे। तू हिंसा करके कितनी ही द्रव्य लाकर रख दे घर में। आपसे नहीं कह रहा, उनसे कह रहा हूँ जो ऐसा करते हैं।

समता के साधन मिलने पर समतासागर, क्षमासागर, विशुद्धसागर, शीतलसागर बनकर रहना बहुत सरल है, परन्तु विपत्ति के आने पर अपनी समता को नहीं छोड़ना, इसका नाम शीतलसागर है। इसलिये आचार्य महाराज कितनी करुणा से कह रहे हैं कि अपनी निर्मलता का अभाव मत करना। ऐसा कार्य मत करना जिससे आपकी समता की क्षमता चली जाये।

हे प्रभु! ऐसा दिन मेरे लिये न मिले जिस दिन मेरी समता की क्षमता नष्ट हो जाय। कोई गले में पत्थर रख दे, शरीर में छुरा भोंक दे, तब भी प्रभू से यही कहना कि मेरी समता जीवन्त रहे, समता की क्षमता नष्ट न होने पाये। सिर न उठा पाऊँ तो विकल्प नहीं है, हाथ न उठा पाऊँ तो विकल्प नहीं है, पर समता नष्ट न हो ऐसी क्षमता दे देना। पारसनाथ की वन्दना करने जब-जब जाओ, तब ये व्यर्थ की बातें मत करना कि हे चिन्तामणि पारसनाथ! हे दुःखहर्ता पारसनाथ। ये फालतू बातें छोड़ो। सभी भगवान् दुःख हरनेवाले हैं। भगवान् पारसनाथ के चरणों में जब भी जाना, तब यही कहना, प्रभो! मैं आपसे कुछ नहीं मागता हूँ। आपके चरणों में एक भावना भाता हूँ। जो कमठ के दस भव

तक बार सहते रहे, फिर भी तुम्हारी समता ने पीछा नहीं छोड़ा। आपकी समता हर समय आपके साथ रही। बस, समता की क्षमता जीवन्त रहे, इसलिये आपके चरणों में आया हूँ। गुरुओं के चरणों में एक ही आशीर्वाद ले लेना कि मेरी समता नष्ट न होने पाये। घड़ी का काँटा कभी बारह पर कभी छः पर होता है, पर धुरी अपने स्थान पर होती है। ऐसे ही यह भावना भाना कि ये सुख-दुःख के काँटे तो ऊपर-नीचे होते रहें, पर मेरी समता की धुरी खिसकने न पाये। कोई गाली भी दे जाये तो उसको मुड़ कर देखना मत। परीक्षा तो होगी, बल्कि गाली देनेवाले से कहना कि क्यों ज्ञान का विपर्यास कर रहा है? मुझे गाली सुनकर दुःख नहीं है, दुःख इस बात का है कि तू कर्मबन्ध क्यों कर रहा है? मेरे पर तो कुछ असर पड़ नहीं रहा है, बंध तुझे ही हो रहा है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"धन्यवाद के पात्र"

धन्यास्ते मानवा लोके ये च प्राप्यापदां पराम्।
विकृतिं नैव गच्छन्ति यतस्ते साधुमानसाः॥166॥

अन्वयार्थ-ये च = जो कोई **परां आपदां प्राप्य** = कठिन भारी आपत्ति को पा करके **विकृतिं नैव गच्छन्ति** = अपने भावों में विकार नहीं आने देते **ते मानवा लोके धन्याः** = वे मानव इस लोक में धन्य हैं, **यतः ते साधुमानसाः** = क्योंकि उनका मन साधुवृत्ति में आ गया है।

भावार्थ-जो मानव परम (घोर) आपदा को प्राप्त करके भी विकृति को प्राप्त नहीं होते हैं, अपने भावों में राग-द्वेषादि विकार नहीं आने देते हैं, वे ही साधुमन वाले मानव लोक में धन्यवाद के पात्र हैं।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में वस्तुतत्त्व का अलौकिक व्याख्यान कर रहे हैं। आचार्यप्रवर श्रमणों की अलौकिक वृत्ति की व्याख्या कर रहे हैं। हे महाराज! आप व्यवस्थित रहोगे तो व्यवस्था तुम्हारे पीछे रहेगी। विश्वास रखो, आप जहाँ भी जाओगे, व्यवस्थित रहोगे तो व्यवस्था नियत मिलेगी, आप विकल्प मत करो। विहार कर जाओ, जहाँ रुकोगे वहाँ व्यवस्था मिल जायेगी। मित्रो! तुम विहार कर जाओ ऐसे मुनि बनकर। जैसे खड़े वैसे चले जाओ। जहाँ जाओ, ऐसा ही मंच बना मिलता है।

मेरे मित्रो! तुम व्यवस्थित रहो। इस पर्याय से विहार कर जाओ। जहाँ तुम जाओगे वहाँ व्यवस्था बनी मिल ही जायेगी। ज्ञानियो! बात मेरी मान लो, विहार करो, विहार करो, मुनिवत् विहार करो। व्यवस्था बनाने की आवश्यकता नहीं है, व्यवस्था लेकर चलने की भी आवश्यकता नहीं है। बस, मुनिवत् विहार करो। आपका प्रश्न था कि राग कैसे टूटे? सत्यता यह है कि आप राग कर ही रहे हो, वस्तुव्यवस्था तो व्यवस्थित है। आपके जीवन में भी जितना घटित हुआ है, वह सब पुण्य-पाप के उदय से घटित हुआ है। यदि आप चाहो पुण्य तेरा साथ दे रहा है तो इस गाँव से आप ऐसे ही निकल जाओ, कहीं भी रिश्तेदारी में चले जाना, यहाँ तो कहना ही पड़ेगा कि भोजन लाओ। वहाँ तो लोग कहेंगे भाई! भोजन करो।

एक बात तो सीखना पड़ेगी कि मेहमानी में जो आनन्द है, वह कहीं नहीं है। जितना बढ़िया घर में नहीं मिलता होगा, उतना बढ़िया वहाँ आपको मिल जायेगा। अतिथि बनने में कितना आनन्द है। आप यहाँ घर में रहते हो तो खूब कमाना पड़ता है। वो भी शान्ति से मिल जाये, कोई नियत नहीं है। किसी के यहाँ अतिथि बनकर जाओ, पहले से ही व्यवस्था हो जाती है। 'अतिथि देवो भवः।' जिसकी कोई तिथि नहीं होती है, वह दिगम्बर मुनि होता है। वास्तव में कौन-सा 'अतिथि देवो भवः' है? जो वीतरागी अरहन्त अवस्था से युक्त है, ऐसा निर्ग्रन्थ योगी ही 'अतिथि देवो भवः' अतिथि देव है।

आचार्य वट्टकेर स्वामी ने तो स्पष्ट लिख दिया है, अतिथि को भगवान् ही कह दिया है।

भिक्कं वक्कं हिययं, सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुट्ठिद साहू, भणिओ जिणसासणे भयवम्॥मूला.॥

जो श्रमण साम्यभाव से युक्त है, ऐसा वह वीतरागी तपोधन भिक्षावृत्ति को शोधनपूर्वक करता है। ऐसे श्रमण को भगवान् जिनेन्द्र के शासन में भगवन् कहा है। इसलिये 'अतिथि देवो भवः'। इस पर्याय से आप जायेंगे। जैसे यहाँ से मुनिराज

विहार करेंगे तो यह मंच यहीं छोड़ कर जायेंगे, लेकिन जैसे ही चले जायेंगे, यह मंच विघटित हो जायेगा और जहाँ भी जायेंगे, वहाँ मंच नियम से मिलेगा। पुण्यात्मा जीव जिस पर्याय से जाता है, वहाँ से कण मात्र भी लेकर नहीं जाता है, लेकिन उसके जाते ही जो द्रव्य था, विघटित हो ही जाता है और जहाँ पहुँचता है, वहाँ वही द्रव्य मिलता है। चक्रवर्ती का कटक, चक्रवर्ती का वैभव, चक्रवर्ती की सम्पत्ति तभी तक है जब तक चक्रवर्ती जी रहा है अथवा घर में निवास कर रहा है। चक्रवर्ती के घर के बाहर पैर रखते ही या दीक्षा लेते ही सारा वैभव (नौ निधियाँ, चौदह रत्न) पता नहीं चलते, अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण में विलीन हो जाते हैं और वह जीव जहाँ जाता है, उसके पुण्य के तद्रूप वह द्रव्य पुनः मिलेगा जितना पुण्य अवशेष होगा। ऐसे ही जो मैं यह कह रहा हूँ, वह सत्य है कि असत्य? यदि सत्य है, तो अपने मित्रों से माता-पिता से बोल देना—

हे माँ! सत्य बताना, जब मैं गर्भ में आया था, आपने कितनी तैयारियाँ कर ली थीं। आपने मेरा चेहरा तो देखा ही नहीं था। मैं तो आपसे अपरिचित था। आज के माता-पिता इतने समझदार हैं कि बेटे के गर्भ में आना हुआ नहीं और उसके नाम पर बैंक में डालना प्रारम्भ कर दिया। इसकी व्यवस्था पहले से ही कर दी। बेटा! वे तेरी व्यवस्था करना प्रारम्भ कर चुके थे। अब उनसे पूछना—

हे माँ! देखो मेरा पुण्य, कि मेरे आने से पहले आप व्यवस्था प्रारम्भ कर चुके थे। यदि मैं यहाँ से मरण कर जाऊँगा, तो वहाँ कोई दूसरा व्यवस्था कर देगा। मुझे टेंसन नहीं है, टेंसन तुझे है, क्योंकि तुमको राग है। जिसको राग नहीं है, उसको कोई तनाव नहीं है। मुझे कोई टेंसन नहीं है। हे जीव! जहाँ तेरा पुण्य होगा, वहाँ व्यवस्थायें बन चुकी होंगी। ये जीव व्यवस्थाओं से विवश नहीं है, राग से विवश है। कुछ लोग व्यवस्थाओं को लेकर चलते हैं। मैं चाहूँ तो गाड़ी रखवा दूँ संघ में। ये चौका, ये पाटे, ये दुनियाँ के नाटक प्रारम्भ कर दूँ। बोले-क्या मालूम व्यवस्था बनी या नहीं बनी? जो स्वयं की व्यवस्था लेकर चलता है, तो बनानेवाले भी विवश हो जाते हैं। इसलिये अपने यहाँ व्यवस्था बनाने को कहा

ही नहीं है।

ज्ञानी! कभी मुनि बनना तो मोटरगाड़ी लेकर मत चलना। घर में तो ईंटें ढोने वाला भी नहीं था, अब दुनियाँ की मोटरगाड़ियाँ लेकर चल रहा है। बैठ नहीं रहा है, तब भी इतनी हिंसा चल रही है। विहार करो। श्रावक तुम्हारा विहार करा दें, बस। यदि आप यह कहते हो कि मेरे साथ चलकर मेरा विहार कराओ तो हे ज्ञानी! विहार कराना उसका धर्म था कि तेरा धर्म था? आपको तो कुछ नहीं, पिच्छी-कमण्डल लेकर चल देना। दिगम्बर मुनि अपने समय पर अंजुली लगाकर चल देगा, उसको चर्या करानेवाला कोई-न-कोई अवश्य मिलेगा। धन्य हो उस योगी को और धन्य हो उस श्रावक को। जिस श्रमण ने नियम ले लिया था कि यदि कोई वियावान जंगल में चर्या करायेगा तो चर्या करूँगा, नहीं-तो उपवास करूँगा। उन्होंने नहीं सोचा कि यहाँ जंगल में कौन चर्या कराने आयेगा। यह वे सोचें जिनको भाग्य/भगवान् पर भरोसा नहीं होता है। जिनको भाग्य पर भरोसा होता है, वे जंगल में भी निकल पड़े। आप यही सोचोगे कि जंगल में कौन आहार देगा? जगत् में भाग्य से बड़ी कोई सम्पत्ति दिखाई नहीं देती। यहाँ सीता ने रसोई तैयार कर ली। जब भोजन तैयार हो गया तो सीता राम से कहती हैं, स्वामी! आज कैसा दिन है? हम मिथिला में होते, अवधपुरी में होते, तो आहार देकर भोजन करते।

आचार्य भगवन्तों ने लिखा है कि **वे जीव निशाचर हैं जो निर्ग्रन्थ के हाथ में ग्रास रखे बिना स्वयं भोजन कर लेते हैं।** उनको राक्षस लिखा है 'यशस्तिलक चम्पू' महाकाव्य में। आज इतना ही नियम कर लो कि जब तक देश में, ब्रह्माण्ड में, ढाई द्वीप में जितने वीतरागी तपोधन विचरण कर रहे होंगे, उनकी निर्दोष आहार चर्या हो जाये, उसके बाद मैं मुख में पानी डालूँगा। ये भी व्रत है। जानकी कह रही हैं राम से, स्वामी! कैसे दिन आ गये, दिगम्बर तपोधन के दर्शन नहीं हो रहे हैं। लक्ष्मण बाहर निकले। सामने निहार रहे हैं और धीरे-से कहते हैं, भैया-भैया-भैया! देखो। ये भक्त की भावना पूरी हो गई। सामने से धरती के

देवता, वीतरागी तपोधन, दिगम्बर मुनि ईर्यासमिति से चले आ रहे हैं। धन्य हो। कौन कल्पना कर सकता है? भाग्य देखो। लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम है, भोगान्तराय कर्म का क्षयोपशम है तो सब सामग्री सहज मिलती है। यदि इनका क्षयोपशम नहीं है, तो हाथ में आया ग्रास भी छोड़ना पड़ता है। और-तो-और मुख का भी बाहर निकालना पड़ता है। अंजुली में बाल आया, तो मुख का भी निकालो और अंजुली का भी छोड़ो।

जब कर्म होता है तो मुख का भी खींच लेता है और जब पुण्य का उदय होता है तो थाल-के-थाल सजते हैं। मुनिराज ने विधि ली तो जंगल में आहार हुये कि नहीं? श्रीराम और जानकी ने वीतरागी तपोधन को नवधा भक्ति से आहार दिये। जटायु पक्षी देख रहा था, यदि मैं भी मनुष्य होता तो अतिथि के हाथ में ग्रास रख लेता। अपने पूर्वकृत दोषों का पश्चात्ताप कर रहा था—'हाय-हाय मैंने पाँच सौ मुनियों को घानी में पेला था।' भैया! जहाँ बन्ध किया था, वहीं निर्जरा कर रहा है। जटायु पक्षी दण्डक राजा था, जिसने निर्ग्रन्थों को घानी में पेल दिया था। आज वही गिद्ध पक्षी बनकर निहार रहा है। जातिस्मरण हो गया। वीतरागी निर्ग्रन्थों को, निर्दोष यतियों को घानी में पिरवा दिया था, उस पाप से माँसभक्षी पक्षी बन गया। देखते-देखते ग्लानि से भर गया, पश्चात्ताप में लीन हो गया। जड़ साबुन को वस्त्र पर घिसो तो वह भी साफ हो जाता है। मैं जान कर बोल रहा हूँ। हमारे ये युवा साथी हैं। अब जीवन में भूल तो हो जाती है। ये कभी-कभी बेचारे इतने कुण्ठित हो जाते हैं कि अब मन्दिर नहीं आ पा रहे हैं, मुनिराज के पास नहीं आ पा रहे हैं। क्यों? दोष हो गये हैं, कैसे सामने आऊँ? भैया! हो गया। तुम्हारे चेहरे ने ही दोष किया है। आपके परिणामों ने दोष किया है। जटायु को देख लो, पाँच सौ मुनियों को घानी में पेल दिया था। जब **साबुन पानी लगाने से वस्त्र साफ हो जाता है, तो निर्ग्रन्थों के चरणों में आलोचना रूपी साबुन-पानी लगाने से पाप शान्त हो जाता है। जीवन में कोई भूलें हो गई हों तो उसका आलोचना और प्रायश्चित्त करके साफ हो लेना, लेकिन कुण्ठित हो करके**

धर्म से दूर मत रहना। कहनेवालों की मत सुनना कि कौन क्या कह रहा है? किया हमने है, काटूँगा भी मैं। कोई कल्पना कर सकता है कि राज्य अवस्था में पाप का बन्ध किया हो, मनुष्यपर्याय में पाप का बन्ध किया हो और पक्षी की पर्याय में पाप काटने बैठ गया हो? कौन सोच पायेगा?

भैया! किसी जीव को हीन मत समझना। यदि बन्दर भी बैठा-बैठा निहार रहा हो तो उसको सर्वथा हेय मत मानना कि वह उपद्रव करने आया है। बन्दर ने भी तो आहार देखा था, नेवले ने भी तो आहार देखा था, सिंह ने भी तो आहार देखा था। वही सिंह भरत चक्रवर्ती बन गया, वही वृषभ बाहुबली आदि बन गये। वे ही चार प्राणी थे। इसलिये किसी को हीन मत समझना। तुम्हारे घर में कोई मुनिराज पधारें, कोई भी श्रावक आपके चौके के बाहर खड़ा हो, वह कहे कि मैं देख लूँ, तो भगाना मत। दे दूँ, तो भगाना मत। यह जड़ वस्तु की महिमा नहीं है, यह रोटी के टुकड़े की महिमा नहीं है, यह निमित्त मात्र है। उसको रखने पर भी भाव बदलता है। रहस्य क्या है? अपने मुख में रखने पर तो मात्र पेट भरता है। बेटे के मुख में रख रही है तो माँ का दुलार टपक रहा है। उस बेटे के रोग का नाश हो रहा है। आपकी पत्नि शोक में बैठी हो तो उसके शोक को तुम पुचकार कर ठीक नहीं कर पाओगे। या तो तुम उसके भैया को सूचना दे दो कि आप आ जाओ या अपने पोते को उसकी गोद में छोड़ दो या अपने बेटे को वहाँ भेज दो। जैसे ही वो बेटे की मुसकराहट देखेगी तो उसका राग उमड़ेगा, राग उमड़ते ही जो शोक के परिणाम होंगे वे बदल जायेंगे, उसका कष्ट दूर हो जायेगा।

ज्ञानी! अन्दर की बात समझो। पहले मेहमानी तीन-तीन दिन तक होती थी। इन परिणामों में बड़ा प्रभाव पड़ता था। घर में क्लेश हो तो या तो मेहमानों को बुला लो या मेहमानी करने चले जाओ। सबसे बड़े मेहमान दिगम्बर मुनि होते हैं। जिसके घर में क्लेश हो रहा हो, उस घर में चौका लगा लेना। जो भाई-भाई दुश्मन जैसे कभी बोलते नहीं थे, वे भी कह देते हैं कि चलो भैया! पड़गाहन

तो कर लो। ऐसा कौन-सा अभागा होगा जो साधु का पड़गाहन करने नहीं जायेगा? जब एकसाथ खड़े होकर आहार देगा, तो धीरे-से कहना, भैया! आज तो महाराज के आहार हुये हैं, अपना भोजन यहीं होना है। तो उसको भोजन करना ही पड़ेगा। बस, समझ लो कि झगड़ा समाप्त हो गया।

उस योगी की दशा को देख करके चित्त को रोक नहीं सका। जैसे ही वीतरागी तपोधन के आहार हुये, पक्षी उड़ करके जिस पात्र में आहार का पानी गिर रहा था, उसमें जाकर बैठ गया। जैसे ही पानी पंखों में लगा, उसके पंख स्वर्णमयी हो गये। उस जटायु जीव ने मुनिराज के चरणों में अभक्ष्य का त्याग कर दिया। भैया! आप तो मनुष्य हो।

माँ! जब सीता जटायु पक्षी के व्रतों का पालन करा सकती है, तो तुम अपने पुत्रों को व्रत का पालन न करा पाओ तो तुम माँ किस बात की हो? आज यदि बेटा दो माह का रात्रिभोजन त्याग करे, तो माँ धीरे-से उसकी धोती खींचती है– 'सुन! इतना नहीं चल पायेगा। कम कर दे।' बस, समझ लेना कि माँ नहीं है। बाकी आप समझो। जो बेटे के संयम के पालन के लिये प्रसन्न न हो, वह माँ कैसी? आज अपने घर जाकर जिनकी सन्तानें हो उनसे कह देना 'बेटा! आपको मैंने अपने सुख के लिये जन्म नहीं दिया, अपने शरीर की सेवा कराने के लिये जन्म नहीं दिया, मैंने आपको जन्म सनातन धर्म की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिये दिया है। इसलिये यदि तुम मन्दिर नहीं गये, योगियों के चरणों में नहीं गये, तो तुम धरती में भारभूत हो जाओगे, तुम मेरे ऋण को चुका नहीं पाओगे, क्योंकि मैंने तुम्हें जन्म अपनी सेवा के लिये नहीं दिया और तुम्हारे सुख भोगने के लिये नहीं दिया, हमने तीर्थंकरों की सन्तति का निर्वाह करने के लिये दिया है।'

जितने युवा बैठे हैं, ध्यान से सुनना। चाहे गर्भाधान का काल भी क्यों न हो, तुम यही चिन्तन करना कि ये जो सन्तान जन्मेगी, सनातन धर्म की रक्षा के लिये होगी। ऐसा चिन्तन करना। **जन्म लेकर खा-पीकर मर जाना, ऐसा तो तिर्यंच भी करना जानते हैं। जन्म लेकर, जन्म देकर मर जाना, कोई बड़ी बात नहीं**

है। ऐसा तो पशु-पक्षी भी करना जानते हैं। जन्म लेकरके जन्म-मरण से रहित होने का पुरुषार्थ करना मनुष्य का काम है।

ज्ञानी! इन्द्रियसुख भोगने के लिये शादी मत करवाना। सनातन धर्म की रक्षा के लिये सन्तान को जन्म देने के लिये शादी करवाना। जन्म नहीं दे पाओ तो शादी कराने की आवश्यकता नहीं है। फिर तो ब्रह्मचर्य धर्म में लीन होकरके निर्ग्रन्थ बन करके अपनी समाधि करना। कठिन है क्या? अभी तो मैं व्यवहार की बातें कर रहा हूँ। जगत् में जो-जो व्याख्यान योग्य द्रव्य हैं, सब द्रव्यानुयोग का विषय है। व्याख्या किसकी होगी? द्रव्य की। चरणानुयोग में वर्णन किसका होगा? द्रव्य का ही तो होगा। प्रथमानुयोग में वर्णन द्रव्य का ही तो है। द्रव्यानुयोग में तो द्रव्य का वर्णन है ही।

एक कर्ताभूत कथन कर रहा है, दूसरा अकर्ताभूत कथन कर रहा है। एक शुद्ध जीव की व्याख्या कर रहा है, कथन तो जीवद्रव्य का ही हो रहा है। राग-द्वेष छूट सकता है कि नहीं छूट सकता? चिन्तन की गइराइयाँ नहीं होंगी तो राग-द्वेष नहीं छूट सकता, इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा।

प्रज्ञा की तीव्रता में जीव तीव्र बन्ध करता है और प्रज्ञा की तीव्रता में तीव्र निर्जरा भी करता है। आज के युवा जो बुद्धियाँ इंजीनियरिंग आदि में लगाये हुये हैं, वे तीव्र बुद्धियाँ जिनागम में लगायें तो जिनशासन की कितनी प्रभावना हो। आप मानो या न मानो, जिनवाणी में स्पष्ट लिखा है, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'प्रवचनसार' जी में लिखा है कि कल्याण अङ्ग का आशय है निरोग शरीर। हाँ! **दीक्षा के बाद किसी की असाता का उदय आ जाये, वह विषय अलग है। लेकिन दीक्षा के पूर्व दीक्षार्थी कल्याण अङ्ग होना चाहिये। मन्दबुद्धि को कभी भी दिगम्बरी दीक्षा नहीं देनी चाहिए। जिस व्यक्ति की प्रज्ञा मन्द है, उसे राज्यमन्त्री/प्रधानमन्त्री के पद पर क्या बिठाल दिया जायेगा? मन्दबुद्धि को कोई विशेष सर्विस दी जाती है क्या? वह तो वहीं है जहाँ बुद्धि का ज्यादा प्रयोग नहीं होता है, शरीर की ही मेहनत होती है। वह टोकनी ही**

डाल पायेगा, लेकिन बुद्धि का काम नहीं कर पायेगा। ऐसे ही मन्द बुद्धि को दीक्षा दे दोगे और बहुत बड़ी भीड़ भी लगा लोगे, उससे जिनशासन की प्रभावना नहीं होगी, उससे मात्र समाज पर भार होगा। यहाँ कथन कर रहे हैं कि प्रज्ञावन्त को दीक्षा देना। प्रज्ञावन्त होगा तो स्वयं का भी कल्याण करेगा और दूसरे को भी जिनशासन के आगम ग्रन्थों का आडोलन करके जिनशासन की परम्परा को आगे बढ़ायेगा। इसलिये आपको बुद्धिमानों को ही दीक्षा देना चाहिये। इन बातों को भीड़ के राग में कोई बोल ही नहीं रहा है।

शिष्यों की संख्या बढ़ाने के राग के कारण सत्य को तुम्हारे सामने रखा नहीं जा रहा है। जबकि सत्य यह है कि स्पष्ट निषेध है। उन्मत्त पुरुष को दीक्षा दोगे क्या? मद्यपायी को दीक्षा दोगे क्या? पहले साधुपुरुष होना चाहिये, फिर साधु होना चाहिये। जो कोई अशुभ कर्म कर चुका हो, अशुभ कोर्टकेश जिसके हों, जिस पर ऋण रखा हो, ऐसे व्यक्ति को कभी जैनेश्वरी दीक्षा नहीं दी जाती। कोई ज्ञानी कहे-महाराज! पचास करोड़ का ऋण है, अब क्या करूँ? दीक्षा ले लूँ, सो सबसे मुक्त हो जाऊँ। भैया! तू दीक्षा लेकर पिच्छी-कमण्डल तो पकड़ लेगा, परन्तु मन शुद्धि को कभी प्राप्त नहीं होगा। जब-जब तू सामायिक में बैठेगा, तब-तब तेरे मन में भाव आयेगा कि मैंने जीवन में क्या किया? कितने लोगों का ऋण है। न ऋण छोड़कर आना, न ऋण लेकर आना। छोड़ कर आयेगा तब भी विकल्प होगा कि मेरा सब छूट गया। इसलिये त्याग करके आना। जैनदर्शन में छोड़ने का नाम दान नहीं है, 'त्यागो दानं।' (सर्वार्थसिद्धि)। जो त्याग किया जाता है, उसका नाम दान है। त्याग करने पर प्रसन्नचित्त होता है। सुबह-शाम तुम कितना ही पेट में भर दो, सुबह थोड़ा कष्ट प्रारम्भ होता है, लेकिन जैसे ही त्याग करके आता है तो मस्तिष्क ठण्डा हो गया।

त्यागो दानं। जो त्याग करता है, उसका मस्तिष्क ठण्डा हो जाता है। जिससे कोई छुड़ा ले जाये, तो रोता है। 'त्यागो दानं' त्याग कब होगा? एक ज्ञानी दूसरे के घर में घुस गया और कहता है 'भो स्वामी! मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय

शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है।' काहे की शुद्धि? तुम्हारी वस्तु है ही नहीं, सामग्री उठाकर महाराज की अंजुली में रख दी, अब कह रहा 'त्यागो दानं'। दान होता है क्या? दूसरे की वस्तु का दान 'दान' होता है क्या? यदि बेटा कमाने लग गया है और पिता के घर चौका लगा है, वह पिता की सामग्री देता है तो उस बेटे का दान 'दान' नहीं कहलायेगा। स्वयं का कमाया हुआ देना ही दान है। नहीं तो ससुराल पहुँच गया, वहाँ चौका लगा था, तू कहने लगा 'महाराज! मेरा चौका लगा हुआ है।' सीधी बोल ससुराल का चौका लगा हुआ है, मेरा कुछ नहीं है। बोलेगा, 'महाराज! जीने दोगे कि नहीं जीने दोगे?' ज्ञानी! अच्छे से जीने देना है, इसीलिये तो समझा रहा हूँ कि भ्रम में जी रहे हो, पर के घर में घुस-घुस कर दान दे रहे हो। नहीं है शक्ति तो जिसका चौका है उससे पूछ लो कि क्या मैं दे सकता हूँ? अनि:सृत नाम का दोष आता है। भले ही कुये से शुद्ध पानी ले आना, उसको प्रासुक करके दे देना, लेकिन अपनी ही वस्तु देना। राजमार्ग यह है। कथन राजमार्ग का ही होना चाहिये। अपवाद का कथन तो करना ही नहीं चाहिये। अब सोचना पड़ेगा कि क्या करूँ।

अब राग-द्वेष छोड़ेगा कैसे? कुछ लोग सभी महाराजों को दौड़-दौड़ कर आहार दे आते हैं। कहते हैं कि बैकुण्ठ चला जाऊँगा। ज्ञानी! बैकुण्ठ तब जाओगे जब विवेकपूर्वक शुद्धिपूर्वक स्व की वस्तु का त्याग करोगे। दूसरे के घर में जाकर उठाकर अंजुली पर पटक दिया और आपका मुड़ना और महाराज की अंजुली का छोड़ना। क्यों? जल्दी-जल्दी में बिना देखे पटक दिया, सो बाल आ गया। उनका तो चौबीस घण्टे का आहार गया। आस्था, श्रद्धा, विवेक तुम सबकुछ त्याग दोगे तो फिर कुछ नहीं बचेगा। जब भी पंचपरमेष्ठी के चरणों में आना रागद्वेष छोड़कर तो आना, पर विवेक छोड़कर मत आना। विवेक छोड़कर आये तो वहाँ भी बन्ध ही करोगे। भगवान् की भक्ति कर रहा होगा तो भगवान् के सामने खड़ा हो जायेगा, पीछे से लोग दर्शन करने आयेंगे, वे आपके पृष्ठ का दर्शन करेंगे कि भगवान् का दर्शन करेंगे? विवेक रखो। अब आप कहते हो, महाराज! मेरी

आँखों में चश्मा लग गया, मुझे दिखाई देना बन्द हो गया, मैंने कोई खोटे काम किये ही नहीं, यह पाप आ कहाँ से गया?

अरे! तुझे पता नहीं है। जब तू पुण्य करने गया था, वहीं पाप करके आ गया है। कैसे? जब भगवान् के दर्शन करने गया था, सो अहंकार में सामने खड़ा हो गया था। इतना विवेक खो गया था कि दूसरे भी दर्शन करेंगे। वहाँ से तू दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध करके आ चुका था। स्वामी! मैंने जीवनभर दान दिये, पुण्य किये, फिर भी दरिद्रता क्यों आ गई? ज्ञानी! तुझे पता नहीं है। तूने दान जरूर दिये थे, पर जब तू दान दे रहा था, तब मेरे मन में ये भाव आ गये थे कि आज मैंने ये खीर बनाई है, अतः मैं ही देऊँगा, दूसरे को नहीं देने दूँगा। उस समय तूने अन्तराय कर्म का बंध कर लिया था। दान दिया था, तब भी अन्तराय पड़ गया।

महाराज! सबकुछ किया, तब भी घर में कुछ नहीं बचा है। ज्ञानी! जब तू पूजा करने गया था, तब तेरे मन में भाव आया कि जब फल का नम्बर आयेगा तो बादाम तो मैं ही चढ़ाऊँगा और तूने बादाम चावल में छुपा दी थी और दूसरे से कह दिया कि चढ़ाओ, भैया! चढ़ाओ, और धीरे-से उठाकर डाल दी। उस समय तूने अन्तराय कर्म का बन्ध कर लिया था। पुण्य करते-करते पाप का बन्ध हो गया। समझाओ भैया! समझाओ। नहीं-तो बेचारों का बड़ा अनर्थ हो रहा है। सबकुछ किया, तब भी कुछ नहीं पा पाया।

ज्ञानी! अभी इस क्षेत्र में सरसों बहुत हो रही है, लेकिन अभी सरसों बुब जाये बाजरे की जगह, तो क्या होगा? महाराज! खेत अवश्य है, पर काल नहीं है। इस बात को अपने घर में और भाइयों से सबसे बोलो-भले ही भूमि वही हो, बीज वही हो, पर काल नहीं होगा तो फसल नहीं उगेगी। ऐसे ही जिस काल में जो क्रिया करोगे, तब फलवती होती है। आहार का समय आप टाल दो या जो प्रवचन का समय है उसे आप टाल दो, अभिषेक के समय को टाल दो तो न चित्त प्रसन्न होता है, न ही विशुद्धि बनती है।

हे ज्ञानियो! अभी जो प्रवचन कर रहा हूँ, यही तुम ग्यारह बजे शुरू कराओ तो मेरा भी मन नहीं लगेगा। तुमने समय टाल दिया है तो जैसे बीज वही होने पर समय नहीं हुआ तो फसल नहीं होती है। पण्डितजी प्रतिष्ठायें कराते हैं तो मुहूर्त निकालते हैं। नाच-गाने में इतना समय बरबाद कर दिया और ॐ ह्रीं अच्छे से बोलने को इनके पास समय नहीं है। जो समय, जो घड़ी, जो मुहूर्त है, उसी समय करना। आप क्या करते हो? एक काम कर लो, शुरू कर दो, फिर होता रहेगा। तब तक मुहूर्त निकल ही गया था, अब तुमको फल मिलना ही क्या है? यह प्रकृति कह रही है, मैं नहीं कह रहा हूँ। सन्तान का जन्म भी अपने निश्चित समय के गर्भाधान पर ही होता है, सब समय में नहीं होता। भूमि में वही बीज अंकुरित होता है, फलित होता है, जिस मौसम का जो बीज होता है। ऐसे ही धर्म के कार्य में जिस काल में जो धर्म क्रिया होती है, उसी समय फलवती होती है। इस भूल को समाज में सुधारना पड़ेगा। जो धार्मिक अनुष्ठानों में फिल्मी धुन के गीत-संगीत चल रहे हैं, उससे समाज की रक्षा करो। जहाँ लोग भक्ति करने आते हैं, वहाँ तुम्हारे संगीत की धुन को सुन करके उनके दिमाग दूसरी जगह पहुँच जाते हैं।

मेरा ये सोच है कि पर्युषण आ रहा है, आपको जितनी प्रतियोगितायें करानी हों पहले करवा लीजिये। प्रतियोगिताओं में हार-जीत के परिणाम होंगे। कम-से-कम दस दिन तो अच्छे से निकालो। फिर परिणाम कलुषित होते हैं। मेरी इनाम मेरा पुरुस्कार। इन दिनों तो कम-से-कम ऐसी भावना रखो कि कौन कितनी माला फेर सकता है, कितने भाव विशुद्ध रख सकता है। ये प्रतियोगिता होनी चाहिये। आपने दुनियाँ के ग्रन्थ निकालकर रख दिये। जो शृंगार कभी नहीं करते होंगे, वे शृंगार पर्युषण में कर रहे हो। माताओ! सुन रहे हो? मैं जानकर बोल रहा हूँ। इन भूलों को तो तुम जान लो।

रागद्वेष छूटे कैसे? वैराग्य के स्थान पर भी राग के काम करोगे तो राग कैसे छूटेगा? अब जो है, सो है। व्यवहार से लगता है कि प्रभावना बढ़ रही है, पर

भीतर के परिणामों से पूछो।

आपके बेटे ने अच्छा भजन गाया, लेकिन निर्णायकों ने निर्णय गलत कर दिया, तो बेटे के परिणाम तो छोड़ो, आपके परिणामों से पता चलता है कि क्या हो रहा है। उसी दिन तुम्हारा उपवास था, हो गया कल्याण। उपवास तो गया। अभी तो सुनने में अच्छा लग रहा है, लेकिन जब सोचोगे, तब थोड़ा बुरा भी लगेगा। क्यों? पूरा पर्युषण सूना चला जायेगा, महाराज के अनुसार तो कुछ हो ही नहीं पायेगा। आपको पता होना चाहिये कि पर्युषण तो सूखे के लिये ही आते हैं। जब अन्य लोगों के पर्व आते हैं तो लोग लड्डू/मोदक खाते हैं और जैनियों के पर्व आते हैं तो बेचारे भूखे रह जाते हैं। आपको यह पता होना चाहिये कि ऐसा क्यों होता है। पानी में कपड़ा गीला हो गया तो पानी में ही सूखेगा क्या? लम्बे समय तक गीला रहेगा तो दुर्गन्ध आने लगेगी, फिर पहनोगे तो खुजली होगी। जैनदर्शन में पर्व के दिनों में उपवास क्यों? अरे! तुमने जो पाप को साल भर गीला करके रखा, उसको सुखाने के लिये पर्व आते हैं। पर सत्यता यह है कि परम पद की प्राप्ति करना है तो राग-द्वेष छोड़ो।

वे मानव लोक में धन्य हैं जो घोर-घोर विपत्ति के आने पर भी अपने चेहरे में विकृति नहीं आने देते हैं। आज सीता का नाम जगत् में श्रद्धा से क्यों लिया जा रहा है? बनवास राम को था, सीता को नहीं था। आप होते तो क्या करते? अरे! जाओ परमेसुरो। मैं अपनी माँ के घर चली जाऊँगी। भटको तुम जंगलों में। मुझे थोड़े-ही जंगलों में रहना है। एक वो नारी जिसके पति को वनवास हुआ हो और देवी कदम से कदम मिला कर चल रही हो कि जहाँ पति का गमन होगा, वहाँ मेरा गमन होगा। सीता जनकपुरी भी तो जा सकती थी। यह पतिव्रता नारी की पहचान नहीं है कि पति दुःख में जिये और तुम पिता के घर में लड्डू-पेड़े खाओ। वह तो मात्र वासनाओं की पत्नि है, धर्मपत्नि नहीं है। धर्म की पत्नि विपत्ति के काल में भी ढक्कन नहीं बदलती। जब भी किसी को मित्र बनाओ, घर में भी देवी से बोल देना कि ढक्कन-जैसी पत्नि नहीं चाहिये,

ढक्कन जैसा मित्र नहीं चाहिये। जब तक दूध ठण्डा है, तो ढक्कन सिर पर बैठा है। जैसे ही उबाल आया, तुरन्त फिक जाता है। ऐसे ही जब तक सम्पत्ति मेरे हाथ में है, सुख मेरे साथ में है, तब तक तू मेरे साथ है, दु:ख के दिन आये तो ढक्कन जैसे भाग गये। **मित्र तो पेंदी-जैसा होना चाहिये। जब आग जलती है, तो सबसे पहले पैंदी गरम होती है। वह कभी छोड़कर नहीं जाती है। ऐसी पत्नि बनना, ऐसा मित्र बनना, ऐसा शिष्य बनना कि विपत्ति के काल में कभी साथ नहीं छोड़ना।**

समुद्र मंथन हुआ (वैदिक दर्शन से बोल रहा हूँ) जैसे ही अमृत निकला, सब देव आ गये और पी गये। फिर जहर निकला, कौन पिये? महादेव को पिला दिया। ऐसा मत करना कि संकट के दिन आ गये तो पति को शंकर बना दो। अमृत निकला सो आप देवी बनकर आ गये। पत्नि भी भगवान्-आत्मा है। किसी को कष्ट नहीं देना चाहिये।

जो विपत्तिओं में मुस्काते हैं, उनको देखकर विपत्तियाँ विपत्ति में पड़ जाती हैं। साधु भी बन गये और जरा-सी बात पर भुकर गये, चेहरा लटका लिया। वे साधु मन वाले नहीं हैं। धण्णा ते भयवंता कि सिर पर सिगड़ी रखी जा रही है, तब भी कह रहे हैं कि तू जलनेवाले को ही तो जलायेगा, मेरी भगवान्-आत्मा को क्या जलायेगा? इसका नाम साधुमन है।

हे भगवान्! सारे जगत् के प्राणियों को साधु मन की प्राप्ति हो। आपको स्वयमेव बनाना पड़ेगा।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"संक्लेश नहीं करने का आदेश"

संक्लेशो न हि कर्तव्यः संक्लेशो बन्धकारणं।
संक्लेशपरिणामेन जीवो दुःखस्य भाजनम्॥ 167॥

अन्वयार्थ-संक्लेशः न हि कर्तव्यः = संक्लेश भाव नहीं करना चाहिए, **संक्लेश बन्धकारणं** = संक्लेशभाव कर्मबन्ध का कारण है **संक्लेश परिणामेन** = संक्लेश भाव से, **जीवः** = यह जीव, **दुःखस्य भाजनम्** = दुःखों का पात्र होता है।

भावार्थ-ज्ञानी को संक्लेश भाव नहीं करने चाहिए। संक्लेश भाव कर्मबन्ध के कारण है क्योंकि संक्लेश परिणामों से ही जीव दुःख का भाजन होता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में साधुमन की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। **वे जीव साधुमन वाले हैं जो अनेक प्रकार की प्रचुर विपत्तियों के आने पर भी विकार को प्राप्त नहीं हो रहे हैं। विश्व में खोजने की आवश्यकता है साधुमन को। परमार्थ दृष्टि से साधु का मन ही कल्याणकारी है। जहाँ साधुचित्त नहीं है, साधुमन नहीं है, वहाँ साधना कल्याणकारी नहीं है।** ऐसा अलौकिक ग्रन्थ आचार्य कुलभद्र स्वामी ने लिखा जिस ग्रन्थ को लोग समझ नहीं पा रहे थे। जब इन्दौर में 'स्वरूप सम्बोधन' का वाचन हुआ, तो विद्वान् यही कर रहे थे कि इस पच्चीस श्लोक प्रमाण ग्रन्थ में इतना रहस्य है। ऐसे शास्त्र हमारी अलमारियों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

श्रमण और श्रावक दोनों को ग्रन्थों के खोलने की आवश्यकता है। क्या-क्या रहस्य व गूढ़ विद्यायें हमारे आचार्य दे-देकर चले गये? जब तक ग्रन्थों का आडोलन नहीं करो, तब तक पता ही नहीं चलता कि इसमें क्या रखा हुआ है। भावों को उद्घाटित करने की सामर्थ्य यदि कहीं है, तो उसका नाम 'भाषा' है। आटे से पेट तो भरा जा सकता है, लेकिन आटे से सन्तुष्टि नहीं होती। जो रसोइया होगा, वह सुन्दर तरीके से आटे का पकवान बनायेगा, उससे आपको सन्तुष्टि होगी। ऐसे ही जो भाषा है, उसके शब्द सुनकर शान्त तो बैठ सकते हो, लेकिन सन्तुष्टि तब होती है जब भाषा में सौष्ठव होता है। व्याख्याता व्याख्यान कर रहा है। उस व्याख्या के कई बिन्दुओं को आप जानते हो, लेकिन व्याख्यान के विषय में जितना आनन्द है, उससे कई गुना आनन्द व्याख्याता के शब्द-सौष्ठव पर निहित है, उसकी भावभंगिमा पर निहित है। वही आचार्यों की शैली रही है। सात तत्त्वों की प्ररूपणा अनके-अनेक ज्ञानियों ने की है, परन्तु कुन्दकुन्द स्वामी की प्ररूपणा सारे विश्व को प्रभावित कर रही है। उनकी शैली कुछ अलग है। यही दृष्टि आचार्य कुलभद्र स्वामी की है। जैनदर्शन में नीतिपरक सदाचारभूत इतना विशाल ग्रन्थ 'सारसमुच्चय' है। जिसमें आचार्यभगवन् यह कह रहे हैं कि मुझे साधुपुरुष नहीं चाहिये, मुझे साधुमन चाहिये। जिसमें साधुमन है, वही साधुपुरुष है। जो साधुमन नहीं है, वह साधुपुरुष कहाँ होगा?

साधुमन यानि क्या? मन में साधु का चिन्तन करना साधुमन है क्या? नहीं। तन से साधु का भेष बनाना? नहीं। क्योंकि लोक में ऐसे भी लोग देखे गये हैं जो साधु का भेष बना करके थैला लटका करके बच्चों को भी उठा ले गये। ऐसा साधु नहीं चाहिये। इतिहास साक्षी है कि ऐसे भी लोग जगत् में हुये हैं, जिन्होंने साधु का भेष बना करके अरहन्त के मन्दिर के छत्र भी चुरा लिये। उस साधुभेष की व्याख्या नहीं है। भैया साधुभेष को प्राप्त करके भी अपने मन को असाधु बना कर चला रहा है जो जीव, वह तस्करवत् है। **वस्तु का हाथ में होना चोरी नहीं है, पर से छुपाकरके वस्तु को हाथ में ले लेना चोरी है।**

ऐसे ही अपने विशुद्ध परिणामों से छुपा करके अशुभ काम करना भी चोरी ही है। जैसे आप दिख रहे हो, वैसे नहीं होना भी चोरी है। हमने पर के द्रव्य का हरण बहुत कम किया है, निज के शुद्ध भावों को हरण अनन्त बार किया है। परवस्तु का हरण तो लोक में दिखाई देता है, लेकिन निज के विशुद्ध भावों का जो हरण किया है, वह तो किसी को दिखाई देता नहीं है। क्षण-क्षण में क्या-क्या सोचा, क्या-क्या विचारा, क्षण-क्षण में कैसा बोला, क्षण-क्षण में क्या किया है? जो लोग देख रहे हैं, वह बहुत न्यून हैं। जो लोक ने देखा नहीं है, वह सर्वाधिक है। पर के द्रव्य का हरण करनेवाले तस्कर फिर भी ईमानदार हैं। किसी-न-किसी से पकड़े भी जाते हैं और बन्ध को प्राप्त हो लेते हैं। वह तस्कर कितना चालाक है जो मन-ही-मन चुरा रहा है, अपने ही भावों से विशुद्धि का घात कर रहा है। उससे बड़ा हिंसक तस्कर कौन होगा? पुण्य ही करने चले थे, तब भी चोरी कर ली थी। जो पूजा आज मैं करूँगा, किसी को नहीं बताऊँगा। ज्ञानी! भले ही तू नहीं बताता, लेकिन ऐसा सोचा क्यों? छुपाने का भाव, पापों के संस्कार कैसे झटका मारते हैं, उस बात को समझिये।

अरे भाई! तू कोई पाप करने थोड़े-ही गया था, पुण्य करने ही तो गया था। आज जो पूजा करूँगा, किसी को नहीं बताऊँगा। ज्ञानी! कोई देख लेता तो दूसरा कर लेता, तेरा क्या जाता? उसके भी पुण्य बढ़ता। 'कोई देख न ले' इसमें भाव क्या था? मैं अपने पुण्य को भी छिप कर करना चाहता हूँ, क्योंकि अनादि से मैंने छुप-छुप कर पाप किये हैं तो पुण्य को भी छुपाने के भाव आ रहे हैं। छुप कर करूँगा। मेरी पुण्यक्रिया को देखकर कोई पुण्य न कर पाये। मात्सर्य रखा हुआ है। मेरे पुण्य का संचय होगा, मैं सम्पत्तिशाली होऊँगा, मैं स्वर्ग चला जाऊँगा, दूसरा पुण्य करेगा तो उसके भी सम्पत्ति आ जायेगी। यह ईर्ष्या सता रही थी। जीव साधना भी छुपकर कर लेता है। छुप कर साधना करने में दोष नहीं है, परन्तु साधना को छुपाने में दोष है। तेरे मन में छुपाने के भाव क्यों आये, मैं माला फेर रहा हूँ। माला तो मन में ही फेरोगे न? आप फेरिये, लेकिन ऐसा

भाव मत करना कि मैं माला फेर रहा हूँ, कोई देख न ले, नहीं-तो वह भी फेरना प्रारम्भ कर देगा, तो मेरी धार्मिकता की पहचान समाप्त हो जायेगी। जो धर्मज्ञ बने हैं, वे सर्वज्ञ नहीं बन पाये। जो धर्मज्ञ का ठेका लेकर बैठे थे, वे सर्वज्ञ नहीं बन पाये। जो सर्वज्ञ बनने चले थे, वे धर्मज्ञ का अहंकार लेकर नहीं गये, इसलिये सर्वज्ञ हो गये। जो धर्मज्ञ बने थे, उन्होंने जगत् का धर्मपने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया, पर के धर्म का भी अधिकार कर्तृत्वदृष्टि में आ चुका है कि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो लोग तत्त्व को नहीं समझेंगे। 'यदि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो लोग धर्म नहीं करेंगे' ऐसा भाव भी आ रहा है तो अहो धर्मज्ञ के अहंकारी! आपका धर्मज्ञपना सर्वज्ञपना नहीं प्रकट होने देगा। जब तुम सर्वज्ञ बनकर जाओगे, तो आप इतने हल्के हो जाओगे कि आपको अपना वजन महसूस नहीं होगा। पानी कब बरसता है? इसी पृथ्वी का पानी जब वाष्पित होता है तो ऊपर की ओर जाता है और वही जब वजनदार होने लगता है तब बरसना पड़ता है। जो राग से आर्द्र हो जाते हैं, जो मोह में गीले हो जाते हैं, उनको गिरना पड़ता है। जो ध्यान में लीन होकरके अपनी शक्ति को वाष्पित कर देते हैं, वे ऊर्ध्वगमन करते हैं। बस, मुमुक्षु! जीवन में गिरने से बचना है तो आर्द्रभाव बन्द करो। तुम किसी को देखकर पुलकित हो रहे हो, तुम किसी को देखकर मोहित हो रहे हो स्नेह को प्राप्त होना ही नीचे गिरना है। विपत्तियाँ उन्हें ही सताती हैं, आपत्तियाँ उन्हें ही घेरती हैं, जो स्नेह से भरे होते हैं। जिनको स्नेह ही नहीं है, उन पर आपत्तियाँ प्रवेश ही नहीं करती हैं। जो परवस्तु को अपना स्वीकार रहा है, उसी का अपहरण होगा। जिसने अपना स्वीकारा ही नहीं है, उसका अपहरण किस बात का? एक गाड़ी बाहर रखी हुई है। कोई उसको उठा ले गया तो आपको विकल्प हो गया। स्नेह में विपत्ति है, राग में विपत्ति है। श्री राम वन में गये, सीता वन में गई तब भी कभी यूँ नहीं कहा कि वनवास दिया गया, संकट में डाल दिया। वे वन में तपस्या करने नहीं गये थे। राम भरत की प्रीति में भीग गये, सो वनवास हो गया। सीता को छोड़ दिया, तो वन दे दिया। जब राग को

लेकर गये थे तो विपत्ति में फँस गये थे। राग छोड़कर वन में गये, तो तपस्वी बन गये। जब राग सहित थे, तब विपत्ति में वन में भटक रहे थे। जब राग छोड़ कर गये, तो तपस्वी बनकर घूम रहे थे।

रागी विपत्ति में भटकता है, वैरागी तपस्या में घूमता है। इतने सारे मुनिराज देश में विचरण कर रहे हैं, आज तक किसी ने नहीं कहा कि इनके माता-पिता ने भगा दिया, ये विपत्ति में भटक रहे हैं घर छोड़ करके। जो स्नेह छोड़कर आते हैं, वे घर छोड़कर नहीं आते हैं, घर से छूटके आते हैं। जो घर से भागकर आये हैं, तो भगाया नहीं। विपत्ति कहाँ है? स्नेह में विपत्ति है। आकाश में भरा पानी इतनी ऊँचाइयों पर है, पर आर्द्र होते ही पानी को नालियों में बहना पड़ता है। जो जीव हिमालय जैसी ऊँचाइयों पर अवस्थित हो। रावण से पूछो, तीनखण्ड में तेरा नाम चल रहा था, जरा-सा.....सीता के स्वरूप को देख करके वासना की खाई में गिर गया। जितने नीचे गये हैं, जितने नीचे जा रहे हैं, जितने नीचे जायेंगे, वे सब राग में गये। अपने जीवन से प्रश्न करो कि हाय मैंने जीवन भर क्या किया? जब भाव विशुद्धि स्थान को प्राप्त होते हैं तब आपको उत्कर्ष नजर आता है। स्वयं के भाव गिरने लग जायें, तब स्वयं का अपकर्ष दृष्टिगोचर होता है। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है कि मेरे भावों की दशा क्या चल रही है? भावकर्म प्रत्येक जीव को समझ में आता है। किञ्चित् चिन्तक होगा तो भावकर्म समझ में आते हैं। जो-जो कर्मोदय है, जो-जो कर्मविपाक है, सब भावकर्म पर आलम्बित है। धन्य हैं वे महापुरुष जो विपत्ति के काल में किञ्चित भी विचलित नहीं हुये।

धरती चली जाये, धन चला जाये, यहाँ तक कि तन भी जाता हो तो चला जाये, पर प्रभु से कहना नाथ! मेरा धैर्य न जाय। धन मेरी निज की वस्तु नहीं है, धरती मेरी निज वस्तु नहीं है, तन भी मेरा निज वस्तु नहीं है; लेकिन धैर्य न जाये जो मेरी निज वस्तु है। **धन, धरती, तन का वियोग भी हो, तब शान्त रहना, लेकिन धैर्य को मत जाने देना। तन व धन के जाने पर धर्म नहीं**

जायेगा; पर धैर्य छूट गया, विश्वास निकल गया, तो ध्यान रखना, संक्लेशता प्रारम्भ हो जायेगी। जहाँ संक्लेशता प्रारम्भ होगी, वहाँ विशुद्धि का ह्रास होगा। जहाँ विशुद्धि का ह्रास होगा, वहाँ संकट न आये तो संसार किस बात का? लेकिन धैर्य नहीं छोड़ना।

यदि कोई यूँ कहे महाराज! ऐसा आशीर्वाद दो कि मेरे जीवन में कोई विपत्ति न आये, संकट न आये। अरे ज्ञानी! तू मेरे से सत्य का अभाव कराना चाहता है क्या? विपत्ति न आये, आकुलता न हो, वह तो एक ही स्थान है, शिवालय।

आकुलता शिव माँहि न तातें शिवमग लागो चहिये।

आकुलता तो मोक्ष में नहीं है, इसलिये मोक्षमार्ग में लगना चाहिये। जितने लोग चाहते हैं मैं निराकुल हो जाऊँ, यदि निराकुलता की भावना है, तो रत्नत्रय धर्म को स्वीकार कर लो।

तू चाहता है कि संसार में रह करके मैं निराकुल हो जाऊँ, महाराज आशीर्वाद दे दें तो भी आकुलता बन्द नहीं होगी। यदि ऐसा हो गया, संसार में निराकुलता हो गई, तो सिद्धशिला की क्या आवश्यकता है? इसलिये परिवार में रह करके, संसार में रहकरके दु:ख होना ही चाहिये। चाहिये क्या, वह तो होता ही है। कितना ही पुण्यात्मा जीव होगा, कितना ही भाग्यवान् जीव होगा, श्री राम तो बलभद्र थे, कितना पुण्यात्मा जीव होगा। हलधर लक्ष्मण या कृष्ण से पूछो। जितने महापुरुष हुये हैं, जीवन में किस-किस पर विपत्ति नहीं आयी? राजा महाराजा सिंहासन पर बैठे हुये थे, सर्वाधिक शत्रु उन्हीं के थे। कभी कंस के समाचार आ रहे हैं, कभी जरासिन्ध के समाचार आ रहे हैं। नारायण को किस बात का संकट? नारायण बलभद्र का प्रतिनारायण से युद्ध हुआ। आगम में ऐसे-ऐसे उदाहरण हैं कि एक नृत्यिका के राग में नारायण का प्रतिनारायण से युद्ध हो गया। एक ने कहा—कुछ नहीं, अपना हाथी भेजो। दूसरे ने कहा—मैं अपना हाथी किसी को नहीं दे सकता हूँ। ऐसा कह कर एक दूसरे से युद्ध हो गया। वही चक्र जिसको प्रतिनारायण

सिद्ध करता है, वही नारायण के हाथ में पहुँचा, उसी चक्र के द्वारा प्रतिनारायण का घात हुआ। सबके दिन एकसे नहीं होते हैं। आपके द्वारा सिद्ध की गई वस्तु ही आपके घात का कारण बन गई। संसार में कभी मत देखना कि सुख मेरा है। आपके द्वारा संसार का असत्यपना प्रकट हो जायेगा। संसार में हो, तो कष्ट तो होगा।

एक ही तो बेटा है, वह भी बीमार रहता है, वेदना चल रही है। किस बात पर? आपने पर की वेदना को निज में डाला हुआ है। संसार में सर्व सुखी तो कोई हो ही नहीं सकता जब तक संसारी है। संसार में सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हो, एक उपाय है, यदि स्वीकार करो तो बता सकता हूँ। कितने ही घोर उपसर्ग आ जायें, काँटों या अग्नि के बीच खड़ा कर दिया जाये, उसका उपाय मेरे पास है। **पर को अपना मानना समाप्त कर दो, उसी क्षण तुम्हारा संकट दूर हो जायेगा।** 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं' यह केवल कण्ठ में न गूँजे अपितु यह वृत्ति में आ जाय, तो विश्वास रखो, संसार में कोई दु:खी कर नहीं सकता। न दु:खी, न सुखी। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। इस अवस्था को चाहते हो तो 'साधु मानसा:'। विपत्ति में भी जो शान्त चित्त से रहते हैं, वे 'साधुमानसा:'। घर में जिस द्वार से सबसे पहले गुजरते हो, उसी पर लिख लेना। शुभ-लाभ लिखते-लिखते अनन्त समय व्यतीत हो गये। ज्ञानियो! जिनके अशुभ के दिन चल रहे, उनके घरों में भी शुभ-लाभ लिखा मिल जायेगा। वे लिखे ही होते हैं, पर ऐसा होता नहीं है। शुभ-लाभ लिखने से शुभ-लाभ होता होता, तो जगत् में कोई दु:खी ही न दिखता। अब शुभ-लाभ के स्थान पर लिख लेना 'साधुमानसा:, संक्लेशमुक्त मानसा:'। जो संक्लेश से मुक्त है, वही साधुमनसा है। जो संक्लेशयुक्त है, वह न साधु मन का, न तन का। वह साधुता से शून्य है। संक्लेशमुक्त मानसा। महाराज! मैं तो बिल्कुल अच्छे से रहता हूँ, मेरे को कोई संक्लेशता नहीं है। ये मन्दिर बनवा दिया अच्छा सा, मेरे अन्दर कोई संक्लेशता नहीं है। ये अपना मकान है, अपनी दुकान है, कोई संक्लेशता नहीं है। आपके चरण मेरी कुटिया में पड़

जायें, और-कोई संक्लेशता नहीं है। मेरे मित्र! एक बात तो बताओ, ये मुस्करा क्यों रहे हो? ये 'चार बेटे' शब्द आया, यही तो संक्लेशता है।

व्यक्ति रोने मात्र को संक्लेशता मानता है। भगवती जिनवाणी माँ हँसने को भी संक्लेशता कहती है। साम्यभाव में रहे बिना जो-जो क्रियायें हैं, सब संक्लेश भाव हैं। एक अभावभूत संक्लेशता, एक सद्भावरूप संक्लेशता। जहाँ-जहाँ भोग है, सब संक्लेश परिणाम हैं। एक माँ कह रही है कि मेरा जीवन तो स्वर्गों जैसा चलता है। क्यों? ऐसे अच्छे घर में पली बिटिया मेरी बहू बन कर आयी है, रोज पैर दबाती है। मैंने कहा, माँ! चिन्ता मत करो। यह भी संक्लेशता चल रही है। जिस दिन पैर नहीं दबायेगी और आँख दिखायेगी, तब बताना कि कितने अच्छे घर की बिटिया आयी है। शीघ्र प्रभावित मत हो जाना। एक ही दिन में झगड़ने नहीं लग जायेगी, थोड़ा समय दो। बेटा भी जन्म लेगा तो नौ माह का समय लेगा।

ज्ञानी! आपका मन कर रहा है कि मैं महाराज बन जाऊँ। बहुत अच्छा है, लेकिन थोड़ा समय दो, तुरन्त घर से मत निकलना। हो सकता है कि बेटे ने डाँट दिया हो, बेटे की माँ ने भोजन न दिया हो, इसलिये तुझे वैराग्य हो गया हो। खोज करना। या फिर अन्य कारणों से उदासीनता आ गई हो। अपनी स्वयं की उदासी की भी खोज कीजिये कि ये वैराग्य की उदासी है या राग की पूर्ति न होने की उदासी है? जीवन की धाराओं को अनुभव करके देखो। एक प्राप्ति के अभाव में उदासी, एक प्राप्त होने पर भी बहू की आकांक्षा नहीं है, वह उदासी। खोज करना स्वयं की। यदि कोई कह रहा है कि मैं आपसे मित्रता करना चाहता हूँ, तो शीघ्र ही गम्भीर हो जाना। ऐसा चेहरा बनाना कि तेरे चेहरे पर बिल्कुल न झलके कि मैं तेरा मित्र हूँ। वह तुम्हारी सम्पत्ति को देखकरके मित्र बनना चाह रहा है या तुम्हारे चेहरे को देखकर मित्र बनना चाह रहा है या तुम्हारे पुण्य से प्रभावित होकर मित्र बनना चाह रहा है, कि वास्तव में उसके अन्दर आपके प्रति आत्मीय भाव है? इतनी परीक्षा जरूर कर लेना। धर्मवत्सलत्व से जोड़ना

है तो शीघ्र मित्र बन जाना। स्वार्थों से भर कर कोई मित्र बना रहा है तो उसकी परीक्षा के लिये समय दे देना। कुछ ऐसे भी हैं जैसे मूँगफली के ऊपर शक्कर का घोल, मूँगफली पाग। बस, ऊपर-ऊपर मिठास है, अन्दर तो जैसी मूँगफली होती है वैसी ही है। ऐसे ही जगत् में ऐसी प्रीतियाँ भी मिल जायेंगी जो मात्र शक्कर का कोट हैं। कुछ लोगों में स्वार्थपूर्ण कड़वाहट होती है, ऊपर से शक्कर का घोल। ऐसी भाषा बोलेंगे जैसे ये परम मित्र हो, पर मेरे मित्र! फिर भी सँभलकर रहना। कषाय शक्कर का घोल है। लगती तो मीठी है, पर होती कड़वी है। स्वयं की कषाय इतनी मधुर मित्र होती है वह मीठा बनकर आती है, लेकिन होती कड़वा है। जो-जो संक्लेशता में जी रहे हैं, परद्रव्य को स्वीकार कर रहे हैं। यथार्थ मानिये। कषाय मित्र की सहायता से तुम सत्य को मत छोड़ो। कषाय को मित्र बना लिया है तो तुम्हें हर वस्तु अच्छी लगती है, विषय-कषाय अच्छे लगते हैं, क्योंकि कषाय से मित्रता चल रही है तो वह जैसा कर रहा है वैसा तुम कर रहे हो। कषाय मित्र थोड़ा-सा ठण्डा हो जायेगा, फिर सोचना कि अच्छा कर रहा हूँ या बुरा कर रहा हूँ? आवेग में निर्णय मत लेना।

जब आप इक्कीस से पच्चीस साल के बीच में थे, तब आपके पास गर्मी थी। अब आपकी गर्मी उतर गई है, आप सब ठण्डे हो चुके हो। इक्कीस से पच्चीस के बीच में आपको श्री और स्त्री के अलावा अन्य कुछ नजर नहीं आ रहा था। उस बात पर आज आप ठण्डे होकर बैठे हो। अब बताइये, वे दिन आपके अच्छे थे कि बुरे थे? वे बोल रहे हैं, महाराज! वे दिन अच्छे होते तो आजके दिन यहाँ क्यों आते? वे दिन मैंने निकाल दिये गर्मी में। आज जब टकला हो गया, ठण्डा हो गया, अब भगवान् के पास आया हूँ। यदि वह गर्मी तपस्या में लगा लेता, तो आज तू देश का बहुत बड़ा मुनि होता। गर्मी के दिन विषयों में दे दिये, आज ठण्डा हो गया तो उस गर्मी का चिन्तन कर रहा है। क्या गर्मी थी क्या मेरा समय या क्या मेरा जीवन था? जब भी सत्य का बोध होता है तो एक मिनिट को होता है। जब भी तत्त्व का सम्यक् निर्णय होगा, ठण्डे में

ही होगा। जीवन में जब भी निर्णय करना, ठण्डे में ही करना। यदि तुम्हें किसी की हिंसा करने के भी भाव आये हैं तो ठण्डे होकर निर्णय करना। किसी को बदनाम करने के भी भाव आ गये हों तो थोड़ा ठण्डे होकर करना। किसी की सम्पत्ति हरण के भी परिणाम हो रहे हों तो थोड़े शीतल होकर करना। विश्वास मानना, जब ठण्डा हो जायेगा तो किसी को समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, स्वयं समझ करके पाप से बच जायेगा। पानी गरम है, अँगुली डाली तो जल गई। तुम ठण्डे पानी की इंतजारी कर लो, थोड़ा समय दे दो, एक माला फेर लो तो अलग से पानी लेने नहीं जाना पड़ेगा, वही पानी ठण्डा हो जायेगा।

हे मुमुक्षु! अलग से भगवान्-आत्मा को बुलाने मत जाना। जो तेरी आत्मा पापों से गरमागरम हो रही है, थोड़ा समय दे दो, यही ठण्डी हो जायेगी। यही भगवान् बन जायेंगे, अलग से भगवान् नहीं बनाना है। समय दे दो। माँ! तेरी मट्ठा पीने की इच्छा हो रही है। तेरे घर में दही रखा हुआ है। तू दूसरे के घर में मट्ठा लेने जाये, यह कहाँ तक उचित है? थोड़ा समय निकाल लो, उसी दही को मटकी में डाल लो, मथ लो तो मट्ठा तो मिल ही जायेगा, साथ में मक्खन मिलेगा, जिसे गरम करने पर घृत भी मिलेगा। ऐसे ही आपके मन में यह भाव आ रहा है कि अमुख व्यक्ति कितना सुन्दर ज्ञानी दिखता है, कितना चारित्रवान् दिखता है, भैया! तेरे घर में स्वयं दही जमा हुआ है, भेदविज्ञान की मथानी से मथ दे, स्वयं से ही मट्ठा निकाल ले, स्वयं से ही मक्खन निकाल ले, घृत निकाल ले, जगत् में दूसरे के द्वार पर हाथ फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मत माँगो भीख, मत माँगो भीख। मैं तो तीर्थंकर महावीर स्वामी से भी माँगना पसन्द नहीं करता हूँ। माँगू क्यों? जब अपनी सम्पत्ति का भान नहीं था, तब दूसरे के घर में जाकर माँग रहे थे। जब मालूम चल गया कि मेरी विभूति मेरे ही घर में है, तो माँगने क्या जाऊँ? जिस क्रिया को स्वीकार कर लूँगा तो अपने ही भगवान् को प्रकट कर लूँगा। ज्ञानियो! विदिशा में बंजी करनेवाला आदमी पूरे विदिशा का स्वामी बन गया। शासन ने प्रतिबंध किया कि ऐसे तो कुछ बचेगा

ही नहीं, सब इन्हीं का हो जायेगा। जिसका नाम, उसको देने को रहा नहीं, सब इनके नाम हो गया। मकान, नगर-का-नगर इनके हाथ में आ गया। अब देखो जीव की हालत, इतना सबकुछ होने के बाद भी सन्तान नहीं थी। प्रीति देखो। सोचता है कि इतना सम्पत्ति का स्वामी हो गया, इसका स्वामी कौन होगा? उन्होंने एक दत्तक पुत्र ले लिया। जैसे ही पुत्र लिया, उनको स्वयं बेटा हो गया। अब सुनो, प्रीति किसमें ज्यादा होगी? जबकि दत्तक पुत्र लेते समय क्या भाव चल रहे थे? चलो, अब तो मेरी सम्पत्ति का स्वामी हो गया। पर जैसे ही बेटे ने जन्म लिया, परिणामों की हालत देखो, अब दत्तक पुत्र कैसा लगता होगा? अब तो मैं इसको स्वामी मानूँगा, जो मेरे रक्त का है, मेरी सन्तान है। क्या भाव आ गये? यह मेरा पुत्र है। और दत्तक पुत्र में 'पर' शब्द जुड़ गया।

बेटो! जब तक स्वयं का भगवान् समझ में नहीं आता है, तब तक भगवान् अच्छे दिखते हैं। जिस दिन भीतर का भगवान् समझ में आ जायेगा, तब परमेष्ठी दत्तक पुत्र के समान 'पर' दिखेंगे, निज की आत्मा का भगवान् ही निज का बेटा होगा। दत्तक पुत्र का पालन कर सकते हो, सम्पत्ति दे सकते हो, लेकिन जब ठण्डे होगे, तब भाव एक ही आयेगा 'मेरी सन्तान हुई'। ऐसे ही तुम कितनी ही साधना कर लेना, हजारों लाखों जाप कर लेना, लेकिन जब ठण्डे होकर बैठोगे, तब यही भाव आयेगा कि भगवान् तो भगवान् हैं, मैं 'मैं' हूँ। मैं भगवान् नहीं हूँ, ये हीनभावना आ गई है। जब मैं भगवान् बन जाऊँगा, तो भगवान् को नहीं देखूँगा, स्वयं में लीन होऊँगा। ये सब कब होगा? साधुमानसा। जब साधुमन होगा, तभी होगा। साधुमन को सुरक्षित कैसे रखोगे? संक्लेश से मन को दूर रखना पड़ेगा।

संक्लेशो न हि कर्तव्यः, संक्लेशो बन्धकारणम्।
संक्लेशपरिणामेन, जीवो दुःखस्य भाजनम्॥ सा. स. 167॥

भैया! जो लाभ होना था, सो हो ही गया, अब हर्ष रूप संक्लेशता मत करो। जो नाश होना था, सो हो ही गया है, अब विषादभूत संक्लेशता मत करो। भैया!

एक मास का उपवास कर लेना सरल है, पर एक मुहूर्त संक्लेशता न करना कठिन है। जीव के परिणाम क्षणमात्र में ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर हो जाते हैं। हर्ष-विषाद/संक्लेशता बन्ध का कारण है और संक्लेशपरिणामी जीव दु:ख का भाजन है। दु:ख वहीं है, जहाँ संक्लेशता है। जहाँ असंक्लेश परिणाम है, वहीं सुख है। संक्लेशपरिणामी चाहे जहाँ रहे, दु:खी ही रहेगा। और संक्लेशता शून्य है तो विश्वास रखना, श्मसान घाट में भी स्व रूप में मिलेगा। प्रसन्न होकर जाओ। जब तक यहाँ रह लेते हो, तभी तक शान्ति का वेदन कर लेते हो। मुझे मालूम है कि घर में जाकर तुम्हारा क्या होना है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"संक्लेश परिणामों का फल"

संक्लेशपरिणामेन जीवः प्राप्नोति भूरिशः।
सुमहत् कर्मसम्बन्धं भवकोटिषु दुःखदम्॥ सा. स. 168॥

अन्वयार्थ-संक्लेश परिणामेन = संक्लेश भाव से, **जीवः** = यह जीव **भव कोटिषु दुःखदम्**= करोड़ों जन्मों में दुःख देने वाले, **सुमहत्कर्म सम्बन्धं** = बहुत अधिक कर्म के बन्ध को, **भूरिशः** = बहुत बार **प्राप्नोति** = प्राप्त करता है।

भावार्थ-संक्लेश परिणामों के द्वारा यह जीव करोड़ों जन्मों में दुःख देने वाले बहुत अधिक कर्म के बन्ध को बहुत बार प्राप्त करता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी अनन्त जीवों पर अनन्त उपकारों की दृष्टि से भगवान् जिनेन्द्र की देशना का प्रतिपादन कर रहे हैं। वस्तु की स्वतन्त्रता को वेदन कर पाना पुरुषार्थसाध्य है। जगत् की सम्पूर्ण साधनायें, कोटि-कोटि ग्रन्थों की आराधनायें पुरुषार्थसाध्य हैं। जो कर्तृत्वदृष्टि छायी हुई है, उस कर्तृत्व दृष्टि से जब तक बुद्धि नहीं हटेगी, तब तक अन्तरंग में संक्लेशता की हानि सम्भव नहीं है। संक्लेशता ही दुःख है, संसार है। जगत् के कल्याण की दृष्टि भी आपको खोटा बंध करानेवाली है। यानि अंतरङ्ग में भाव हो या न हो, पर बाहर में झलक रहा है कि यह जीव सबके कल्याण पर दृष्टि रखे हुये है, ऐसी दृष्टि भी संक्लेशदृष्टि है। अंतरङ्ग का भाव, अंतरङ्ग की विशुद्धि बाहर में किसी को दिखा

पाना सम्भव नहीं है। कितनी बार परिणाम ऊपर-नीचे हुये हैं, वह मात्र शरीर है, परन्तु जिसके माध्यम से शरीर अवस्थित है, उसे जीव ने नहीं देखा। उस देखनहार को समझ लेता तो आज संक्लेशता से अपनी रक्षा कर लेता। संक्लेशता अनन्तभूत है, एकरूप नहीं है। रागभूत संक्लेशता जो है पर को निज मानने की मान्यता है। रागभूत संक्लेशता का परिणाम देखो, जब आपके घर में आपके बेटे की माँ नहीं आयी थी, उस समय तेरे परिणाम कैसे थे? हे जीव! एक जीव पर राग गया, चार पर अपने आप राग हो गया।

एक जीव के राग में पचासों जीवों पर राग करना पड़ रहा है। ससुराल पक्ष के लोगों को भी देखना पड़ रहा है। फिर उनके घर के और सम्बन्धी हैं, उनके घर भी बैठने जाना पड़ रहा है। शुभ काम में भी, अशुभ काम में भी संकलेशता। जैसे-जैसे राग में विस्तार होगा, वैसे-वैसे संक्लेशता में भी विस्तार होगा। जैसे-जैसे संक्लेशता बढ़ेगी, वैसे-वैसे राग-द्वेष भी बढ़ेगा। जैसे-जैसे राग-द्वेष बढ़ेगा, संक्लेशता का स्थान बढ़ेगा। जहाँ संक्लेशता का स्थान बढ़ेगा, वहाँ बन्ध का कारण वृद्धिमान होगा। एक क्षण को ध्यानस्थ होकर सुनना। यही मान कर चलना कि मैं सामायिक कर रहा हूँ। सामायिक में करोगे क्या? यहाँ-वहाँ का चिन्तन सामायिक नहीं है। जिन-जिन हेतुओं से निज के परिणामों को साम्य रखा जाय, उन-उन हेतुओं पर दृष्टिपात करो। यदि जैनदर्शन की स्वतन्त्रता पर दृष्टि नहीं है, तो तुमने जिनागम को क्या समझा? माँ दोनों बेटों को भोजन समान दे रही है। एक बेचारा सूख रहा है और दूसरे का शरीर अच्छा हो रहा है। बुद्धि भी बढ़ रही है। अब इसमें माँ क्या करे? और एक भैया माँ पर गुस्सा करने लग जाय—हे माँ! तू उसको अच्छा खिलाती है, मुझे कुछ नहीं दे रही है, मैं सूख रहा हूँ। जबकि एक ही रसोईघर में भोजन बना हुआ था। उसी बटलोई से सामग्री निकाल कर सभी को परोसी गई थी। अब यह आपके शरीर का परिणमन है, यह आपके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम है। आगम में लिखा है कि जिस मुनि को बीज ऋद्धि प्राप्त हो जाय, वो मुनिराज एक अक्षर मात्र पढ़ लें तो उनको द्वादशाङ्ग का ज्ञान हो

जाता है। एक व्यक्ति बेचारा दिन-दिन भर रात्रि-रात्रि भर आँखों को ग्रन्थों में लगाये है तब भी एक श्लोक याद नहीं हो रहा है। अब इसमें ग्रन्थ क्या करे? निर्ग्रन्थ क्या करे? जिसका जैसा क्षयोपशम, वैसा ही तो परिणमन होगा। यदि घर में भी हो, घर नहीं छोड़ पा रहे हो, यह अन्तिम विदाई की बेला है, तेरे देखते-देखते कितने विदा हो गये? अब समझ लो कि चौक पुरने वाला है। जीवन की अन्तिम विदाई के काल में भी व्यक्ति को स्वतन्त्रता का वेदन हो जाय, तो दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है। पिता दीक्षा नहीं ले रहा और बेटे ने दीक्षा ले ली, तो क्या बेटे का मोक्ष रुक जायेगा? नहीं। पिता के घर में रहने से वैरागी बेटे के मोक्षमार्ग में कोई असर नहीं पड़ता है, क्योंकि जैनदर्शन रुढ़िवादी दर्शन नहीं है कि आप पूजा करके आ जाओ तो पिता को पुण्य मिल जायेगा। आप पूजा करोगे तो आपको पुण्य मिलेगा। फल भी आपको ही मिलेगा। यदि पिता मदिरा का पान कर रहा है, तो बेटा मद्यपायी नहीं कहलायेगा।

यदि पिता का मद बेटे में चढ़ने लग गया, फिर तो अनर्थ हो जायेगा। बेटे का मद पिता में चढ़ने लग गया, तब भी अनर्थ हो जायेगा। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। एक भाई नरक जा रहा है, दूसरा भाई सिद्धालय की ओर जा रहा है इतना अन्तर क्यों? आप रोज तो देख रहे हो। एक भाई मंच पर है, दूसरा भाई फर्श पर है। उससे कहा जाता है कि जा, श्रीफल चढ़ा आ। कितनी बार कितने पिता यहाँ श्रीफल चढ़ा गये, किसको? छोटे-छोटे बेटे मुनिराज बने बैठे हैं और पिता जी आकर श्रीफल चढ़ा रहे हैं। यह जैनदर्शन की स्वतन्त्र व्यवस्था है। आपका मोह बिगलित नहीं हुआ, इसका तात्पर्य बेटा मोही है, कोई नियत नहीं है। ये मुनिराज यहाँ बैठे हुये हैं, इनके गृहस्थ-अवस्था के पिता गृहस्थी में बैठे हुये हैं। उनके पिता के कुल को देखकर इनको देखोगे, कि जैनेश्वरी दीक्षा के परिणामों को देखकर तुम इनकी वन्दना करोगे? वे जीव अज्ञानी हैं जो वैरागी के सम्बन्धों को देखें। पर सत्यता यह है कि जिस जीव की परिणति जैसी होगी वह वैसा ही देखता है। पाँच पाण्डव एकसाथ साधना कर रहे थे। तीन का निर्वाण

हो गया और दो सर्वार्थसिद्धि चले गये। इसमें किसका दोष? यदि जैनदर्शन को समझा है और वस्तुस्वतन्त्रता को नहीं समझ सका, तो वह जीव जैनदर्शन की किसी भी पंक्ति को नहीं समझ सका। अन्तिम श्वास निकलने के पूर्व तक यह निर्णय हो जाना चाहिये है कि मैं स्वतन्त्र हूँ। मेरे भाव स्वतन्त्र हैं। जो मेरा शरीर है, जिस शरीर में मैं बैठा हूँ, उसका परिणमन स्वतन्त्र चल रहा है और मेरी आत्मा का परिणमन स्वतन्त्र चल रहा है। जिसको मात्र अपने मानकषाय के पोषण के लिये शास्त्रों को उपयोग करना है, उसके सामने तुम कितने ही सुन्दर बन कर पहुँच जाना, दूसरे का चन्द्रमा-जैसा चमकता बालक भी बुरा लगता है और स्वयं के बेटे की नाक बह रही हो, काला-कलूटा भी क्यों न हो, तब भी राजा बेटा दिखता है। वह कहता है कि मेरे बेटे जैसे राजा बेटा किसका है? उसका ऐसा कहना दोष नहीं है, क्योंकि अपनों में सबको राग होता है। व्यवहार पक्ष यही कहेगा। दूसरे के प्रति अशुभ भाव आ रहे हैं, तब भी उसका दोष नहीं है, क्योंकि मानव की एक बहुत बड़ी भूल है, दूसरे के उत्कर्ष को सहन कर पाना बहुत कठिन है।

जो मोक्षमार्ग है, वह अत्यन्त पवित्र स्थान है, उस पर दृष्टिपात करो। मेरे शरीर का परिणमन स्वतन्त्र है और मेरी आत्मा का परिणमन स्वतन्त्र है। आत्मा में अनन्त गुण हैं। ज्ञान गुण का उत्पाद-व्यय ज्ञानगुणभूत है, दर्शनगुण का उत्पाद-व्यय दर्शनगुणभूत है, सम्यक्त्व गुण का परिणमन सम्यक्त्वभूत है। एक गुण का परिणमन दूसरे गुणभूत नहीं हो रहा है। फिर एक के भाव दूसरे के भावभूत कैसे होंगे? भैया! जब भी आपका मन करे कि मैं जीवन में ज्ञानी बनूँ, तो सारे शास्त्र पढ़ने के पहले गुरु को विराजमान कर लेना, क्योंकि बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया तो तुम्हारा ज्ञान संक्लेशता बढ़ायेगा, संक्लेशता की हानि नहीं करेगा। पण्डित जी आपने श्रावकाचार जी का अध्ययन किया, आपने मूलाचार जी का अध्ययन किया, यदि तू जानने मात्र के लिये अध्ययन कर रहा था, तो आप यही मेल करते रहोगे कि कहाँ क्या? कल्याण के लिये अध्ययन

किया है तो तेरी दृष्टि क्या होगी? देखो, मेरे परिणाम कहाँ जा रहे हैं। यदि आपने परवस्तु को देखने के लिये पलक भी उठायी है, उतने काल में संक्लेशता बढ़ चुकी है, उस संक्लेशता ने बन्ध करा दिया है। एक माला कम फिर जाय तो तनाव मत लेना, पर चार माला फेरने का क्लेश भी मन में मत लाना। ज्ञानी! धर्म की धारा भिन्न है और लोक की व्यवस्थायें भिन्न हैं। घड़ी में समय दिख रहा है और तेरा पाँच माला का नियम था, अब देखो तेरी माला कैसी फिर रही है? माला फेरते-फेरते इतना क्लेश हो रहा है कि जल्दी पूरी हो जाये तो पाँचों पूरी कर लूँ। भाई! एक काम कर लो, तुम्हारा पाँच का नियम है, नियम मत तोड़ो, लेकिन उसको दो बार में कर लो। यदि आपका एक बार में ही फेरने का नियम है, तो इतना समय लेकर पहले से बैठो, जिससे संक्लेशता न बढ़े।

माँ! आपके मन में भाव आया कि नगर में मुनिराज पधारे हुये हैं और मुझे तो महाराज की चर्या कराना है। हे माँ! चर्या तो कराना, तेरा कितना उत्कृष्ट परिणाम हुआ, निर्ग्रन्थ के हाथ में ग्रास रखने का परिणाम। जिस जीव ने नरक आयु का बन्ध कर लिया है, उस जीव के मन में कभी आ ही नहीं सकता। आपके भव की परीक्षा है। जिस जीव ने तिर्यंच, मनुष्य और नारकी इन तीन पर्यायों का बन्ध कर लिया हो, ऐसा जीव रात्रिभोजन त्याग करने के परिणाम भी नहीं बना सकता, व्रती होने के परिणाम बना नहीं सकता। वह करे या न करे, लेकिन नियम नहीं लेगा। कभी दिगम्बरी दीक्षा नहीं ले सकता। अबन्धक होना चाहिये या देव आयु का बन्धक होना चाहिये। वह जीव संयम धारण कर लेगा। जिस जीव ने किसी आयु का बन्ध ही नहीं किया है, वह जीव संयम धारण कर लेगा। स्वयं के भावों को टटोलना, राजा श्रेणिक ने भगवान् के समवसरण में प्रश्न किया, स्वामी! साठ हजार प्रश्नों के समाधान को सुना, आपकी देशना को सुना, पर हे नाथ! संयम धारण करने के परिणाम क्यों नहीं होते हैं? वर्द्धमान की वाणी में खिरा, 'राजन्! आपने नरक आयु का बन्ध कर लिया है, इसलिये आप संयम धारण नहीं कर सकते हो।' उस समय सल्लेखना के लिये

बड़ा उपकारी विषय चल रहा था। ज्ञानियो! हमने क्रोध को संक्लेशता माना, मान को, माया को, लोभ को संक्लेशता माना, पर हर्ष को आपने आज तक संक्लेशता नहीं माना, जबकि वह भी संक्लेषता ही है। हर्षित होना भी संक्लेशता है। सम्यग्दृष्टि हँसी को प्राप्त नहीं होता, सम्यग्दृष्टि प्रमुदित होता है। धर्म-धर्मात्मा को देख करके जिसके अन्तस् में प्रसन्न भाव आ रहा है, प्रमुदित भाव आ रहा है, उसको आगम की भाषा में कहना कि यह संवेग भाव है। धर्म और धर्म के फल को देखकरके जो हर्षित भाव आता है, उसका नाम संवेग है। अन्य परिग्रह आदि द्रव्य को देख करके तू मुस्करा रहा, है हर्षित हो रहा है, यह संवेग भाव नहीं है, यह परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान है, संक्लेश परिणाम है। चेहरे पर खुशी का आना अनेक प्रकार का होता है। यदि तुम्हारा शत्रु कष्ट में पड़ जाय, तब भी आपको खुशी होती है। ऐसा नहीं होता क्या? जिसे तू अपना शत्रु मानता था, वह संकट में पड़ जाय, तो अलग से अनुभूति ले रहा है। वह जीव तो अपने कर्म के उदय से संकट में आया है, पर तू हर्षित होकरके कर्म को आमन्त्रण क्यों देता है? और धीरे-से कह रहा था कि देखो, मैंने कुछ नहीं किया, उसको कर्मों ने देख लिया।

अरे भाई! उसको तो देख ही लिया, तू उसे देख कर क्यों प्रसन्न हो रहा है? तुझे देखने कर्म आ रहे हैं, तू चिन्ता मत कर। जैसे गाड़ी के हेण्डिल को सँभाल कर चलता है कि कहीं घटना दुर्घटना न घट जाये, ऐसे ही परिणामों को सँभालने की आवश्यकता है। हम जगत् कर्ता बनकर कबतक जियेंगे? जगत् के सुधारनहार कब तक बनोगे? जो माता-पिता यहाँ बैठे हुये हैं, मेरी छोटी-सी बात मान लेना, सन्तान को उतना ही समझाना जितने में तुम्हारे मन में संक्लेशता न बढ़ पाये। जब तुम्हारी सन्तान सुधरने का विचार ही न करे, तो जितना तुम सन्तान को पुचकारने में लगे थे, उतना भावों की सन्तान को सँभाल लेना। अपन ने आज तक यही समझा है। भवातीत होना है तो परभावों से अपने भावों को अतीत कर लेना। एक निर्णय तो लेकर चलना पड़ेगा। लोकव्यवस्थायें भिन्न हैं और

जब तुम्हारा अन्तिम समय दिखने लग जाये, उस समय अपने को धर्म से भी दूर कर लेना। समझ कर सुनना, नहीं तो कहोगे महाराज कुछ भी कह देते हैं? नहीं, कुछ भी नहीं कहता हूँ, आगम बोलता हूँ। जिनकी बुद्धि में आगम नहीं होता, उन्हें लगता है कि कुछ भी बोल रहे हैं। हे जीव! जब तेरी विदाई की अन्तिम बेला समझ में आने लग जाये, तो धर्म को भी छोड़ देना। समझो मैं क्या बोल रहा हूँ। धर्म को भी छोड़ देना। 'महाराज! जीवन भर धर्म किया, अब धर्म छुड़वा रहे हो, दुर्गति में भेजोगे क्या?' नहीं, ज्ञानी! समझो मैं क्या कह रहा हूँ।

मेरे मित्र! ये मेरा जैनधर्म, ये मेरी आम्नाय, ये मेरा संघ, ये मेरा गण, ये मेरा गच्छ, ये मेरा पंथ, ये कोई धर्म नहीं। जिसे तुम लोक में धर्म कह रहे हो, इस सम्प्रदाय के राग को भी छोड़ देना और मात्र उस धर्म पर ही लक्ष्य रखना जो ज्ञान-दर्शनस्वरूप भगवान्-आत्मा है। उसको निहारना। मन्दिर/मठों का पक्ष भी आपकी समाधि भङ्ग कर देगा। इसलिये इस धर्म को छोड़ देना, निज धर्म पर लक्ष्य रखना। इसलिये धर्म छोड़ देना, निज धर्म को मत छोड़ना। यदि धर्म के लिये भी संकल्प-विकल्प कर रहे हो और जिसे तुम धर्म कह रहे हो, उस धर्म को छोड़ देना। आपने बगीचा बनवाया और उसमें आप अपने पिता जी की स्टेच्यू बनाना चाहते थे, कहीं अन्तिम श्वास की बेला आ गई, तो तू बगीचे को देखेगा, पिता जी की स्टेच्यू को देखेगा, कि अपने परिणामों को देखेगा? यदि पिता जी का स्टेच्यू दिखता रहा, तो विश्वास रखना, उसी स्टेच्यू के नीचे तू कीड़ा बनकर घूमेगा। **आज जो लोक में चमत्कार दिख रहे हैं, बहुत सारे चमत्कार बना दिये जाते हैं। कहीं मन्दिर में साँप आ गया सो कहने लगे कि देवता आ गया। देवता नहीं दिख गया। जो मन्दिर के रागी कोष का राग किये बैठे थे, वे बेचारे छोड़ नहीं पाये, इसलिए अब उसी में साँप बनकर घूम रहे हैं और आपको लग रहा है कि देवता आ गये। देवताओं को आना होगा तो काला नाग बनकर ही क्यों आयेगा?** वह तो अपने वैक्रियिक शरीर

में है, वह अदृश्य रूप में भी तो आ सकता है। नाग में ही ज्यादा देवत्व झलकता है क्या? आश्चर्य देखो, चिड़िया को मुख में दबाये है साँप और तब भी लोग देवता मानकर आराधना कर रहे हैं।

अरे ज्ञानी! जिसके मुख में चूहा हो, चिड़िया हो, वह देवता कैसा? देवता तो अमृत का पान करनेवाला होता है, वह प्राणियों का घात करने वाला नहीं होता। यह देवता कैसा? इसलिये व्यर्थ के ढोंग में उलझ मत जाना। भगवान्-आत्मा स्वीकार जरूर किया गया है, लेकिन पर्याय की प्रत्यासत्ति को भी जानना पड़ेगा। यहाँ आप जो भी गवेषणा करो, एकान्त दृष्टि से नहीं करना। भगवान्-आत्मा प्रत्येक जीव को स्वीकारा गया है। चिड़िया को पकड़ रहा था तो उस समय चिड़िया की भी रक्षा करते। चिड़िया के राग में साँप को भी नहीं मारते। दोनों भगवान्-आत्मा हैं। लेकिन पर्याय की दृष्टि से देखोगे तो साँप 'साँप' है, चिड़िया 'चिड़िया' है। पूज्य दोनों नहीं हैं, लेकिन घात के रूप दोनों नहीं हैं, हिंसनीय दोनों नहीं हैं। एक आपके पक्ष का है, दूसरा आपके विपक्ष का है। दोनों के प्राणों पर संकट आ रहा है। तू रक्षा किसकी करेगा? गद्दी पर बैठकर जिनवाणी कहो तो ऐसा कहो जिससे लोगों के राग-द्वेष छूटें। लोगों को धर्म भी दिख रहा है तो मात्र अपनी जाति में, अपने पंथ में, अपने पक्ष में। जहाँ महावीर स्वामी ने एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों की रक्षा की बात की है, वहाँ पण्डित जी देखते हैं कि मेरे गुट के कितने लोग हैं। वे हमारे धर्मात्मा हैं, वे तेरे धर्मात्मा नहीं हैं, वे तेरे बन्ध के कारण हैं। धर्मात्मा तो वे हैं जिनके मुख से तुझे णमोकार सुनने मिल जाय। उन सब में तेरे साम्यभाव हैं, वे सब तेरे धर्मात्मा हैं। पंचमकाल में धर्मात्मा होना बहुत कठिन है। इसलिये आचार्य कार्तिकेय स्वामी को लिखना ही पड़ गया कि 'अँगुलियों पर गिनने लायक हैं।'

हे ज्ञानियो! इस पंचमकाल में, खोटे काल में धर्मात्मा जीव तो अँगुलियों पर गिनने लायक चार-पाँच ही हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि एक वे हो गये, एक वे हो गये, बस। ऐसा नहीं लगा लेना। अँगुलियों पर गिनने लायक से तात्पर्य

है कि बहुत अल्प हैं; क्योंकि धर्म जो है, वह निरपेक्ष है, पर धर्म को समझना है तो वह नय-सापेक्ष है। जो निरपेक्ष धर्म को नयसापेक्ष नहीं समझेगा, वह धर्म को समझ ही नहीं पायेगा। बहुत कठिन है, लेकिन यथार्थ मानो, बहुत सरल है।

हे मुमुक्षुओ! रागभूत संक्लेश द्वेषभूत संक्लेश। जीव पर ही राग नहीं होता, अजीव पर भी राग होता है। वह भी संक्लेशता है। जीव पर ही द्वेष नहीं होता, अजीव पर भी द्वेष होता है। काँटा चुभ गया, वह काँटे की गल्ती थी कि तेरी दृष्टि की गल्ती थी? वह तो जड़ था, तब भी तूने काँटे को ही गाली दी। ऐसे अज्ञानी जीव भी मिल जायेंगे कि काँटा चुभ गया तो काँटे को भी गाली दे रहा है यह नहीं कह रहा कि मेरा प्रमाद था मेरी अज्ञानता थी, मेरी भूल थी कि मैं देखकर क्यों नहीं चला? ऐसे भी अज्ञानी मिल जायेंगे जो काँटा चुभा था उसी पर गुस्से से और पैर रख रहे हैं। यह है जड़ पर द्वेष। मार्ग पर गतिअवरोधक था, तू देख कर चला नहीं, ठोकर लग गई, अब तू कुदाल लेकर आ गया फोड़ने के लिये। अरे! इतनी मेहनत क्यों कर रहा है व्यर्थ में? यदि देखकर चलता, तो कुछ नहीं करना पड़ता। धन्य हैं वे योगीश्वर, बहुत सारे असंक्लेशता के हेतु उन्हें नहीं मिलते हैं? क्योंकि जो समितियों का पालन करता है, उसको संक्लेशता के हेतु नहीं मिलते हैं। जो समितियों का पालन नहीं करते हैं, उनको संक्लेशता के हेतु मिलते हैं। देखकर चलते तो जीव भी बचते, काँटा भी नहीं लगता और मल से भी पैर गन्दा न होता। नीचे देखकर चलता तो यहाँ-वहाँ दृष्टि न जाती, तो परिणाम भी खोटे न होते, कितनी रक्षा तेरी हो रही है। इसलिये नीचे दृष्टि करके चलना चाहिये। यह तो चरणानुयोग चल रहा है। जो चरणानुयोग तेरी मानसिकता में है, उससे उठकर चलिये। आप चरणानुयोग को मात्र दैहिक क्रिया में लगा रहे हो, जबकि चरणानुयोग मात्र दैहिक क्रियारूप नहीं है। प्रत्येक क्रिया भावों को लिये बैठी है।

माँ! आपके सोले के कपड़े को बेटे ने छू लिया तो आप क्या करोगे? जैसा

करते हो, वैसा बताना। महाराज! जो आज तक करते आये वही तो करेंगे। पहले उसकी धुनाई करूँगी, फिर कपड़े को देखूँगी। हे माँ! सत्य बताना, आपने जो सोले के कपड़े डाले थे, वो परिणामों की शुद्धि के निमित्त से डाले थे। वे तुम्हारी परीक्षा की घड़ी थी कि आप उनको पुनः धोकरके सुखा सकते हैं। नहीं सूख पाये तो अनुमोदना कर लेते। आपके कपड़े तो धोके से अशुद्ध हुये, लेकिन भाव तो तूने जान कर अशुद्ध किये हैं। कपड़ों का सोला भी गया और भावों का सोला भी गया। आज के युवा इन धर्मात्माओं से क्यों चिड़ते हैं? क्योंकि ये लोग क्रिया करते तो दिखते हैं, लेकिन भावों को सही करते नहीं दिखते हैं। उनको चिड़ छूटती है। जितने सोला करने वाले हैं, उतने ही तीव्र कषायी हैं, ऐसा बोलनेवाले बच्चे हैं। इस बात पर ध्यान दो। संयम को बदनाम मत होने दो, सोले को बदनाम मत होने दो। तुम्हारी कषाय के विकल्प में सोला बदनाम हो रहा है, जबकि सोला बदनाम होने योग्य नहीं है। ये कपड़ा तो एक बाल्टी पानी में धुल जायेगा, परन्तु जो विशुद्धि तेरी नष्ट हुई है, उसको कौन-से पानी में धोने जाओगे? ज्ञानी माला फेर रहा था, अचानक माला का मोती टूट गया। दो प्रकार की संक्लेशता शुरू हो गई। एक तो माला टूट गई, 'हाय! कोई अशुभ होनेवाला है।' भीतर भय प्रवेश कर गया। तीव्र संक्लेशता। दूसरी, टूटी कैसे? अब कैसे फेरूँगा?

अरे आपको मालूम होना चाहिये कि इतनी मोटी रस्सी, पानी खींचने वाली, वह भी घर्षित होते-होते टूट जाती है। यह तो माला के मोती ऊपर-नीचे हो रहे थे, धागा घिस गया सो टूट गया, इसमें अशुभ क्या होगा? उसमें तू अशुभ भाव और करने लग गया। ज्यादा विकल्प सता रहे हैं तो एक माला और फेर लो, लेकिन संकल्प-विकल्प करके मन की माला को गन्दा मत करो। यदि कोई ज्योतिषाचार्य हो गया तो वह तो और उल्टा ही बोलेगा, 'भाई! तुम्हारी माला टूट गई है, अब कोई घटना घटनेवाली है।' ज्ञानी! आप बात मानिये, कोई घटना घटनेवाली नहीं थी। अब तुम्हारे भावों में आ गई कि कुछ होगा, तो आपको वही-वही दिखता है। जब महाराजों को लगातार अन्तराय आना शुरू हो जायें,

तो गर्मी चढ़ती है। गर्मी का मौसम, और-फिर शरीर की गर्मी, और पेट में भोजन गया नहीं, अब माना कि आप आहार भी देने आये और आपने दाल में घी डाल दिया था, दाल का घी मुझे बाल दिखता है। वह शङ्का भरी हुई है। अब कुछ आनेवाला है, क्यों? बहुत दिन से अन्तराय आ रहे थे तो विकल्प मन में आ रहा है। **जैसी भावना बार-बार आयेगी, वैसा प्रभाव भी बनता है। इसलिये श्रावक की जैसी मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि होनी चाहिये, ऐसी ही पात्र की भी होनी चाहिये। यदि पात्र का भी मन अशुद्ध है, तो भी विघ्न आयेंगे। दाता के द्रव्य, क्षेत्र, भाव की अशुद्धि होने पर दान में विघ्न आता है।** कहीं बनाया और कहीं जाकर रख दिया। ऊपर मंजिल में बनाया और नीचे मंजिल में आहार करा रहे हो और दिखाने के लिये चूल्हा भी रख दिया, चंदोबा भी लगा दिया।

माँ! ऐसी मायाचारी मत करना। यह स्थापित नाम का दोष है। साधु को वहीं आहार कराना, जहाँ बनता है। एक कमरे से दूसरे कमरे में स्थापित कर दिया, यह स्थापित नाम का दोष है। सुन्दरता का विकल्प मत करना। जिन बर्तनों में बनाया है, वे काले पड़ गये हैं तो सामग्री को अच्छे बर्तनों में रख लेना, यह परिवर्तित नामक क्षेत्र है। भाजान्तर नाम का दोष है। पहले बनाने में बर्तन खराब किये। माँजने में भी हिंसा होगी। फिर दूसरे बर्तन खराब किये, ये दो गुणी हिंसा होगी। जिस बर्तन में बनाया है, उसी बर्तन में रहना चाहिये, बर्तन नहीं बदलना। सोलह दोष श्रावकों के आश्रित होते हैं और सोलह दोष मुनियों के आश्रित होते हैं। पता चला कि जितना आहार नहीं बना, उतने बर्तन इकट्ठे कर लिये, अरे! श्रावक देखने आयेंगे, तो क्या कहेंगे? कि बर्तन ही नहीं हैं। एक गिराओ, एक उठाओ। बर्तन भी गिरे तो अन्तराय होता है। फिर संक्लेशता बढ़ेगी। कोई विघ्न हो गया, तो यह कि अब आप कह रहे हो कि मेरे घर में अन्तराय हो गया, मैं भोजन नहीं करूँगा। पहली भूल यह कि तुमने प्रमाद किया। दूसरी भूल ये और कर रहे हो। कम-से-कम तुम आहार कर लो। शरीर में ताकत रहेगी तो

साधु की सेवा कर आना। अब तुम ही भूखे बैठ गये हो तो तुम्हारी ही सेवा को कोई लगेगा। कितना विवेक चाहिये पड़ता है। संक्लेशता का अभाव कैसे करेंगे?

रागभूत संक्लेशता, द्वेषभूत संक्लेशता, मिथ्यात्वभूत संक्लेशता। मिथ्यात्वभूत संक्लेशता सबसे घोर संक्लेशता है। अब बेचारे को यही लग गया कि माला टूट गई, कोई देव कहीं कुछ न कर दें। अरे अज्ञानी! जब जीवन की माला टूटती है तो कौन देव क्या करता है? आपके घर में किसी की मृत्यु हुई है आज तक? कोई मन में भ्रम भर दे, 'अरे! पंचकों में गया, पाँच को लेकर जायेगा। अब देखो तुम्हारे परिणाम कैसे होते हैं? अरे ज्ञानी! ऐसे लेने आने लग गये, तो हमारे स्वयं के आयुकर्म का क्या होगा? कैसे भयभीत करके संक्लेशित किया जाता है। यथार्थ मानिये, हमारे आगम में ज्योतिष को स्वीकार अवश्य किया है, लेकिन लोक में जो ज्योतिष के ढोंग फैलाये गये हैं, उन्हें स्वीकार नहीं किया। भयभीत कर दिया लोगों को। भयभीत होना भी कषाय है, भयभीत करना भी कषाय है। संक्लेश परिणाम हैं। 'ये भैया! ठीक से बैठो। मैं देख लूँगा आपको।' आप तो ऐसे बोल कर चले गये, पर उस जीव के भीतर कैसे-कैसे परिणाम होना शुरू हो चुके हैं? कहीं उसको सहन नहीं हुआ और हृदय की धड़कन बढ़ गई और जीव की मृत्यु हो गई, तो पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा का दोष लगेगा। अपना वर्चस्व दिखाने के लिये आप भूल गये थे कि यह भी हिंसा है। प्राणों के वियोग करने को दुनियाँ हिंसा जानती है, परन्तु भावों को संक्लेश करना भी हिंसा है, इसको महावीर की वाणी ही बोलती है। विश्व में जितने दर्शन हैं, मात्र स्थूल हिंसा की बात करते हैं; लेकिन सूक्ष्म द्रव्यहिंसा और भावहिंसा की बात तो तुम्हारे पास है ही नहीं। पर को दु:खित करना भावहिंसा और पर को दु:खित करने के भाव लाना स्वयं की भावहिंसा।

माताओ! सुन रहे हो? ये आपके प्रतिदिन का काम है दूसरे को धमका देना, डरा देना, भयभीत कर देना। 'महाराज! मारने के भाव नहीं थे। मैं तो उसको

डरा रहा था।' तुम्हारे भाव क्या थे, तुम जानो; परन्तु उससे पूछो कि उसको कैसा लगा? समय बदल चुका है। यदि आपको परेशान करना है तो ज्ञानी ने पत्र लिखकर छोड़ दिया। 'भाई! सँभल कर रहना, आपका समय आ चुका है।' इतना लिखकर छोड़ दिया। उसकी दिन-रात कैसे निकलती है? 'अरे! पत्र आ गया पता नहीं किसने डाला है।' एक श्रावक मेरे पास आया, महाराज! पत्र आया है। अब मैं अपने बच्चों को स्कूल भेजूँ या नहीं? बेटे व्यापार में कैसे जायेंगे? अब पता नहीं क्या होगा?

आदमी को कैसे डरा दिया। बाद में मालूम चला कि वह कोई बाहर का व्यक्ति नहीं था, घर का ही कोई था। भैया! इस समय के अनुसार चलें। समय को प्राप्त करना चाहते हो तो स्वधर्म देख कर चलो। समय यानि आगम, समय यानि काल, समय यानि स्व धर्म। एक व्यक्ति ने अपनी ससुराल पत्र डाल दिया। जिसने पत्र डाला था, वह मेरे साथ विहार में था। थोड़ी देर बाद उसके मोबाइल पर समाचार आया कि वहाँ साले और उसकी पत्नी का परस्पर में इतना विसंवाद हो गया कि एक दूसरे को छुरा भोंकने की दृष्टि बन गई। वह व्यक्ति विहार में चलते-चलते रोने लगा। कारण पूछा तो सिर पर हाथ पटकते हुये कहता है—महाराज! मेरी दुर्बुद्धि को क्या हो गया था, मैंने चार-पाँच दिन पहले एक पत्र में कुछ ऐसा लिख दिया कि साले और उसकी पत्नी में अविश्वास हो गया। मेरी लेखनी के कारण दोनों में इतना झगड़ा हो गया कि चाकू चल गया है। मैंने कहा, अब तू रो रहा है। आज इतना नियम ले लो, खोटे लेख मत लिखना। किसी के बारे में अशुभ मत लिखना, न लिखवाना। बहुत बड़ी हिंसा से बच जाओगे।

जगत् क्या कर रहा है? मैंने जगत् का ठेका नहीं लिया। एक समय था जब लोग धर्मात्मा की गल्ती को देखकर उसे छिपाते थे। आज ऐसे धर्म के ठेकेदार बन गये जो छपाते हैं और कहते हैं कि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो धर्म का क्या होगा? किसी को मालूम नहीं था, धर्म को बदनाम तूने ही किया है। पं॰ आशाधर

जी ने एक जगह लिखा है कि **पापियों से कभी धर्म बदनाम नहीं होता, क्योंकि जग जाहिर है कि यह तो पापी है। श्रेष्ठ धर्मात्मा से कभी धर्म बदनाम नहीं होता, क्योंकि उससे तो धर्म की सुगन्ध फैलती है। यथार्थ में धर्म उनसे बदनाम होता है जो धर्मात्मा होते नहीं हैं, धर्मात्मा के भेष में होते हैं। ऐसे छलिया धर्मात्माओं से धर्म बदनाम होता है।** मात्र भेष धर्मात्मा का है, प्रचार धर्मात्मा का है, लेकिन भाव अशुभ चल रहे हैं, अंतरङ्गवृत्ति खोटी है, ऐसे जीवों से धर्म बदनाम होता है।

धर्म के निमित्त से भी संक्लेश परिणाम नहीं करना। कुछ ऐसे विषय थे कि जिसका लोगों को मालूम नहीं था, आपने और प्रचारित कर दिया। यह तुम्हारा धर्म नहीं बोल रहा था, तुम्हारी अज्ञानता बोल रही थी। समय गया, परिणाम बदल जायेंगे, पर्याय बदल जायेगी, लेकिन बदनामी नहीं बदल पायेगी। कर्मकलंक टल सकता है, कर्मकलंक मिटता है। भरत-बाहुबली से पूछो, केवली बनकर निर्वाण को प्राप्त हो लिये, कर्मकलंक तो टल गये, परन्तु भाई-भाई झगड़े थे, इस अपयश का कलंक आज तक नहीं मिटा। जब भी इतिहास की बात होगी, भाई-भाई से लड़ा था, तो यह विषय तो छिड़ेगा ही छिड़ेगा। हे पाण्डु पुत्रो! आप मुक्त हो लिये, सर्वार्थसिद्धि पहुँच गये, लेकिन भाई से आपका भूमि के कारण युद्ध हुआ था। भले ही कौरव कैसे ही थे? आपको छोड़ना तो था ही, युद्ध के पहले ही छोड़ देते तो इतने जीवों का घात क्यों होता? सीता ने दीक्षा ले ली, राम ने दीक्षा लेली, ये पहले हो गई होती तो ये सब जीवों की विराधना क्यों होती? पुण्यात्माओं के कारण रागी जीवों को पिसना पड़ता है। दो नेता जैसे सुरक्षित रहते हैं, वैसे तुम भी सुरक्षित रहना सीख लो। सामान्य सेना बेचारी नष्ट होती है, राजाओं का क्या हुआ? मुखिया तो पहले सुरक्षित हो लेता है, बेचारे सामान्य प्राणियों को कष्ट सहना पड़ता है। आज आप सबको शिक्षा लेना चाहिये, निश्चय से व्यवहार से आत्मरक्षा करो। मैं इस पक्ष वाला नहीं हूँ कि धर्म के नाम पर भी प्राण दे दो।

ज्ञानी जब तक जीवित रहेगा, णमोकार का जाप करेगा, जिनशासन को जयवन्त

करेगा। इतने समय तक हमारा धर्म बचेगा। ये जीव ही चला गया, ऐसे सारे **धर्मात्मा चले जायेंगे, तो धर्म कहाँ दिखाई देगा? अहिंसा के लिये भी अपनी हिंसा मत करो। अहिंसा के प्रचार के लिये भी अपनी स्वयं की हिंसा मत करो और दूसरे की हिंसा तो करना ही नहीं, यही तो अहिंसा का प्रचार है।** एक ज्ञानी अहिंसा के प्रचार के लिये निकल पड़ा और कमर में बैल्ट बाँधे था चमड़े का। अब बताओ, तू क्या करेगा? यदि आपको कोई धार्मिककार्य भी करना है, तो कभी ऐसे काम नहीं करना कि लोगों को उत्तेजित करके उनकी भावहिंसा करा दो। भड़कीला भाषण हिंसा ही है। आपको मालूम होना चाहिये कि इन भुजाओं में कोई ताकत नहीं होती। ये तो जड़ हैं। जब सेनापति का वीर रस से युक्त भाषण होता है, तब सैनिकों की भुजायें फड़कने लगती हैं, ताकत भर जाती है। मित्र! तुम पर को विसंवाद के लिये ताकत भर रहे हो, ऐसी ताकत मत भरो। भो ज्ञानी! निज के भगवान्-आत्मा को देख। तू भगवान्-आत्मा है। अपने सहजस्वरूप को देख, अपने समरसी भाव को देख। धन्य हों वे जीव, वे योगीश्वर, जिन्होंने चाण्डाल को भी चतुर्दशी के दिन हिंसा का त्याग करा दिया हो। चतुर्दशी के दिन राजकुमार को फाँसी होनेवाली थी, बहुत सारा धन मिलने वाला था।

माताओ! बुरा मत मानना। आपका हृदय बड़ा पतला तबा है, विश्वास का पात्र नहीं है। आप कब किसको देखकर प्रभावित हो जायें? चाण्डाल को मालूम चला कि आज राजपुत्र की हत्या करनी पड़ेगी, लेकिन मैंने दिगम्बर मुनि से नियम लिया है, मैं उसे नहीं तोड़ सकता हूँ। जाकर घर के कोने में छिप गया। पत्नी से कह दिया 'यदि राजकर्मचारी आयें, तो उनसे कह देना कि मैं बाहर गया हूँ।' उसका झूठ भी झूठ नहीं था। श्रावक को ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिये, जिससे कोई दूसरा विपत्ति में पड़ जाये। अभी तो श्रावकाचार पढ़ना पड़ेगा। **जिससे धर्म की हँसी हो, धर्मात्मा की हँसी हो, लोक में उपहास फैले, वह सत्य है ही नहीं।** जो कह रहे हैं कि मैं तो सत्यवादी हूँ, सत्य की वन्दना करता

हूँ, ज्ञानी! तुम अभी सत्य सीखे कहाँ हो? जिस दिन सत्य सीख लोगे, उस दिन तुम स्वयं साधु बन जाओगे। तुम्हारे पास कोई सत्य नहीं है। शुद्ध मायाचार है। सत्य क्या होता है? सत्य उस चाण्डाल ने बोला था। आपको मालूम होना चाहिये कि धर्म अहिंसा मात्र है। शेष चार व्रत उसी की रक्षा के लिये बारी के समान हैं, कवच के समान हैं। अहिंसा परमब्रह्म है। शीघ्र बोलना और शीघ्र निर्णय दे देना, यह भी हिंसा है। सोचकर बोलना और सोचकर निर्णय करना।

जैसे ही राजकर्मचारी आये, उन्होंने कहा, चाण्डाल कहाँ है? पत्नी पहले तो यही कहती है कि बाहर गये हैं। एक सैनिक के मुख से निकल पड़ा, 'अरे! चाण्डाल कैसा अभागा था? आज ही तो राजकुमार को फाँसी लगना थी। आज उसको बहुत धन मिलनेवाला था। आज ही वह बाहर चला गया।' बस, नारी का हृदय पिघल गया। इनको तो सोना दिखा दो, बस, पैसे का कितना तीव्र राग? इन पर विश्वास मत कर लेना, जीवन में सुरक्षित रहना। मुख से कह रही थी कि बाहर गये बाहर गये और हाथ से इशारा कर रही थी कि वे बैठे, वे बैठे। जाकर सैनिकों ने चाण्डाल को पकड़ लिया और राजा के पास ले गये। देखो अहिंसा की महिमा और अहिंसा का जोश। राजा कहता है, 'आज राजकुमार को फाँसी देना है।' स्वामी! क्षमा करो। मैंने दिगम्बर वीतरागी तपोधन के पादमूल में नियम लिया है जीवन में एक बार तो नियम लिया, कैसे भंग कर सकता हूँ? बोले, 'चाण्डाल भी कोई नियम लेता है क्या?' स्वामी! इस भ्रम को निकाल दो। जाति चाण्डाल हो सकती है, धर्म चाण्डाल नहीं होता है। इस बात को समन्तभद्र स्वामी ने कहा है। जैसे छिपी हुई अग्नि, ऐसे ये मत देखो कि ये उच्च कुलीन, ये निम्न कुलीन। उसके अन्दर भी धर्म हो सकता है। तुम उसको मन्दिर नहीं आने दे सकते हो, सामाजिक व्यवस्था है, लेकिन श्रद्धा के भगवान् को कौन भगा पायेगा? अब चाण्डाल सोच रहा था कि प्राण तो जायेंगे ही, प्रण क्यों तोड़ूँ? 'महाराज! मैं दिगम्बर मुनि के चरणों में ली प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर सकता हूँ। आज चतुदर्शी का दिन है।' मित्रो! धन्य हो उस चाण्डाल को। उसने अपना

व्यापार बन्द कर दिया। आज शासन बन्द करवाये तो तुम अपनी दुकानें बन्द कर लेते हो, लेकिन जिनशासन की नहीं मानते हो। अष्टमी चतुदर्शी को तो दुकानें बन्द होना ही चाहिये। महीने में चार पर्व आते हैं। इन पर्व के दिनों में धर्मध्यान में लीन रहना चाहिये।

धन्य हैं वे श्रावक, जो राज्य/शासन के साथ-साथ जिनशासन के अनुसार चलते हैं। राज्य शासन भले ही सोमवार या मंगलवार को बन्द रखे, लेकिन जिनशासन के अनुसार अष्टमी चतुदर्शी व्यापार बन्द रखना चाहिये। अब बताओ, महान् कौन? आप उसको चाण्डाल कह रहे थे, वह तो श्रावक हो गया था, श्रद्धा से भरा था। राजा ने कुपित हो करके राजकुमार और चाण्डाल दोनों को बोरे में भरवा कर सरोवर में फिकवा दिया। यहाँ देखो, धर्म सहकारी कब होता है? 'धम्मं शरणं पव्वज्जामि।' यक्ष का आसन कम्पित हुआ कि यदि आज इस जीव की रक्षा नहीं की, तो जीवों की अहिंसा धर्म से श्रद्धा समाप्त हो जायेगी। उस यक्ष ने चाण्डाल के लिये सिंहासन की रचना कर दी और चाण्डाल को सिंहासन पर बिठाल दिया, चँवर ढुर रहे हैं। राजा भी दौड़ा-दौड़ा पहुँचा, हाय! ये क्या हो गया? मुझे नहीं मालूम कि जाति चाण्डाल हो सकती है, कुल चाण्डाल हो सकता है, पर हृदय चाण्डाल हो, ये कोई नियत नहीं होता है।

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा, जायते धर्म-विल्विषात्।
कापि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम्॥ 29 र.क.श्रा.॥

धर्म के प्रभाव से श्वान भी देव हो जाता है और पाप के प्रभाव से देव भी श्वान हो जाता है। यही धर्म और पाप की महिमा है। इसलिये इस अहंकार को छोड़ देना कि यह नीचा, मैं ऊँचा। यानि परिणाम देखो। कौन ऊँचा, कौन नीचा? इस जहर को निकाल देना। माताओ! दूरदर्शन दूरसंचार की सबसे अच्छी व्यवस्था आपके हाथ में है। आप इतना मेरा काम कर देना कि आज जो आपने सुना है, वह समाचार सभी जगह भेज देना। धर्म के प्रभाव से श्वान भी देव हो जाता है और पाप के प्रभाव से देव भी श्वान हो जाता है। इसलिये डिबियों (मोबाइल

फोन) का प्रयोग आज अच्छा कर लेना।

यह जीव संक्लेश परिणामों के द्वारा करोड़ों भवों में दु:ख देनेवाले कर्मों के बन्ध को प्राप्त होता है, इसलिये स्वयं का घातक संक्लेश परिणामी है। ज्ञानियो! अपने मन को संक्लेश से मुक्त कर दो, यदि मुक्ति चाहते हो तो।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"उत्तम धन का वर्णन"

चित्तरत्नमसंक्लिष्टं महतामुत्तमं धनम्।
येन सम्प्राप्यते स्थानं जरामरणवर्जितम्॥ 169॥

अन्वयार्थ-असंक्लिष्टं चित्तरत्नं = संक्लेश रहित शांतचित्त, **महतां उत्तमं धनं** = महान पुरुषों का उत्तम धन है **येन** = जिसके द्वारा, **जरामरणवर्जितम्** = जरा-मरण से रहित, **स्थानं** = स्थान, **सम्प्राप्यते** = प्राप्त होता है।

भावार्थ-संक्लेश रहित चित्तरूपी रत्न ही महापुरुषों का उत्तम धन है, जिस धन के द्वारा जरा-मरण रहित स्थान प्राप्त किया जाता है।

॥ सद्-देशना ॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में जीव के ऊपर अनुकम्पा दृष्टि करते हुये यह संकेत कर रहे हैं कि यदि आत्मशान्ति चाहिये, आत्म सुख चाहिये, तो संक्लेशता से आत्मरक्षा करो। बन्ध का कारण संक्लेश परिणाम है और मोक्ष का कारण विशुद्ध परिणाम है। विशुद्धि संक्लेश कहा है आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने इस बात को आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) में बहुत गहरे से कथन किया है।

हे अर्हत्! आपके दर्शन में न पुण्य बन्ध का कारण है न पाप बन्ध का कारण है। पापोदय से भी बन्ध नहीं होता और पुण्योदय से भी बन्ध नहीं होता। इस

सिद्धान्त को समझो। **जब तक आगम के गूढ़ रहस्यों को नहीं जानोगे, तब तक क्रियायें होती रहेंगी, लेकिन क्रिया का उद्देश्य क्या है, यह समझ में नहीं आयेगा।** मित्रो! उस विद्या को समझना है तो भगवान् यतिवृषभ स्वामी, धरसेन स्वामी, पुष्पदन्त-भूतबली स्वामी, वीरसेन स्वामी जैसे महान् आचार्यों को समझना होगा। कुन्दकुन्द जैसे महायोगी को समझना है तो समन्तभद्र स्वामी को समझना ही पड़ेगा। सारे सिद्धान्तों को, गूढ़ तत्त्वों को, हेतु दृष्टि से किसी ने कथन किया है, तत्त्वदृष्टि से कथन किया है, तो उनका नाम है आचार्य समन्तभद्र स्वामी। जैनदर्शन में हेतुवाद की प्रथम सिद्धि करने के लिये महान् योगी कोई हुए हैं तो वह समन्तभद्र स्वामी हैं। या तो चोटी में गाँठ होती या चोटी से रहित होते यदि ऐसे आचार्य न होते।

आज तो ज्ञानी विद्वान् अपने ही दर्शन में खिचड़ी पकाये हैं। जीव, तत्त्व का निर्णय नहीं कर पाया और अपने बीच में ही आप विकल्प पैदा कर रहे हो, जबकि आपको मालूम होना चाहिये कि समन्तभद्र स्वामी ने क्या गूढ़ रहस्य भर दिये हैं। पुण्य बन्ध का कारण नहीं है, पाप बन्ध का कारण नहीं है। इसलिये पुण्योदय को और पापोदय को इन दोनों को समझने का प्रयास करो और दोनों को सहन करने का प्रयास करो। पुण्य को झेलना सरल नहीं है, पाप को झेलना कोई सरल नहीं है। जितने अहंकार बढ़े हुये हैं, जितना मान बढ़ा हुआ है, वह मानकषाय कष्टभूत है। वह सब पुण्य की सत्ता में प्रचुर रूप दिख रहा है। लङ्केश! तेरे पास तीव्र मद कहाँ से आ रहा था? पुण्य की सत्ता बैठी हुई थी।

ज्ञानियो! श्लोक को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे आचार्यमहाराज पंचमकाल के प्रत्येक जीव को निहार रहे हों। **युवावस्था मिल जाये, फिर सम्पत्ति मिल जाये, साथ में प्रज्ञा मिल जाये, एक-एक मिलने से तो व्यक्ति पागल हो जाता है। तीन के मिलने पर व्यक्ति अहंकार में न जाये, इसी का नाम महापुरुष है। जो युवा हो, सम्पत्तिवान् हो, प्रज्ञावान हो और अहंकार-शून्य हो, तो वह विशिष्ट पुण्यात्मा जीव है।** सम्पत्ति के मिलने पर भी मान न आये,

युवावस्था मिलने पर भी विषयों में प्रवृत्ति न जाय, राज्यपद मिलने पर भी अहं न टकराये, तो यह बहुत कठिन साधना है। पुण्य-पाप के उदय को झेलना कठिन है। या तो पाप के उदय में नरक गये या पुण्य के उदय में नरक गये।

पुण्य के उदय ने नरक नहीं भेजा, पाप के उदय ने नरक नहीं भेजा। ये गवेषणा है, ये तत्त्व का निर्णय है, इसके भीतर कुछ भरा हुआ है। एक विषय वह है कि शास्त्र में लिखा है वह पढ़ लीजिये। एक विषय वह है कि आचार्यभगवन्तों ने जो लिखा है, उसका चिन्तन करिये, गवेषणा कीजिये आचार्यों की वाणी को आचार्यों की वाणी के अनुसार। पुण्य-पाप बन्ध का कारण नहीं है। यदि पुण्य बन्ध का कारण हो गया, तो ज्ञानियो! विश्व में सबसे बड़ा पुण्यात्मा जीव तीर्थंकर होता है, उस पुण्य से उनको बन्ध होने लग गया तो निर्वाण कब मिलेगा? राज्य-अवस्था में ही पुण्य नहीं, केवलज्ञान प्रकट होने के उपरान्त तीव्र पुण्य-उदय प्रकट होता है चक्रवर्ती के यहाँ तो मात्र चौदह रत्न और नौ निधियाँ होती हैं, पर तीर्थंकर प्रभु के समवसरण के प्रत्येक द्वार पर रत्न और निधियाँ पड़े रहते हैं। उन एक-एक रत्न और निधियों की हजार-हजार देव सेवा किया करते हैं। यदि वैभव ही देखना है तो तीर्थंकर का देखो। इतने वैभव के प्राप्त होने के उपरान्त भी प्रभू समवसरण से भी चार अंगुल ऊपर में हैं। लक्ष्मी श्रीजी को स्पर्श ही नहीं कर पाई। जो अंतरङ्ग श्री से युक्त है, बहिरङ्ग श्री से आँखें बन्द किये है, वो श्री की ओर नहीं दौड़ेगा।

अरे ज्ञानी! तू श्री को छोड़ता है और श्रीजी से चित्त लगाये है, इसलिये श्री भी दौड़ती-दौड़ती चली आती है। युवाओ! जीवन में ध्यान रखना, एक ऐसा जीव यहाँ है जिसने नरियल बेंचे हैं। आज दुनियाँ को नरियल खिलाने वाला है। यह सब भूत की पर्याय का पुण्य है। ज्ञान का मिलना, चारित्र का मिलना और श्रद्धा का दृढ़ होना, ये पूर्व की परम तपस्या का फल है। ऐसे श्रावक को धन मिलना और धन मिलने के साथ पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा का मिलना, श्रावक के परम पुण्य का उदय है। धन मिलते ही व्यक्ति ऊँचे उड़ता है, कहाँ देव दिखेंगे

कहाँ गुरु दिखेंगे, कहाँ जिनवाणी दिखेगी।

भैया! **सम्पत्ति के मिलने पर भी सन्मति बनी रहे, सन्मति देव के चरणों में सन्मति बनी रहे, इससे बड़ा कोई भाग्य नहीं है। अल्प द्रव्य के मिलते ही जीव विषयों में जाता है, वासनाओं में जाता है। सम्पत्ति के मिलने पर भी सन्मति न जाये, वही सम्पत्तिवान है।** जब-जब जिनालय में प्रवेश करो, तब-तब भावना करना-हे नाथ! सम्पत्ति नहीं चाहिये, सन्मति चाहिये। सन्मति रहेगी तो सम्पत्ति तो दौड़ी-दौड़ी चली आयेगी।

भैया! सम्पत्ति के पीछे मत दौड़ना। सम्पत्ति के पीछे तो विश्व दौड़ता है, पर सन्मति के पीछे विश्वास दौड़ता है। पुण्य बन्ध का कारण नहीं है, पाप बन्ध का कारण नहीं है। पुण्योदय भी बन्ध का कारण नहीं है। उदय, बन्ध का कारण नहीं है। बन्ध भी बन्ध का कारण नहीं है। यदि पापोदय से बन्ध होता, तो आपके जीवन में क्या पीड़ा है? पाप का उदय सनतकुमार मुनिराज के ऊपर आ गया जो कभी चक्रवर्ती पद पर सुशोभित होते थे, जिसके सुन्दर शरीर के सौन्दर्य का बखान सौधर्म इन्द्र करता हो। जिस शरीर की सुन्दरता की व्याख्या स्वर्गों में होती हो।

ज्ञानी! सबके दिन एकसे नहीं होते। अंतरङ्ग तपस्या भावों की साधना है। दूसरे की प्रशंसा हो रही हो, उसको सहन कर पाना बहुत बड़ी तपस्या है। **लोक में किसी की प्रशंसा हो रही हो आप उसको मार्दव-आर्जव धर्मपूर्वक सहन कर लो, यह अंतरङ्ग की बहुत बड़ी तपस्या है। बड़े-बड़े तपस्वीगण के लिये भी मास-मास के उपवास करना सरल है, नीरस भोजन करना सरल है, जीवन भर अखण्ड मौन ले लेना सरल है, जीवनपर्यन्त एक बार भोजन करना सरल है, लेकिन अपने कानों से दूसरे की प्रशंसा सुनकर आह्लादित हो जाना बहुत कठिन है।** सारी साधना तब समझ में आती है, जब विषमता के आने पर चेहरे में लालिमा दिखाई देती है। आपका सात मंजिल का भवन था और आपके सामने कोई आठ मंजिल का महल बना ले, तू उसे मुस्करा कर

देख ले, समझ लेना कि तू बहुत बड़ा तपस्वी है। तू बिना दीक्षा लिये तपस्वी है।

हे मुमुक्षु! साधु जब बनेगा तब बनेगा, साधुपुरुष तो बन ही गया। साधु का तात्पर्य सज्जन जन से है। जब जीवन के विकास का समय आता है तो चार भाई भी एक दूसरे की कटाई करना प्रारम्भ कर देते हैं। छोटा भैया कहेगा बड़ा भैया मिथ्यादृष्टि, बड़ा भैया कहेगा छोटा मिथ्यादृष्टि। जैनियों की गाली है मिथ्यादृष्टि। एक कहेगा मेरा ज्ञान सम्यक् है, दूसरा कहेगा मेरा ज्ञान सम्यक् है। उत्कर्ष के काल में मान का उत्कर्ष मिल जाय, सम्पत्ति का उत्कर्ष मिल जाय और ऐसे उत्कर्ष के काल में मान का उत्कर्ष न बढ़ पाये, यही तेरा मोक्षमार्ग है। जितनी पीड़ा तुझे घर के कष्टों में शरीर से नहीं है, उतनी पीड़ा तुझे अड़ौस-पड़ौस के वैभव को देखकर है।

विश्व में पागलों की संख्या, हीन भावना और मान पूर्ति न होने के कारण बढ़ रही है। कहीं सिर दर्द करता है, कहीं आँखें दर्द करती हैं। डाक्टर दवाइयाँ देता रहेगा, उसको तो पैसा मिलता है। पर सत्यता यह है कि तेरी हीनभावना निकल जाय अथवा मान की पूर्णता हो जाय तो अभी सिरदर्द ठीक होता है। वात, पित्त, कफ—ये तीन हैं। इनका साम्य स्वस्थता, इनका वैसम्य अस्वस्थता। चित्त की प्रसन्नता इन सब को ठीक रखती है। **व्यक्ति की कषायों का असर धातुओं पर पड़ता है। जैसे शरीर में धातु का वैसम्य हो रहा है, चित्त में कषायों का वैसम्य चल रहा है। मान कषाय बढ़ते ही उसका साथ क्रोध कषाय देती है। जब मान की पूर्ति नहीं होती, तब क्रोध आता है, तो पित्त और कफ बढ़ जाता है, तब आदमी पागल होना प्रारम्भ हो जाता है। जिनके अन्दर माया चल रही है, लोभ चल रहा है, वहाँ शिथिलता बढ़ती है। ये मादक कषाय है, ये धूमिल कर रही है। कफ बढ़ता है, श्लेष्मा बढ़ती है और वायु कुपित होती है तो उसकी बुद्धि मन्द होने लगती है।** चित्त प्रसन्न होगा, सहज सरल होगा, उसके शरीर की धातुयें भी उमंग उत्पन्न करनेवाली होंगी,

चित्त को प्रसन्न करने वाली होंगी और ताजगी प्रदान करेंगी। आप शरीर से भी स्वस्थ होंगे और चित्त से भी स्वस्थ होंगे।

जैसे ही सौधर्म इन्द्र कहता है कि इस समय भूमण्डल पर सबसे सुन्दर सनत कुमार चक्रवर्ती है, एक देव को सहन नहीं हुआ। स्वर्ग के वैक्रियक शरीरधारियों के बीच में इस औदारिक शरीर की प्रशंसा, जो गलनेवाला है, सड़नेवाला है? पूरण-गलन जिसका स्वभाव है, ऐसे पौद्गलिक परमाणुओं से निर्मित औदारिक शरीर की प्रशंसा किस बात की? नहीं माना मन, चल दिया देखने को। सनत चक्रवर्ती उस समय अखाड़े में व्यायाम कर रहा था, धूल से धूसर शरीर था। देव देखकरके चकित हो गया। इतना सुन्दर रूप? पर ज्ञानियो! **मेघों में भवन, प्रदर्शनियाँ, चित्र अस्थाई हैं। बादलों में ऐसे सुन्दर चित्र दिखते हैं, दूसरे क्षण विलीन हो जाते हैं। ऐसे ही इस नरदेह की सुन्दरता है।** बेटा जितने फोटो खिंचवाना हो खिंचवा लेना, पर ये चमकता चेहरा क्षण-क्षण में मलिन हो रहा है। दो वर्ष पहले जो युवा सुंदर दिखते थे, उनके चेहरे असुन्दर हो गये। देव से रहा नहीं गया। जिससे प्रभावित होते हैं, उससे बात करने की इच्छा होती है। वह देव सनत चक्रवर्ती से कहता है, 'मैं स्वर्ग से आया हूँ। आपके शरीर की सुन्दरता की चर्चा सौधर्म सभा में हो रही थी।' बस, नीबू की बूँद के पड़ते ही दूध में विकार, मान की बूँद पड़ते ही चित्त की विशुद्धि में विकार। सनत कुमार चक्रवर्ती के मन में मान की बूँद पड़ गई। चक्रेश कहता है, 'अभी आपने मेरे रूप को क्या देखा? जब मैं शृंगार से युक्त होऊँगा, राजसिंहासन पर विराजूँगा, तब आप मेरा रूप देखना।' माँ! इस चमड़ी को देखकर खुश मत हो जाना, शाश्वत् नहीं है। लक्ष्मीमती से पूछना, शृंगार करते समय दर्पण में मुनिराज का शरीर झलक गया तो कषाय भड़क गयी—'ये नंगा क्यों आ गया?' ओ हो! तुम को नंगा दिख रहा था। वीतरागी योगी के प्रति अशुभ भाव कर लिये। मुनिराज जंगल नहीं पहुँच पाये, उसके पहले उसकी सुंदरता जंगल में बदल गई। उसके शरीर में गलित कुष्ट हो गया।

भैया! साधुओं की जितनी बने, सेवा कर लेना, आराधना कर लेना, नहीं बने तो मध्यस्थ हो जाना। तुम्हारी क्रिया तुम जानो, मैं आपके बारे में अपने मुख से कुछ नहीं कहना चाहता। अपन को अनेक प्रकार के मुनिराज मिलते हैं। जानो, देखो, जाने दो। आपकी परिणति आप जानो, मैं वीतरागी मुद्रा मात्र को देखना पसन्द करता हूँ। आपकी चर्या मुझे समझ में नहीं आती है, सो मैं मध्यस्थ हो जाता हूँ। न आपकी प्रशंसा, न आपकी निन्दा। प्रशंसा करूँगा तो आपकी पुष्टि होगी और निन्दा करूँगा, सामान्य जीव की भी निन्दा करूँगा, तो नीचगोत्र का आस्रव होता है। फिर तो आप जिनमुद्रा में हो, तब तो मुझे मध्यस्थ स्थान ही पसन्द है। यही सीखना है। जो आपको शिक्षा दी, उसका ध्यान रखना। तुम्हारे नगर की सीमा में कोई भी धरती के देवता निर्ग्रन्थ तपोधन पधारें, तो सबसे पहले उनकी अगवानी करने पहुँच जाना।

जब तुम्हारे बेटे या बेटी की शादी होने आती है तो बारात की अगवानी करने पहुँच जाते हैं। रागियों की अगवानी तो अनन्त बार की है। इसका फल आपको मालूम है, प्रतिदिन नव कोटि जीवों की हिंसा होगी। ये तो वे वर हैं जो मुक्तिवधू को वरने जा रहे हैं। उनकी अगवानी करने जाना। अरहन्त की मुद्रा की अगवानी करना है। हमारे आगम में लिखा है कि तीन दिन देखना। जब समझ में आये कि आगम की सीमा से बाहर है, तब मध्यस्थ हो जाना, फिर भी उनके बारे में कुछ नहीं कहना। उनका जो होगा, वह जानें। मैं अपनी जिह्वा को खराब क्यों करूँ? मेरे पास इतना समय कहाँ है? मेरे आयु के निषेक इतने निकल चुके हैं, इतने कम हो गये हैं, मैं क्षण-क्षण में आयु को कम कर रहा हूँ। अब तो मेरे पास जितने निषेक हैं, उनको सुरक्षित करके चलना है। मुझे नहीं सुनना। तुम्हारी आस्था तुम्हारे साथ, तुम्हारा विश्वास तुम्हारे साथ। क्यों? क्योंकि मैंने समझ रखा है कि जितने अंश तक विशुद्धिस्थान है, उतने अंश तक ही मोक्षमार्ग है, शेष मोक्षमार्ग नहीं है। सनतकुमार चक्रवर्ती शृंगार करके सिंहासन पर पहुँच गये। देव पुनः पहुँचता है। देव ने जैसे ही सिंहासन पर देखा, चेहरा मुरझा गया।

चक्रवर्ती कहता है कि आप व्यायामशाला में जैसे प्रसन्नचित्त होकर निहार रहे थे, वैसे सिंहासन पर क्यों नहीं देख रहे हो? 'राजन्! क्षमा करना। यह नरदेह, ओस बिन्दु के समान, चपला की चपलता है। जैसे बिजली की चमक विलीन हो जाती है, ये नरदेह की सुन्दरता ऐसी ही है। हे चक्रेश! जैसे आप व्यायामशाला में दिख रहे थे, वैसे नहीं दिख रहे हो। एक ग्लास लबालब पानी का मँगाया और उसमें तृण डाल दिया और उसे छिटका दिया। राजन्! गलास भरा कि नहीं? 'हाँ, भरा है।' मैंने तृण डुबा कर बाहर छिटका है, बूँद बाहर है, इतना पानी कम हुआ कि नहीं? 'हाँ, पानी कम हुआ है।' आप पकड़ नहीं पाओ, यह विषय भिन्न है, पर पानी कम हुआ है। आप पकड़ पाओ या नहीं, प्रतिक्षण पर्याय नष्ट हो रही है, आयुकर्म विलीन हो रहा है, सुन्दरता भी विलीन हो रही है। यह अनित्य है, शाश्वत् नहीं है। देखते-ही-देखते सनत चक्रवर्ती विवेकज्ञान से भर गया।

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्॥ इष्टो.॥

यदि देह का उपकार करता हूँ, तो जीव का अपकार नियत है और यदि जीव का उपकार करता हूँ, तो देह का अपकार नियत है। ऐसा चिन्तन करके देव तो चला गया, सनत चक्रवर्ती दिगम्बर मुनि हो गये। कर्म की विडम्बना देखो। किसी के अशुभ चेहरे को देख करके चेहरा मत बिगाड़ना। उसका चेहरा तो कर्मों ने बिगाड़ा है, पर तुम्हारा चेहरा तुम्हारे भावकर्म बिगाड़ रहे हैं। उसका चेहरा पूर्व के कर्म से बिगड़ा है, पर तू तो वर्तमान में बुद्धिपूर्वक अपना चेहरा बिगाड़ रहा है। कोई गोरा हो या काला हो, लँगड़ा हो या लूला हो, बहरा हो या कुष्टी हो, पीव बह रही हो या सुगन्ध आ रही हो, लेकिन चेहरा मत बिगाड़ना। **धर्म के एक पक्ष को तो आप बहुत अच्छे से बोलते हो कि निर्दोष चर्या होनी चाहिये, साधु को शान्त होना चाहिये, लेकिन साधु के विचार-पक्ष पर भी ध्यान दीजिये। मात्र आचार पक्ष को सुन्दर देखोगे तो बगुले की सुन्दरता हो जायेगी। आपके पास दो पक्ष हैं। एक आचार पक्ष है, दूसरा विचार पक्ष**

है। आचार पक्ष में आप सोले का भोजन करते हो, भक्ष्य पदार्थ का सेवन करते हो, पूजन आदि करते हो, आहारदान देते हो, बारह व्रतों का आप पालन करते हो; लेकिन दूसरे को देखकर विचार खराब चल रहे हैं कि इसने मेरे सामने दुकान क्यों खोल ली? मैं यहाँ स्वाध्याय करता था, ये आ गये तो मेरी गद्दी छिन गई।

आज पता चल गया कि आपका विचारपक्ष क्या है। जब तक दो समान शक्तियाँ सामने न हों, तब तक पता नहीं चलता कि भोला है, कि गोला है अग्नि का? जब दो शक्तियाँ सामने आ जायें, तब मालूम चलता है कि कितनी वास्तविक साधना थी। आचारपक्ष यदि विचार की सिद्धिपूर्वक है, तो मोक्षमार्ग है। आचार पक्ष यदि विचार की शुद्धिपूर्वक नहीं है, तो मात्र संसार की पुष्टि करने वाला है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने चौरासी पाहुड दिये। कोई भी आचार्य कोई भी कथन करेंगे और तुम्हारे अन्दर वह कमजोरी होगी, तो आपको लगेगा कि मेरे ऊपर कटाक्ष कर दिया और जो कमजोरी तुम्हारे अन्दर नहीं है, तो कहोगे कि यह प्रवचन कर रहे थे। भैया! आजकल प्रवचन सँभलकर करना, पंचमकाल है ये। जब जीव के संक्लेश परिणाम होते हैं, कषाय भड़कती है, तो ऐसे दिन भी घर में आते हैं कि तीन-तीन दिन तक चूल्हे नहीं जलते यानि रोटी नहीं बनती। पति -पत्नी में झगड़ा हो गया, भैया! सच में यहाँ ऐसे सज्जन बैठे थे जिनके यहाँ सच में तीन दिन से चूल्हा नहीं जला था। अब तो क्या आपत्ति पण्डित जी के सर पर आ गई। कभी-कभी व्यक्ति अपनी अपने हाथ से धुलवाता है। वह व्यक्ति भरी सभा में खड़ा हो गया—'पण्डित जी! मेरे घर की कहने में आपको क्या मिल गया?' पूरी सभा में ताली बज गई। पण्डित जी कहते हैं, 'मुझे तो कुछ पता ही नहीं है। मैंने तो सहज ही कह दिया।' वो कहता है—'पण्डित जी! क्षमा माँगो।'

ये पंचमकाल है, आप कुछ भी प्रवचन करोगे, ये यही सोचेगा कि महाराज

ने मुझे देखकर ऐसा बोल दिया। तू गुस्सा में थाली फेंक देता है। अब कोई प्रवचन कर रहा है कि गुस्सा में व्यक्ति थाली फेंक देता है और उसी समय तू थाली फेंक कर आया हो, तो तू कहेगा कि पण्डित जी ने मेरी धुला दी है, जबकि उनने धुलाई नहीं है, वह तो सहज में प्रवचन कर रहे थे, तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है। ज्ञानियो! हर विषय को आप सामान्य में सुनिये और तत्त्व को समझिये और वास्तव में आपने ऐसा किया है तो अपने ऊपर ही समझ लो और स्वीकार कर लो। यदि आपको बुरा ही लग रहा है, तो बहुत अच्छी बात है।

किसी के कान में मैल जम जाये तो आप कुछ डाल देते हो। एक-दो ड्राप डाला, फैन हुआ और मैल ऊपर आ जाता है। जब एक ड्राप से आपके कान का मल निकल जाता है, तो भगवती माँ जिनवाणी का ड्राप तेरे हृदय में चला जाये, तो तेरे विकारों के सारे मल बाहर निकल जायें। तत्त्व इसीलिये तो कहा जाता है कि तेरी बुराइयाँ समाप्त हो जायें। चक्रवर्ती सनत कुमार ने दीक्षा ले ली। पर भैया! सबके दिन एकसे नहीं होते। कोई असाता का द्रव्य रखा होगा जिस कारण ऐसे महान् पुण्यात्मा जीव के गलित कुष्ट हो गया। जिस जीव की सुन्दरता की चर्चा देव करते हों, आज कोई देखने नहीं जा रहा है। धन्य हो उस योगी को। मल परीषह, रोग परीषह सब सहन कर रहे हैं। लोगों ने अपने शरीर की दुर्गन्ध को देखकर फाँसी लगा ली।

अपने शरीर की अवस्था को देखकर कभी खिन्न नहीं होना, यह भी ग्लानि परीषह है, यह भी तेरे लिये निर्विचिकित्सा अंग है। सारे लोग सुन्दर दिख रहे हैं, तुम नहीं दिख रहे हो, इसे भी सहन करो। ठीक है, मुनिदीक्षा ले ली, बुद्धि में कुछ भी चढ़ नहीं रहा है, संघ के साधु हँस रहे हैं। हाँ! यह सहन करना बहुत कठिन है। कोई बोले कि देखो, इनसे कुछ नहीं बनता, तब भी सहन करना। क्योंकि हम साधना के लिये आये हैं। ज्ञान तो क्षयोपशम के आधार पर है, परन्तु मोक्षमार्ग तो विशुद्धि के आधार पर है। व्रतों का पालन करना और पर के विचारों के वार सहन करना, एकसाथ दो कष्ट, तब भी उपशम भाव को नहीं छोड़ना,

यही तीव्र निर्जरा का कारण है। भैया! कोई कुछ भी कहे, फिर भी गुस्सा चेहरे पर आनी ही नहीं चाहिये।

आचार पक्ष को तो जोर दिया जा रहा है, आप लोग आचारपक्ष मात्र देखते हो। मेरे मित्र! विचारपक्ष पर भी तो ध्यान दो। तुम्हारी प्ररूपणा आगम के अनुकूल है कि प्रतिकूल? तुम्हारा सोच वात्सल्य धर्म से भरा है कि शून्य? आपका सोच एकीभूत है, समग्रभूत है, यह विचारपक्ष देखो। यदि विचारपक्ष कमजोर है, तो आचारपक्ष तुम्हें मोक्ष नहीं दिला पायेगा। **मूलाचार व श्रावकाचार आचार पक्ष है, समयसार विचारपक्ष है। मूलाचार व श्रावकाचार सिखायेगा कि तुम ऐसी साधना करो और समयसार सिखायेगा कि तुम ऐसे विचार रखो। चारित्र की उत्कर्षता पूजा का कारण है, वह लोकपूजा करायेगी। विचार की शुद्धता पूज्य बनायेगी और आचार व विचार दोनों की शुद्धि तुझे शिवालय भेजेगी।**

दो पक्ष हैं, दोनों पक्ष एकसाथ मिल जायें तो यह तेरी पूर्वभव की उत्कृष्ट तपस्या का फल है। आप लोग यहाँ बैठे हो, पूर्वभव के तपस्वी लोग हो, नहीं तो यहाँ आने का मन ही नहीं करता। जो सुन कर जाते हो, उसकी थोड़ी जुगाली अवश्य किया करो। विवेकशील होगे, आगम को पढ़े होगे। कुरू, जांगल, अनूप इन तीन क्षेत्र का वर्णन है आगम में। बारिस-बाहुल्य प्रदेश, बारिस-शून्य प्रदेश और मध्यम प्रदेश। ये हमारे आगम में, प्रायश्चित्त विधान में, तपस्या के विधान में और शरीर की स्वस्थता में तीनों प्रदेशों का वर्णन है। प्रायश्चित्त विधान में आचार्य को आगम आज्ञा देता है इन तीन प्रदेशों का निर्णय करके शिष्य को प्रायश्चित्त देना। जिस प्रदेश में उष्णता अधिक है, उस प्रदेश में तुम साधुओं को उपवास के प्रायश्चित्त नहीं देना। प्रायश्चित्त का अर्थ है चित्त की शुद्धि। साधु को जो अशुद्धि से संक्लेशता बढ़ रही थी, उस अशुद्धि से दूर कराने के लिये प्रायश्चित्त है, न कि उनकी संक्लेशता बढ़वा देना प्रायश्चित्त है।

चित्त की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त है। आपने उसको तंग कर दिया, बोले, 'दण्ड-बैठक लगाओ।' साधु है, साधु को साधु की दृष्टि में देखो। आप भी साधु

हो। परमेष्ठी के रूप में देखो। 'णमो लोए सव्व साहूणं' की दृष्टि में देखो। अविनय से निधत्ति व निकाचित कर्म का बन्ध होगा। आप भी अनादर करोगे तो आपको भी होगा। उसके परिणाम भी सम्भल जायें, उसकी श्रद्धा भी सुरक्षित रहे और चारित्र भी स्थिर रहे, ऐसा काम करो।

आचार्य महाराज बहुत कहते रहे, कि पद ले लो लेकिन जगत् के प्रपञ्चों को देख करके मैं मना करता रहा, परन्तु जब देखा कि कोई यहाँ-वहाँ के कामों में मस्त है, ये आचार्य का धर्म नहीं है, तब मैंने कहा कि अभी अपन को आचार्यों के ग्रन्थ पढ़ने को मिलते नहीं हैं, उसके बहाने आचार्यों के ग्रन्थ पढ़ने को मिलेंगे, रहस्य पता चलेगा। ये लोग जो कर रहे, वह सही है कि सही कुछ-और है? जब वे ग्रन्थ पढ़े, तो उनमें ऐसा कुछ भी नहीं लिखा। वहाँ तो मात्र यह लिख हुआ है कि अब तो साधना और बढ़ना चाहिये।

दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरियो मुणी झेओ॥द्र.सं.)

जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार, चारित्राचार इन पंचाचारों में पहले स्वयं लीन हो, फिर दूसरों को लीन कराये यानि जो अपने आप को और शिष्यों को जोड़ कर रखे, वे आचार्यपरमेष्ठी हैं। वे हमारे ध्यान के ध्येय बनें। बाकी जगत् के सामाजिक या राजनैतिक आदि प्रपञ्चों का कहीं उल्लेख ही नहीं है। यथार्थ ये है। इस यथार्थता को सुनते हुये अब कोई भड़क जाये कि मेरे ऊपर बोल रहे हैं, तो यह उसका पागलपन है। फिर तो तुम कोई आगम की पंक्ति (लाइन) को बोलोगे नहीं। आपके राग में मैं सम्यक् अर्थ करना नहीं छोड़ दूँगा। यदि मैं सम्यक् अर्थ नहीं कर रहा हूँ। तो अनिह्नवाचार का पालन नहीं होगा। आगम की बात को छिपाओगे तो विश्वास रखो, दर्शनमोहनीय कर्म का बन्ध भी होगा और ज्ञानावरणीय कर्म का भी बन्ध होगा, क्योंकि आपने आगम का अवर्णवाद कर दिया। साधकों से कहो कि आप ऐसी साधना करो जिससे तुम्हारा कण्ठ न सूखे और बाद में तड़पो न, हाय-हाय न करो, विशुद्धि रहे, आप जाओ चर्या

करो। आप मध्यभारत में पहुँचे, वहाँ की प्रकृति कैसी है साधना के लिये, प्रायश्चित्त के लिये, आयुर्वेद के लिये? तो उस प्रदेश में आप ऐसी साधना करो। हाँ! महाराष्ट्र में सांगली सोलापुर इस क्षेत्र में विहार करो तो वहाँ न गर्मी अधिक है न ठण्डी। साधना के लिये अच्छा स्थान है, समशीतोष्ण है। मध्यप्रदेश के अन्दर का जो हिस्सा है, इसमें साधुओं की साधना के अनुकूल और आचारपक्ष व विचारपक्ष दोनों की निर्मलता के लिये बहुत अच्छा स्थान है। जिसको दीक्षा का प्रथम समय निकालना हो, शिक्षा काल निकालना हो, वह मध्यप्रदेश के बुंदेलखण्ड में निकालना चाहिये, जिससे तुम्हें विद्वानों का संसर्ग होगा।

आचार्य विद्यासागर जी महाराज बुंदेलखण्ड में आये सो आये, क्यों? जिसकी दुकान जहाँ चले, वहीं तो रुक कर अपनी दुकान चलायेगा। जब आचार्य महाराज बुंदेलखण्ड पहुँचे, वहाँ एक बूढ़ी अम्मा कुये से पानी निकाल रही थी। रस्सी से, यन्त्र से नहीं। पानी निकाल करके, इतना गाड़ा छन्ना कि जिससे सूर्य की किरणें न फूट सकें, उससे पानी छान रही थी। दूसरी बाल्टी में विवेकपूर्वक बिलछानी करके कड़े की बाल्टी से नीचे भेज रही थी। बस, महाराज ने देख लिया कि जिस प्रदेश में इतनी करुणा है, वहीं संयम का पालन निर्दोष होगा। भैया! उस परम्परा को भूल मत जाना। ये हैण्डपम्प और जैटपम्प, दुनियाँ के पम्पों के चक्कर में कहीं शुद्ध कुये को भूल मत जाना। राजमार्ग कुआ ही है। थोड़ी मेहनत लगे तो लग जाने देना। कुये से पानी खींचोगे तो व्यर्थ का व्यायाम नहीं करना पड़ेगा। पेट भी स्वस्थ रहेगा और शरीर भी स्वस्थ रहेगा। इन माताओं ने आटा पीसना बन्द कर दिया, सो दुनियाँ की गोलियाँ खाना पड़ती हैं। घर का काम करते, शुद्ध भोजन करते, तो अभक्ष्य दवाइयाँ नहीं खाना पड़ती। दूसरे जीवों के कलेवर। जितनी अंग्रेजी दवाइयाँ खा रहे हैं, दूसरे के हाड़-पंजर पीस-पीस कर खा रहे हो और 'धम्मो दया विशुद्धो' बोल रहे हो। धन्य हो, बुरा भी नहीं लग रहा। मैं होता तो कहता कि छोड़ो सब।

सनत कुमार मुनिराज को गलित कुष्ट हो गया। जब फिर से स्वर्ग में चर्चा

होने लगी कि रोग परीषह को सहन करनेवाला कोई महान् योगी है तो सनत कुमार मुनिराज हैं, तब भी दूसरे को सहन नहीं हुआ, पुनः एक देव आ गया। उसने वैद्य का भेष बनाया। सुनो! कितने भी संकट आ जायें, तुम चेहरा मत बनाना, कि मेरे शरीर में दुःख है, पीड़ा है, कोई देखो। ज्ञानी! यह अरहन्त की मुद्रा है, इसको भिखारी का रूप मत दे देना।

माँगन मरण समान है, मत माँगो तुम भीख।
माँगन से मरना भला, यही सद्गुरु की सीख॥

दिगम्बर मुनि बनकर किसी से कुछ माँगना मत। माँगना ही था, तो छोड़कर क्यों आये? इसलिये बिल्कुल नहीं माँगने का। बस यही मार्ग श्रेष्ठ है। घर-घर में चौक पूरना और पड़गाहन करना, एक स्थान पर भण्डारा मत करवाना। दस-बारह साधु आये और एक स्थान पर लंगर लगा दो। यह व्यवस्था ठीक नहीं है। गलियों से जब साधु निकलते हैं ये वीरचर्या को जा रहे हैं। देवेन्द्रनगर में एक आदिवासी गौड़ महिला कहती है, 'अरे भैया! देखो तो ये युवा लड़का ऐसे चले जा रहे जैसे अपने घर में बालक घूमता है।' उसको नंगा नहीं दिखा, उसको बालकवत् दिखा। निर्विकार दशा है तो बालकवत् है। अमरावती में एक बालक कहता है कि 'आई! लउकर आ। जैनियों के भगवान् जा रहे हैं।' तब लगा कि लोगों की दिगम्बरत्व के प्रति भी श्रद्धा है।

भैया! उस देव ने वैद्य का भेष बनाया और जंगल में घूमने लगा—'कोई उपचार करा लो।' मुनिराज की सामायिक पूरी हुई, वे बोले, 'यहाँ मरीज कोई है ही नहीं। आप किसका उपचार करना चाह रहे हो?' वैद्य बोला, 'महाराज! आपको ही तो कुष्ठ है।' महाराज बोले 'हाँ, मैं रोगी अवश्य हूँ, लेकिन मेरे तीन रोग हैं, तू ठीक करेगा क्या? जन्म, जरा, मृत्यु।' वैद्य बोले, स्वामी! नमोऽस्तु। इनको तो आप ही ठीक कर पाओगे, मैं नहीं कर पाऊँगा। नमोस्तु, स्वामी! आपके इस रोग परीषह की चर्चा स्वर्ग में भी चल रही थी।' पुण्य-पाप बन्ध का कारण नहीं है। यहाँ पुण्य-पाप दोनों की प्रकर्षता थी। पुण्य की प्रकर्षता है चक्रवर्ती पद

और पाप की प्रकर्षता है गलित कुष्ठ। लेकिन संक्लेशता नहीं की, इसलिये बन्ध नहीं हुआ। समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं कि विशुद्धि-संक्लेशभाव ही पुण्य-पाप बन्ध के कारण है, पुण्य-पाप का उदय बन्ध का कारण नहीं है।

संक्लेशता से रहित चित्त ही महापुरुषों का उत्तम धन है। कितना ही धनपति हो, यदि मान है, संक्लेश है, तो कुछ नहीं है। गरीब भले ही हो, लेकिन शान्त है। मुझे तो वे ही साधु पसन्द हैं जो कम बोलें, शान्त रहें। मैं उनको भगवान् मानता हूँ। मितभाषी, मितभोजी, मितकषायी। संक्लेशता तो होनी ही नहीं चाहिये। यही साधु की पहचान है। 'प्रभवः मितभाषणं' प्रभावी पुरुष कम बोलते हैं। असंक्लेश रूपी महारत्न से जीव जन्म-मरण से रहित हो जाता है। आज संक्लेशता नहीं करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"महापुरुषों का लक्षण"

सम्पत्तौ विस्मिता नैव, विपत्तौ नैव दुःखिताः।
महतां लक्षणं ह्येतन्न तु द्रव्यसमागमः॥ 170॥

अन्वयार्थ-एतत् हि = यह ही, **महतां लक्षणं** = महान् पुरुषों का लक्षण है कि वे **सम्पत्तौ**= धनसम्पदा होने पर, **विस्मिता नैव** = कभी भी घमंड नहीं करते हैं, **विपत्तौ** = आपत्ति में संकट पड़ने पर **नैव दुःखिताः** = कभी दुःखित नहीं होते हैं **द्रव्य समागमः न तु** = केवल धन का लाभ महान् पुरुषों का लक्षण नहीं है

भावार्थ-सम्पत्ति में विस्मित व घमण्डी और विपत्ति में दुःखी नहीं होना, यही महान् पुरुषों का लक्षण है। केवल द्रव्य का समागम (धन की प्राप्ति) होना महान् पुरुषों का लक्षण नहीं है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में बन्ध और मोक्ष की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। जहाँ संक्लेशता है, वहाँ बन्धस्थान है। जहाँ संक्लेशता का अभाव है, वहाँ अबन्ध स्थान है। विशुद्धि मोक्ष का कारण है, संक्लेशता बन्ध का कारण है। न पदार्थ बाँध रहे हैं, न व्यक्ति बाँध रहे हैं। बन्ध करनेवाला कोई है तो आपके चित्त की संक्लेशता है। वह संक्लेशता पर के चित्त में उत्पन्न नहीं होती है, निज की संक्लेशता निज के ही चित्त में उत्पन्न होती है। एक संक्लेशता यह है कि संक्लेशता है, दूसरी संक्लेशता यूँ कर रहा

है कि इनके निमित्त से मेरे भाव खराब हो रहे हैं। यह महा संक्लेशता तू कर रहा है।

एक संक्लेशता यह है कि तेरे कलुषित परिणाम हो रहे हैं। दूसरी ओर यूँ कह रहा है कि इस व्यक्ति के कारण मेरे परिणाम क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं। अहो! तू जैनत्व से शून्य हो गया, परसमय में चला गया, स्वसमय से च्युत हो गया। मेरे परिणाम मेरे में हो रहे हैं, मेरे परिणामों का कर्त्ता पर कैसा? मैंने अपने परिणामों का कर्त्ता पर का कर डाला। तिर्यंच को देखकर भाव खराब हो गये। जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसकी सन्तान कहलाता है। बन्दर को देख करके मनुष्य के परिणाम खराब हो रहे हैं, तो बन्दर मेरे परिणामों का पिता कहलायेगा। यदि तू यह कह रहा है कि बन्दर को देखकर मेरे परिणाम बिगड़ रहे हैं, चित्त खराब हो रहा है, फिर तो तेरे चित्त का जनक बन्दर हो गया, तेरा चित्त बन्दर की सन्तान कहलायेगा। जबकि ऐसा होता नहीं है। स्थूल बुद्धि वाला जीव इस विषय के अन्दर प्रवेश नहीं कर पा रहा है और यूँ कह रहा है कि अमुख के कारण मेरा परिणाम खराब हो रहा है। यथार्थ में परिणाम परपुरुषकृत विकृत नहीं हुये, परिणाम परवस्तुकृत विकृत नहीं हुये। परिणामों को तू विपरीत करना चाह रहा था, इसलिये परिणाम विकृत हुये हैं। जिस दिन तू पूजा के बर्तन लेकरके मन्दिर की ओर जाता है, उस दिन रास्ते में कोई अशुभ करते दिख जाये, अशुभ बोलते दिख जाये, तब भी तू ध्यान नहीं देता, क्योंकि तुझे तो भगवान् की पूजा करने जाना है। इस समय वह तेरे परिणाम खराब क्यों नहीं कर पाता? टालना सीखो। बहुत अच्छी बात है, टालना सीखो। बहुत सारी बातों को यूँ कर दिया करो कि चलो, क्या करने का? टालना सीखो। पानी के अन्दर चक्रवात उठता है तो वह बहुत सारे कचरे को बाहर कर देता है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि तत्त्वज्ञानी जीव, उस चक्रवात की भाँति, अपने अन्दर आये किसी भी विषय को तुरन्त बाहर फेंक देता है।

मस्तिष्क को जितना स्वच्छ रखोगे, पवित्र रखोगे, विश्वास रखना, विचार उतने

पवित्र आयेंगे, आचार उतना पवित्र होगा। चित्त को शुद्ध रखने की आवश्यकता है। भवन को कितना साफ करके रखते हो? भोजन की थाली कितनी साफ रखते हो? जीवन में चित्त को कितना साफ रखना चाहिये? **कपड़े का मल मैंने साबुन लगा कर निकाल डाला, मकान का मल हटा दिया झाड़ू लगा कर, बर्तन का मल पाउडर लगा कर हटा दिया, पर अपने चित्त का मल क्यों नहीं हटा पाया जिनवाणी लगाकर? चित्त के मल को पृथक् करने का एकमात्र उपाय जिनवाणी है।** जीवन में अशुभ हो भी जाये, यदि आपके मुख से किसी को गाली निकल गई, वह तो निकल गई, अब तू यूँ सोच रहा है कि मैंने गाली क्यों दी? संक्लेशता-ही-संक्लेशता। जो आपके अशुभ बोलने की पर्याय निकल गई है, अपने परिणाम और निकाल दो। अब तो प्रायश्चित्त लेकर ही शुद्धि हो सकती है, इस बात को बार-बार घुमाने से शुद्धि होनेवाली नहीं है।

यदि आपके मुख से किसी सज्जन के लिये गाली निकल गई, तो आपके लिये तो आगम यही कह रहा कि निर्ग्रन्थ योगी के चरणों में निन्दा, गर्हा, आलोचना कर लो, प्रत्याख्यान कर दो कि आज से मैं गाली नहीं दूँगा। यदि आप ये लेकर बैठ गये कि मैंने गाली दे दी, मैंने गाली दे दी। तेरे परिणाम त्रैकालिक अशुद्ध चल रहे हैं, संक्लेश भाव चल रहा है। उपाय एक ही है कि जो अशुभ हो गया है, उस पर ध्यान मत दो। लोग तत्त्व को समझ नहीं पा रहे हैं। यदि महापापी अंजन चोर जैसा व्यसनी जीव निरन्जन हो सकता है, तो तू भगवान् क्यों नहीं बन सकता है? यदि वह साधु भी बन गया और वह यही सोचता है कि हाय! मैंने सप्त व्यसन का सेवन किया, हाय! मैंने सप्त व्यसन का सेवन किया, तब लगता है कि जिनवाणी की गहराइयों से लोग कितनी दूर हैं। मैंने पापों का सेवन किया, इस चिन्तन के समय जीव का ध्यान क्या चल रहा है? प्रमेय क्या बन रहा है? जो पाप कर चुका है, उन पापों का ही चिन्तन कर रहा है तो संक्लेशता ही बढ़ा रहा है। आपने दृष्ट, श्रुत, अनुभूत ही का चिंतन किया। पश्चात्ताप उतना

ही करना कि बस, पश्चात्ताप करके, प्रायश्चित्त लेकर समाप्त कर देना।

माँ! साग बनाते समय आप उसके ऊपर के व्यर्थ छिलके को हटा देते हो। जब हटाते हो, तब देखते भी हो। बिना देखे हटाओगे तो अँगुली भी हट जायेगी। जिसे हटा चुके होते हो, फिर तो उठाकर किनारे कचड़े में डाल देते हो। यदि ये विषय समझ में आ गया, तो जीवन के भव-भव के पाप धुल जायेंगे। ऐसे ही जीवन में जो पाप हो गये, उनको एक क्षण को निहार लेना कि मैंने ऐसे पाप किये। आलोचना कर लेना और आलोचना करके शीघ्र ही कचड़ेदानी में फेंक देना, फिर मत देखना। फिर मात्र देखना कि अब सार बचा है, मैं विशुद्ध हो गया हूँ। अब तू शुद्ध हो गया है, उस पर दृष्टिपात करो, उसे ध्येय बनाओ, तो कल्याण होगा। अपनी पाप पर्याय को देखते रोते रहोगे तब भी संक्लेशता ही होगी। स्वयं के पाप पर्याय को देखने से संक्लेशता बढ़ती है तो पर की पाप पर्याय को देखनेवाले के असंक्लेशता कैसे हो सकती है? अंजन चोर निरन्जन हो गया, परन्तु कहनेवाले आज तक अंजन चोर ही कह रहे हैं। तुझे चोर दिख रहा है, जबकि वह अरहन्त फल को प्राप्त होकर अशरीरी सिद्ध हो गये हैं। वे तो अपने परम पारिणामिक भाव में लवलीन हैं और आपको अंजन चोर झलक रहा है।

हे जीव! जिस जीव से पाप हुआ, वह जीव तो प्रायश्चित्त लेकर अपनी साधना में लीन हो गया, आप उसकी पापपर्याय को देखकरके पाप का ही बन्ध करोगे। भैया! गूढ़ रहस्य समझो। यदि ऐसा कहोगे तो पाँच तीर्थंकरों को छोड़ करके बाकी को तो मोक्ष हो ही नहीं सकता था। क्यों? सभी ने सन्तान को जन्म दिया, सभी ने राज्य किये हैं। 'राज समाज महाअघ-कारण, बैर बढ़ाबन हारा।' तीर्थंकर होने के नाते पाप के साथ मित्रता नहीं हो जाती है। नहीं-तो कहो, कि तीर्थंकर का पाप अलग होगा, तुम्हारा पाप अलग होगा। तीर्थंकर की आत्मा भी जब राज्य-अवस्था में राज्यसंचालन करती है, तब जैसा राजा को आस्रव होता है, वैसा उनको भी होता है। मात्र छूट इस बात की कि क्षायिक सम्यक्त्व बैठा हुआ है तो इस कारण

मिथ्यात्वजन्य आस्रव नहीं होगा, लेकिन अविरति, प्रमाद, कषाय, योग जन्य आस्रव तो तीर्थंकर बननेवाली आत्मा को भी होता है। करणानुयोग में किसी की लाग-लपेटी नहीं चलती है, कि तीर्थंकर भगवान् को छूट मिल गई हो। छूट मिल जाती तो आदिनाथ स्वामी को छः महीने क्यों भोगना पड़ा?

जो जैसा कर्म करता है, उसको वैसा फल भोगना ही पड़ेगा। निर्ग्रन्थ मुनियों पर भी उपसर्ग आये हैं। सनत कुमार मुनिराज को भी कर्मों ने कहाँ छोड़ा? गलित कुष्ठ हो गया। चाहे योगी हो, चाहे भोगी हो, कर्मसिद्धान्त कहता है कि जो बन्ध किया है, उसका फल तो भोगना पड़ेगा। पुण्य की सत्ता में आप कुछ भी कर डालो, कर्म के दो ही काम हैं, या तो विपाक को भोगो या तपस्या करके निर्जीर्ण करो। उदीरणा करो। यदि निधत्ति व निकाचित बन्ध हो गये हैं, तो फिर आपको सोचना ही पड़ेगा।

माँ! थोड़ी-सी आँच अधिक हो जाय तो भोजन में विपर्यास हो जाता है। जिस भोजन को जितना तापमान चाहिये था, उससे अधिक हो जाय, तो भोजन में विकार आ जाता है। ऐसे ही हे ज्ञानियो! जिस संयम के साथ जो कषाय चल रही थी, उस कषाय में किञ्चित् भी वृद्धि हो गई, तो आपके संयम की साधना में विकार आ जायेगा। महाव्रतों का पालन संज्वलन की अग्नि में ही होता है। छटवाँ-सातवाँ गुणस्थान संज्वलन की तीव्रता-मन्दता में चल रहा है। कहीं संज्वलन की तीव्रता, तीव्रता में बदल गई तो कषाय बदल जायेगी और जीव नीचे के गुणस्थान में चला जायेगा। यहाँ फिर भेष नहीं देखा जायेगा, सुन्दर शरीर भी नहीं देखा जायेगा।

मोक्षमार्ग सुन्दर शरीर का नहीं है, मोक्षमार्ग सुन्दर परिणामों का है। मोक्षमार्ग विशिष्ट पुण्य से युक्त का नहीं है, मोक्षमार्ग तो विशिष्ट परिणामों से है। इस भ्रम में मत पड़े रहना कि आप उत्तम कुल के बेटा हो सो तुम मोक्षमार्गी हो। चाण्डाल पुत्र भी देवों से पूज्य हो जाता है, राजकुमार भी सरोवर में डूबकर मर जाता है। चाण्डाल पुत्र भी धर्म के कारण देवों से पूज्य हो गया और राजकुमार भी मेढ़े की हिंसा के कारण डूब कर मर गया, दुर्गति को प्राप्त हो गया। जो

क्रियाभूत पक्ष है, उसके लिये सामाजिक प्रतिबन्ध हो सकता है, पर श्रद्धा के पक्ष में किसका प्रतिबन्ध?

मैं चन्द्रप्रभ स्वामी की वन्दना करना चाहता हूँ। जिनालय में चन्द्रप्रभ स्वामी विराजमान हैं और ज्ञानी कह रहा है कि महाराज! हमारे मन्दिर का नियम है कि सात बजे के बाद अब मन्दिर खुलेगा नहीं। ठीक है, भाई! द्वार पर ताला डालकर तू भगवान् की प्रतिमा को आँखों से तो नहीं देखने देगा, पर मेरे ध्यान में आये चन्द्रप्रभु को तू क्या भगा पायेगा? प्रतिमा के भगवान् को तू नहीं छूने देगा, प्रतिमा के भगवान् के सामने खड़े नहीं होने देगा, लेकिन जो आस्था का भगवान् मेरे भीतर विराजता है, उसमें तेरा कोई ताला काम में नहीं आता है। इसलिये ध्यान रखना, यदि मन्दिर का नियम है और आप लेट हो गये, आप सोचो कि ताला पड़ गया है, अब मैं क्यों आऊँ? नहीं, मित्रो! तुम मन्दिर चले जाना, मन्दिर के द्वार पर ताला पड़ा है, भगवान् के ऊपर ताला नहीं पड़ा है। तुझे प्रतिमा नहीं दिखेगी, मैं मानता हूँ, क्योंकि ताला पड़ा है, पर मेरे मित्र! यह तो बताओ, आपको नहीं दिख रहा, क्योंकि तुम चक्षु वाले हो, तुम्हारे पास इन्द्रियज्ञान है, व्यवधान हो सकता है, लेकिन आप प्रमाद से रहित हो करके जिनालय की देहरी तक आये हो, यह सीमन्धर स्वामी के ज्ञान में झलक रहा है कि नहीं? भगवान् के ज्ञान में अन्धापन नहीं है। अन्धापन अपने ज्ञान में हो सकता है। उनको मालूम है कि जीव आया है और कर्म को मालूम है कि तू मन्दिर आया है, तो निर्जरा नियम से होगी।

"दृष्टं जिनेन्द्र भवनं भवतापहारि"

यदि आपको मन्दिर का द्वार बन्द मिल जाये, तब भी मन्दिर अवश्य आना। यदि जिनेन्द्र का भवन भी देख लिया, तो भव-भव के ताप दूर कर देता है। इसलिये मन्दिर के दर्शन कर जाना। नव देवता में एक देवता है। वे जीव पुण्यात्मा होते हैं जिनके भवन की छतों से अरहन्त के मन्दिर का शिखर दिखाई देता हो यदि मन्दिर आने की सामर्थ्य तुम्हारी नष्ट हो रही हो, अस्वस्थ होने के कारण

नहीं पहुँच पा रहे हो, तो अपने भवन पर खड़े होकरके मन्दिर के शिखर की वन्दना करना, क्योंकि शिखर के नीचे तीनलोक के नाथ विराजमान हैं, लेकिन मन्दिर मत छोड़ना। जब भरत चक्रवर्ती सूर्यविमान में विराजमान अरहन्त बिम्बों की वन्दना कर लेता है और कुन्दकुन्द आचार्य महाराज भरतक्षेत्र में बैठ करके सीमन्धर स्वामी की वन्दना कर सकते हैं, तो हम भी आँख बन्द करके ब्रह्माण्ड में जितने तीर्थंकर भगवन्त हैं, उन सबकी वन्दना कर सकते हैं। प्रतिदिन तीन-कम-नव कोटि मुनियों की वन्दना किया करो। प्रतिदिन आँख खोलने के पहले धरती के देवता निर्ग्रन्थ तपोधनों की वन्दना कर लेना। मित्रो! बन्ध के नाश की विधि निर्ग्रन्थों के पास है। जो बन्ध का नाश कर चुके हैं, वे भावमोक्ष अरहन्त और सिद्ध हैं। आपके पास निर्जरास्थान बहुत हैं। जितने बन्धस्थान हैं, उतने ही निर्जरास्थान हैं। (लब्धिसार, क्षपणासार)। अमेरिका में क्या हो रहा है, चीन व रूस में क्या हो रहा है, भारत में किसके घर में क्या नाटक हो रहे हैं, ये विषय, भोग, बन्ध की कथायें दुनियाँ को पता है। विश्वास रखो, ये बाहर के प्रवचन करते मुझसे भी बनते हैं। उससे आपको लाभ नहीं है। वे प्रवचन ही नहीं हैं, भाषण हैं। आपको मैं चुटकुले सुनाऊँ तो कोई लाभ नहीं है। तुम हँसोगे, सो हास्य कषाय है। उससे चारित्रमोहनीय का बन्ध होगा। मुझे अपनी स्वयं की भी रक्षा करना है और आप सबकी भी रक्षा करना है। क्यों? क्योंकि अन्य क्षेत्र में हँसी-मजाक करो तो यहाँ आकर पाप छूट जायेंगे और जिनवाणी को विराजमान करके हँसी-मजाक में लीन हो गये, यहीं किसी से अशुभ बोलने लग गये, तो उस बन्ध से छूटने कहाँ जाओगे? बोलने लग गये तो उस बन्ध से छूटने कहाँ जाओगे?

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं, पुण्यक्षेत्र विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं, बज्रलेपो भविष्यति॥

ज्ञानियो! अन्य क्षेत्र में किये गये पाप के बन्ध को तुम पुण्यक्षेत्र में धो सकते हो। पुण्यक्षेत्र में ही यदि तुमने पाप कर लिया, तो धोने कहाँ जाओगे? इसलिये

ध्यान से सुनो, **हँसने के बाद भी थकान आती है, रोने के बाद भी थकान आती है, गुस्सा के बाद भी थकान आती है, शोक के बाद भी थकान आती है, परन्तु चित्त को शान्त रखने में कभी थकान नहीं आती है। चित्त को आह्लादित रखने पर कभी थकान नहीं आती है। जिसमें स्वयं थकान महसूस हो, वह धर्म कैसा? जहाँ थकान उतर जाये, उसी का नाम धर्म है।** थकने नहीं आये हो, विश्राम करके विशुद्ध होने आये हो। यह 'धवला' जी की भाषा है। जीव कोई निर्जरा का कार्य करता है, मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व की ओर जाता है अथवा कोई श्रेणी का आरोहण करता है, तो जीव पहले पुरुषार्थ करके विशुद्ध होता है, विशुद्ध होकरके विश्राम लेता है, थोड़ा विश्राम लेकर फिर आगे का काम करता है। बस, अब तुम ध्यान रखना, प्रवचनसभा को विश्रामसभा, विशुद्धि का स्थान बनाना। अन्य जगह तो हा हा हू हू करके थक चुके थे, यहाँ आकर थोड़ा विश्राम मिले। एक सहज बात है कि विहार करते-करते, दौड़ते-दौड़ते कोई व्यक्ति आ रहा हो और आप कहना कि यह बताओ, तो वह कहेगा भैया! तनक रुक जाओ, हम साँस तो ले लें। रहस्य पकड़ो। विश्राम तो लेने दो, साँस तो लेने दो। यानि श्वासों की तीव्रता में तत्त्व का निर्णय नहीं होता। जब श्वासें मध्यम स्थान में चलती हैं, तब तत्त्व का निर्णय होता है। विमान न नीचे चलता है, न अत्यन्त ऊपर जाता है। विमान निश्चित मार्ग में चलता है, मध्य स्थान में चलता है।

कषाय के मन्द काल में आयुबन्ध नहीं होता, कषाय के तीव्र उदय में आयु बन्ध नहीं होता, कषाय के मध्यम अंशों में आयुबन्ध होता है। जिनागम के गूढ़ रहस्य हैं। संक्लेशता की तीव्रता में बन्ध नहीं होगा, संक्लेशता के मध्यम अंश में बंध होगा और विशुद्धि के भी मध्यम अंश में होगा। ऐसे ही जब श्वास की तीव्रता होगी, तो या तो भयभीत है या कषाय से युक्त पुरुष है, कोई अनर्थ करके आया है इसलिये उसकी श्वासें बढ़ गई हैं। जब तुम्हारे मन में कोई विकार नहीं होते, तब गर्म श्वासें नहीं निकलती, लम्बी श्वासें नहीं

निकलती। जैसे ही जीव के कामादि विकारों का वेग बढ़ता है, शरीर से धातु-क्षरण का काल आता है, उस जीव की श्वासें तीव्र हो जाती हैं। उस तीव्रता में विवेक नहीं होता, मात्र आवेग होता है। वे ही श्वासें जब ठण्डी हो जाती हैं तो पश्चात्ताप प्रारम्भ हो जाता है, हाय! क्या कर लिया? एक माह के भोजन की साधना में एक तोला धातु बनती है। तूने एक क्षण में उसको नष्ट कर दिया। ढेर सारे दूध में जरा-सा मक्खन और मक्खन में जरा-सा घी निकला और घी निकाल करके नाली में फेंक दिया। उस अभागे ने जो किया है, ऐसे ही निज शरीर की शक्ति को बाहर फेंकना उस अभागे के समान है।

ज्ञानियो! भारत की भूमि पर जितने भावलिंगी वीतरागी तपोधन हैं, उन सबको नमोऽस्तु कर लो। अब चिन्तन करो। **नदी के बगल से निकलो तो वहाँ की वायु शीतल होती है और ईंट के भट्टे के बगल से निकलो तो थपेड़े लगते हैं। गर्म वायु शरीर को झुलसा देती है। ऐसे ही जब जीव योग की धारा में उपयोग को ले जा जाये, तब उसके मुख से जो भाषा निकलती है, वह स्तम्भित करनेवाली होती है, शीतलता देती है। और विकारों से युक्त हो करके जब काषायिक भाव से भाषा निकलती है, वह उद्वेलित कर देती है।** जब प्रवचन को जाओ तो किसी की बातें नहीं सुनना। आहार को जाओ, कोई कहे कि मुझे आपसे दो मिनिट बात करना है, तो कहना भाई! मैं थोड़ी देर बाद बात करूँगा। क्यों? मैं इस देह में भोजन रखने जा रहा हूँ, उस भोजन से मैं चौबीस घण्टे काम लेनेवाला हूँ।

मैंने कोई गाड़ी नहीं चलाई। साइकिल तक नहीं चलाई। अब प्रश्न करो, क्यों नहीं चलाई? उसका कारण है। मैंने आठ-नौ वर्ष की उम्र में एक शास्त्र पढ़ लिया था। उस शास्त्र में लिखा था कि जिसकी आँखें फूटी हों, हाथ टूटे हों, अंग-भंग हो, हीन अंग हो, ऐसा व्यक्ति जैनेश्वरी दीक्षा नहीं ले सकता है। जैसे ही मैंने शास्त्र पढ़ा, क्योंकि मेरे भीतर तो निर्णय था कि मुझे मुनिराज बनना है, इसलिये मैंने साइकिल को पकड़ा ही नहीं। कहीं गिर गया, हाथ टूट गया, तो

मुनिराज कैसे बन पाऊँगा? मुझे तो मुनि बनना है। अपने जीवन का एक ही सपना था कि मुझे मुनि बनना है। मुनि बन कर कोई सपना नहीं है।

कल एक युवा बोल रहे थे—महाराज! बाजार में आपकी शिकायत हो रही थी। मैंने कहा, बताओ, मैं सुधार करूँगा। क्या आप 'आत्मा' कहते रहते हो। न कोई प्रतियोगिता कराते हैं, न भजनसंध्या कराते हैं। चुटकुले, कविता कुछ तो करा दिया करो। मैंने कहा, ज्ञानी! सत्य बताऊँ? बात ऐसी है कि करते-कराते पंचमकाल में आ गये और जब तक करने की दृष्टि रहेगी तब तक कर्म छूटनेवाले नहीं हैं। विश्व की सबसे बड़ी साधना अकर्तृत्व भाव है। अपन को वह संस्कार डालना है कि अकर्तृत्व भाव बन जाये, आत्मा कृत्य-कृत्य बन जाये। निर्ग्रन्थ बनने का उद्देश्य अरहन्त मात्र बनना है। जो अरहन्त बनेगा, वह नियम से सिद्ध बनेगा। तुम्हें शिकायत करना है सो करते रहना, लेकिन बात ऐसी है कि हर व्यक्ति स्वार्थी है, फिर मैं तो परमस्वार्थी हूँ। स्वार्थी होना चाहिये। स्व + अर्थी, यह भी एक आनन्द है। इस आनन्द को भी लूटो। इस आनन्द में लीन हो गये तो विश्वास रखना, इस आनन्द का फल परमानन्द होगा।

फिर एक ज्ञानी कहता है—महाराज! ऐसी पहले सुनी होती तो कपड़े ही उतर जाते। हे ज्ञानी! ऐसा क्यों सोचता है? पहले सुन लेता तो अकेले कल्याण करता, अब और-भी साथ हो जायेंगे। नेमिनाथ के साथ राजुल भी चली गई थी।

ज्ञानियो! संक्लेशता की हानि चाहिये, विशुद्ध परिणाम चाहिये, तो योग को सँभाल लो, उपयोग को उपयोग में लगा दो। मन, वचन, काय को तो संग्रहीत कर दो और जो तेरा ज्ञान-दर्शन है, उसको ज्ञानदर्शन में ही लगा दो। यदि इतना काम हो गया, तो विश्व की कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो उस जीव को संसार में रोक कर रख सके। उसको नियम से सिद्धालय जाना ही है। इस क्षेत्र में आते ही आप अनुभव करते हैं कि मैं भिन्न क्षेत्र में आ गया हूँ, कुछ भिन्न सुन रहा हूँ। कुछ ऐसे भी युवा आते हैं जो ये कहते हैं कि ज्यादा समझ में अवश्य नहीं आता है, पर शान्ति मिलती है। ज्ञानी! यही तो रहस्य है। जब शान्ति मिलना

प्रारम्भ हो जायेगी, तब समझना बन्द हो जायेगा। जब तक समझना चल रहा है, तब तक शान्ति नहीं है। समझने में परिचय होता है, शान्ति में अनुभूति होती है। जब तक तू रोटी को देखता है, तब तक रोटी का ज्ञान होता है। जब स्वाद लेता है, तब रोटी तेरे आँखों के सामने नहीं होती है, कण्ठ के अन्दर होती है। ऐसे ही आत्मा जब ज्ञान में होता है, तब आनन्द नहीं होता है और जब आनन्द में होता है, तब विकल्पभूत ज्ञान नहीं होता है, उपयोग को उपयोग में लीन किये होता है, इसी का नाम निर्विकल्प ध्यान है।

मित्र! जिस विषय का बोध हो चुका है, उसे उद्घाटित करना प्रारम्भ कर देना, क्योंकि हर व्यक्ति को हर विद्या उद्घाटित नहीं होती है। यदि अपनी पर्याय चली गई, तो तेरे साथ विद्या का चिन्तन चला जायेगा। जब तुम्हारा क्षयोपशम काम कर रहा है, तब उस काम को कर ही लेना चाहिये। कुन्दकुन्द स्वामी चौरासी पाहुड़ न लिखते, तो आज हम मुस्कराकर नहीं कह पाते कि विश्व का अध्यात्म का शिरोमणि ग्रन्थ है उसका नाम 'समयसार' है। सिद्धान्त का शिरोमणि ग्रन्थ 'षट्खण्डागम' है और न्याय का शिरोमणि ग्रन्थ 'अष्ट सहस्त्री' है। जीवन में कभी विकल्प नहीं करना।

आचार्य उमास्वामी के पहले प्राकृत लिखने की परम्परा थी। जैसे ही उमास्वामी आचार्य ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' लिखा, तो बड़े लोगों ने विरोध करना शुरू कर दिया कि तुमने परम्परा से हट कर काम किया। नया काम अच्छा होगा तो उसका विरोध नियम से आयेगा। जब वही अच्छा लगने लगेगा, तो विरोध ठण्डा हो जायेगा। जब हमारे देश में विभिन्न दर्शनों के ग्रन्थ छपने लगे, तब जैनियों में लेखन ही चलता था। मथुरा के इतिहास में जाकर देखना। जब भारत में यहाँ के विद्वानों ने ग्रन्थ छपवाने का विरोध किया, तो हमारा सबसे पहला ग्रन्थ पाकिस्तान में लाहौर से प्रिन्ट हुआ। फिर प्रकाशन मथुरा से प्रारम्भ हुआ। जैनसंघ संस्था में 'जयधवल' का प्रकाशन हुआ। जब-जब नया काम प्रारम्भ होता है, यद्यपि नया कुछ भी होता नहीं है।

मध्यप्रदेश पाठ्यपुस्तक में हिन्दी में एक बहू लक्ष्मी पाठ आता था। हे भगवान्! सबके घर में बहू लक्ष्मी हो। एक परिवार में नौ सदस्य थे। माता-पिता और सात बेटे। ये सातों मजदूरी करने जायें। मजदूरी करके चने लेकर आयें और नौ चूल्हे रखे थे, सभी अपने-अपने चूल्हे में सेंक लें और खाकर सो जायें। प्रतिदिन का यही काम था। पुण्य के नियोग से ज्येष्ठ पुत्र की शादी हो गई। शादी तो हो गई, पर बहू की विदाई को न जायें, सोचें कि इस घर में इसको कहाँ रखूँ? जब अधिक दिन हो जायें तो समाज और पड़ौस भी घर को सुधार देती है। जब समाज का टोका लगता कि तुम्हारे बेटे की शादी हुई है, बहू मायके में बैठी है, उसको बुलाओ। बार-बार सुनते-सुनते उसको लगा कि बुला लेना चाहिये, उसको पड़ौस के घर में रुकवा देंगे, क्योंकि मेरे घर में तो चूल्हा और राख के अलावा कुछ है ही नहीं। चने लेकर आते थे तो जो बच जाते थे वे मटकों में रख देते थे। जब बहू आ गई, पड़ौस के घर में रोक दिया। यह तो सहज है माताओं की महिमा, दो मातायें बैठी और यहाँ-वहाँ की न कहें, मौन ले लें, यह तो विश्व का चमत्कार हो जायेगा। अब उस बहू से एक माँ बोल ही गई 'बहू! यह तेरा घर नहीं है।' तो.... ? 'चल मेरी छत पर, मैं तेरा घर दिखाती हूँ। ये जो राख के ढेर लगे हैं, वही तेरा घर है।' उसको चैन नहीं पड़ा। उसने सोचा कि ऐसे पर घर में कब तक रहूँगी? उसने कहा 'माँ! तेरे पैर पड़ूँ। तू मुझे उस घर तक छोड़ दे।' तू वहाँ क्या करेगी? वहाँ राख के ढेर लगे हुये हैं? 'कुछ नहीं, आप तो मुझे वहीं छोड़ दो।'

सत्य है कि पर के घर के मिष्ठान भी फीके होते हैं, निज के घर का शुद्ध पानी भी मीठा होता है। इसलिये अधिक समय तक पर घर में नहीं रहना। बहिन के घर में कभी रहना नहीं, और ससुराल में रहने मत जाना तथा बेटी के घर में स्वप्न में भी रहने मत जाना। अनादर सहन करना हो तो ससुराल में जाकर रहने लगना। एक दो दिन ही स्वागत होता है, बाद में जो होता है वही होता है। कहीं भोजन करने जाओ और कोई कहे 'चावल लाओ',

तो धीरे-से हाथ धोकर भाग आना क्योंकि चावल की बात हो रही है यानि सब खत्म हो गया है। अंत में चावल आते हैं। जब चावल दिखने लग जाये, तब समझ लो कि अब समय हो गया। बालों की कालिमा जब चावल जैसी सफेदी में बदल जाये, समझ लो, तैयारी कर लो जाने की।

बहू जैसे ही अपने घर में पहुँची, उसने देखा 'अरे भगवान्! ये क्या?' वे नौ सदस्य काम करने गये थे। वह मटके के चनों को पड़ौस से पीस कर लाई। घर की पूरी सफाई कर दी और पत्थर उठा कर आठ चूल्हों को फोड़कर फेंक दिया। उसकी कितनी बड़ी ताकत होगी, घर में पैर रखते ही उसने आठ चूल्हे फोड़ दिये। नियोग ऐसा बना कि उसके पति का चूल्हा बचा रहा। अब तो और आनन्द की बात थी। बेसन से उसने कढ़ी बना दी, रोटियाँ बना दी, अच्छा स्वादिष्ट भोजन बनाया। उन अभागों ने कभी चखा ही नहीं था, कि कैसी होती है रसोई। घर में प्रवेश किया, घर तो साफ दिखा, तो थोड़ी चेहरे पर खुशी आयी। जैसे ही भूख लगी, सो चूल्हे देखे। चूल्हे फूटे देखे, सो चिल्लाना शुरू हुआ कि एक चूल्हे पर घण्टों-घण्टों काम बनेगा। क्यों? देवरों ने कहा कि अपने पति का चूल्हा छोड़ दिया, अपन तो रह ही नहीं पायेंगे। पर धन्य हो बहू के लिये। अच्छा करने जाओगे तो पहले सुनना पड़ेगा। सुनानेवाले चिल्लायें, लेकिन सुननेवाले को शान्त रहना चाहिये, तभी काम बनेगा। सुनाओ-सुनाओ और सुनाओ, सब गर्मी निकल जाये, सो वह अपने आप ठण्डा हो जायेगा। सामने पानी रख हुआ था। उस जीव ने हाथ धोकर ससुर जी से कहा 'पिताजी! हाथ-मुख धो लो। रसोईघर में भोजन तैयार है। हम आपकी चूल्हे की व्यवस्था फिर से कर देंगे। लेकिन आप पहले भोजन को पधारो।'

जो शक्ति मिठाइयों में नहीं होती है, जो शक्ति पकवान में नहीं होती है, वह शक्ति मधुर वाणी में होता है। वाणी का माधुर्य कालिया नाग को भी नचाने लगता है, ज्ञानी! मीठा बोल और अपना काम बना। जगत् में जो ताकत वाणी में है, वह किसी में नहीं है। यह वाणी की ताकत है कि

महावीर स्वामी को निर्वाण हुये ढाई हजार वर्ष निकल गये, लेकिन तब भी यहाँ लोग उनकी जय बोलने वाले बैठे हैं। यह किसकी ताकत थी? क्या महावीर के साथ और लोग नहीं हुये थे? हम लोग और-किसी की जय नहीं बोलते, लेकिन महावीर की जय बोल रहे, क्यों? क्योंकि वाणी की ताकत है। उनकी वाणी में जिनवाणी खिरी थी, सो आज भी जयवन्त हैं महावीर भगवान्। जिनकी वाणी में जिनवाणी है, सदियाँ उनकी जय बोलती हैं। जिनकी वाणी में जिनवाणी नहीं है, उनका लोग नाम लेना पसन्द नहीं करते।

बहू ने दोनों हाथ जोड़कर सभी परमेसुरों को शान्ति से बिठाया। सभी एक दूसरे का चेहरा देख रहे थे। बर्तन तो थे ही नहीं, जैसे-तैसे पत्तल वगैरह में भोजन परोसा। भोजन से अच्छी सुगन्ध आ रही थी। जिसने जीवन में पहली बार रोटी-कढ़ी आदि खाई हो, वे तो अँगुलियाँ चाट रहे थे बेचारे। यह सत्य है कि **अँगुलियाँ चाटना कुलक्षण है। जो भोजन में चप-चप की आवाज करे, पूरा मुख फाड़-फाड़ कर खाये, वो भिखमंगा है। भोजन करना भी एक विद्या है, पेट भरना तो दुनियाँ जानती है। भोजन करना और भोजन कराना एक विज्ञान है।** दाता के सात गुणों में एक विज्ञान नाम का गुण भी है।

जैसे ही सबने भोजन कर लिया, अब तो सबके सब कह रहे थे 'अपने घर में तो बहू लक्ष्मी आ गई।' कोई यदि गुस्सा करे तो पहले अच्छे से पेट भरवाना कि पहले तू भोजन-पानी कर ले, फिर आराम से बात करता हूँ। कुछ लोगों के पेट भरवाना पड़ते हैं, कुछ लोगों की पेटियाँ भरवानी पड़ती हैं। जो-जो करवाना चाहें, सब करवा लो। नीतिग्रन्थों में आया है कि विप्र को दक्षिणा, क्षत्रिय को भूमि, नारी को सोना, गुरु को प्रणाम, बनिया को व्यापार मिल जाये, सो सुख ही है। गुरु से काम निकालना होवे तो प्रणाम मात्र से खुश हो जाते हैं। नारी को तो स्वर्ण की चैन पकड़ा दो, सो खुश। अब क्या करें? जो है, सो है। जब सब खुश हो गये तो बहू लक्ष्मी कहने लगे-'प्रथम क्षण वेग था, फिर अच्छा

लगा।' ऐसे ही जब-जब तुम नया काम करोगे, तो हर समय तुम्हारा विरोध होगा। जब काम अच्छा लगेगा, तो सब तुम्हें स्वीकार करेंगे। ऐसा कहो—'हे भगवान्! सबके घर में बहू लक्ष्मी आ जाये तो घर-घर में, समाज-समाज में, गाँव-गाँव में जो चूल्हे-चूल्हे रखे जा रहे हैं, सब चूल्हे फूट जायें। एक चूल्हा, केशरिया ध्वज के नीचे सब आ जायें। अपने-अपने चूल्हे फोड़ दो, एक ध्वज के नीचे बैठो। नमोस्तु शासन जयवन्त हो, श्री जिनशासन जयवन्त हो। मान के चूल्हे फूट जायें तो सब एक केशरिया के नीचे बैठ जायेंगे। जब तक मान के चूल्हे नहीं फूट रहे, तो कितना ही कुछ कर लेना, कुछ होनेवाला नहीं है। तीर्थंकर महावीर बनने वाले जीव को भी आदिनाथ नहीं सँभाल पाये जब मानी था। जब मान गया, सो महावीर बन गया। अब विशुद्धसागर कौन-से खेत की मूली हैं कि दुनियाँ को सुधार पायें? इसीलिये मैं किसी को सुधारने के लक्ष्य से कभी प्रवचन करता ही नहीं हूँ। मुझे मालूम है कि जिसका जैसा क्षयोपशम होगा, उसका वैसा परिणमन होगा, अपन तो निमित्त मात्र हैं।

बेटा! घर के चूल्हे फोड़ कर आना, एक चूल्हा मात्र छोड़ देना। मैं मान के चूल्हे की बात कर रहा हूँ। कथा सुनने में कैसा लगता है? अब सुनो अन्दर की व्यथा।

आचार्यभगवन् इस श्लोक में कह रहे हैं कि इस विश्व में जो-जो तेरे मित्र हैं, उन पर तुझे करुणा है, तो उन मित्रों से इतना कह देना कि विपत्ति हमारे कर्माधीन है और सम्पत्ति भी कर्माधीन है। कर्म भावकर्म के आधीन है। भावकर्म आत्मा का ही विभाव परिणमन है। सम्पत्ति को देखकर मुस्कराओ मत, विपत्ति को देखकर बिगड़ो मत, बिलखो मत। सबके दिन एकसे नहीं होते। प्रतिदिन घड़ी का छः पर आने वाला काँटा बारह पर भी देखा जाता है और बारह पर आनेवाला काँटा भी छः पर आता है। ऐसे ही पुण्य का भी क्षय होता है और पाप का भी क्षय होता है। पुण्य का भी उत्कर्ष होता है, पाप का भी उत्कर्ष होता है। सम्पत्ति के आने-जाने पर कभी सुखी-दुःखी मत होना। दोनों को मुस्करा

कर देखना। जो व्यक्ति द्रव्य के समागम पर प्रसन्न नहीं होता, अहंकार नहीं करता और अभाव में दु:खी नहीं होता है, वही महापुरुष है। महापुरुषों का लक्षण यही है कि सम्पत्ति विपत्ति दोनों के मिलने पर भी साम्यभाव नहीं छोड़ना। श्री राम से पूछो, विपत्ति भी आयी, तब भी प्रसन्न रहे और सम्पत्ति भी मिली तब भी प्रसन्न रहे। ज्ञानी जीव समझता है कि यह भी ध्रुव नहीं है, वह भी ध्रुव नहीं है।

पुण्य पाप फल मांहि, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि बिनसै फिर थाई॥ छ.ढा.॥

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"दृढ़ता ही परमरक्षक"

आपत्सु सम्पतन्तीषु पूर्वकर्मनियोगतः।
शौर्यमेव परं त्राणं न युक्तमनुशोचनम्॥ 171॥

अन्वयार्थ-पूर्वकर्मनियोगतः = पूर्वकर्मों के उदय से, **आपत्सुसम्पतन्तीषु** = आपत्तियों के आ जाने पर, **शौर्यं एव परं त्राणं** = दृढ़ता ही परम रक्षक है, **अनुशोचनम् युक्तं न** = बार-बार शोच करना उचित नहीं है।

भावार्थ-हे भव्यात्मन्! पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से आपत्ति आ जाने पर शूरता/दृढ़ता ही परम रक्षक है, आपत्ति में बार-बार आकुलता एवं चिन्ता करना उचित नहीं है।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में पुरुष के पौरुषत्व पर संकेत कर रहे हैं, कि हे जीव! अधीर होने का समय नहीं है। जगत् में सबकुछ तेरा समाप्त हो जाये, पर धैर्य को मत छोड़ देना। जो छूटनेवाले हैं, उन्हें तू सुरक्षित नहीं कर सकेगा। जो छोड़नेवाले हैं, उन्हें तू पकड़ नहीं सकेगा। पर जो धैर्य तेरे भीतर विराजा है, उसे तू पकड़ कर रखना। सम्पत्ति का काल हो तब भी धैर्य को साथ रखना और विपत्ति का काल हो, तब भी धैर्य को लेकर चलना। महापुरुष वही है, जो विपत्ति के काल में भी धैर्य को नहीं छोड़ते हैं। ध्रुव सत्य है, परिणमनशील संसार की दशा को कौन शाश्वत कर सकेगा? पर जो शाश्वत

है, उसे अशाश्वत के राग में हम क्यों भूलें? जो छूटनेवाला है, वह मेरे देखते ही छूट गया, इससे अच्छा क्या हो सकता है? विपत्ति के काल में सत्य की परीक्षा होती है। पुण्य के कितने थे मेरे साथ और वात्सल्य के कितने थे मेरे साथ और स्वार्थ के कितने थे मेरे साथ? इन तीन लोगों की पहचान विपत्ति के काल में होती है। समझना धैर्य से। जो पुण्य के साथ होते हैं, वे श्री को देखकर तेरे साथ रहते हैं। भइया! तेरा पुण्य साथ न देता और घर में श्री न होती, तो तुझे कौन पूछता? वात्सल्य वाले लोग तो बहुत कम हैं, यथार्थ समझना। कभी-कभी रोमांच होता है कि प्रभो! आपका शासन कितना पवित्र है, पर आपके शासन को माननेवालों के हृदय कैसे काले हो रहे हैं। धर्म दिखता है, वहाँ वात्सल्य होता है। पुण्य दिखता है, वहाँ वात्सल्य नहीं होता है। पहले देखो कि पुण्यवाले लोग कितना साथ देते हैं जब तुम्हारे घर में सबकुछ होता है। भैया! स्वयं के बेटे सुख-दु:ख न पूछ पायें, पर भाऊ जी (पड़ौसी) तेरा सुख दु:ख पूछने आयेगा। फिर भी मेरे मित्र! उसके उस सुख-दु:ख के पूछने की शैली को देखकर तुम मुस्कुरा मत जाना, खोज करना कि यह पूछ किसकी हो रही है? एक व्यक्ति के मन में भाव आया कि मैं तीर्थंकर के पंचकल्याणक कराऊँ। अब देखो, धन भिन्न विषय है, धर्म भिन्न विषय है। भगवान् के कल्याणक कराने के भाव तो धनहीन के मन में भी आ सकते हैं और धनवान के मन में भी व्यसन के भाव आ जायें, पंचकल्याणक के भाव आ जायें। धर्म जो है, कहीं भी उदित हो सकता है। पर सत्यता यह है कि श्री जी के पंचकल्याणक के लिये श्री चाहिये। उस व्यक्ति ने सोचा, क्योंकि ऐसा बहुत सारे लोगों के साथ होता है कि आपका पितृपक्ष धन से कमजोर है, पर धर्म से भरा हुआ है। और कहो तुम्हारे बेटे की माँ का पितृपक्ष धनपति हो, ऐसा हो सकता है। पर मित्रो! संकट के दिन में कभी ससुराल मत जाना, क्योंकि उस पक्ष के लोगों का सोच दामाद के प्रति छोटा होता है। इस बात को आप ज्यादा अच्छे से जानते हो। यह तो अनुभव है आपका..... ...। उनका सोच ऐसा बन जाता है कि यह कुछ माँगेंगे। सहयोग की भावना रखेंगे।

मुमुक्षु! गरीबी के दिन में ससुराल मत जाना। जहाँ घोड़े पर बैठ कर गये हो, पालकी में बैठ कर गये हो, वहाँ भिखारी बनके जाओ, यह कहाँ तक उचित है? सुनो! पत्नि का पिता जो है, उसके घर दूध पीने मत जाना, भले ही अपने घर पानी पी लेना यदि स्वयं के घर में न बचे तो। यह आज की बात नहीं है, इतिहास साक्षी है। उस श्रावक के मन में तीर्थंकर के पंचकल्याणक कराने के भाव हुये। और सोचता है कि अपने पास तो इतना कुछ है नहीं, इसलिये चलें, ससुराल से कुछ सहयोग मिलेगा। अपने प्रभु जी के पंचकल्याणक करायेंगे।

बुंदेलखण्ड में कहते हैं कि खाने के गाल और नहाने के बाल अपने आप चमकते हैं। जब तुम्हारी जेब भरी हो तो चेहरे पर चमक अलग होती है। प्रातः उठकर उस श्रावक ने अर्हन्त की आराधना की, उस श्रावक की निर्जरा तो प्रारम्भ हो चुकी थी। एक वे जीव हैं जो सोने के पहले और उठने के बाद पाँच पापों की भावना भाते हैं। एक वे भी पुण्यात्मा हैं जो सोने के पहले और जागते ही पंचपरमेष्ठी का नाम स्मरण करते हैं। **बिना किसी के प्रेरित किये यदि भाव आये कि आज तो मुझे जिनदेव की पूजा करना है, विश्वास रखना, तेरे प्रबल पुण्य का दिन है।** श्री की आराधना कभी मत करना, श्री जी की आराधना को कभी मत छोड़ना। श्रीजी की आराधना करते रहोगे तो यदि श्री गई भी होगी तो वापस आ जायेगी। यदि आपके घर में श्री खड़ी हो जाये और यूँ कहे कि आप श्रीजी को छोड़ दो, नहीं-तो मैं जाती हूँ, तो क्या बोलोगे आप? कह देना, हे देवी! तू कल जाती है तो अभी भाग जा यहाँ से, लेकिन मेरा विश्वास है कि श्रीजी मेरे साथ रहेंगे तो तुझे लौटकर आना ही पड़ेगा। कभी भूल मत कर देना। लक्ष्मी के फोटो आपने देखे, हर समय खड़े मिलते हैं। कब भाग जाये, पता ही नहीं होता। ज्ञानियो! उसके भागने के पहले कुछ ऐसा काम कर दो कि जाय सो चली जाये, पर मैंने तो अपना काम कर दिया, श्रीजी को विराजमान कर दिया। लक्ष्मी! तुझे जाना हो तो चली जा।

तीर्थंकर के पंचकल्याणक की भावना से युक्त होकर उस श्रावक ने परमेष्ठी

की आराधना की और आराधना करके अपनी पत्नि से कहता है—देवी! तू मेरी हँसी मत करना। पर एक भाव मन में आ रहा है कि मैं तीर्थंकर जिनेन्द्र के पंचकल्याणक करूँ। वह भी कहती है कि हँसी तो नहीं आ रही है, पर घर में तो फूटी कौड़ी नहीं है। तुम पंचकल्याणक कैसे करोगे? बोला, मैंने सोचा है कि आपके पिता जी के यहाँ होकर आऊँ तो वह कुछ सहयोग करेंगे। 'हाँ!' वे मुस्कुरा पड़ी। चले जाओ, लेकिन एक काम कर लो, रास्ते के लिये आप कुछ आटा वगैरह लेकर जाओ। उसने आटा बाँध दिया। ज्ञानी! **सबके दिन एकसे नहीं होते।** वह आटा और घी लेकर चल पड़ा। सत्यता यह है कि परीक्षाहाल में जब प्रश्नपत्र बनता है, तो कोई भी इच्छा नहीं होती है। जब बनता नहीं है, तो सब इच्छायें होती हैं। उसके मन में भाव था कि मैं ससुराल जाऊँगा तो श्रीजी की प्रतिष्ठा कराने कुछ श्री मिलेगी। इसलिये पत्नि ने जो कुछ रखा था, उसका उपयोग उसने किया ही नहीं। वह ज्यों-का-त्यों चला गया। पर देखो भैया! जनवरी का महिना था, अच्छी ठण्डी पड़ रही थी। समय देखो और जगत् की लीला देखो। सासु माँ ने देख लिया कि दामाद अकेला आया है तो इसका मतलब कुछ-और है। नहीं-तो घोड़े पर बैठकर आता, हाथी पर बैठ कर आता। लेकिन यह अकेला आया है और चेहरा भी कुछ ऐसा दिख रहा है कि आकर जरूर कुछ माँगेगा। तो सासु माँ ने आकर द्वार बन्द कर दिये। जब कुछ थे, तब आरती उतारी जा रही थी और साथ में बेटी दी थी और आज देखो कि बेटी का पति कड़कती ठण्डी में आ रहा है। चबूतरे पर रात्रि गुजारता रहा और सुबह अपना चेहरा लेकर वापस हो गया।

विचार करो, भावना लेकर आया था उस समय उसके परिणाम देखो और एक क्षण को आप स्वयं सोचो कि ऐसा तुम्हारे साथ हो तो तुम्हारे भाव क्या होंगे? अब यहाँ बनाइये आप ज्ञेय। दु:खियों के दु:ख के भावों को देखना तो सीखो एक क्षण को। आप तो किसी को भी डाँट देते हो। डाँटने के पहले एक क्षण को वह व्यक्ति बनके तो देखो कि मेरे साथ कैसा गुजरेगा? **भैया! भरी सभा**

में, भरी भीड़ में किसी को डाँटना-फटकारना नहीं, भले ही तेरी पत्नि ही क्यों न हो। उसकी भी इज्जत का ध्यान रखना। सम्बन्ध से पत्नि है, पर परिणामों से दोनों स्वतन्त्र हैं। आप दयावान हो, करुणावान हो। घर के आधे लोग तो उन्हीं लोगों से बीमार हैं जो बोलना नहीं जानते हैं।

विश्वास मानो, लोग उन लोगों से बीमार हैं जो बोलना नहीं जानते हैं। पता नहीं कब क्या बोल दिया और कब किस के मन में लग गयी, बेचारे को झलक हो गयी और वो बीमार हो गया। जब गया था, तब भूख नहीं, प्यास भी नहीं थी। पर उस व्यक्ति ने धैर्य नहीं छोड़ा।

जब प्रभु गर्भ में आये, रत्नों की वर्षा हुयी। जब जन्म हुआ, तो रत्नों की वर्षा हुयी। भूमि हिरण्यगर्भा कहलाने लगी और नरक के नारकी को भी एक पल को शान्ति का अनुभव हुआ। तो मेरी भावना भी पूरी होगी। ठीक है। सबके दिन एकसे नहीं होते हैं। फिर भी धैर्य नहीं छोड़ा। अब देखो, जब गया था तब भूख-प्यास कुछ नहीं लग रही थी। जब लौटने लगा, तो सारी बाधायें सताना प्रारम्भ कर दी। सोचता है कि घर में जो हुआ सो ठीक है, लेकिन पत्नि ने जो आटा और घी रखा था, यह वापस क्यों ले जाऊँ? सामने बावड़ी दिख रही है और बगीचा है, इसमें से पानी निकाल कर भोजन पकाकर अपन भोजन करके फिर चलते हैं। मालूम क्या हुआ? उसके भावों में तो भगवान् के पंचकल्याणक थे। परिणामों की परम विशुद्धि चल रही थी। पर ठेस लगने पर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा। भोजन तो पका लिया। रोटी ही तो सेंकनी थी। और कुछ भी नहीं था। उसने जैसे ही रोटियाँ बनाकर रखी, उस क्षेत्र में यक्ष था, वह इस व्यक्ति की भावना को भाँप गया कि यह दु:खी है और उसके पंचकल्याणक के भाव हैं, इसको सहयोग करना चाहिये। लेकिन वैसा होता बहुत कम है कि कोई देव आये और सीधा सहयोग कर जाये। वो अपने नाटक दिखाये बिना किसी का काम करता ही नहीं। उसने तो रोटी बनाकर रखी थी। उस यक्ष ने क्या किया? एक श्वान का रूप बनाया और जैसे ही वह रोटी खाने को तैयार हुआ, उसने

धीरे-से उसकी सारी रोटियाँ खींच ली। अब सुनो, उस काल में यहाँ धैर्य की कितनी बड़ी आवश्यकता थी। यदि पत्थर लेकर दौड़ता तो कोई फायदा नहीं था। वह चुपचाप क्या बोला? अब तुम सूखी रोटी लेकर क्या करोगे? वो तो ले ही गये। यह घी और ले जाते। चूँकि वह श्वान नहीं था, वह तो देव था, तो इतनी बात सुनते ही क्षण भर में वह वृद्ध के भेष में खड़ा हो गया। बोला, 'आप ऐसा करो कि इस बावड़ी के किनारे बेर का एक वृक्ष है। उसके नीचे जितने बेर पड़े हैं, वह सब अपनी पोटली में भर लो। इतना काम कर लो, मेरी बात मानो, घर ले जाओ।' सोचता है कि कुछ न से तो कुछ सही। खाली जाने से क्या लाभ? उसने पूरी पोटली बेरों से भर ली और जैसे ही घर पहुँचता है तो देवी तो खड़ी थी द्वार पर आरती उतारने, अर्घ देने के लिये।

ओ हो! मेरे पिताजी ने इनका कितना सहयोग किया, कितनी सम्पत्ति दे दी कि पूरी-की-पूरी पोटली भरी हुयी है। अब वह तो अन्दर से पीड़ित था। देवी बोली, 'मेरे पिताजी ने इतना दिया आपको? पर धन्य हो उसके धैर्य को। वह सोचता है कि घर की क्यों बिगाड़ो। यह बात समझ में आना चाहिये सभी को। **यदि पत्नि के पिता ने तेरा अपमान किया, तब भी तुम पत्नि को नहीं डाँटना। यह तुम्हारा विवेक है। तुझे पत्नि के भाई के साथ नहीं रहना, पत्नि के साथ रहना है। तुम ऐसा करोगे तो विश्वास मानना पत्नि की प्रीति बढ़ जायेगी। वे पागल हैं जो ससुराल के द्वेष में अपनी पत्नि से झगड़ते हैं।**

ध्यान से सुनना, बहुत बड़ी नीति है। यहीं लोग असफल हो जाते हैं। यदि आप नीतिज्ञ हो तो आपको मालूम है कि मेरे शत्रु का मित्र ही मेरा मित्र है। उसके सामने उसकी कभी निन्दा मत करना। यदि आपने की, तो अभी शत्रु एक है, ज्ञानी! क्षण नहीं लगेगा, शत्रु दो हो जायेंगे। यह भूल तुम विवेक के अभाव में कर लेते हो। एक को तोड़ोगे तो पचास टूटेंगे, क्योंकि हर व्यक्ति के सम्बन्धी होते हैं। यानि आपका जो मित्र है, उस मित्र के भेष में अपने मित्र के प्रति अशुभ भाव मत बनाना, नहीं-तो आपके शत्रु की दोगुनी शक्ति पड़ेगी।

ज्ञानी लोग मित्र को मित्र बनाकर रखते हैं और ऐसा उपक्रम करते हैं कि जो मित्र का मित्र तेरा शत्रु था, उसे भी मित्र बनाने की चेष्ठा करते हैं। इनका नाम ज्ञानी लोग है। कोई कहे कि मैं अमुख का मित्र हूँ, वह तेरा शत्रु था, तो उसे दुतकारना मत। वह तुम्हारे पास आस्था से आया है। लोक की भी व्याख्या करना और व्यवहार की भी बात करना। तो व्यवहार की बात में भी बड़ी गहराइयाँ हैं। वे घर नहीं चला पाते जिन्हें पति बनने का शोक जरूर होता है, परन्तु पत्नि को रख नहीं पाते। बेटा को जन्म देने का शौक अवश्य होता है, पर पाल नहीं पाते जो विवेकहीन होते हैं, रीति-नीति के ज्ञान से शून्य होते हैं।

बात समझो गहराई से। उस व्यक्ति ने कितने विवेक से कार्य किया? किंचित् भी पत्नि को महसूस नहीं होने दिया कि आपके पिता ने कुछ नहीं दिया। पर उसको पता था कि मैं तो बेर लेकर आया हूँ। अन्दर रख देता है। कमरे के बाहर चबूतरे पर जाकर बैठता है। अब यह सहज है। किसी का पत्र भी आये और तू भोजन करने बैठ जाये, मेरा विश्वास है, ग्रास तोड़ेगा, पर सबसे पहले पत्र खोलेगा। क्यों? उत्साह होता है कि पत्र में है क्या? बड़े भैया ने क्या लिखा है? उसी प्रकार पत्नि ने भोजन की थाली को छोड़ दिया और सबसे पहले उस बेर की पोटली को खोल कर देखा। जैसे ही पोटली खोली, उसमें हीरे, मोती, पन्ना, जवाहरात चमकना प्रारम्भ हो गये। अब तो क्या कहना। मुस्कुरा कर आती है। स्वामी, स्वामी! मेरे पिता जी ने इतना कुछ दे दिया। बोले, क्या है? चलूँ देखूँ तो। जैसे ही अन्दर जाता है, समझ गया। जिसका कोई नहीं होता है, उसका **धम्मं सरणं पव्वज्जामि।** जब तुम्हारा कोई आश्रय न बचे, तब जगत् में किसी के द्वारे मत जाना, बस "धम्मं सरणं पव्वज्जामि"। "चत्तारी सरणं पव्वज्जामि" फिर धीरे-से कहता है—

प्रिय! बुरा मत मानना। सत्यता यह है। उसने पूरी बात सुनादी। बोले, ऐसा बोले? हाँ। फिर ये तो किसी देव की माया होना चाहिये कि ऐसी घटना घटी थी। सोचता है, अब तो पंचकल्याणक क्या गजरथ महोत्सव होगा। प्रिय एक

इच्छा अवश्य है कि एक बार पुनः ससुराल जाना चाहता हूँ। अभी तो सहयोग के लिये गया था, लेकिन अब पीली पत्रिका लेकर जाना चाहता हूँ। ठीक है, चले जाओ। अब पहले-जैसे नहीं गया। अब तो साथ में पण्डित जी विद्वान् थे। अब देखो, आया समय। अब पूर्व सूचना के साथ गया था तो इतने लोग आ रहे हैं। माहौल वहाँ का भी बदला था। वंदनवार बँध गये। बोले, कुवर जी आ रहे हैं। पहले कुँवर नहीं था क्या? पता नहीं क्या हो गया? अगवानी हुयी। छप्पन प्रकार के भोज्य व्यंजन परोसे गये। वह बड़ा ज्ञानीजीव था। भोजन के लिये सारी थालियाँ सज गयी। सबने भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। ससुर जी सामने बैठ गये, सासु जी पंखा हिला रही थीं। अब उसने क्या किया? सबसे पहले उसने पेड़ा उठाया और अपने गले की चैन में लगा दिया। फिर उसने बालूशाही उठायी, अँगूठी से छुआ लिया। ऐसे ही एक-एक व्यंजन उठाता गया और जितने आभूषण पहने था उन सब में लगाता गया। वह तो जानकर नाटक कर रहा था। अब सासु जी से रहा नहीं गया। वह कहने लगी, 'बेटे! तू ऐसा क्यों कर रहा है? इतने सारे लोग बैठे हैं, आप पहले भोजन करो। क्या बोला? अम्मा! वही हूँ मैं। यह भोजन क्या मेरे लिये बना है? यह मेरा सम्मान है क्या? यदि मेरे लिये भोजन बना हुआ है, मेरा सम्मान होता, तो मैं पहले भी अकेला आया था, तूने कमरे के द्वार बन्द कर लिये थे। आज जिसका सम्मान है, उसी को खिला रहा हूँ। बेचारी पानी-पानी हो गयी। सबके दिन एक-से नहीं होते।

बोला, 'अब पधारो आप, यह पीली पत्रिका लेकर आया हूँ। आप सबको पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव में आना है।' उसने सोचा कि राजा को भी आमन्त्रण कर आयें, सो थाल को मोती से भरकर लेकर गया। वहाँ किसी ने चुगली कर दी। राजा से बोला, 'महाराज! इसके घर में खाने को दाना नहीं था और यह मोतियों की भेंट लेकर आये हैं। जरूर इसने डाका डाला है। बेचारा गया था भेंट देने, उसको ही हथकड़ी पहनाकर डाल दिया गया। ससुराल से निपटा और यहाँ फँस गया फिर भी सोचता है। कुछ भी कहो, **होता स्वयं जगत्**

परिणाम। धैर्य नहीं छोड़ना चाहिये। विपत्ति के काल में मुस्कुराते रहना चाहिये। वह अपने भगवान् के ध्यान में लीन हो जाता है। जिस यक्ष ने सहयोग किया था, वही यक्ष पुनः आकर राजा को पीटना प्रारम्भ कर देता है और राजा चिल्लाता हुआ दिखाई दे रहा है। आकाशवाणी हुयी-क्षमा माँगो उस व्यक्ति से। वही तुमको क्षमा कर सकता है। बेचारा राजा दौड़ते-दौड़ते आया, बोला, इसका यह पंचकल्याणक है, राजकोश से सारी व्यवस्थायें कर दी जायें। अब पूरे नगर में घोषणा कर दी गयी कि पंचकल्याणक महोत्सव राजकोश से होगा।

समय दो, समाधान हो जायेगा। ज्ञानियो! अधीर मत हो, धैर्य मत छोड़ो। सबके दिन एकसे नहीं होते। समय बदलता है। **जिनके गले में आज माला डाली जा रही है, उनको सिर पर कभी टोकनी रखी जाती थी और जिनको मालायें पड़ती थीं, वह आज रोड़ों पर घूम रहे हैं। ज्ञानी! कभी भी समय देखते हुये किसी को हीन मत कह बैठना। कभी किसी को दीन मत कह बैठना। सबके दिन एक-से नहीं होते। जिनको अपना कहते थे, वे संकट में सपने-जैसे हो जाते हैं। जिनका कभी सोचा नहीं था, वे अपनों से भी बड़ा काम करते हैं।**

मित्रो! राम ने कभी सोचा न होगा कि विभीषण मेरा सहयोग करेंगे, पर सहयोग तो विभीषण ने ही किया। किसी व्यक्ति को शत्रु मत बनाना। वो भले ही आपको शत्रु कहे, पर आप तो उसे भटकता भगवान् ही मानना। कभी-न-कभी इसकी दृष्टि ठीक होगी। जब मारीचि भगवान् बन सकते हैं, तो यह भी महावीर जैसे बन सकता है। इसलिये कभी भी दीन-हीन भावना मत लाना। पर्याय की प्रत्यासत्ति का कोई विकल्प चल भी रहा हो, तो आप मार्ग बदल देना। स्थान छोड़ दिया करो, पर उसके प्रति अशुभ भाव मत लाना। जगत् में कभी भी किसी की हँसी हो रही हो तो शामिल मत हो जाना। बल्कि विपाकविचय धर्म्यध्यान करना।

गरीबों की गरीबी देखकर तू हँसने की जगह धर्म्यध्यान भी तो कर सकता

है कि कैसे जीवन जी रहे हैं। भैया! गगन में जब रहो, तब जमीन को देखना मत भूल जाना। विमान भले ही आकाश में उड़ रहा हो, पर जब उड़ान भरी थी तो जमीन से ही भरी थी। तुम कितने ही बड़े हो जाना, पर श्रावक धर्म और मुनिचर्या को मत भूल जाना, क्योंकि तुम्हारी उड़ान यहीं से प्रारम्भ हुयी थी। धर्म को मत भूल जाना। यथार्थ समझो। जीवन के यही क्षण परम आनन्दमय हैं। जहाँ श्रुत बरसता हो, जिनदेव सामने हों, निर्ग्रन्थ गुरु हों, इससे बड़ा भाग्यवान कौन होगा जिसके पास तीनों हों? इसलिये भैया! कभी भी भूल मत कर देना। लाखों की आय भी दिख रही हो, परन्तु वह काम छोड़कर देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति पहले करना, बाद में कमाई कर लेना। आपको विश्वास न हो तो आप विद्वानों से पूछ लेना कि भरत चक्रवर्ती को एकसाथ पुत्ररत्न की प्राप्ति, चक्ररत्न की प्राप्ति और तीर्थंकर देवादिदेव ऋषभदेव को केवलज्ञान की प्राप्ति। तीनों महान् कार्यों की सूचना एक समय में मिली। आप क्या करते? पुत्र-उत्पत्ति-महोत्सव मनाते, चक्ररत्न महोत्सव मनाते। धन्य हो। यदि तू पुत्र-महोत्सव मना लेता भरतेश! तो विशुद्धसागर इस मंच से तेरा नाम नहीं लेते। धन्य हो तेरी पुण्य भावना को। विचार करता है कि यह तो मेरे कामपुरुषार्थ का फल है। यह चक्ररत्न अर्थ पुरुषार्थ का फल है। लेकिन देवादिदेव अर्हन्तदेव को कैवल्य प्रकट हुआ है, यह धर्मपुरुषार्थ का फल है। धर्म पुरुषार्थ से ही सब फलित होता है। चक्रेश ने ऐसा चिन्तन किया। इसलिये चक्रवर्ती ने सबसे पहले बेटे का महोत्सव नहीं मनाया, चक्ररत्न का महोत्सव नहीं मनाया। ऐसे ही सारे काम छूट रहे हों तो आप अपने कार्य को पूर्ण करने के लिये, यदि दो घण्टे की पूजा करते हों तो, सबसे पहले उसके ही समय में कटौती कर देते हो। अरे भैया! जिसके पुण्य से तेरा काम बन रहा था, उसे ही तू सबसे पहले छोड़ कर जा रहा है। भैया! ऐसा ही होता है कि नहीं? व्यक्ति यदि कहीं बाहर जाये तो शेष कार्यों को तो पूरा करेगा, सब कार्यों को बराबर समय देगा, पर भगवान् की पूजा-अभिषेक को ही सबसे पहले छोड़ देता है। नित्यप्रति के कार्य तो निरन्तर चलते ही रहते हैं।

मित्रो! शेष कार्यों का समय कम कीजिये, पर भगवान् की आराधना अभिषेक का समय मत कम करना। जिस आराधना का फल तुझे प्राप्त हो रहा है, उस आराधना को ही छोड़ कर बैठ जायेगा, तो ज्ञानी! फिर कहाँ जायेगा?

भैया! प्रत्येक क्रिया के काल में, चाहे भोजन करो, चाहे भजन करो, चाहे मलविसर्जन करो, पर भगवान् का नाम लेना बन्द मत कर देना, क्योंकि समय कोई नियत नहीं है।

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंचनमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो, लेकिन परमेष्ठी का ध्यान करने में कोई दीन नहीं है। अपवित्र दशा में उच्चारण मत करना, अँगुली मत चलाना। मन से किसी भी अवस्था में तुम प्रभु का नाम ले सकते हो।

तुझे हाय-हाय से चौबीसों घण्टे वैसे-ही फुर्सत तो मिलती नहीं, तो फिर जहाँ शान्ति से बैठत है, वहाँ प्रभु का नाम लिया कर। मैं तो यही कह रहा हूँ। तुझे कहीं समय न मिले तो वहीं बैठकर भगवान् का नाम ले लिया करो। चिंतन-मनन कर लिया करो। जिन प्रश्नों के कहीं समाधान नहीं होते, उनके वहीं समाधान हो जाया करते हैं। क्योंकि शान्त स्थान है, बहुत शान्त स्थान है, वहाँ कोई नहीं होता है।

आचार्य श्रुतसागर महाराज जी का नाम सुना है आप लोगों ने? आचार्य धर्म सागर जी के साथ रहते थे। करणानुयोग के अच्छे ज्ञाता थे। जन्म से श्वेताम्बर होने पर भी दिगम्बरत्व के प्रति दृढ़ श्रद्धान् था। जिस जीव ने अपनी सल्लेखना कितने पवित्र भाव से की हो, कोई उनसे भी प्रश्न करता और प्रश्न समझ में नहीं आया। तब पता है महाराज क्या करते थे? उठाया कमण्डलु और चले जाया करते थे। बोले, 'थोड़ी देर से आता हूँ।' जब आये तो बताते थे कि महाराज ऐसा-ऐसा है। पूछा कि कहाँ गये थे? बोलते हैं कि आप सब यहाँ बैठे थे, सो

मस्तिष्क नहीं चल रहा था। एकांत में गया, सो सारा विषय समझ में आ गया। इसका मतलब यह नहीं है कि तुम जाकर वही स्थान निश्चित कर लो। इतना समय न हो तो कम-से-कम वहीं समय निकाल लेना, पर धैर्य मत छोड़ना। **विपत्ति के काल में सम्पत्ति को छोड़ देना, पर समता को मत छोड़ देना। समता बची रहेगी तो सम्पत्ति पुनः आ जायेगी। सम्पत्ति बची भी रही और समता चली गयी, तो फिर सबकुछ गया।**

आचार्य धर्मसागर की क्या कहना। उस जीव ने जीवन में कभी भी इस अहंकार को नहीं आने दिया कि में आचार्य हूँ। एक वे जीव हैं जो यही विचारते हैं कि मैं आचार्य कैसे बनूँ? एक गुरु को सता कर बन रहा है, एक को गुरु मना रहे हैं कि बेटा! बन जाओ, बन जाओ।

मित्रो! ज्यादा राग में नहीं उलझना। **राग आग दहे सदा, तातें समामृत सेइये।** यह राग आग है, हर समय जलाती है। अग्नि जो है, वह ईंधन के सद्भाव में जलती है और राग की आग ऐसी होती है कि अभाव में जलाती है और सद्भाव में भी जलाती है। वस्तु हो, तब भी व्यक्ति को राग सताता है और न हो, तब भी राग सताता है। इसलिये कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, ज्ञानियो! धैर्य मत छोड़ना। क्यों? तो वट्टकेर स्वामी ने 'मूलाचार' का उत्तर लिख दिया।

वीरेण वि मरिदव्वं, णिव्वीरेण वि अवस्स मरिदव्वं।

जदि दोहिं वि मरिदव्वं, वरं हि वीरत्तणेण मरिदव्वं॥ 142 मूलाचार॥

भैया! धीर भी मरता है, अधीर भी मरता है। जब दोनों को ही मरना पड़ता है, तो क्यों न हम धैर्य के साथ मरण करें? कार्य की सिद्धि तो दोनों तरफ से हो रही है। कुछ लोग गुस्से में काम बनाते हैं, कुछ ठण्डे में काम बना लेते हैं। जब बनता ही है, तो क्यों न हम ठण्डे में ही काम बना लें? सुना है आज के जमाने में तो बर्फ से सिकाई होने लगी है। जब बर्फ से सिकाई होने लगी है, तो व्यर्थ में अग्नि की क्या आवश्यकता है? बर्फ से ठण्डा भी लगेगा, सिकाई

भी हो जायेगी। जब शान्ति से काम बन ही जाता है, तो फिर व्यर्थ में गुस्सा क्यों करना? साम्यभाव रखेगा, तो साधु कहलायेगा। लाल चेहरा करेगा, तो बन्दर कहलायेगा।

एक सज्जन करणानुयोग के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। वे रोज ढेर सारे प्रश्न लिख कर लाते थे कि आज महाराज से इतने सारे प्रश्न करना है। मुझे वे रोज कागज अलग करते दिखते। मैंने एक दिन पूछ लिया कि भैया! ये क्या करते हो? वे बोले, महाराज! क्या करूँ? जैसे ही प्रवचन प्रारम्भ होता है, मेरे सारे-के-सारे प्रश्नों के उत्तर स्वयं ही मिल जाते हैं। फिर प्रश्न करने की जरूरत ही नहीं होती। ज्ञानी! सत्य यह है कि श्रुत की महिमा है, कोई प्रश्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। सम्यक् रीति से श्रुत को सुनते रहने से तो भव-भव के कर्मकलंक का समाधान होता है, तो शंका का समाधान कैसे बचेगा? यह अरहन्त की देशना की महिमा है। लगता है वर्तमान के दु:खी प्राणियों के लिये ही इतना सुन्दर श्लोक लिखा है।

हे सुधी पुरुषो! आपत्ति के काल में जो भी कष्ट/विपत्तियाँ हैं, पूर्व-कर्म-संयोग का यह नियोग है। सबकुछ अच्छा चल रहा था, बेटे ने भी जन्म ले लिया, पर कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया। कहाँ से आ गया अचानक? पूर्व कर्म नियोगत:। एक दिन पहले घर में मंगलाचरण हो रहा था, बहू आयी, और ऐसा नियोग बना कि एक दिन बाद ही घर में क्लेश प्रारम्भ हो गया। अब तुम बहू को दोष मत दो। 'पूर्व कर्म नियोगता', पूर्व में ऐसा कर्म का नियोग रहा होगा।

हाँ, हर क्षेत्र में लगाओ। आप मुनिराज बन गये, आचार्य का संघ था, सब मुनिराज शान्तस्वभावी थे। कोई उपद्रवी जीव आकर दीक्षित हो गया, उसने पूरे संघ को तितर-बितर कर दिया। होता है ऐसा। आज नहीं, चतुर्थकाल में हुआ है ऐसा। क्या करोगे? जीव के संस्कार हैं ऐसे। पूर्व कर्म नियोगत:।

ज्ञानीजीव कर्मनियोग कहके समता को धारण करते हैं और अज्ञानी जीव

कर्मनियोग न कहके विसंवाद को प्राप्त होते हैं। इसलिये 'पूर्व कर्म नियोगतः।' अब कोई विषमता आती है तो आप भी इस सूत्र का चिन्तन करना। सीता ने यह कब कहा था कि राम ने मुझे जंगल भेज दिया? पूर्व कर्म नियोगतः, यह पूर्व कर्म का नियोग था। अपने भी सपने और सपने भी अपने। पूर्व कर्म नियोगतः।

हे ज्ञनियो! पूर्व कर्म के उदय से विपत्तियों के आ जाने पर भी आपकी शूरता, आपकी दृढ़ता ही आपकी रक्षा करनेवाली है। विपत्ति के बारे में बार-बार सोचना अच्छी बात नहीं है।

जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो उसके घर बैठने जाना पड़ता है। पर मेरा एक सोच है, भैया! सब एकसाथ चले जाओ तो कितना अच्छा हो। तुम एक-एक जाते हो, वह भूलना भी चाहे तो तुम याद दिलाते हो। न भी रोना चाहे तो भी रोना पड़ता है। इसलिये भैया! एकसाथ जाया करो। जैसे किसी के रोने पर असाता वेदनीय का कर्म बँधता है, आप भी निमित्त बन रहे हो। इसी तरह जो अपने संकट का बार-बार चिन्तन करता है, वो भी असाता का आस्रव करता है और ज्ञानीजीव "पूर्व कर्म नियोगतः" कहके अपने जीवन में मुस्कुराता है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"शान्ति का कारण"

विशुद्ध परिणामेन, शान्तिर्भवति सर्वतः।
संक्लिष्टेन तु चित्तेन, नास्तिशान्तिर्भवेष्वपि॥172॥

अन्वयार्थ-विशुद्ध परिणामेन = निर्मल भावों से, **सर्वतः शान्तिः भवति** = सर्व ओर से शान्ति रहती है, **संक्लिष्टेन तु चित्तेन** = परन्तु संक्लेश परिणामों से, **भवेषु अपि** = भवभव में भी **शान्तिः नास्ति** = शान्ति नहीं मिल सकती है।

भावार्थ-हे भव्य! विशुद्ध एवं निर्मल भावों से सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य छाया रहता है, परन्तु संक्लेश परिणामों से जन्म-जन्मान्तरों में भी शान्ति नहीं मिल सकती है।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में संक्लेशता से रहित होने का उपेदश दे रहे हैं। संसार में अशान्ति का कोई कारक है तो उसका नाम संक्लेशता है। शान्ति का कोई उपाय है, उसका नाम विशुद्धि है। संक्लेशता से तभी बच पायेंगे, जब अपने आप को पर से भिन्न स्वीकारेंगे। **जब तक आपके अंतस् में जगत् के सुख-दुःख का कर्त्तृत्व निवास कर रहा है, तब तक आप स्वयं को सुखी नहीं कर पायेंगे। इसमें कोई शंका नहीं करना जब तक दुनियाँ को सुखी देखने का मन कर रहा है तुम्हारा, तब तक तू सुखी तो नहीं हो सकता है। फिर दुनियाँ को दुःखी देखने वाला सुखी कैसे हो सकता है?**

मुमुक्षुओ! जो विश्व को सुखी करना चाहता है, उसका दु:ख यही है कि दुनियाँ कैसे सुखी हो? आप जानते हो दु:ख कहते किसे हैं? इच्छाओं की पूर्ति का न हो पाना, यह तो दु:ख है। इच्छाओं का उत्पन्न होना ही दु:ख है। इस तत्त्व की गहराई में प्रवेश तो करो। कारण यह है कि आपने सुख के स्थान को समझा नहीं है, दु:ख की पूर्ति को ही तुमने सुख मान लिया है। मित्र! इसलिये आपको सारे जगत् में सुख महसूस होता है। मेरा बेटा पढ़ जाये तो में सुखी हो जाऊँगा। तेरे मन में जो विचार आ रहा है कि मेरा बेटा पढ़ जाये तो मैं सुखी हो जाऊँगा, जिनवाणी माँ कह रही है कि बेटा कब पढ़ेगा, कब सुखी होगा? दु:ख तेरा यही है कि तू बेटे को पढ़ने की बात सोच रहा है। जब मोक्ष की इच्छा रखनेवाले मुनि को दु:खी कहा है यानि जितने समय तक तुम ऐसा सोच रहे हो कि मैं मोक्ष जाऊँ, उतने समय तू निज में लीन हो जाता तो 'मोक्ष जाऊँ' ऐसा कहने की आवश्यकता क्या थी? मोक्ष तो स्वत: ही पहुँच जायेगा।

मित्रो! विश्व में कृष्ण, नील, कापोत इन अशुभ लेश्याओं में जीनेवालों की प्रचुरता है। 'मैं मन्दिर जाऊँ क्या?' ऐसा दस बार कहा, इतने में तू चल देता तो दस बार कहने की जगह आधी दूर पहुँच जाता। जो व्यक्ति सोचते हुये सिर खुजलाये, समझ लेना इसका पुण्य क्षीण होने का समय आ गया है, क्योंकि बेचारे का सिर खुजा रहा है, कापोत लेश्या में जी रहा है। में ऐसा करूँ, मैं मन्दिर जाऊँ, में कल्याण करूँ', इतना समय तू अकल्याण में लगा रहा है। जो दीर्घसूत्रीय पुरुष होता है, वह जीवन में सफल नहीं होता है। आशय समझो कि आपको निर्णय करने की और तत्त्व का निर्णय करने की क्षमता होनी चाहिये। समयसूचकता का बोध होना चाहिये। समयसूचकता के बोध के बिना वह लौकिक कार्यों में असफल हो जायेगा, पारमार्थिक कार्य तो बहुत दूर है। घड़ी का काँटा देखते हुये आप चल रहे हो कि समय हो रहा है।

भो ज्ञानी! घड़ी के काँटे को तू सुबह से शाम तक मात्र देख रहा है कि समय पर मेरा काम हो जाय। पर मेरे मित्र! सुनो। घड़ी का काँटा तो तू सुबह

से शाम तक देख लेता है और सुबह से शाम तक काम करके सो गया, प्रातः हुआ, पुनः उसी क्रिया में लग गया, पर काँटे को फिर भी देखता है। पर इतना तो ध्यान रख कि आयुकर्म के निषेकों के काँटों को क्यों नहीं देखता है? जैसे घड़ी का काँटा छः से बारह पर पूर्ण हो रहा है, ऐसे ही तेरा जीवन क्षय को पूर्ण हो रहा है और आयु की अन्तिम श्वास में पूर्ण हो जायेगा। क्षण-क्षण में क्या निहारना चाहिये?

मित्रो! जबसे मैं इस मण्डप में बैठा हूँ, उतना मेरा आयुकर्म नष्ट हो चुका है। अब वे निषेक मुझे पुनः नहीं मिल सकते। इस पर्याय में कोटि-कोटि तपस्या भी कर लूँगा, पर वे निषेक मिलनेवाले नहीं हैं जो निकल चुके हैं।

माताओ! किंचित् भी आपको मेरी बात समझ में आ रही हो और अपने आप पर आपको करुणा हो, तो सुन लेना। आप किसी जीव की आत्मकल्याणभूत बात में ही रुचि लगाना। जो कल्याणभूत नहीं है, उसपर ध्यान मत देना। ऐसे ही अनन्त पर्यायों को तूने विकथाओं में नष्ट किया है। अब इस वर्तमान की पर्याय को तो आप सँभाल ही सकते हो। सम्यग्दृष्टि जीव जीते-जीते मरता नहीं है। मरते-मरते भी जीता है। मिथ्यादृष्टि जीव जीते-जीते भी मरता ही है।

मरे वो, जो जीवन को व्यर्थ नष्ट करे। मरण कहाँ किया? मैंने तो एक-एक समय का सद्उपयोग किया है। अब मेरा मरण तो नहीं हो सकता है। आयुकर्म का क्षरण हो सकता है। वो नियत है। मैंने तो प्रतिपल जिया है। जबसे इस पर्याय में आया, तब से जीना प्रारम्भ किया है। ज्ञानी! मोक्षमार्ग में जीवन ही जीवन है। संसार के प्रत्येक कार्य का जीवन मरण ही है। मान लो बात को, जीना प्रारम्भ कर दो आज से जगत् से क्या लेना देना? एक सिक्का भी तेरे हाथ में होता है तो उसका उपयोग भी सँभालकर करता है कि किसके लिये खर्च कर रहा हूँ। अपने लिये कि अपनों के लिये? तुझे दो ही दिखते हैं, अपना और अपने।

मेरे मित्र! जब आयु को खर्च करने का समय आ जाए, या तो अपने लिये लगाओ या अपनों के लिये लगाओ। अपने कौन? पंचपरमेष्ठी अपने

हैं और निज आत्मा अपनी है। इसके अलावा सब पर-ही-पर हैं। व्यवहार से, पारमार्थिक दृष्टि से देखो तो पंचपरमेष्ठी तो अपने हैं। निश्चय से परमार्थ से देखोगे तो निज में ही मैं अपना हूँ और लोक में देखोगे तो माता-पिता पुत्र आदि तेरे अपने कहलाते हैं। वे सब भी पर ही हैं।

कैसे-कैसे लोग हैं, रोड़ पर चलते-चलते मुख में सिगरेट दबाये मिल जायेंगे। जिन युवाओं के चेहरे चन्द्रमा से चमक रहे हों, वे भी अपने मुख में अंगारा दबाये मिल जाते हैं। सोचते हैं कि मैं विशेष हूँ। हाँ, सत्य ही है कि तू विशेष ही है। क्यों विशेष है? तू सत्पुरुष से भिन्न चल रहा है, इसलिये विशेष है। पर मोक्षमार्ग की दृष्टि से देखोगे तो अधोगामी है। **सोचो, चुटकी बजाने के काल में मृत्यु होती है कि नहीं? आप लोग समझ लो। चुटकी बजे उतने समय में प्राण निकल जाते हैं कि नहीं? भैया! चुटकी बजाने में तो बहुत समय लग गया, एक समय में हंस बाहर निकल जाता है। आपने कितने बार चुटकी बजा-बजा कर समय नष्ट किया है?** जब जीव कषाय की सत्ता का सहयोग करता है, तब जीव संयम की सत्ता को गौण कर देता है। यहाँ तक कि अभाव भी करके देख लेता है। पर प्रजाजनो! चाहे सम्राट किसी भी कुल का हो, अपने को तो प्रजा बनकर रहना है। चाहे सम्राट तेरे पक्ष का हो, चाहे परपक्ष का हो, पर तुझे तो प्रजा बनके रहना है। तू राजा बनके नहीं रह सकता है।

मेरे मित्रो! ध्यान दो। चाहे तेरे वंश के रागी तेरे हों, चाहे तेरे परवंश के रागी हों, चाहे तेरे वंश के श्रेष्ठी हों या परवंश के श्रेष्ठी हों, पर तुझे तो अपने परिणामों से बन्ध अबन्धक होकर जाना है। तू इनमें क्यों लिप्त हो रहा है?

स्वतन्त्र सत्ता का वेदन होना चाहिये। मोह की जो पकड़ है, वह विराट है। वह सत्य को समझने नहीं दे रही है। तुरन्त झलकता है। बगल का मकान तुझे पर का दिखता है, स्वयं का मकान स्वयं का दिखता है। लेकिन मेरे मित्र! जब शरीर से हंस निकल जायेगा, तब कौन-से मकान में तुझे सुरक्षित रखा जायेगा? बस, इतनी-सी बात बता दो।

माँ! जब तू छोटी बहू और बेटे के साथ रहती है, तब बड़े बेटे के प्रति तेरा भाव तू ही जानती है। बड़े बेटे के साथ रहती है तो छोटे बेटे के प्रति तेरे भाव कैसे होते हैं? तू ही जानती है। लेकिन माँ! विश्वास रखना, दोनों बेटे तेरे पेट से ही आये थे। पर फिर भी एक उदर से उत्पन्न किये गये तेरे दोनों बेटों पर तेरे एक-से परिणाम नहीं रह पाते, तो जगत् के प्रति तेरे क्या एक-से परिणाम रहेंगे? इसलिये माँ! मैं माँ को महत्त्व नहीं देता हूँ। जिस जीव के अन्दर चींटी से लेकर हाथी तक, निगोदिया जीव से लेकर सिद्ध तक एकत्वदृष्टि है, उसका नाम महात्मा है। उस महात्मा की वंदना है। माँ की वंदना मोक्षमार्ग में नहीं है। हाँ, माँ की वंदना यदि हो, तो वह कौन-सी माँ की वन्दना हो? जो समता के पालने में झुलाने वाली हो। वह भगवती माँ जिनवाणी है।

मैं उस माँ की वन्दना करता हूँ, उस देवी की वन्दना करता हूँ, जो अर्हन्त के मुखकमल में निवास करती है। ब्रह्माण्ड में, सारे विश्व में यदि अर्हन्त से भी पवित्र स्थान किसी का है तो मनीषियो! वह भगवती जिनवाणी माँ का है। अर्हन्त तो कमलासन पर हैं, अर्हन्त तो सिंहासन पर हैं, परन्तु जिनवाणी माँ भगवान् के मुखकमल में विराजती है। जिनवाणी कहाँ से प्रकट हुयी? **अर्हन् मुखकमल निवासिनी।** इसलिये अन्य किसी वाहिनी की वन्दना मैं नहीं करता हूँ। मुमुक्षुओ! न मयूरवाहिनी से मतलब, न हंसवाहिनी से मतलब। वास्तव में जो उपमा है वो उसी माँ के लिये मयूरवाहिनी, हंसवाहिनी उपमा है। वह वास्तव में है 'अर्हन्त मुखकमल निवासनी', जो अर्हन्तदेव के मुखकमल में निवास करने वाली है ऐसी माँ वाग्वादिनी, माँ भगवती जिनवाणी की वन्दना है।

माताओ! चाहे लघुपुत्र हो, चाहे ज्येष्ठ पुत्र हो, यदि आप बेटे की माँ बन चुकी हो, आर्यिका बनने के परिणाम हों, तो छोटी-सी बात मेरी मान लेना। दोनों बेटों के प्रति जिस दिन साम्यभाव आ जाए, उस दिन आर्यिका बनना। जब तक दोनों बेटों के प्रति साम्यभाव न आ पाये, तब तक तुम घर में साधना करना। और जो संसार की माँ नहीं बन पायी, ऐसी नारी को कहीं आर्यिका बनने के

परिणाम आ जाये तो उससे कहना कि मेरी बेटी! माँ, पिता, भाई, भाभी के प्रति तेरा साम्यभाव आ जाय, उस दिन तू आर्यिका बनना। जब तक भाई की पत्नि के प्रति तेरे अशुभ भाव आ रहे हैं, तब तक तुमको आर्यिका नहीं बनना है। क्योंकि इतिहास साक्षी है कि जितनी बहुयें झुलसी हैं, उसमें पति की बहिन का सहयोग रहा है। दूसरे की बेटी के प्रति अशुभ सोचने के पहले यह भी चिन्तन कर लिया करो बहिनो! कि आप भी किसी के घर की बहू बननेवाली हो।

ज्ञानियो! संक्लेशता की और विशुद्धि की बात कर रहे हैं। निमित्त तुम्हारे सामने कैसे हैं? सोना-चाँदी, हीरे-मोती जवाहरात, पन्ना-माणिक, साक्षात् सौधर्म इन्द्र का राजतिलक ठुकरा देना और कहना कि मुझे सौधर्म सभा का स्वामी नहीं बनना है, मुझे त्रैलोक्यतिलक बनना है। तो इसके लिये कर्तृत्व दृष्टि से अपने आपको सुरक्षित रखना होगा। जब तक किंचित् भी कर्त्ताबुद्धि है, तब तक मुमुक्षुओ! सौधर्म का स्वर्ग तो दूर है, भवनत्रिक में पहुँचना भी बड़ा कठिन है, क्योंकि कर्त्तृत्व दृष्टि से संक्लेशता में जीयेगा और संक्लेशता के परिणामों से दुर्गति का पात्र होता है।

ध्यान दो, वृद्ध अवस्था में देह की साधना न हो सके तो ज्यादा विकल्प मत करना। जितने बेटे बैठे हैं, बड़े ध्यान से सुनना। पिता जी जो चार घण्टे पूजा करते थे, उनसे पूजा करते न बने तो आप अशुभ सोचना मत शुरू कर देना कि पता नहीं मेरे पिता जी को क्या हो गया? पहले चार घण्टे पूजा करते थे, अब तो अवस्था ढलते-ढलते वे धर्म से दूर होने लग गये। मेरे भोले मित्र! जरा सुन। पूजन हो रही थी, उसके लिये वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम चाहिये। इन युवाओं को समझाओ, नहीं-तो आपकी वृद्ध-अवस्था में आपका अवर्णवाद फैला देंगे। जितने धर्मात्मा नगर में हैं, इन सबको बतलाओ सत्य को, नहीं-तो लोक है, अज्ञान से भरा है। अवर्णवाद फैला देगा। कैसा? चार घण्टे पूजा करते थे मेरे पिता जी, अब तो वे मन्दिर भी नहीं जाना चाहते हैं। अरे ज्ञानी! तुझे देह मात्र का धर्म दिखाई दे रहा है। 'प्रवचनसार' जी ग्रन्थ में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी

ने लिखा है—यदि इक्कीस या पच्चीस वर्ष का युवा मुनि अस्सी वर्ष के वृद्ध मुनि के अनुसार कहे कि मैं ऐसी चर्या करूँ या ये ऐसी चर्या करें, तो कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा तू अज्ञानी मुनि है। क्यों? क्योंकि यदि वे शवासन से भी सामायिक कर रहे हैं, तब भी सामायिक है और तू बैठकर भी प्रमाद में सामायिक कर रहा है, तो तेरी सामायिक नहीं है। ज्ञानी! पर्याय की प्रत्यासत्ति पर तो ध्यान दो।

माँ! कोई बूढ़ी माँ दीवाल से टिक करके पूजा करे, तो उसके प्रति अशुभ मत सोचना। मन्दिर में ऐसे नियम न बना देना कि मेरे मन्दिर में तो वही पूजा करेगा जो खड़े होकर करेगा। अन्यथा तेरे मन्दिर के अनुसार वृद्ध तो पूजा करने आ ही नहीं सकते हैं। खड़ा होना या बैठना धर्म नहीं है। आपको पता होना चाहिये धर्म क्या है? जो भावों की विशुद्धि है, शुभ उपयोग है, उसका नाम धर्म है। ज्ञानी! यदि कोई अस्सी वर्ष का वृद्ध टिक कर भी पूजा करे और हाथ टेक-टेक कर मन्दिर पहुँच जाये, वह जीव धर्मात्मा है। तू चेहरा बना रहा है, तू पापी है।

आगम का वचन है कि जो अर्हन्त की वाणी को किंचित् भी अपने अनुसार बोलता है, उसका अन्तिम समय बतायेगा, उसका नियम से कुमरण होगा। जो जीव निह्नवाचार का पालन नहीं करता है, वह व्यक्ति नियम से कुमरण को प्राप्त होगा। जिसने जीवन भर श्रुत की आराधना भावपूर्वक की हो, ज्यों-का-त्यों कथन किया है, उसकी अन्तिम विदाई की बेला बतायेगी। वो यूँ कहेगा कि मुझे निर्ग्रन्थ के चरणों में सल्लेखना व्रत दिला दो। पण्डित दरबारीलाल कोठिया, जगन्मोहन लाल शास्त्री इन दोनों विद्वानों ने विधिपूर्वक सल्लेखना की। जब पन्नालाल साहित्याचार्य का अन्तिम समय आया। मैं जानकर कह रहा हूँ ताकि इन लोगों का अपवाद न हो जाए। उस जीव ने अपने नगर सागर में कहा, बेटा! मुझे कुण्डलपुर आचार्य महाराज के चरणों में ले चलो। भीड़ अधिक होने के कारण और आचार्य महाराज विश्राम में थे, तो इन लोगों ने सोचा कि क्यों असमय में आचार्य महाराज को परेशान करो, उन्होंने द्वार पर ही पण्डित जी को रोक लिया और उस जीव की अन्तिम श्वास निकली तो अज्ञानियों ने कहना प्रारम्भ कह

दिया कि पण्डित जी की तो समाधि हुयी ही नहीं। ज्ञानियो! आपको आगम का बोध होना चाहिये। जिनवाणी के सूत्रों का ज्ञान नहीं है। अवर्णवाद क्यों कर रहे हो? आगम में जो लिख हुआ है, सुनिये ध्यान से।

यदि कोई वीतरागी श्रमण सल्लेखना की भावना से युक्त होकर निर्यापकाचार्य भगवन्त की खोज में चल दे, अपने दोषों की आलोचना के लिये चल दे, उन्होंने निज को धोखा नहीं दिया, पर आयुकर्म ने धोखा दे दिया, मार्ग में भी मृत्यु हो जाती है, तब भी वे मुनिराज आलोचक ही हैं। उनकी समाधि ही कहलायेगी, कुमरण नहीं कहलायेगा। जिस विद्वान् ने अपने घर से चलकर तीर्थ तक का रास्ता तय कर लिया, अब तुम कैसे कह रहे हो कि उनकी समाधि नहीं हुयी? उसके भावों से पूछो। समाधि पराधीन नहीं है, समाधि स्वाधीन है।

यदि परिणाम विशुद्ध होंगे, तो उस जीव की सल्लेखना को कोई नहीं रोक सकता है। मित्र! ये भ्रम निकाल दो कि पहले धर्म करते थे, अब कम कर दिया। आपको मालूम होना चाहिये कि आपको ही यदि 103 - 104 डिग्री बुखार चढ़े और भले ही तुम रोज दौड़ लगा लेते थे, लेकिन आज तुमसे कोई कहे कि दौड़ लगाकर बताओ, तो...?

मुमुक्षुओ! शरीर ने काम करना छोड़ दिया है तो कोई विकल्प मत करना। मन से कहना कि हे मन! इन्द्रियों को, शरीर को पापों में इतना शिथिल मत कर देना कि अन्तिम समय भगवान् को न देख सको, अन्तिम समय जिनवाणी न सुन सको। कान और आँखों की इतनी रक्षा करके चलना। यह जो दस घण्टे टी. वी. देखते हो, बन्द कर दो इतनी देखना। इनको सुरक्षित रखो। कदाचित् तेरे मुनि बनने के परिणाम भी हो गये ज्ञानी! नेत्रविहीन जो जायेगा, तो एक पत्थर की प्रतिमा भी अंगविहीन हो तो उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। नेत्रविहीन की मुनिदीक्षा कैसे हो सकती है? जैसे प्रतिमा सर्वांग सुरक्षित होती है, ऐसे ही दिगम्बर मुनि-दीक्षा लेनेवाले का अंग-भंग नहीं होना चाहिये। सर्वांग सुन्दर होना चाहिये। ज्ञानियो जिन-जिन को महाराज बनना हो, ये हाथ-पैर और शरीर को सुरक्षित

रखना। मुमुक्षुओ! मुनिदीक्षा हीनाधिक अंग वाले की नहीं होती है। छः अँगुली हों तो आर्यिका दीक्षा नहीं हो सकती है। हाँ, आगम यही कहता है। अपवाद मत देखना। मेरे मित्रो! अभी से किसी को अशुभ मत बोलना, अशुभ चेष्ठा शरीर से मत करना। जो शरीर से दूसरे की नकल उतारते हैं, उनके हीन या अधिक अंग हो जाते हैं। फिर बेचारे मुनि नहीं बन पाते। जब भगवान् की मुद्रा के लिये इतना पुण्य चाहिये, फिर भगवान् बनने के लिये कितने पुण्य की आवश्यकता होगी?

"उत्तिथो उत्थित" पहला अंग। मन से भी खड़ा, तन से भी खड़ा।
"उपविस्ट उत्तिथो" दूसरा अंग। शरीर से बैठा, मन से खड़ा।
"उत्थित उपविस्ट" तीसरा अंग। तन से खड़ा, मन से बैठा।
"उपविस्ट उपविस्ट" चौथा अंग। तन से भी बैठा, मन से भी बैठा।

इन चार अंगों पर ध्यान रखना। साधना चार प्रकार से होती है। कायोत्सर्ग चार प्रकार से होता है। उन रहस्यों को न जानने के कारण किसी का भी अपमान कर बैठते हैं लोग और बेचारे की भावना को ठेस लगा देते हैं। कल वो वृद्ध कहेगा भैया! मुझे मन्दिर नहीं जाना, क्योंकि मन्दिर में तो नियम है कि खड़े होकर ही पूजा करना होगी। अब मेरे वश की बात नहीं है। मैं कर नहीं सकता हूँ।

मेरे मित्र! उस वृद्ध की पूजा छुड़वाना श्रेष्ठ है कि उस वृद्ध को बैठकर पूजा करने देना श्रेष्ठ है? आपको मालूम होना चाहिये कि राजमार्ग का कथन होता है, लेकिन अपवाद मार्ग का भी तो कथन किया है। किसी विद्वान् से पूछना कि मुनिराज का आहार लेना राजमार्ग है क्या? नहीं, ज्ञानियो! अनशन स्वभाव में लीन होना राजमार्ग है। वर्तमान में आप जी नहीं सकते हैं, इसलिये साधना के लिये आहार लेना अपवाद मार्ग है। जितना अपवाद हो सकता था, हमारे आगम में आ चुका है। अपवाद कहकर शिथिलाचार को अपवाद मत कहना। पंखा, मोबाइल चलाना अपवाद मार्ग नहीं, शिथिलाचार है। कूलर में बैठना, हीटर चलाना अपवाद नहीं, शिथिलाचार है। समझ में आया? अपवाद तो यह है कि मुझे

चातुर्मास वृक्ष के नीचे करना चाहिये था, जो कि आगरा के जिनालय में करना पड़ रहा है। यह अपवाद है। ग्रीष्म वाचना जयपुर में नहीं, पर्वत की चोटी पर होनी चाहिये थी। शीत वाचना नदी किनारे होनी चाहिये थी। इसलिये भैया! आगम को आगम रहने दो, अपनी मृदुल चर्या को आगम के अनुसार अपनी मत कहो।

आगम को समझनेवाले कम लोग हैं, क्योंकि उनको समय नहीं है पढ़ने का और जो शुष्क प्रकार के लोग हो जाते हैं, परम्परावादी, वे धर्मशून्य हो जाते हैं। बड़े क्रूरपरिणामी भी हो जाते हैं। बोलते हैं कि यह हमारे मन्दिर की व्यवस्था है। अरे ज्ञानी! जिनके नाम पर मन्दिर है, उनसे पूछ कर आ, उन्होंने क्या कहा और तू क्या कर रहा है? न तेरी प्रतिमा है, ना तेरे दादा जी की प्रतिमा है। प्रतिमा तो सर्वज्ञदेव की है। जीव क्या बोलता है, कि यह मेरे मन्दिर की व्यवस्था है। ज्ञानी! यह तेरे मन्दिर की व्यवस्था नहीं, तेरी अज्ञानता की व्यवस्था है। अस्सी वर्ष का वृद्ध यदि खड़ा नहीं हो सकता है, तो एक बार आगम का आडोलन कर लो, फिर आगे की बात करो। पहला अंग दया था **"उत्थितो उत्थित।"** उत्कृष्ट साधना है उत्थितो उत्थित यानि परिणामों के साथ शरीर से भी खड़े होना। मुनिराज कायोत्सर्ग कर रहे हैं। खड़े होकर सामायिक कर रहे हैं। हाँ, शरीर से भी खड़े हैं और उत्साह से भी भरे हैं। वही साधना 'साधना' है जिसमें उमंग है। उमंग गयी, तो साधना मृतक। दूसरा अंग है **"उत्थितो उपविष्ट"** शरीर से तो खड़ा है। उत्थितो का अर्थ है खड़े होना। जो व्यक्ति देह मात्र से खड़ा है और खूब मस्त पूजा कर रहा है, लेकिन देख रहा है भीड़ को, तो तू खड़े होकर भी बैठा है। भगवान् को नहीं, भीड़ को दिखा रहा है। कभी-कभी ऐसा होता है। ज्ञानियो! भक्ति को विवेक के साथ करना। जो लोकविरुद्ध हो, अमर्यादित हो, ऐसी भक्ति कभी भी नहीं करना।

'यद्यपि शुद्धं, लोकविरुद्धं न करणीयं न चरणीयं।'

यद्यपि शुद्ध है, पर लोक के विरुद्ध है, वह कार्य कभी नहीं करना। समझ में आया? आपके मन में कोई जिज्ञासा है, महाराज खड़े हैं, तो कभी प्रश्न नहीं

करना चाहिये। चलते-चलते साधुओं को, ब्रह्मचारियों को किसी महिला से बात नहीं करना चाहिए, न ही महिला को साधुओं से बात करना चाहिये। बड़ी विनय से मर्यादा का ध्यान रखते हुये किसी के माध्यम से जिज्ञासा प्रकट करो। आगम में ऐसा लिखा है कि आर्यिका भी यदि गुरु से प्रायश्चित्त लेने जाती है, तो गणिनी आर्यिका को प्रधान बनाती है। हाँ, पुरुषों का प्रायश्चित्त दो के बीच में हो सकता है, पर महिलाओं का प्रायश्चित्त तीन के बीच में ही होता है। अब कोई कहे कि वह मेरी बात प्रकट कर देंगे, तो विश्वास दिलाओ। शिष्यों और चेला-चेली के राग में कभी अशुद्धि मत कर बैठना। एक मुनि आचार्यमहाराज से अकेले में दोषों की आलोचना कर सकते हैं। पर एक आर्यिका आचार्यमहाराज से अकेले में कोई भी प्रायश्चित्त नहीं ग्रहण कर सकती है। उसे ज्येष्ठ आर्यिका के साथ ही जाना होगा। वस्तुस्वरूप समझो।

तीसरा अंग है **"उपविष्ट उत्थित"** शरीर में सामर्थ्य नहीं है, अस्वस्थ है, वृद्ध अवस्था है, तो बैठे हुये हैं। विशुद्धि तो परिणामों से ही होगी, मुमुक्षुओ! अन्य किसी परिणामों से नहीं होगी। मेरा नाम मत समझ लेना, यह तो संज्ञा मात्र है, जो गुरु ने दी है। परिणति नामक विशुद्धि की बात कह रहा हूँ। पर यह भी सत्य है कि नाम अच्छे ही रखना चाहिये।

ज्ञानियो! जिन-जिनके नाम खोटे हों, उन्हें नाम बदल देना चाहिये। भगवानों के अच्छे नाम रखना। महावीर, पारस, शान्ति। यदि मरणकाल में बेटे के राग में भी नाम पुकारा, तो हो सकता है कि भगवान् याद आ जायें, ज्ञानी! कम-से-कम मुख से तीर्थंकर का नाम तो निकलेगा।

''आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परिणामों का फल"

संक्लिष्टचेतसां पुंसां, बुद्धिः संसारवर्द्धिनी।
विशुद्धचेतसां वृत्तिः, सम्यक्त्ववित्तदायिनी॥ 173॥

अन्वयार्थ-संक्लिष्टचेतसां पुंसां = संक्लेश परिणामधारी पुरुषों की, **बुद्धिः** = बुद्धि, **संसारवर्द्धिनी** = संसार को बढ़ानेवाली होती है, **विशुद्धचेतसां वृत्तिः** = परन्तु निर्मल भावधारी पुरुषों की प्रवृत्ति या सहनशीलता, **सम्यक्त्ववित्तदायिनी** = सम्यग्दर्शनरूपी धन को देनेवाली होती है।

भावार्थ-हे ज्ञानी! संक्लिष्ट परिणामधारी पुरुषों की बुद्धि संसार को बढ़ाने वाली होती है और निर्मल भाव वाले पुरुषों की प्रवृत्ति सम्यक्त्व रूपी धन को प्रदान करनेवाली होती है।

"चित्त-विशुद्धि का फल"

यदा चित्तविशुद्धिः स्यादापदः सम्पदस्तथा।
समस्तत्त्वविदां पुंसां, सर्वं हि महतां महत्॥ 174॥

अन्वयार्थ-यदा चित्तविशुद्धिः स्याद् = जब मन में विशुद्धता रहती है तब, **तत्त्वविदां पुंसां** = तत्त्वज्ञानी पुरुषों के चित्त में, **आपदः तथा सम्पदः समः** = आपत्ति में एवं सम्पदाओं में समान भाव रहता है, **महतां सर्वं हि महत्** = महान् पुरुषों को सर्व ही चेष्टा महान् होती है।

भावार्थ-हे मुमुक्षु! जब तत्त्वज्ञानी पुरुषों के चित्तविशुद्धि होती है, तब आपत्ति और सम्पदा में उनका समभाव रहता है, क्योंकि महापुरुषों की चेष्टा महान् होती है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मशान्ति के मार्ग को सहज रूप से समझा रहे हैं। जितनी सुखसुविधाओं की आकांक्षा है, जितने प्रकार की अभिलाषायें हैं, इच्छायें हैं, ज्ञानियो! वे सभी संक्लेश परिणाम हैं। यह इच्छायें/आकांक्षायें आत्मविशुद्धि का नाश करनेवाली हैं। सत्यसुख की अभी तक आपने अनुभूति नहीं ली है। स्वयं पर यदि विचार करना है तो ज्ञानियो! अपनी इच्छाओं को अपने से भिन्न करके देखो। तत्क्षण आपको आनन्द प्रारम्भ हो जायेगा। यदि किसी जीव ने करौंच की फली से युक्त वस्त्रों को धारण कर लिया हो तो उसको सर्वांग में खुजली प्रारम्भ हो जाती है। कहीं साता नहीं नजर आती है, लेकिन उस वस्त्र को हटाते ही अपने आप को सुखी महसूस करता है। ज्ञानियो! ये करांच की फली की खुजली तो शीघ्र ठीक हो जायेगी, पर इच्छाओं की खुजली जो चैतन्य आत्मा में होती है, उसको ठीक करना बहुत कठिन होता है। जितने कष्ट को प्राप्त हो रहे हैं, अशान्ति को प्राप्त हो रहे हैं, कहीं-न-कहीं इच्छा है। वस्तु के होने पर भी इच्छा है, वस्तु के न होने पर भी इच्छा है। वस्तु आपके यहाँ से होकर चली गयी, तब भी इच्छा है। वस्तु आनेवाली है, तब भी इच्छा है। यह त्रैकालिक इच्छा चल रही है।

मेरे थे, मेरे होंगे, वह भी दोनों कष्ट दे रहे हैं। मेरे हैं, वह भी कष्ट दे रहे हैं। कम-से-कम जो थे, उनका ही तुम त्याग कर दो। 'थे' शब्द को समझ रहे हो। तेरे पिता जी थे, तेरे दादा थे। अब तो सामने आनेवाले हैं नहीं। माना कि किसी व्यक्ति की पत्नि का देहान्त हो गया। ओ अज्ञानी भोले प्राणी! तू रात्रि में भी सोच रहा है कि मेरी देवी थी। दिन में भी जब भोजन का समय आता है तब सोचता है। जब विश्राम का समय आता है, तब सोचता है। जब तीर्थयात्रा का समय आता है, तब सोचता है।

मुमुक्षु! गये हुये के बारे में सोचकर अपने शौच का नाश क्यों कर रहा है? वो तो चला गया, उसे कोई तनाव नहीं है। जिसकी मृत्यु हो गयी है, वह यदि

संसार में भटक रहा है, तो वह तो किसी दूसरी पर्याय को प्राप्त हो गया है। वह जहाँ गया है, वहाँ लोग प्रसन्न हो रहे हैं। पर रोयें वे, जो उसे अपना मान बैठे थे। जो गया है, उसे दु:ख नहीं है। वह तो किसी माँ की गोद में पहुँच गया और एक माँ मुस्कुरा रही है कि मेरे घर में बेटे ने जन्म ले लिया। उसके लिये तो दूसरा परिवार मिल गया। पर तू अपने आप में वियोग में बिलख करके असाता का आस्रव कर रहा है। संक्लेशता का वर्द्धन करके बन्ध को प्राप्त हो रहा है। जो वस्तु जा चुकी है, जिसकी पर्याय नष्ट हो चुकी है, वह अब तेरे हाथ में आने वाली नहीं है। जिसका संयोग-वियोग होता है, उसके लिये तुम रो रहे हो।

ज्ञानी! इच्छा की पूर्ति इच्छा से नहीं होती। इच्छा की पूर्ति के लिये पुण्य का जन्म चाहिये। जिसके अन्तस् में पुण्य का द्रव्य नहीं है, वह इच्छा करके अशान्ति को प्राप्त कर सकता है, लेकिन इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकता है। इच्छा का जन्म तेरे अन्तरंग में हो सकता है, कामनाओं का जन्म तेरे अन्तरंग में हो सकता है, लेकिन कामनाओं की पूर्ति तेरे मन के जन्म पर नहीं है। कामनाओं की पूर्ति तेरे पुण्यकर्म के उदय पर है। पुण्य का द्रव्य नहीं है तो इच्छायें जन्म लेकर मर जायेंगी, पर इच्छित की प्राप्ति के अभाव में कर्म देकर अवश्य चली जायेंगी। समझ में आ रहा है? आप चाहो तो अभी इसी क्षण बहुत सुखी हो सकते हो। उदास चेहरे प्रसन्न हो जायेंगे।

भइया! कहीं कष्ट नहीं है। तेरे से अधिक सुखी तो दुनियाँ में कोई जीव नहीं होगा। सुखी वे हैं, जिनके अन्तरंग में देव-शास्त्र-गुरु का निवास है। सुखी सम्पत्तिशाली वे हैं, जिनके पास जिनेन्द्र की भक्ति के गुणों की सम्पत्ति रखी हो। सुखी वे हैं जो जिनेन्द्रदेव और जिनवाणी से अपने हृदय को भरे हों। इसलिये धन को मत देखना। जो शत्रु को जन्म दिलाती हो, उस सम्पत्ति को मत देखना। जो विश्वास का घात कराने के लिये परम विष है, परस्पर की मैत्री का नाश करने वाला कोई है, तो उसका नाम पैसा है। प्रीति को भंग करानेवाला है, उसका नाम पैसा है। यदि तेरे पास धन अधिक हो गया और भैया कुछ नहीं कर रहा

है, तो तेरा मन करेगा कि यह कुछ करता भी नहीं है और अलग भी नहीं है, मुझे देना पड़ेगा। जब कुछ नहीं था, तब दोनों भाई प्रेम से रहा करते थे। दोनों एक दूसरे को सुख-दुःख में पूछ लेते थे। पर आज मेरे पास कुछ है, तो मन में भाव आता है कि भैया! ज्यादा मोह मत लगाओ, नहीं-तो कुछ माँगने आ जायेगा।

यह संसार की लीला है। धन! तू कैसा है? जो मेरा सगा भाई था, वह और मैं गरीबी के दिनों में एकसाथ भोजन आदि किया करते थे। पर जब से पैसा आया है, तब से मन में भाव आ गया है कि ज्यादा मत बुलाओ अन्यथा कुछ माँगेगा तो फिर मुझे ही देना पड़ेगा।

हे सम्पत्ति, हे धन! इतिहास साक्षी है कि बेटे ने पिता को भी कैद करके डाला है तो सम्पत्ति के नाम पर। आपको विश्वास न हो तो आगरे के किले को देख लो। आपको मालूम होगा कि यहीं औरंगजेब ने अपने पिता को कैद करके डाल दिया था। बस, बेचारा कैद में ताजमहल देखता रहता था। ज्ञानी! सबके दिन एक-से नहीं होते। क्या कभी औरंगजेब के पिता ने सोचा था कि मैं यह किला इसलिये बनवा रहा हूँ कि इसमें मुझे कैद होकर रहना पड़ेगा? पता होना चाहिये कि **जब अशुभ के दिन आते हैं तो भैंस-गाय के सींग खुद ही ऐसे मुड़ते हैं कि उसी की आँख में चले जाते हैं और उसी के सींग से उसकी आँख फूट जाती है। अपघात नामकर्म के उदय से जीव का स्वयं का घात स्वयं के द्वारा होता देखा जाता है। स्वयं के दाँतों से स्वयं की जिह्वा काट कर आ जाते हैं अज्ञानी लोग।**

ज्ञानी! अशुभ कर्म के उदय में आपके दाँतों से आपकी जीभ भी कट जाती है। ऐसा देखा कि नहीं देखा? इच्छा की इतनी तीव्रता कि कोई छीन न ले जाये तेरे भोजन को, तो तूने इतना जल्दी-जल्दी खाया, तो कर्म कह रहा था कि भोजन के साथ जीभ को भी खा लो। आपको समझ में आ रहा है क्या?

आचार्यों का चिन्तन है। यह वस्तुव्यवस्था ऐसी है कि कहीं शत्रुता नहीं है, कहीं दु:ख नहीं है। जितनी तीव्र इच्छायें होंगी, तीव्र कषाय प्रारम्भ होगी, और जहाँ तीव्र कषाय होगी, वहाँ तीव्र कष्ट होगा। सुख-शान्ति चाहते हो तो आचार्य कुलभद्र स्वामी ने कहा है **विशुद्ध परिणामेन शान्तिर्भवति।** पूर्ण स्थिर हो जाओ। यूँ ही मानकर चलो कि मैं सामायिक कर रहा हूँ। विशुद्ध परिणामों से शान्ति मिलती है। एक क्षण को तू ही कलश, तू ही भगवान्, तू ही जल, तू ही ढारनहार। अब अपने परिणामों से पूछो। "विशुद्ध परिणामेन शान्तिर्भवति।"

मुमुक्षुओ! न भगवान् के पास शिकायत लेकर पहुँचना, न गुरु के पास शिकायत लेकर पहुँचना, न जिनवाणी के पास शिकायत लेकर जाना। यदि आप विश्व में शान्ति की आकांक्षा रखते हो, तो आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि जगत् से अपने आप को भिन्न कर लो और विशुद्ध परिणाम को स्वीकार कर लो, एक क्षण में तुमको शान्ति की प्राप्ति होती है। एक श्वान के मुख में रोटी का ग्रास है तो पचास श्वान उसके पीछे झपट रहे हैं। **जिसके मुख में रोटी है, उसका ग्रास कोई इधर से कोई उधर से खींच रहा है। अरे ज्ञानी! या तो भीतर ले जा या बाहर फेंक दे। तू जब तक दिखा रहा है, तब तक तुझे अनेक श्वान झपटने वाले हैं। बस, इसी तरह तू भी इच्छाओं की रोटी मुख में दबाये घूम रहा है, तो हे ज्ञानी! कषाय के श्वान तुझे काटने को खड़े हुये हैं। इच्छाओं की रोटी को फेंक दे तो कषाय के श्वान तुझे काटना बन्द कर देंगे।**

यह ध्रुव सत्य है कि इच्छाओं का त्याग कर दो तो कषाय स्वयं ही शिथिल हो जायेगी। जो-जो यहाँ पर कुछ सोच कर कुछ लेने-देने की भावना से आये हों, आप क्षणमात्र में सोच लो, क्यों दूसरे के परिणाम संक्लेशित करो और अपने परिणाम संक्लेशित करो? छोड़ो। भाग्य होगा तो पुन: मिलेगा, विश्वास रखना, अभी शान्ति मिलती है तुझे। पर जिसके मन में भाव है कि कुछ भी हो जाये, मैं तो नहीं छोड़ सकता हूँ। हाँ, तुम मत छोड़ो, प्राण ही तुझे छोड़ देंगे। तू प्राण

छूटने के बाद भी परिग्रह को लेकर जायेगा। कितने लोग अंतरंग की अशान्ति से जहर खा लिये। फाँसी लगा लिये। मेरा सोच है कि यदि कोई किसी को कुछ नहीं दे सकता है तो कम-से-कम मुनियों में, निर्ग्रन्थों में, हमारे विद्वानों में, समाज के बुजुर्गों में, युवकों में एक ऐसा प्रवेश कर जाये कि हर आदमी को सत्य का ज्ञान करा दे।

ज्ञानी! जगत् के प्रपंच, जगत् के ढोल-धमाके इन नेत्रों की चकाचौंध मात्र है। पर मेरे मित्र! यदि तू सच्चा विद्वान् है तो समाज को भावात्मक स्थिति पर खड़ा कर दो। आज हम अतिरेक कर देते हैं तो व्यक्ति अर्थ के खर्च में तो खड़ा हो जाता है, लेकिन भावनाओं की विशुद्धि से दूर हो जाता है।

जिस दिन आपको पूजा करने के भाव आयें, जिस दिन आपको पंचकल्याणक या सिद्धचक्र विधान आदि के भाव आयें, भैया! हृदय की डायरी पर अंकित कर लेना। मेरे मित्रो! आप यहाँ तक आये हो और मन्दिर तक पहुँच गये और आपने धन का व्यय भी किया है। धन का अर्जन जो किया था, उसके लिये आपने वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम, शरीर और ज्ञान सभी के क्षयोपशम नष्ट किये थे। आयुकर्म भी नष्ट किया था, तब तुमने धन कमाया। उस धन को लेकर आज तुम मन्दिर में खड़े हो गये। मुमुक्षुओ! पहले आपने कमाने में आयुकर्म नष्ट किया था, आज तुम दान देने में नष्ट कर रहे हो। लेकिन अपने मन से कह देना—हे मित्र! मैंने तेरी सम्पूर्ण आकांक्षाओं को पूर्ण किया है और एक भव नहीं, अनन्तानन्त पर्यायें तेरी इच्छाओं को पूर्ण करने में प्रदान की हैं। आज जरा-सी छोटी बात को मेरी मान लो, आज मैं तीर्थंकर के चरणों में हूँ, कि आज मेरा साथ देना। इनके अलावा दूसरे को मेरे चित्त में मत लाना, इतनी-सी मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लो।

हे मन! जब तक मैं भगवान् के चरणों में हूँ, तब तक तू दूसरे के पास मत ले जाना। नहीं तो धन व समय दोनों गये। आयुकर्म के निषेक भी गये यदि मैंने दूसरे को देखना प्रारम्भ कर दिया तो क्या मिला? ज्ञानियो! समझ में आ

रहा है? इसलिये जब-जब मन्दिर आओ, तब मन से कह दिया करो कि इस समय तुम हलचल मत करना, मात्र जिनदेव को देखना। ज्ञानी! तैयारी से आओगे, तो विश्वास रखना, मन तेरी बात को मान लेगा। मैं विश्वास से कह रहा हूँ। मुझे इस समय न तो दूसरे की बात सुनना है, न ही दूसरा दृश्य देखना है। चिन्तन दूसरे का नहीं करना है। मात्र जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु। जिसने अभ्यास कर लिया, मैं अच्छे से कह सकता हूँ, वो दिगम्बर मुनि बनने के बाद आत्मा का ध्यान करने का योग्य पात्र बन चुका है। आज से इतना करोगे। संगीत की ध्वनियाँ संगीत में हों, गीत की आवाजें गीत में हों, पर मेरे अन्दर प्रभु मात्र दृष्टिगोचर हों।

सुनो! बाजे बजने पर थिरके, यह सत्य नहीं है। यह स्वर की लहरियों में कर्ण इन्द्रिय के विषय में पैर थिरक गये। मैंने बाजे बजने पर घोड़े को भी नाचते देखा है। यह परसापेक्ष है। यह तेरी भक्ति में राग की मिश्रधारा थी। जब कोई बाजा न हो, कोई देखनहार न हो, एकांत हो और तू जिनदेव को देख रहा हो, फिर तेरे पैर थिरक रहे हों, यह सच्चे भक्त का संगीत चल रहा है।

जब जिनेन्द्र की प्रतिमा को देखकर **'दृष्टं जिनेन्द्र भवनं भवतापहारी'।** भवन मात्र (जिसमें जिनेन्द्र विराजे हों) के दर्शन से भव के ताप नष्ट हो जाते हैं, तो जिनेन्द्र के बिम्ब की आराधना करने से नियम से कर्म का नाश होता है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, पापसंघात कुञ्जरम्।
शतधाभेद.मायाति, गिरी वज्रो हतोयथा॥धवला॥

तुम जीवन में कुछ भी त्याग-तपस्या न कर पाओ, लेकिन कम-से-कम दिन में एक बार भगवान् को देखकर आ जाना, तो इतना तो ध्यान रहेगा कि में जिनेन्द्र का भक्त हूँ। जैसे गाज के गिरने पर पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, ऐसे ही प्रभु के चरणों में एक बार दृष्टि के पड़ते ही सच्चे भक्त (सम्यग्दृष्टि जीव) के पापरूपी हाथी के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इसलिये ज्ञानियो! अर्हन्त की वंदना

करते रहना।

मित्र! परसापेक्ष आनन्द नहीं, निरपेक्ष आनन्द लो। समयसार जी की भाषा में कहें तो, अहो ज्ञानियो! तेरा जीवन निकला जा रहा है। एक बार शुद्ध दाल का स्वाद तो चख ले। शुद्ध शाक का स्वाद तो चख ले। चखा कभी? शुद्ध दाल खायी? छोंक लगाकर, नमक-मिर्च आदि का संयोग होने पर तू कह रहा है कि कितनी स्वादिष्ट दाल है। ज्ञानी! तूने दाल का स्वाद नहीं लिया। शुद्ध दाल को कहाँ चखा? ऐसे ही जिसने भगवान् की शुद्ध शक्ति को नहीं देखा, वह निज की अभेद भक्ति को क्या देख सकेगा? शुद्ध दाल का स्वाद चखा क्या? मिला-मिला कर दाल का स्वाद चखा है। वह दाल का नहीं। मिर्च, नमक, खटाई आदि का मिश्र स्वाद था। ज्ञानी! जिसमें कुछ न पड़ा हो, मात्र दाल-ही-दाल हो, शुद्ध दाल को चखकर तो देखो कैसी लगती है?

ज्ञानियो! जैसे शुद्ध दाल का स्वाद पर-मिश्रण से रहित होता है, ऐसे ही अर्हन्त की शुद्ध भक्ति है। न ताल, न बाजा, न संगीत। एकमात्र प्रभु **'पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः'** पूज्य के गुणों में जो अनुराग है, वह भक्ति है। एक क्षण ऐसा आता है जब मैंने जल समर्पित किया तब उपयोग कलशिया में था। इतना तूने अपने भगवान् और अपने बीच में अन्तराय डाल लिया। जहाँ द्रव्य नहीं, द्रव्य में द्रव्य का नियोजन चल रहा हो, इसका नाम शुद्ध भक्ति है। मात्र अर्हन्त और मैं, यह भाव भक्ति चल रही है। पर जब तब आप यहाँ तक नहीं पहुँच पाओ, तब तक छोड़ मत बैठना कि चलो, द्रव्य चढ़ाना छोड़ो। जो द्रव्य नहीं चढ़ाता है, वह तो पापी होता है। अरे! दो-दो बातों में ही तो स्याद्वाद है। **जो व्यक्ति द्रव्य चढ़ा रहा है वह जिनदेव और निज के बीच में अन्तराय डाल रहा है। क्यों? एक क्षण में एक ही उपयोग होता है और एक समय में एक ही कार्य होता है। यानि आपने उतने समय तक अंतराय डाल दिया है। निर्मल अद्वैत भक्ति की बात करोगे, परम विशुद्धि की धारा में जाओगे, तो निर्ग्रन्थ योगी से कहेंगे—स्वामी! जब अर्हन्त प्रभु को देखने के लिये तुमने आँख उठायी है,**

इतने में आपने अपने में देखने में अंतराय डाल लिया, इसलिये आपको अर्हन्त को भी देखने की आवश्यकता नहीं है।आप अपनी भगवान्-आत्मा को देखो। कैसा लग रहा है? मुमुक्षुओ! तो क्या कल से द्रव्य चढ़ाना बन्द?

हे अज्ञानी-ज्ञानी! जो द्रव्य नहीं चढ़ाता, वह घोर पापी होता है। हे मुमुक्षु! यदि पर का द्रव्य, मुफ्त का चन्दन घिसा, तो तेरा क्या गया उसमें? खाने के लिये पैसा लुटा सकता है, विषयों में नष्ट कर सकता है, वस्त्रों में खर्च कर सकता है, लेकिन घर से सुन्दर स्वच्छ उज्जवल द्रव्य को लाकर भगवान् की भक्ति नहीं कर सकता है। जिस व्यक्ति को लोभ होगा, वह अच्छा द्रव्य नहीं चढ़ायेगा। मोक्षफल की प्राप्ति के लिये छोटी-छोटी कड़वी बादाम चढ़ायेगा। हे ज्ञानी! कड़वी बादाम से मोक्ष नहीं मिलेगा। खाने में भले ही कमजोर द्रव्य आ जाये, पर प्रभु के चढ़ाने में कमी कभी मत करना। मित्र! आप यह मत कहना कि महाराज! वह तो माली के घर में जाती है। अरे अभागे! तू माली को सोच रहा था, कि प्रभु को चढ़ाने आया था? जो यूँ कहता है कि माली के घर में जायेगा, उसकी पूरी पूजा माली की हुयी, उसने किसकी पूजा की? माली की पूजा कर रहा था।

हे मुमुक्षु! जब द्रव्य चढ़ाने खड़े हो, अपनी शक्ति से अधिक करना नहीं और जितनी शक्ति हो उसे छिपाना नहीं। फिर तो भक्तिपूर्वक चढ़ाये गये ज्वार के दाने भी मोती बन जाते हैं। बिना भक्ति के मोती चढ़ाने वाले के राख हो गये। यह जीव की आस्था का विषय है। जो द्रव्य नहीं चढ़ाता, वह पापी क्यों? स्पष्ट कर लो।

इसलिये पापी कहा है कि अहिंसा धर्म है अपना। हिंसा दो प्रकार की होती है—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा। पर के प्राणों का वियोग करना तो द्रव्यहिंसा है। स्वयं के भावों को काषायित करना, यह भावहिंसा है। ज्ञानी! तू द्रव्य क्यों नहीं चढ़ा रहा? क्योंकि पैसे खर्च हो जायेंगे। लोभकषाय। बोले, महाराज! लोभ नहीं था। सोचा था कि कौन लेकर चले। ज्ञानी! तो भी नहीं बचोगे, और-पापी हो

गया। प्रमाद। मैंने सोचा कि ले लूँगा किसी से। क्यों इतना वजन लेकर चलूँ? अरे! **"कुशलेषु अनादरः प्रमादः"** कुशल क्रियाओं में अनादर करने का नाम 'प्रमाद' है। सबसे कुशल क्रिया कोई है तो अर्हन्त की भक्ति करना है। कुशल यानि पुण्य। आपने यूँ कहा कि लोभ नहीं था, लेकिन कौन लेकर आये, इसलिये नहीं लाया हूँ। क्यों? प्रमाद। ज्ञानी! प्रमाद भी हिंसा है। आगम में हिंसा की परिभाषा जब भी होगी, तब सबसे पहले 'प्रमाद' आयेगा।

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।" आगम के प्रत्येक पक्ष को दार्शनिक दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दो और यह विद्या तुम अकलंक स्वामी के अध्ययन से ही सीख पाओगे। राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक इन ग्रन्थों को तुम देखो, तब समझ में आता है। जब तुम पूजा की चर्चा कर रहे हो। इसमें भी न्याय को रख दिया है। **जो गृहस्थ पूजन नहीं करता, द्रव्य नहीं चढ़ाता, वह हिंसक है। क्योंकि लोभकषाय उसके अन्दर बैठी हुयी है। जिसने कभी पूजा नहीं की, दान नहीं दिया, निर्ग्रन्थों के अपने घर में चरण नहीं धोए, उसका भवन श्मशान घाट है, घोरपापी का घर है।** महाराज! आप ऐसा क्यों बोल रहे हो? ज्ञानी! मैं नहीं बोल रहा हूँ। मैं तो आपको 'ज्ञानी' बोल रहा हूँ। पर महापापी तू इसलिये है कि तू क्यों नहीं चरण पखारना चाहता? ऐसा भी तो भाव आ सकता है कि एक दिन के चौके में बहुत सारा खर्च आता है, इसलिये ऐसे-ही हाथ जोड़ लो या दूसरे के घर में देकर आ जाना। भैया! तेरी लोभकषाय का त्याग नहीं हुआ। वास्तव में देना-लेना धर्म नहीं है। तुमने दिया, वह तो पौद्गलिक द्रव्य था। पुद्गल से धर्म होता है क्या? रोटी का टुकड़ा यदि तुमने मुनिराज के हाथ पर रख दिया, तो रोटियाँ बनाओ, सबको खिलाओ, क्योंकि रोटी में धर्म है। ज्ञानी! रोटी के टुकड़े में धर्म नहीं है। रोटी का ग्रास जब निर्ग्रन्थ के हाथ मैं देते हैं और परिणामों में विशुद्धि नहीं है, तो बड़े-बड़े तीर्थों में नौकर लोग आहार देने को लगे रहते हैं, तो फिर वे भी धर्मात्मा हो जायेंगे? जबकि उनको कोई प्रयोजन नहीं है। उन्हें तो बस अपनी वेतन से प्रयोजन है। मन्दिरों में पुजारी नहीं लगाना और मुनियों

को आहार देने के लिये नौकर नहीं लगाना। नहीं-तो फिर आप जानो।

ज्ञानियो! अर्हन्त की पूजा, निर्ग्रन्थ को दान और संतान को जन्म नौकरों से नहीं कराना पड़ता है। वह दान किसका कहलायेगा? परिणामों की विशुद्धि किसको होगी? ऐसा मत कहना कि मैं तो अध्यक्ष हूँ, सब लोग करो पूजा, मैं तो देखता हूँ। ज्ञानी! चाहे अध्यक्ष हो या मन्त्री, एक सम्यग्दृष्टि जीव को पंचपरमेष्ठी के चरणों में जाने की छटपटाहट/लगन स्पष्ट दिखाई देती है। जैसे भूख लगती है तो आप रह नहीं पाते हो। लोभकषाय का त्याग करने के लिये वस्तु छोड़ी जाती है। समझ में आ गया? इसलिये जब तक तुम गृहस्थ हो, निरालम्ब ध्यान में नहीं जा सकते हो, तब तक आप आराध्य-आराधक भावों से युक्त होकर पंचपरमेष्ठी की द्रव्यसहित पूजन करो। लेकिन जिस दिन तुम निर्ग्रन्थ मुनि बनकर बैठ जाओगे, फिर यह अन्तराय मत डालना, फिर तो निज में निज की भक्ति करना। एक-एक सूत्र पर चिन्तन करो।

"विशुद्धपरिणामेन शान्तिर्भवति सर्वतः" विशुद्ध परिणामों से शान्ति मिलती है। विशुद्ध परिणाम पंचपरमेष्ठी के पादमूल में होते हैं। आप विश्वास रखना। जितने प्रशस्त परिणामों से श्रीजी की प्रतिष्ठा हुयी होगी जिसमें प्रतिष्ठाचार्य निर्लोभी, सूर्यमन्त्र दाता गुरु निर्दोष संयमी और प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान पूर्ण निर्लोभी होगा उसने धन लगाया हो, तब प्रतिमा में चमत्कार घटित होते हैं। भैया! लात जाओ, धरत जाओ, मरत जाओ, ऐसा नहीं हो। समझ में आया? साहूकारों का पैसा जो है, वह धन है। जो ईमानदारी से अर्जित है, उसका नाम सम्पत्ति है। अर्हन्त की भक्ति और साधु को दान कभी ऐसे द्रव्य से मत करना जो पाप से आया हो।

मुनियों को 'मूलाचार' जी में राजपिण्ड ग्रहण करने का त्याग लिखा है। हे महाराज! तीर्थंकरों के तो राजा के यहाँ आहार हुये हैं। उसके दो अर्थ हैं। राज्यपिण्ड ग्रहण का त्याग है मुनियों का। जो राजा जनता का टेक्स लेता है उस टेक्स से जो भोजन बनता है, उस आहार को साधु नहीं ले सकते हैं। एक दोष। दूसरा

दोष है कि जैसा गरिष्ठ गर्वीला भोजन राजा स्वयं करता है, वैसा गरिष्ठ भोजन साधु नहीं करते हैं। तो यहाँ राजपिण्ड ग्रहण का निषेध क्यों किया गया है? क्योंकि यहाँ टेक्स जैनों का भी जाता है और जो माँस बेच रहे हैं, उनका भी वहाँ द्रव्य जाता है। मछली पालन केन्द्र का भी टेक्स जा रहा है। जितने प्रतिष्ठाचार्य यहाँ बैठे हैं, ध्यान से सुनना। तीर्थंकर के पंचकल्याणक आदि जो कराने जा रहे हैं, आप विधान आदि करा रहे हो, ध्वजदण्ड पर जो ध्वजा फहराते हो, इतनी-सी बात मान लेना कि किसी नेता को मत बुलाना। प्रश्न पूछो, क्यों? यदि तुमको किसी कारणवश बुलाना ही पड़ जाये, तो दूसरी जगह एक स्तम्भ पर डोरी खिंचवा देना, पर मूल जो ध्वज है, वह किसी त्यागी, व्रती, धर्मात्मा जीव से खिंचवाना। प्रतिष्ठा का कोई फलदान होता है तो वह ध्वजा से होता है और यदि ध्वजा ही तुमने ऐसे आदमी से खिंचवा दी जिसके मुख में किसी प्रकार का अशुद्ध द्रव्य जाता हो तो उसके हाथ से ध्वजा खिंचवाकर तुम क्यों अमंगल करना चाहते हो? जो श्रावक मन्दिर में साल भर पूजा कर रहे हैं, उन्हें ही कभी बुला लिया करो।

देखो, जरा-सा अहम चामुण्डराय को आ गया था, सो बड़े-बड़े घट भी काम में नहीं आये थे। वो बुढ़िया की लुटिया काम कर गयी थी, लेकिन वहाँ चामुण्डराय के घड़े काम में नहीं आये थे। क्यों? उसने सोचा कि मैंने इतनी बड़ी प्रतिमा विराजमान की है। मैं यह सब क्यों कह रहा हूँ? क्योंकि विशुद्ध परिणामों से ही धर्म होता है। और धर्म क्यों करते हो? शान्ति के लिये करते हो।

अरे! आज देखो यहाँ उपदेश चल रहा है। उन युवाओं को तुम बार-बार साधुवाद दो कि बेटा! तुमने गर्मी में इतनी तपन में तपस्या कर ली तो आज तुमको जिनवाणी का शीतल जल मिल रहा है। अब यहाँ पर शान्ति है। ज्ञानियो! आनन्द भी आ रहा है। नेता जो आते हैं, वे भी श्रोता बनके आते हैं। इतनी शान्ति से आप दो कक्षाओं का आनन्द ले रहे हो, क्योंकि अन्यथा प्रवृत्ति नहीं हो रही है। यही आनन्द का कारण है। नहीं-तो पता चलता कि एक घण्टे उदक-चन्दन में निकलता, एक घण्टा संगीत में जाता और कुछ नेताओं के लिये

जाता। मात्र पाँच मिनिट आपको जिनवाणी सुनने मिल पाती।

अब पूरी शैली बदल देना। तत्त्व-उपदेश को प्रधानता दो। विश्वास रखना, हृदय की जो गाँठें खुलती हैं, वह तत्त्व-उपदेश से ही खुलती हैं। यहाँ तक कि उपदेश करनेवाले के अन्दर भी कोई कमी हो तो गहरे में जो उपदेश देता है, तो स्वयं भी लगता है कि मैं क्या कर रहा हूँ। तब तू कहेगा कि मैं तो नाली का पानी हूँ। कब कह पायेगा? जब भीतर में झाँक कर देखेगा। उपदेश गहरा ही देना, भावरूप ही देना। कथा भी करना हो तो भावनात्मक शैली में करना, क्योंकि जब तक अन्तस् हिलोर न ले, तब तक मैंने तत्त्व सुना क्या? ज्ञानियो! संक्लेशित चित्त से तीनकाल में शान्ति मिलनेवाली नहीं है, इसलिए इच्छाओं का दमन कर दो, कषायों का शमन कर दो तो आज ही शान्ति तेरे पास है, सुख है। किसी से लेना-देना हो और आपने निर्णय कर लिया कि मैंने तो छोड़ा, तो तू भी सुखी, मैं भी सुखी। कदाचित तेरा भाग्य प्रबल होगा तो पण्डित बनारसीदास तो इसी गाँव में हुये। ताजगंज में उन्होंने 'समयसार नाटक' की रचना भी की है। सुनो, एक दिन पण्डित जी के यहाँ डाका पड़ा। चार चोर आये। इतना भरा कि तीन को तो एक दूसरे ने उठा दिया, एक बचा। अब पोटली वजनदार थी, उठ नहीं रही थी। अब सोचो। बनारसीदास देख रहे थे कि बेचारा परेशान है। धन्य है ऐसे भी श्रावक हुये कि अपने हाथ से उठाकर पोटली उन चोरों के सिर पर रख दी और वह ज्ञानीजीव सोच रहा है कि लक्ष्मी से लक्ष्मी नहीं आती है। भाग्य होगा तो जा नहीं सकती है। भाग्य नहीं होगा तो कोई पकड़ नहीं सकता है। आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

लेकर तो चले गये चोर और जैसे-ही घर पहुँचे, माँ से कहते हैं कि माँ! आज तो मैं ऐसे पागल के घर डाका डाल कर आ रहा हूँ कि जिसने मेरे सिर पर अपनी सम्पत्ति स्वयं रख दी। माँ कहती है, बेटा! हो-ना-हो तू पण्डित बनारसीदास के यहाँ गया होगा। इतना सज्जन वही है। बेटा! तू सुन, उस साधुपुरुष के धन को तू पचा नहीं सकता है। मेरे आँचल का पान यदि तूने किया है तो

मेरी बात मान ले, बेटा! इसको वापस करके आ। कुछ क्षण बीते, चार आदमी पोटली लिये बनारसीदास के घर की ओर चले आ रहे हैं और पण्डित जी मुस्कुरा रहे हैं, कि **'जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।'**

ज्ञानियो! देखो, वह जीव मुस्कुरा रहा था, कह रहा था कि अज्ञानी लोग भूतों की पूजा करते हैं, प्रेतों की पूजा करते हैं, लक्ष्मी के चक्कर में पड़े हैं। शनि, रवि, सभी ग्रहों को पूज रहे हैं। दुनियाँ को पूज रहे हैं। पर ज्ञानी अपने पुण्य को पूज लेता तो इन सब को क्यों पूजना पड़ता?

हे मित्र! **न तुझे कोई लक्ष्मी देता है, न कोई उपकार करता है, न ही कोई अपकार करता है। उपकार या अपकार करनेवाला कोई है, तो वह है मेरा पुण्य-पाप का उदय। भैया! वर्तमान का पुरुषार्थ कमाते दिख रहा है, लेकिन तेरे भूत का भाग्य नहीं होगा तो वर्तमान का पुरुषार्थ क्या करेगा?**

ज्ञानी! तुमसे ज्यादा मेहनत तो किसान कर लेता है। आटो वाले कर लेते हैं। लेकिन दिन भर की मेहनत के बाद भी बेचारों को क्या मिलता है? और एक वो जीव है कि एक मोबाइल लगाता है और अरबों-खरबों का व्यापार कर लेता है। बताओ, ऐसा ही है कि नहीं.....?

एक-एक श्लोक में आचार्यभगवान् अमृत परोस रहे हैं। जिस पुरुष का चित्त संक्लेशता से युक्त होता है, 'बुद्धिः संसारवर्द्धिनी' उस व्यक्ति की बुद्धि संसार को बढ़ानेवाली है। भाव अच्छे रखो, क्या जाता है?

अरे भाई! यदि तेरी पुस्तक भी कोई पढ़े तो अच्छे से दिखाना कि लो, यह पढ़ लो। तू नकल मत कर छुप-छुप कर। बुद्धि जितनी होगी, तुम उतना ही पढ़ पाओगे। मुझे मालूम है कि तेरा जितना क्षयोपशम है, तू उतना ही ग्रहण कर पायेगा। घटती नहीं है, खर्च करने से बुद्धि और बढ़ती है। **जो संक्लेशता बर्तते हैं, वे किसी का कुछ बिगाड़ तो पाते नहीं हैं, पर अपनी बुद्धि को भ्रष्ट जरूर कर लेते हैं। आधे से अधिक लोग, जो भी पागल हो रहे हैं, मात्र**

संक्लेशता से हो रहे हैं। वैद्यों को दवाई कम देना चाहिये, संक्लेशता की हानि हो ऐसे उपाय बताना चाहिये।

सभी रोगियों को स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय करेगा तो अपने आप शान्ति मिलेगी। अभक्ष्य का त्याग कराना और शान्ति से रहना सिखाना, तो आपकी दवाई और-अधिक काम करेगी और शुद्धाहार से चित्त में विशुद्धि आती है। सम्पूर्ण तत्त्वों को जाननेवाला पुरुष सम्पदा व आपत्ति दोनों को साम्यभाव से देखता है। सम्पदा भी आपदाभूत और आपदा भी सम्पदाभूत। यानी सम्यग्दृष्टि जीव विपत्ति व सम्पत्ति दोनों में साम्यभाव रखता है। काँच और कंचन पर एक दृष्टि रखता है। उस महापुरुष की चर्या महान् हो जाती है जिस पुरुष के अन्दर विपत्ति और सम्पत्ति में साम्यभाव होता है।

ज्ञानियो! अपने जीवन में इतना चिन्तन कर लेना कि हे प्रभो! भक्ति करूँ तो देव-शास्त्र-गुरु दिखें और परिणामों को देखूँ तो मेरे परिणामों में समता की सम्पत्ति मात्र दिखे, जगत् की कोई-और विभूति न दिखे। अन्तिम श्वास में ऐसे भाव बन गये तो आपकी समाधि को कोई रोकनेवाला नहीं है। कल पुनः चर्चा कर लेंगे, यदि पर्याय रही तो।

"आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

'रोको अपने को'

परोऽप्युत्पथमापन्नो, निषेद्धुं युक्त एव सः।
किं पुनः स्वमनोऽत्यर्थं, विषयोत्पथयायिवत्॥ 175॥

अन्वयार्थ-परः उत्पथं आपन्नः अपि = दूसरा कोई कुमार्गगामी हो गया है तो भी, **स एव निषेद्धुं युक्त** = उसे मना ही करना चाहिए यह तो ठीक ही है, परन्तु, **विषयोत्पथयायिवत्** = विषयों के कुमार्ग में जाने वाले, **स्वमनः** = अपने मन को, **अत्यर्थं** = अतिशयरूप **किं पुनः** = क्यों नहीं रोकना चाहिए? अर्थात् अवश्य रोकना चाहिए।

भावार्थ-हे मुमुक्षु! कुमार्गगामी दूसरे प्राणियों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगाना तो ठीक है ही, परन्तु विषयभोग रूप कुमार्ग में जानेवाले अपने मन को अतिशय रूप से क्या नहीं रोकना चाहिए? अपितु रोकना चाहिए।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में परिणामों की भद्रता का व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं कि अहो मुमुक्षुओ! महापुरुष की पहचान परपुरुष से नहीं होती है, महापुरुष की पहचान महान् कार्यों से होती है, महान् परिणामों से होती है। मुमुक्षुओ! **गुलाब की सुगन्ध है, यह बताने के लिये वहाँ किसी पुरुष को खड़े होकर बताने की आवश्यकता नहीं है। पुष्प में सुगन्ध है, वह अपना परिचय स्वयमेव दे देता है। ऐसे ही महापुरुष की पहचान कराने के लिये किसी परपुरुष की आवश्यकता नहीं है। उसके निज गुण ही उसे जगत् में प्रसिद्ध बनाने के लिये कार्यकारी हैं।** जो बना जाता है, वह मायाचारी होता है। जिसके लिये बना जाता है, वह अहंकार होता है। उस बननेपन

का और जिसके लिये बने थे, जो उसका विसर्जन कर देता है, उसका नाम महापुरुष है। बनना और होना, इन दोनों में कितना अन्तर है? **जो पुरुष महापुरुष बनना चाहते हैं, वे महापुरुष नहीं होते हैं। वह बनकर नहीं बैठते, वे तो होते ही हैं। जो यूँ सोचते हैं कि मैं अच्छा लगूँ, मैं अच्छा दिखूँ, लोग अच्छा समझें, ऐसा विचार करके जो अपने आप को अच्छा बनाने का प्रयास कर रहा है, वह मायाचारी है। मायाचारी क्यों की जाती है, इसके बारे में आप गहरे से चिन्तन करो। मायाचारी करने का उद्देश्य क्या रहता है? छल, कपट करने का उद्देश्य क्या रहता है? मात्र मानकषाय की पुष्टि। पेट भरने के लिये बहुत नहीं चाहिये, पर मान के लिये बहुतकुछ चाहिये।**

रहने के लिये कँगूरे नहीं, कमरा ही चाहिये, फिर तू कँगूरे क्यों बनाता है? कमरे में तू होता है, पर लोग कहाँ देख पाते हैं? दुनियाँ को दिखाने के लिये कँगूरे बने होते हैं, पर सत्यता यह है कि दुनियाँ को दिखाने के लिये कँगूरे नहीं बने हैं। सत्य यह है कि जब तू ऊपर चला जायेगा और मायाचारी के साथ जायेगा, तो तिर्यंच पशु-पक्षी बन जायेगा और कहीं तुझे अन्दर जाने को नहीं मिला तो कँगूरों पर पक्षी बनकर देखने तो आ जायेगा।

माया तो माया है। विशुद्धि का नाश करनेवाली कोई सुन्दर वस्तु है तो उसका नाम माया है। जहाँ माया है, वहाँ माया-ही-माया दिखती है। जहाँ माया नहीं, वहाँ माया क्यों हो? समझो अर्थ को। माया निकल जाये, तो माया निकल जाये। माया नहीं निकल रही है, इसलिये माया नहीं निकल रही है। मान चला जाये तो माया निकलने में देर नहीं लगेगी। मायाकषाय किसके लिये? मान के लिये। मान किसके लिये? पर के अपमान के लिये। जब तक पर का अपमान न हो, तब तक तेरा सम्मान ही नहीं होता है।

मित्रो! कुछ भी कहो, मीठे शब्द बोल सकते हो, माधुर्य भर सकते हो, लेकिन सत्य को नकार नहीं सकते हो। मान किसके लिये? मान कौन-सी वस्तु है? मान की पुष्टि कैसे होती है? जब तक दूसरे का अपमान न हो जाये, तब तक

अपना सम्मान 'सम्मान' नहीं प्रतीत होता है।

ओ हो! तन के ऊपर चढ़े चादर, चढ़े माला, लगे तिलक के राग में व्यक्ति भुला देता है, रत्नत्रय तिलक को। इस तन के टीके के राग में जीव सिद्धशिला का तिलक बनने से अपने आप को दूर कर लेता है। माताओ! अपने सम्मानों में कितनों का अपमान हो चुका है, मालूम है आपको? और सम्मान में जो वस्तु तुमको मिली थी, वह नष्ट हो जायेगी; पर सम्मान के राग में जो मायाचारी की थी, अशुभ बन्ध किया था, वह तेरे साथ अवश्य ही रहेगा। इस मान को हटाना चाहते हो तो फिर सबसे सुन्दर उपाय है। **"सबके दिन एक से नहीं होते हैं।"** पुण्य का संयोग है तो सत्कार है। पुण्य का संयोग नष्ट होते ही निरादर प्रारम्भ हो जायेगा।

मुमुक्षुओ! **क्षण-क्षण में मानकषाय प्रज्वलित होती है और उसकी चिंगारी क्रोध के रूप में बदल जाती है। मानकषाय क्रोध का आह्वानन करके चली जाती है। विशुद्धि का तो वहाँ कुछ भी अवशेष नजर नहीं आता है कि परिणामों में विशुद्धि भी कोई वस्तु है।** आज जिस भवन में या जिस नगर में रह रहे हो, वह नियत नहीं है। वहाँ से तुमको जाना होगा। ज्ञानियो! जिस भवन को लेकर तुम रह रहे हो, उस भवन को तुम मत छोड़ो। जिस भवन को लेकर तुम रह रहे हो, वह संयम का भवन है, चारित्र का भवन है, श्रद्धा का भवन है। उस भवन को छोड़कर दूसरे भवन में मत रहना। धर्म का कार्य, पुण्य का कार्य उतना ही है। अब ज्ञेय बनाकर निहारिये। विषय समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा है?

ज्ञानियो! लोक में यदि कोई मुझे धर्मात्मा के नाम से पुकारता है तो यह उनका विषय है। उसको आप स्वीकार मत कीजिये। लोक मुझे धर्मात्मा या पुण्यात्मा कुछ भी कहे, पर आप स्वीकार मत कीजिये। आप तो उस दुकानदार की भाँति बैठ जाओ, जैसे कि एक दुकानदार माना कि घृत का व्यापारी है। घी के नाम पर मिलावटी घी बेच रहा है। पर खरीदने वाले को ज्ञान नहीं है कि यह शुद्ध

घृत है या मिलावटी है। तो क्या बेचनेवाले को भी ज्ञान नहीं है? ऐसे ही भैया! मैं कहूँ कि यह जीव धर्मात्मा है। यह तो मुझे ज्ञान नहीं है कि है या नहीं, मैं तो पर्याय को देखता हूँ। उस मिलावटी घी में भी रंग घी का दिखाई दे रहा था, इसलिये में उसको घृत कह रहा था; पर ज्ञानियो! जैसे व्यापारी और ग्राहक का उदाहरण है, उसी तरह यदि मुझे कोई धर्मात्मा कहता है तो यह उसकी अज्ञानता का कारण हो सकता है, लेकिन जिसे धर्मात्मा कहा जा रहा है उसे भी ज्ञान नहीं है क्या? उसे तो मालूम है कि इसमें शुद्ध कितना घी है और अशुद्ध कितना घी है। भैया! मेरे मित्रो! इतना तुमको ज्ञान है कि मैं कितना धर्मात्मा हूँ, पर यह पर को पता नहीं है। **मिलावटी घी वाले का सेम्पल भरा जाये तो क्या होगा? जेल होगी। यह तो इहलोक की जेल है। पर मुमुक्षुओ! परलोक में क्या होगा? जब मिलावटी द्रव्य के व्यापार से जेल हो सकती है, तो जो धर्म के क्षेत्र में परिणामों में मिलावट रखते हैं, उनके साथ क्या होगा? यह निर्णय करो।**

मित्रो! आगम सत्य है, जिनवाणी सत्य है। एक क्षण के परिणामों से जीव कहाँ-का-कहाँ पहुँच जाता है। फिर अपने परिणामों को देखो कि मेरे परिणाम कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं। तत्त्वदृष्टि की बात करने पर भी तत्त्व को खो गया। धर्म का भेष भिन्न है, धर्म का भाव भिन्न है। बाजार में भी तुम सामग्री लेने जाते हो तो उसका भाव देखते हो। जगत् में जहाँ-जहाँ कीमत है। सभी जगह भावों की ही कीमत है। इस मान को विगलित करो। जब तक मान विगलित नहीं हो रहा है, तब तक सारी क्रियायें, सारे अनुष्ठान बहिरंग लोकप्रतिष्ठा मात्र के हैं। कैसे जीतें उसको?

मित्रो! सबसे पहले खुद को ठण्डा करो। **चिन्तन का विषय बनाइये कि किसके लिये मैं सम्मान चाह रहा हूँ? सम्मानपत्र भी मिलेगा, वह हाथों में होगा। तिलक लगेगा, वह माथे पर होगा। माला होगी, वह गले में होगी। पर मृत्यु होगी तो यह तीनों अग्नि में होंगे। भाई! जब हंस निकल जायेगा,**

तब यह सब किसके ऊपर होंगे? अग्नि पर होंगे। जिसका तूने सम्मान कराया था, वह अग्नि में झुलस रहा है। और हे सम्मान करानेवाले! तुम कर्मों की अग्नि में झुलस रहे हो। माला, तिलक, यह सब पुद्गल पर ही तो थे। यदि इन सब का विसर्जन करके देखता तो मेरे मित्र! आत्मा से आत्मा का सम्मान हो गया था। धार्मिक क्रिया भी करता है तब इस जीव को दो प्रकार की अनुभूति होती है। आत्मानुभूति, भैया! वह कहाँ आ रही है जीव को? एक कषायानुभूति को आत्मानुभूति बना रहा है। जब आपसे कोई अच्छा होगा तो अच्छे काम होने पर लोक है। लोक में जीवों के पास आँखें हैं, कान हैं। यह जैसा सुनेंगे, देखेंगे जैसा मुख है, वैसा बोलेंगे। आपकी अच्छाइयाँ होंगी तो अच्छाइयाँ आयेंगी, बुराइयाँ होंगी तो लोक में बुराइयाँ आयेंगी। जैसे आपने अच्छा काम किया, तो मित्रो! बुराई को झेल लेना फिर भी सामान्य है, लेकिन अच्छाई को झेल पाना बहुत कठिन है। **जैसे ही प्रशंसा प्रारम्भ हुयी, एक गुदगुदी अन्दर उठती है—'आ हा हा! आनन्द आ रहा है।' लोक क्या समझता है? वह अज्ञानी समझ रहा है कि जो गुदगुदी उत्पन्न हो रही है, यह मेरी विशुद्धि बढ़ रही है। यह विशुद्धि नहीं, यह मानकषाय की अनुभूति की अशुद्धि बढ़ रही है। यह मानकषाय है, विशुद्धि नहीं है। कभी कान बन्द करके भी मान का अनुभव होता है।** आँखें बन्द करके भी मान का अनुभव होता है। आपको पता होना चाहिये कि जिस दिन तुम अपने घर में कीमती वस्तु को लेकर जाते हो, तिजोरी के अन्दर तिजोरी में रख देते हो, तब भी अन्दर उसकी अनुभूति चलती है 'आहा! ऐसा आज मेरे घर में ऐसी द्रव्य/सामग्री आ गयी।' ऐसा होता कि नहीं होता है?

मेरे मित्र! यदि पैरों में चरणपादुका भी नई खरीद कर लाया हो तो जीव को उसकी भी अनुभूति होती है। उसकी चाल बदल जाती है। ज्ञानी! जैसे तू चप्पलों और जूतों को देखता है, ऐसे ही जीवों को देखने लग जाए, तो न काँटा लगेगा, न चप्पल पहनना पड़ेगा, न कंकड़ लगेगा और अहिंसा का पालन हो जायेगा। क्या करें? **चप्पल जूते वे पहनें जिनके अहिंसा का पालन नहीं होता हो।**

जिनके भीतर करुणा नहीं है, वे चरणपादुका पहनते हैं। जिनके आचरण में दया होती है, वे चरणपादुका नहीं पहनते हैं, उनके चरण पुजते हैं। दयावान होगा तो जमीन को देखकर ईर्यासमिति से चलेगा। दयाविहीन होगा तो सर को ऊपर करके चलेगा।

ओ हो हो! मालूम ही नहीं था कि धर्म कौन-सी वस्तु है। मैंने तो इसे ही धर्म मान लिया था कि स्व का और दूसरों का सम्मान कर लो, बस, मन्दिर में धार्मिक अनुष्ठान हो गया। माताओ! ध्यान रखना, उपवास तो पर्युषण में खूब करना, लेकिन सम्मान का नाम आ जाये तो कहना कि जिसके लिये में दस दिन बचा था, ग्यारहवें दिन तुम वही मुझे क्यों दे रहे हो? कहीं आपका नाम छूट जाये तो परिणाम खराब होते हैं। बोले, मैंने भी तो दस उपवास किये थे, कमेटी ने मेरा सम्मान क्यों नहीं किया? अहो! इस पर्याय के सत्कार के लिये आपने तपस्या नहीं की, परिणामों के सत्कार के लिये ही आपने तपस्या की है। पर्याय का सत्कार तो पर कर सकते हैं, लेकिन परिणामों का सत्कार तो मैं ही करूँगा। पर्याय का सम्मान दुनियाँ कर सकती है, पर परिणामों का सम्मान तो खुद को ही करना होगा। यदि कोई तुझे गजरा पहनाये, वह पर्याय का सम्मान चल रहा है। पर ज्ञानी! तू भावों में रत्नत्रय का भाव करेगा तो तेरे द्वारा तेरे ही लिये रत्नत्रय की माला पहनायी जायगी। इससे बड़ा सत्कार क्या होगा? सारे कार्यक्रम के बाद सत्कार होता है कि नहीं?

आपको मालूम होना चाहिये कि यह सनातन परम्परा है। कोई कार्यक्रम के होने के बाद सम्मान होता है, यह पुरानी परम्परा है। पर गहरी बात समझो, ऐसे ही साधुजीवन में जीवनभर तुमने जो साधना की है, उसके सत्कार का दिन समाधि है। समाधि ही सत्कार है। अन्तिम सत्कार का दिन है। वह साधक अपने परिणामों से क्या कहता है? हे जीव! हे मन! तूने जीवनभर मेरे रत्नत्रय की साधना में सहयोग किया था, आज मैं तुझे स्वात्मोपलब्धि सिद्धि के गजरा-हार को पहना कर तेरा सत्कार करता हूँ। आत्मा के द्वारा आत्मा का जो सत्कार होता

है, वही महान् होता है। बस, हृदय की डायरी पर लिख लेना और घर के द्वार पर लिखकर टाँग देना कि आत्मा के द्वारा आत्मा का जो सम्मान करता है, वही महान् होता है। ध्यान की अनुभूति में बैठ जाना कि मैं मेरा सम्मान कर रहा हूँ और यदि अपना अपमान कर रहा हूँ तो मैं एक बात बताऊँ। पूर्व में राजदण्ड थे। किसी ने किसी का धन हरण कर लिया, किसी के यहाँ डाका डाल दिया, असत्य भाषण कर दिया, उसको पकड़कर काला मुख करके, और ऐसे ही नहीं, गले में जूते की माला लटका दी जाती थी। जिसके ऊपर ईंटें मँगाते हो, उसकी सवारी होती थी। यह राजदण्ड होता था। अब गहरी बात समझो। मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि तुझे दण्ड किसने दिया? जो जीव मायाचारी करता है, उसे स्वयं ही वह दण्डित करता है। अगली पर्याय में वह काले मुख का बन्दर बनेगा। और जो चोखे में खोटे मिला रहे हैं, उनसे पूछना, दोनों ओर से चलनेवाले कौन होते हैं? केंचुये। हाँ, इन जीवों का वही अपमान होनेवाला है। यह अपनी आत्मा को केंचुये बनाने वाले हैं। अपमान हुआ कि नहीं? किसने किया?

माताओ! आप घर में बड़े हो, लेकिन किसी ने आपको धार्मिक या मांगलिक कार्य में नहीं पूछा, तो तुरन्त ही आपके भाव बदल जाते हैं। जिनको अपना-अपना बोलते थे, उनके प्रति तेरे पता नहीं कैसे-कैसे परिणाम हो जाते हैं। मित्र! सत्य यह है कि उनने तेरा अपमान कम किया था, पर तूने अपना अपमान अधिक कर लिया।

मुमुक्षुओ! पर्याय का सम्मान या अपमान चाक्षुष है, सबको दृष्टिगोचर होता है; पर परिणामों का सम्मान और परिणामों का अपमान अचाक्षुष है। वह दृष्टिगोचर नहीं होता है। मित्र! इससे बड़ा सम्मान या अपमान कोई दूसरा होता भी नहीं है। अपने जैसा सबको स्वीकार लो तो तेरा मान उतर जाये। घोड़े पर बैठा पुरुष अपने आप को ऊँचा मानता है, पर यह भूल गया है कि यह ऊँचाई तेरी नहीं है, यह ऊँचाई घोड़े की है। तू नीचे तो उतर, मेरे बराबर ही तेरी भी ऊँचाई है।

मानकषाय के घोड़ पर बैठे पुरुष अपने आप को ऊँचा मानते हैं। मेरे मित्र!

इस मानकषाय के घोड़े से तू नीचे उतर कर आ। मेरे बराबर था, मुझसे भी नीचे हो ऐसी भावना मत कर। ज्ञानी! सुन, मत समझो किसी को हीन, मत समझो किसी को दीन। यदि कोई दीन-हीन है, तो सबसे बड़ा हीन-दीन वह है जो दूसरे को कुछ नहीं समझता है। ज्ञानी! सबके दिन एक-से नहीं होते। रोने से यदि कोई बचायेगा तो यही सूत्र बचायेगा और हँसने से भी बचायेगा तो यही सूत्र बचायेगा। 'सबके दिन एक-से नहीं होते।' क्योंकि रोने में भी कर्मबन्ध होता है और हँसने में भी कर्मबन्ध होता है। इसलिये 'जो है, सो है।' विपत्ति भी यदि आ गयी तो क्या है? 'जो है, सो है।' सम्पत्ति भी यदि आ गयी तो क्या है? 'जो है, सो है।' सम्पत्ति भी बचानेवाली नहीं है, विपत्ति भी बचानेवाली नहीं है। तो रोना क्या और हँसना क्या। जो है, सो है।

देवी ने भोजन में मिर्च ज्यादा डाल दी, फिर क्या करोगे, जरा बताओ? कुछ ऐसे भी ज्ञानीजीव हैं जो आँखों से आँसू टपकाते हैं, नाक से नाली बहती है, पर फिर भी मिर्च खाना नहीं छोड़ते हैं। समझो मैं क्या कह रहा हूँ।

हे ज्ञानी! आँखों से पानी झर रहा है, नाक से नाक झर रही है, तब भी तू विषय-कषाय की मिर्च को खाना नहीं छोड़ रहा है। धिक्कार हो। घर में कोई विषमता आ जाये, फिर क्या करोगे? साम्यभाव। 'जो है, सो है।' यहीं कह रहे हो कि घर में भी कहोगे? देखो भैया! कुछ भी कर लो, निर्णय तो यही होना है कि 'जो है, सो है।' एकाध घण्टे रो सकते हो, एकाध घण्टे गुस्सा कर सकते हो, फिर भी 'जो है, सो है।' अरे! किसी का इकलौता बेटा भी ऊपर चला गया हो तो अन्त में वह पिता भी यही बोलता है कि भैया! अब क्या कर सकते हैं? 'जो है, सो है।' जीना तो पड़ेगा ही। ज्ञानी! जब ऐसा ही बोलना पड़ता है, तो ऐसा अभी से शुरू कर दो। **'जो है, सो है।'** आने के पहले जाने का, अभाव का चिन्तन सद्भाव में ही कर दो। युवाओ! ध्यान से सुनो। रोज दर्पण देखना, जैसा चेहरा आज दिख रहा है, पाँच वर्ष के बाद वैसा चेहरा दिखेगा नहीं। आप दस बार देख लेना, जो तेरा चेहरा आज है, वह नहीं मिलेगा। विश्वास नहीं

हो तो बुजुर्गों से पूछ लो।

ज्ञानियो! मान को विगलित करना है, तो यह ध्यान रखना। **सबके दिन एक-से नहीं होते।** कभी सिंहासन है, तो कभी अग्नासन है। प्रातः की बेला में जो राजदरबार चला रहे थे, संध्या की बेला में उनकी आहुतियाँ जल गयी। हाँ, कोई शाश्वत होकर नहीं आया। जो शाश्वत है, उसे तू देख नहीं रहा है। द्रव्य शाश्वत है, पर्याय अशाश्वत है।

हे महापुरुष! तू समता को मत छोड़ देना। अपने मन को समझाओ। जितना ज्ञान तूने पर को समझाने के लिये दिया है, ज्ञानी! उसका शतांश भी खुद को समझाने को दे दिया तो फिर संसार में नहीं रुलना पड़ेगा। अपने मन को समझाओ। यह ध्रुव सत्य है कि पर को समझाने से कोई नहीं समझा। समझ तभी आती है, जब कषायें ठण्डी होती हैं। समय बर्बाद करना हो तो समझाओ। किसी के घर में झगड़ा हो जाये और यह विद्वान् अपनी परिषद को लेकर समझाने आ जाये, भैया! तुम पंचायत बिठा देना, कितने ही दिन लगा देना, लेकिन समझ में किसी को तभी आती है, जब उसकी स्वयं की कषाय ठण्डी हो जाती है। जब तक कषाय की ज्वाला है, तब तक आपकी समझ आपके लिये ही है, पर के लिये नहीं।

मुमुक्षुओ! जो जगत् को समझानेवाले होते हैं, उन सबसे कहना मेरे मित्र! रावण भी महापण्डित था, पर उसकी विद्वत्ता कहाँ विलीन हो गयी जब उसने सीता के रूप को देखा? हे रावण! तेरा पाण्डित्य कहाँ विलीन हो गया सीता के रूप को देखकर? तब तक ही सब समझदार होते हैं जब तक स्वयं का मन रावण नहीं होता है। यदि स्वयं का मन रावण हो जाता है, तब समझ पलायन कर जाती है।

देखो, इतिहास की, पुराण की, कथाओं की बातें सब करना जानते हैं कि उसने ऐसा किया, उसने वैसा किया। क्यों भैया! कौरवों ने पाण्डवों की जमीन

को हड़पकर अच्छा किया या बुरा किया? बुरा किया, यह जानते हो। पर आगरावालों से पूछो कि अपने भैया का कमरा छीन कर उसको घर से भगा दिया, तुमने अच्छा किया या बुरा किया?

ओ हो हो! दुर्योधन को तुम तबतक ही बुरा कहते हो जब तक स्वयं के भैया पर दृष्टि नहीं जाती है। अब अपने हृदय से पूछो कि कितने ईमानदार थे? पिताजी ने बराबर भी दिया था, तब भी भाव करता है कि भैया से कुछ अधिक मिल जाये।

हे कौरववंशियो! मैं आपसे नहीं कह रहा हूँ, मैं उनसे कह रहा हूँ जो भैया की सम्पत्ति हड़पने के भाव रखते हैं। जिसकी भाई के धन पर भी खोटी दृष्टि है, उनमें यदि आप हो, तो चिन्तन कर लेना। जबकि ज्ञात सबको है। यह तो सबको मालूम है कि वर्तमान आयु अधिकतम 120 वर्ष है। अब वह बिरले पुण्यात्मा जीव हैं जो इस आयु को पूर्ण कर पाते हैं।

मैं जी रहा हूँ, पर मुझे ज्ञात है कि 70, 80, 90, 100 के अन्दर लोग जाते हैं। मेरी आयु का प्रादुर्भाव मैंने देखा, मेरी आयु की मध्य अवस्था मैंने देखी है। जब मैं प्रारम्भ और मध्य को देख चुका हूँ, तो अवसान भी होगा। अवसान की ओर जाऊँगा तो मसान की ओर जाऊँगा। (मसान = श्मसान)। मैंने श्मसान में गये लोगों को देखा है। भीड़ साथ में होती है और जलाकर राख करके आ जाती है। देखा है। कुछ दिन बाद राख वायु के आवेग से उड़ जाती है। बारिस होते ही हरी घास उग जाती है। कुछ भी अवशेष वहाँ दिखाई देता नहीं है। ऐसा मैंने दूसरे का देखा है। पर क्या अन्त मेरा ऐसा नहीं होगा? मैंने दूसरे को जाते देखा है और इस नगर में उसके नाम पर कुछ भी नजर नहीं आया।

ज्ञानी! जो भवन थे, उसमें दूसरे रहते हैं। जो भूमि थी, उसका भोग दूसरे कर रहे हैं। पर जो चला गया था, उसका क्या बचा था? उसका कुछ नहीं था। तो मेरे साथ भी तो यही होगा, उसमें आश्चर्य क्या है? ज्ञानियो! जीते-जीते तुम

अपना मरण देख लो तो आज ही तुमको शान्ति मिलेगी, विश्वास रखो। 80 साल की बुढ़िया जमीन खोदकर गहने गाड़ रही है। पर पता नहीं कि आयु का अन्त कब हो जाये तो निकाल पायेगी कि नहीं?

विजयमती माता जी की समाधि जब हुयी, मैं वहीं गोमटेश में था। शाम तक उस जीव को पता नहीं था कि मेरा अन्त होनेवाला है। हम सब साधु माता जी के पास गये थे। त त्त्वचर्चा कर रहीं थीं माता जी। पर सुबह 9-10 के बीच में हंस गमन कर गया। आप कल्पना करो, कहाँ गये वह विमलसागर, सन्मति सागर। विमलसागर और भरतसागर जहाँ बैठ जाते थे वहाँ मेले लग जाते थे। ऐसे लगता था कि जैसे राजा और मन्त्री बैठे हों। ध्रुव सत्य यह है कि पर्याय के विलीन होने के पहले जीव सोचता है कि मैं ऐसा करूँगा, यह अवशेष है, वह बचा है। पर अब क्या अवशेष है? जिसने जीते-जीते मरण देख लिया है, वह ज्ञानी धर्ममय जीवन पूर्ण करेगा। जिसने नहीं देखा, वह धोखे में मर जायेंगे। मानो मेरी बात। जितना जीने को मिले उतना मिले, कोई निश्चित नहीं है। आनन्द के साथ शेष जीवन जियें। न सम्पत्ति मेरी, न विपत्ति मेरी। 'जो है, सो है।'

वस्तुस्वरूप समझो। ज्ञानी! यह दिन भी नहीं बचेंगे। कभी फिर हम सोचेंगे कि आगरा में उपदेश होता था। यह सब स्वप्न हो जायेंगे। जितनी मातायें हैं, भोजन बाद में करना, सबसे पहले अपनी मृत्यु का चिन्तन करना। बस, विश्वास मानो, सारे विश्व में शान्ति छा जायेगी यदि मृत्यु का इतना निर्णय हो जाये कि मैं भी मरूँगा। जिसका किला स्वर्ग हो, ऐरावत जिसका हाथी हो, ऐसा सौधर्म इन्द्र भी च्युत होता है। जिनको अमर कहा जाता है, उनका भी मरण होता है। स्वर्ग से च्युत होता है तो कौन बचेगा? इसलिये अपने मन को समझाओ। पर को समझाने में समय मत लगाओ।

परोऽप्युत्पथमापन्नो निषेद्धुं युक्त एव सः।
किं पुनः स्वमनोऽत्यर्थं विषयोत्पथया-यिवत्॥ 175 ॥

आचार्यभगवान् 175 वें श्लोक में कह रहे हैं कि जो दूसरे प्राणी कुमार्ग में जा रहे थे। ऐसे कुमार्ग में जानेवाले दूसरे प्राणियों को सुमार्ग में लगा कर आपने अच्छा किया। लेकिन रावण के बारे में यदि कोई पूछे कि उसने कैसा किया था। तब आप अपने बाल्यकाल से युवावस्था तक को निहारो कि आप कहाँ-कहाँ घुमा चुके थे इन आँखों को? आँखों के बन्द होने के पहले आँखों को साफ कर लेना, इतनी बात मान लो। जीवन में जो भी अशुभ हुआ हो, उसकी आलोचना और प्रायश्चित्त करके आत्मा को साफ कर लेना। मित्र! होता यह है कि पाइपलाइन में कचरा होता है, लेकिन दिखता नहीं है। पर जैसे ही पीछे से पानी फेंका जाता है, वह बाहर हो जाता है, तब पता चलता है कि इतना कचरा था। ऐसे ही तेरे हृदय में पापों का कचरा आ चुका है। तब तक पता नहीं था, मस्ती में जीव मुस्कुराकर जिया करते थे। जब जिनवाणी के नीर का धक्का लगता है, तब समझ में आता है कि हाय-हाय! मैंने ऐसा किया है। समझ रहे हो ना? यह चेहरों की उदासी और सभा की स्तब्धता इस बात को सूचित कर रही है कि यह सब सुन कर सोचने में लग गये हैं। जब गहरी बात होती है, तब ही ऐसा करता है। या तो विषय में नहा रहा है या फिर परमात्मा में, पंचपरमेष्ठी में या स्वात्मा में लीन है।

हे जीव! तूने पर को उपदेश देने के काल में बहुत समझाया, अब अपनी अवस्था को भी देख लो। जैसे तूने कुमार्ग में जाते हुये दूसरे प्राणियों को निषेध किया था, वह तो आपने अच्छा किया, लेकिन जो विषयरूपी भोग है, उनसे छूटने के लिये तू अपने मन को क्यों नहीं समझा रहा है? तू जगत् के सारे रिश्तों को, सम्बन्धों को विषय में क्यों बदल रहा है? क्यों 18 नातों की कथा पढ़ी?

भैया जिसे तू अपनी पत्नि मान रहा है, वह तेरी कभी भगिनी भी बनी होगी, माँ भी बनी होगी और शाश्वत द्रव्य को देखेगा तो वह कभी भगवान् भी बनेगी। भावी भगवान् के साथ भोग कैसा? और जो तू भोगी बनके भटक रहा है, तेरे पर त्रास आ रहा है। कभी यह जीव सिद्धालय में बैठेगा।

एक श्वान मृतक-गाय को खा रहा था। यह ही जीव कभी सिद्धशिला पर होंगे और आज देखो पर्याय की प्रत्यासत्ति कि मृतक को खा रहा है। वह कौन है? जिन्होंने दुर्गन्धमयी स्थानों से राग किया था, आज वे ही श्वान बनकर उस दुर्गंधमयी शरीर का भक्षण कर रहे हैं। ज्ञानी! आज मात्र इतना चिन्तन कर लेना भोजन करने के पहले, अपनी अन्तिम अवस्था को अवश्य निहार लेना। तुम अपना देखो,पर को मत देखो। मुमुक्षुओ! जो है, सो है।

"आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मन को रोको"

अज्ञानाद्यदि मोहाद्यत्कृतं कर्म सुकुत्सितम्।
व्यावर्त्तयेन्मनस्तस्मात् पुनस्तन्न समाचरेत्॥ 176॥

अन्वयार्थ-यदि = यदि, **अज्ञानात् मोहात्** = अज्ञान के वशीभूत होकर या मोह के आधीन होकर, **यत्सुकुत्सितम् कर्म कृतं** = जो कोई अशुभ काम किया गया, **तस्मात् मनः व्यावर्तयेत्** = उससे मनको हटा ले वें, **पुनः** = फिर **तत् न** = उस काम को नहीं, **समाचरेत्** = करें।

भावार्थ-हे भव्य! यदि अज्ञान और मोह के कारण यह मन कुमार्ग में गया है, कुत्सित कर्म किये हों, तो शीघ्र ही कुत्सित कर्म से मन को हटाकर पुनः कुकार्य का आचरण नहीं करना।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् महावीर स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, जयवन्त हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में तत्त्व-उपदेश करते हुये मुमुक्षुओं को आदेशित कर रहे हैं कि अहो ज्ञानियो! बुद्धि को स्वच्छता प्रदान करो। निज की बुद्धि को सुबुद्धि बनाओ। सुधी बनने का प्रयास करो। धी को सुधी बनाने की आवश्यकता है। निज प्रज्ञा से ही निज प्रज्ञा को प्रशस्त करने की आवश्यकता है। जैसे तूने उपदेश दूसरे को दे देकर प्रज्ञा हासिल की है, दूसरे को तत्त्वदेशना देने की शक्ति प्राप्त की है, ऐसे ही हे ज्ञानी! निज को उपदेश देने की शक्ति का संचय करो। दूसरे को उपदेश मुख से दिया जाता है और

निज को उपदेश देने के लिये स्वमुखी होना पड़ता है। और सम्पूर्ण शक्ति को निज में संकुचित करना होता है। कछुये जैसा सर्वांग को संकुचित करने की आवश्यकता है। कछुआ जब अपने पैरों और मस्तिष्क को अन्दर ले गया, अब कितने ही प्रहार उसके ऊपर कर लिये जायें, लेकिन उसकी रक्षा हो जाती है। क्यों? उसका जो कवच है, बहुत कठोर है। जैसे कछुये की रक्षा संकुचित होने पर है ज्ञानियो! निज के संयम की रक्षा पाँच इन्द्रिय और मन को संकुचित करने पर है। **यदि आपकी इन्द्रियाँ संकुचित नहीं हो रही हैं, मन संकुचित नहीं हो रहा है तो विश्वास रखना, यह असंयम रूपी शत्रु तेरी आत्मा पर प्रहार कर देगा। भावों के बिगड़ने में समय नहीं लगता है। भावों के बनने में भी समय नहीं लगता है, कब उत्कर्ष की ओर जाए, कब अपकर्ष की ओर आये। परिणामों का उत्कर्ष ही जीवन का उत्कर्ष है। जिसके परिणाम ही अपकर्षित हैं, उसका सारा जीवन अपकर्षमय है।** भविष्य की बहुत सारी अनुभूतियाँ व्यक्ति के वर्तमान में दृष्टिगोचर होती हैं। स्पष्ट झलकता है। धूम्रपान करनेवाले व्यक्ति को अपने में कैंसर दिखाई देता है। तम्बाकू-गुटखा खानेवाले पुरुष को अपने मुख का वीभत्सपना दृष्टिगोचर होता है। कैंसर जैसे रोग दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे ही अभक्ष्य खानेवाले पुरुष को अपने घर में रोनेवाले व्यक्तियों का समूह भी दिखाई देता है। इन द्रव्यों के सेवन से तेरी मुत्यु के बाद मातायें सिर पकड़ कर रो रहीं हैं। रुग्ण पुरुष से पूछना, तेरे घर का भविष्य क्या है? और याद रख, सकुन शास्त्र की दृष्टि से कथन किया जाय, भद्रबाहु संहिता से देखा जाय, तो जिसका अल्प समय अवशेष बचा है, उसको स्वप्न में अग्नि दिखाई देती है, अर्थी जलती दिखती है। और जिसके घर में रोने के दिन आनेवाले हैं, उसके मुहल्ले में बिल्ली, श्वान जैसे प्राणी रोना प्रारम्भ कर देते हैं।

ज्ञानियो! जिनके अशुभ के दिन आ रहे हैं, उनके सिर के बाल उड़ना प्रारम्भ हो जाते हैं। जिनके अशुभ का बन्ध होनेवाला है, उनके भावों में वासनाओं के श्वान खड़े हो जाते हैं, उनके हृदय में कामनाओं की बिल्लियाँ रोना प्रारम्भ कर

देती हैं। इनकी दुर्गति का बन्ध निश्चित हो गया है। तुम गुटखा, बिड़ी, तम्बाकू आदि का सेवन कर रहे हो, किसको पता नहीं है कि तेरा भविष्य क्या है? जिनका मन विषयकषायों में जा रहा है, उसे पता होना चाहिये कि मेरा भविष्य क्या है। गुटखा खानेवाले के तो मुख का भविष्य उज्जवल नहीं है और कामभोग में लिप्त पुरुष से कहना कि तेरी आत्मा का भविष्य उज्जवल नहीं है। यह कभी मत सोचना कि यह पर को ज्ञात नहीं है तो क्या कर्म को भी ज्ञात नहीं है। इसलिये आज तो आचार्यभगवान् आदेश कर रहे हैं कि ज्ञानी! अपनी बुद्धि को रोक। रोने की तैयारी मत कर, रुलाने की तैयारी मत कर। समय के पहले जायेगा तो तेरे परिवार के लोग रुदन करेंगे। वो यहाँ रोयेंगे, तू नरक में रोयेगा। **अशुभ करनेवाला, अशुभ कहनेवाला, अशुभ सोचनेवाला, यह तीनों ही भविष्य में नियम से दुर्गति के पात्र होंगे।** जैसे आपको ज्ञात हो कि मेरे घर में मेहमान आने वाले हैं तो तुम तैयारी में लग जाते हो, कुछ नया करके रखते हो, क्योंकि मेहमान आ रहा है। बेटा! विश्वास रखना, जैसे तुम्हारे द्वार पर वन्दनवार बंधे हैं, ऐसे ही जिसने अच्छा किया है, उसके लिये स्वर्ग में देवांगनायें वन्दनवार लिये खड़ी होंगी। जो खोटे कर्म करके जा रहे हैं, वे नरक के बिलों में गमन की तैयारी कर रहे हैं। न वहाँ कोई वन्दनवार है, न सजावट है। वहाँ तो उल्टे-मुँह लटकने की तैयारी कर लेना। कोई भी तेरा मित्र नहीं मिलेगा। जो तुझे गुटखा दे रहे थे, वे भी नहीं पूछेंगे। जब तेरे हाथ पर तलवार का वार हो रहा होगा, तब तेरे मित्र तेरे हाथ को बचाने नहीं जा पायेंगे।

मित्रो! ध्यान दो, मित्र नहीं पूछेगा। जिस अभागे ने अमित्रता को प्राप्त करके आपको कोई मदिरा की बाटल देकर, मित्रपने को प्रकट कर रहा था, जब नरकों में ताँबा और राँगा पेल-पेल कर पिलाया जायेगा, मुख में भरा जायेगा, तब कोई मित्र बचाने नहीं आयेगा। यदि यह बातें आपके अन्दर नहीं पहुँच रही हों तो पुनः कहता हूँ। आप कैंसर के अस्पताल में जरा घूम कर आना। कैसी-कैसी नलियाँ उन बेचारों के शरीर में पड़ी हुयी हैं। किसी के गाल तो किसी का कण्ठ

छिद रहा है। किसी के पेट चिर रहे हैं। अंग-अंग जिसके छिन्न-भिन्न हो रहे हैं।

ज्ञानी! शान्ति से बेचारा मरण तक नहीं कर पा रहा है। शोक नहीं करना माताओ! जिन्होंने बिना सोधे, बिना बीने गेहूँ/धान्य पीस डाले, वे तो पिस रहे हैं और बिना सोचे-समझे आपने ईंधन जला दिया था, आज ये तरह-तरह के कुष्ट आदि निकल रहे हैं। यह सब तो कुछ भी नहीं है। जो तुमने उन जीवों को फफोले उत्पन्न कराये थे, वे उदय में आकर कुष्ट के रूप में प्रकट हो रहे हैं। कुछ भी नया नहीं है। **जो भूमि में गैसें भर जाती हैं, तो भूचाल होने लगते हैं। सागर में गैसें बढ़ती हैं तो ज्वारभाटे आने लगते हैं। पर्वतों पर गैसें बनती हैं तो ज्वालामुखी फटते हैं। ऐसे ही तुम्हारे भावकर्मों की जब गैसें बढ़ती हैं तो द्रव्यकर्मों को प्रभावित करती हैं। अनेक प्रकार के कष्टों की जब गैसें उत्पन्न होती हैं तो शरीर में फफोले उत्पन्न होते हैं। वैद्य से मिल लेना। बिना शरीर की गर्मी के फोड़ा नहीं हो सकता है। बिना पित्त के कीड़े नहीं हो सकते हैं।** यह शरीर में पित्त कुपित हुआ है, सो फोड़ा हो गये। पर पित्त कुपित हुआ क्यों? तूने पंचपरमेष्ठी को देखकर परिणाम कुपित किये थे, वे आज फोले के रूप में प्रकट हो गये हैं।

मित्रो! जिस व्यक्ति ने स्वप्न में भी अर्हन्तों के प्रति, निर्ग्रन्थों के प्रति, वीतरागवाणी के प्रति और धर्मात्माओं के प्रति अशुभ चिन्तन किये हैं, विश्वास रखना, 26 प्रकार का कुष्ठ होता है। खाज-खुजली भी एक कुष्ट के अन्तर्गत आती है। बचके रहना। जब मन के विकार तन में प्रकट होकर ऐसा अशुभ दिखा रहे हैं। तो भावों में क्या अशुभ होगा? आज तो आचार्यभगवान् आदेश कर रहे हैं कि मित्रो! बिल्कुल तल्लीन होकर निर्णय कर लेना कि ये संकट के जीवन को जी लूँगा, अकेला बैठकर महामन्त्र का जाप करता रहूँगा, नहीं जाप कर सका तो सो जाऊँगा, लेकिन ऐसे मित्रों के बीच में नहीं रहूँगा जिस गोष्ठी में पंचपरमेष्ठी की अवहेलना के सूत्र चलते हों। अपनी प्रज्ञा को नष्ट करने मत चले जाना,

अपनी बुद्धि को भ्रमित करने मत चले जाना।

ज्ञानियो! 'प्रवचनसार' जी में कुन्दकुन्द स्वामी ने तीनों प्रकार के उपयोगों के परिणाम लिखे हैं। जो जीव शील, संयम, तप से युक्त होता है, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में लगा होता है, उस जीव के शुभ-उपयोगी परिणाम हैं। जो **"विषय कषाय जुत्तो"** विषयकषाय से युक्त है, दुष्ट जीवों की गोष्ठी में बैठता है, जिस गोष्ठी में चार विकथाओं के अलवा पाँचवीं चर्चा न हो। (स्त्री कथा, भोजन कथा, राष्ट्रकथा, चोर कथा।) यह अशुभ-अशुभ कथा ही चल रही हैं। अरे मुमुक्षुओ! आप धर्मात्मा निज के लिये हो। आपने एक घण्टा चर्चा की, उसमें भी दूसरे-दूसरे पर चर्चा करते रहे तो आपने अपना धर्मपना प्रकट कहाँ किया?

हे ज्ञानी! इसकी जगह आप ऐसा बोलते कि अशुभ करने से ऐसा होता है और शुभ करने से ऐसा होता है। किसी का पुराण न खोलते, तत्त्व का विवेचन करते, तो जीव अशुभ कर भी रहे होंगे वे बेचारे सँभलकर अपने परिणामों को सँभाल लेते। चारित्रहीन की व्याख्या मत कीजिये, चारित्रहीनता के फल की व्याख्या कीजिये। चारित्रवान् की व्याख्या करो। यदि उसमें डर लगता हो, कहीं ऐसा लगे कि मेरे अन्दर किसी की प्रशंसा करने की क्षमता नहीं है, तो आप चारित्रवान् की नहीं, पर चारित्र गुण की ही प्रशंसा कर दो।

संयमी जीव त्रिलोक का स्वामी होता है। इहलोक और परलोक में पूज्यता को प्राप्त होता है। विश्व के सम्पूर्ण संकटों का शमन संयम से होता है। देव भी आकर संयमी के चरणों में सिर टेकते हैं। अग्नि भी शीतल नीर हो गयी, कालिया नाग का भी हार हो गया, चीर भी विशाल हो गया, शूली सिंहासन हो गयी। यह शील और संयम की महिमा है। आश्चर्य नहीं करना, यह सत्य घटनायें हैं। **जिससे लोग चारित्र की ओर बढ़ें, चारित्र निर्माण करें, वह चर्चा तो अवश्य करना, पर जिससे चारित्र का महत्त्व ढहने लग जाये, पंचमकाल की अल्प श्रद्धायें भी चकनाचूर होने लग जायें, ऐसी चर्चा मत करना।**

हे ज्ञानियो! बड़ी करुणा करना। चींटी पर तुम करुणा करते मिल जाते हो। तुम हाथी पर करुणा करते मिल जाओ, यही सबसे बड़ी करुणा हो जायेगी। आस्था को ही भंग करा दिया तो पूरा रास्ता ही बन्द होता है। यदि सम्यक् आस्था भंग हो गयी, तो मोक्षमार्ग के रास्ते बन्द हो जाते हैं। आस्था भंग नहीं होना चाहिये। विश्वास रखना, जितना अज्ञानियों ने संयम का अवर्णवाद नहीं किया, उतना आपके ज्ञान से हुआ है। मतलब उसका यह है कि ऐसा होना चाहिये, अमुक व्यक्ति को ऐसा होना चाहिये। जिनको कुछ भी पता नहीं था, उनको भी अवगत कराया है। पर कर्म कह रहा है कि कौन कैसा है, यह बाद का विषय है, पर तेरी दृष्टि कैसी है, यह वर्तमान में ही देख ली।

ज्ञानियो! धन्य है राजा श्रेणिक को। 'उत्तर पुराण' में कथा आयी है कि श्रेणिक वर्द्धमान स्वामी के समवसरण में पहुँचता है। वरधर्म नाम के मुनिराज रास्ते में मिलते हैं। श्रेणिक ने उन मुनिराज को नमस्कार किया और समवसरण की ओर चला गया। बड़े सँभलकर सुनना क्योंकि बात कुछ विशेष थी। किसी के बारे में सुनकर आओ, तब भी मुनिराज के कर्णपटल तक आपकी रागद्वेष की चर्चायें नहीं जाना चाहिये। माना कि मुनिराज सामायिक में लीन थे, तभी किसी जीव ने कह दिया कि वे तो आपके बारे में ऐसा बोल रहे थे। उन जीव के परिणामों की आपने हिंसा कर दी, एक धर्मात्मा की हत्या कर दी। हाँ, मैं सोच-समझ कर ही बोल रहा हूँ। धर्मात्मा कब तक? जब तक हमारे परिणाम शुभ या शुद्ध हों? उस तत्क्षण के परिणामों को अशुद्ध करने से कहा कि आप हिंसक हो। यह बहुत बड़ी तपस्या है परिणामों को शुभ या शुद्ध करना।

मुमुक्षुओ! वे मुनिराज चौराहे पर (चतुष्पथ पर) बैठे थे। वहाँ से लोग आ-जा रहे थे। पर देखो ऐसा है कि पुण्यात्मा जीव चाहे अच्छे कपड़े पहने तो उसका पुण्य झलकता है, चाहे धोती दुपट्टा पहने तो और-अच्छा लगता है। पुण्यात्मा जीव का कपड़ा फट भी जाये तो कोई यह नहीं कहेगा कि देखो फटे कपड़ा पहने है। यही कहेगा कि भैया! कहीं उलझ गया होगा।

गरीब का बेटा चना चबाये तो कहता है कि चना चबाता है। यदि धनपति का बेटा चबाये तो कहता है कि इच्छा हो रही है। ऐसा ही होता है। संसार की भाषायें बदल जाती हैं। पुण्यात्मा के साथ भाषा भी पुण्यभूत चलती है। भेड़/सुअर के बाल भी खिंचते हैं, ऐसे ही तो तुम्हारे मुनिराज बाल खींचते हैं। लेकिन एक के बाल खिंच रहे हैं तो वह बिलख रहा है, दूसरा साम्यभाव से अपनी षट्आवश्यक क्रिया का पालन कर रहा है। अहिंसा महाव्रती केशलुंचन कर रहे हैं कर्मलुंचन के लिये। थाप बदल गयी। पर मार्ग में वे योगीश्वर विराजमान थे। पुण्यात्मा पर सब अच्छा लगता है। परवस्तु के धारण करने पर उसका शरीर चमकता है। जब वह आवरण को हटाकर फेंक देता है, तब सर्वांग सुन्दर वह स्वयमेव चमकता है। पुण्यात्मा दिगम्बर हो जाये तो सारा विश्व आकर्षित होता है। पुण्यात्मा जीव अपरिचित भी होगा, जिसका सुभग नामकर्म का उदय होगा, वह जीव वनखण्ड में भी पहुँच जायेगा तो वनचर प्राणी भी उसके पास आकर उसे देखने लगेंगे। जो सम्राट पद पर आसीन था, उसी देश के नागरिक वहाँ से निकल पड़े और देखते ही उन वीतरागी तपोधन को पहचान लिया कि यह तो अपने नगर के सम्राट थे।

ज्ञानियो! एक पथिक के मुख से निकला शब्द उन मुनिराज के कर्णरंध्रों में प्रवेश कर गया। बड़े-बड़े भवन एक छोटी-सी दरार से धराशायी होते हुये देखे जाते हैं। बारिस की बूँदें जाते-जाते उस भवन को भी नष्ट कर गयीं। ऐसे ही इन कर्णरंध्रों में यदि अशुभ भाषा प्रवेश कर जाये तो उस बूँद के समान भीतर जो शुभ-उपयोग की धर्म की जो दीवारें खड़ी थीं, वे क्षत-विक्षत हो जाती हैं।

भैया! जो त्यागी बन चुका हो, उसके मित्र बनने मत जाना, इतनी बात मेरी मान लेना, मात्र दूर से भक्त बनके रहना। चरणों तक रहना, कानों तक मत जाना। भक्त परमेष्ठी के चरणों तक ही रहता है। वह श्रावक जो जा रहे थे, बस, मात्र यही तो कहा था कि 'जब यह सम्राट थे, तब कैसे राज्य संचालन होता था।

हमारे शत्रु राजा इनके चरणों में भेंट चढ़ाया करते थे। आज इनके बेटे राज्य को नहीं सँभाल पाये, और शत्रु-राजाओं ने इनका राज्य छीन लिया। चलो भैया! अपन को क्या करना? हमें तो किसी-न-किसी के आधीन रहना ही था। पर राज्यव्यवस्था भंग हो गयी।' इतना मात्र बोला, उधर वे शब्द कर्णो से पहुँचे और वे वीतरागी मुनिराज जो आत्मानुभूति की ओर जा रहे थे, वह समरभूमि की अनुभूति में प्रवेश कर गये और पिच्छि-कमण्डलु बगल में रखा रहा। हाथ पर हाथ जो रखे थे, वे भी उठ गये और रौद्रध्यान में इतने लीन हुये 'यदि मैं होता तो चक्रव्यूह की रचना करता और शत्रु को यूँ फँसा लेता।' श्रेणिक जाकर वर्द्धमान स्वामी से पूछता है कि हे नाथ! हमने एक श्रेष्ठ योगी को ध्यान में लीन देखा था, पर उनकी भृकुटियाँ तन रही थीं, ऐसा क्यों? प्रभु कहते हैं कि श्रेणिक! शीघ्र जाओ, उस जीव की दुर्गति से रक्षा करो। यदि अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा आर्त्तध्यान में रहा, तो यह जीव नियम से अशुभ गति में प्रवेश कर जायेगा।

ज्ञानियो! श्रेणिक तुरन्त आकर दूर से ही कहता है—भो स्वामी! नमोस्तु, धरती के देवता वीतरागी तपोधन! नमोस्तु। हे निस्पृह योगी, हे श्रमणराज वरधर्म! आपको नमोस्तु। श्रेणिक की मधुर आवाज में 'नमोस्तु' कानों में पड़ती है। कर्णपटल पर पड़ी ध्वनि अन्तःकरण में प्रवेश करती है। और एकदम जैसे कोई सोकर जागता है। आह! ये नमोस्तु शब्द? मैं मुनि? और जो हाथ ऊपर तलवार जैसा उठ रहा था? पिच्छी पर पड़ा। उपकरण क्यों होना चाहिये? **श्रावक यज्ञोपवीत धारण क्यों करता है? आप सबने तो कह दिया कि यह ब्राह्मण-परम्परा है, जबकि रत्नत्रय का द्रव्य-सूत्र है। आपके गले में पड़ा है। कहीं अशुभ करने भी जाने लगे और तेरी जनेऊ पर दृष्टि पड़ गयी, तो याद आ गया कि मैं धर्मात्मा हूँ।** यह मैं क्या करने जा रहा हूँ? इसलिये ही तो कहते हैं कि यदि किसी गृहस्थ या त्यागी की मृत्यु हो जाये तो उस जनेऊ को जला मत देना, उसे टाँग देना। यह रहस्य है। लोगों ने जड़क्रिया कहके सब नष्ट कर दिया। कुछ लोगों ने सदियों की गिनती गिनाकर जिनसेन जैसे योगी

को पता नहीं क्या बोल दिया। रविसेन स्वामी को क्या बोल दिया। ज्ञानी! इनको समझाओ। जब सभी आचार्यों को एक किनारे करते जाओगे, अहो दिगम्बरो! तुम्हारे पास फिर साहित्य ही क्या बचेगा? जब तुम आचार्यों को अप्रमाणित कर दोगे, तो उनके ग्रन्थ तो अपने आप अप्रमाणित हो जायेंगे। अब बताइये, आपके पास फिर बचेगा क्या? तुम्हारे मन की बात जिसमें नहीं लिखी, वह आगम अनागम हो जाता है। वीरसेन स्वामी का 'धवला' भी अनागम हो जायेगी। उसमें भी धूप-घट, दीप आदि सबका वर्णन है। 'षट्खण्डागम' की नौवीं पुस्तक में समवसरण का वर्णन है। समवसरण के वर्णन में धूप-घट आदि का वर्णन है। इसलिये भैया! सँभालकर जीवन जीना, यह पंचमकाल है। भावों में विषयकषायों की भट्टी जल रही है। उस भट्टी पर ढक्कन नहीं ढक रहा है। यानि कि भगवान् की पूजनविधि को तू निषेध करने में तल्लीन हो रहा है। आप यह मत सोचना कि मैं यहीं कहता हूँ, विद्वानों के बीच नहीं कहता हूँ। पर देखना, मैं विद्वानों के बीच भी यही कहता हूँ।

ज्ञानियो! माँ जिनवाणी के आँचल का पान किया है। इस दूध को बदनाम मत करना। मुझे भगवती जिनवाणी पर अगाध श्रद्धा है। उसके बेटे जहाँ मुझे मिलते हैं, उनके प्रति अपने आप अनुराग (भाई भाव) आ जाता है। क्यों? मैं जिनवाणी का सपूत हूँ और उसके जितने भी सपूत हैं, वे सब मेरे भैया हैं कि नहीं, लोकदृष्टि में? यही कारण है कि आप सबके प्रति अनुराग आता है। मुझे मालूम है कि एक पृष्ठ पढ़ने में कितना आनन्द आता है, कितनी मेहनत लगती है। जब सारा लोक सुख-चैन की नींद में सो रहा होता है, तब यह विद्वान् माँ जिनवाणी में अपनी आँखें लगाये मिलते हैं। बड़ा बहुमान आना चाहिये इन विद्वानों के प्रति। विद्वानों और चारित्रवानों के प्रति बहुमान आना चाहिये। क्यों? बोले, मैं 'ज्ञान' शब्द को ही कह सका, पर धन्य हो इन योगियों को, जिन्होंने शब्द-आगम को भाव-आगम में बदल दिया हो। द्रव्यश्रुत को भाव श्रुत में ले लिया हो। शब्दब्रह्म को आत्मब्रह्म में घटित किया है। ऐसे वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधनों को

नमस्कार हो, इस बात पर कि मोह की बेला इतनी प्रबल होती है कि बड़े-बड़े सम्राट इसको नहीं जीत पाये और हे योगियो! तुमने बाल्य-अवस्था में काम-कीट को मार दिया हो। आप बाल्य-अवस्था में ही मोह से निर्मोह हो गये हो। इसलिये आपकी निर्मोहवृत्ति को मेरा नमस्कार हो।

ज्ञानियो! यथार्थ बताऊँ, मैं किसी दिगम्बर मुनि के आडम्बरों को नमस्कार नहीं करता हूँ, पर मैं दिगम्बर मुनियों में से तीन-कम-नौ कोटि में से एक भी मुनि को नमस्कार करना नहीं छोड़ता हूँ। उनकी निर्मोहवृत्ति को नमस्कार हो।

गुरुभक्त्या वयं सार्द्धद्वीपद्वितयवर्त्तिनः।
वन्दामहे त्रिसंख्योन नवकोटि मुनीश्वरान्॥

तीन-कम-नौ कोटि मुनीश्वरों की मैं वन्दना करता हूँ। कैसे वे मुनि, कैसी वन्दना? ऐसे नहीं कि मुनि हैं इसलिये गुरुभक्तिपूर्वक तीन-कम-नौ कोटि मुनीश्वरों को मेरा नमस्कार है। पर कौन-से मुनि? वीत आडम्बर, वीत कषाय, वीत मोह, वीत मिथ्यात्व। जिनका मिथ्यात्व नहीं वीत रहा है, उनके चरणों में मैं अपना सिर नहीं झुकाना चाहता हूँ। क्योंकि जगत् की सारी खोटी वस्तुएँ यदि घर में लाओगे भी तो उससे सम्यक्त्व की हानि नहीं होगी, लेकिन देव-शास्त्र-गुरु में खोटपना नहीं चलेगा।

देखो, आपके अन्दर श्रेणिक-जैसा भाव होना चाहिये। भगवान् के समवसरण से आकर श्रेणिक बोले, भो स्वामी! नमोस्तु। जबकि उनने तीर्थंकर की देशना में सुना था कि उनका अशुभ ध्यान चल रहा है, तब भी नमोस्तु किया था कि नहीं? क्यों? क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव था, इसलिये नमस्कार किया। अमृतचन्द्र स्वामी ने जो स्थितिकरण अंग का वर्णन किया है, वह सबसे भिन्न किया है। आगम से हट कर नहीं किया। आप यह मत लगाना कि अमुक आचार्य के अनुसार हो सकता है। उनका चिन्तन वहाँ तक नहीं पहुँचा हो, और दूसरे आचार्य का पहुँच गया हो। भैया! ज्येष्ठ की ज्येष्ठता तो देखना, पर श्रुत की श्रेष्ठता तुम

निज में निहारना। कभी-कभी ऐसा होता है कि ज्येष्ठ की ज्येष्ठता के राग में तुम मौन ले लेते हो और श्रेष्ठता का वचन नहीं आ पाता है। ज्येष्ठता मात्र का अहंकार चलता रहता है।

धन्य हो उस श्रेणिक को, जिसके मन में भाव आया कि मुझे रक्षा करनी चाहिये और जाकर नमोस्तु करता है कि मेरे नमोस्तु करते ही उनके भाव बदलेंगे। और भाव बदलते ही मेरा नमोस्तु वीतरागी मुनि को जगायेगा। वह जो रौद्र ध्यान में जा रहे हैं, वह नहीं जायेंगे।

स्वामी! आप दिगम्बर मुनि हो। अमृतचन्द्र स्वामी ने पता क्या लिखा है? कि ज्येष्ठ को मत देखिये, आप श्रेष्ठ को निहारिये। तत्त्व का निर्णय कीजिये। जब तुम स्थितिकरण करने चलो, तो तुम्हारे पास दो सामग्री होना चाहिये। ऐसा 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' ग्रन्थ में लिखा है। युक्ति और आगम। वही धर्म की रक्षा करते हुये स्थितिकरण कर सकता है। अज्ञानी तो मात्र आलोचना के सिवा कुछ भी नहीं कर सकता है। वात्सल्य नहीं है, अहम् है जीवों को। यह श्रेय मत लूटना कि किसी जीव को मैंने धर्म में स्थापित किया। यह जो 'श्रेय' शब्द है, यह कभी निश्रेयस की ओर नहीं ले जाने देता है। अब कोई कहने लगे कि में अमुक नगर में गया था, वहाँ एक मुनिराज को मैंने भटकते परिणामों में ठहराया। अरे! तूने पूरे धर्म की तो हँसी कर दी। क्या ठहराया? श्रेय लूटना बन्द कर दो यदि निश्रेयस चाहिये तो। आपका लक्ष्य पूरा होना चाहिये।

मित्रो! कोई तलवार के बल पर, कोई हिंसा के मार्ग पर, कोई मायाचारी के मार्ग पर अपने सम्प्रदाय की ख्याति फैलाना चाहता है। पर जिनागम कहता है भैया! यह सबकुछ बन्द कर दो। हमारे धर्म की प्रभावना तो हो गयी, अहिंसा ही हमारी धर्मप्रभावना है। हमारा लक्ष्य तो जीवदया है। चाहे विद्वान् करे, चाहे श्रावक करे, चाहे श्रमण करे। मेरा उद्देश्य है कि तीर्थंकर जिनेन्द्र का शासन जयवन्त होना चाहिये। मुझे तो खुशी होती है। चाहे अर्हन्त शासन बोलो, चाहे निर्ग्रन्थ शासन बोलो, अकलंक शासन बोलो, श्री जिनचंद्र शासन बोलो, वीरशासन

बोलो, सर्वज्ञ शासन बोलो, नमोस्तु शासन बोलो। जो नाम लेना हो लो, लेकिन अर्हन्त के शासन की जय होना चाहिये। अपना उद्देश्य मात्र इतना ही है। वीतराग शासन जयवन्त होना चाहिये।

मुमुक्षुओ! श्रेणिक को यह भाव नहीं था कि मेरा यश फैले। युक्ति व आगम, बस। कैसा? यदि किसी का बेटा सुकृत्य करे तो पिता को बहुमान हो कि मेरा बेटा वहाँ जिनवाणी छपाने गया था। सोचो, भाव देखो जीव के। यदि कहीं आपका बेटा दुष्कृत्य करते दिख जाय, तो ध्यान रखना, यदि किंचित् भी आप बेटे की रक्षा चाहते हो तो बेटे के सामने मत जाना, यदि अपनी इज्जत चाहते हो तो। वह तुम्हारे सामने दुष्कृत्य नहीं कर रहा था। इसका मतलब था कि सुधरने की स्थिति थी और वह आपकी मर्यादा रख रहा था। लेकिन आप इतने अज्ञानी हो गये कि सामने पहुँच गये, तभी से वह सब मर्यादा भी भूल गया।

सुनो, ध्यान रखो। आगम, युक्ति। यदि तुम्हें अपने बेटे की आदत ठीक करानी है, तो आप श्रेय मत लूटो। आप खोजो कि बात किसकी मानता है। उससे कहना कि आपका मित्र बिगड़ रहा है, उसको ठीक कराओ। विश्वास रखना, बिना पता चले तुम्हारा बेटा सुधर जायेगा। ऐसे ही कोई धर्मात्मा से गलती हो रही हो, आपको मालूम चल जाये, तो आप प्रत्यक्ष बोलने जाओगे तो हो सकता है कि वह आपकी न सुने। किंचित् भी पाप भीतर होगा तो उसको ऐसे अवगत कराना कि मैं तो पापी घर में भूल रहा हूँ। धन्य हो आपके परिणामों को। खूब प्रशंसा कर देना, ताकि प्रशंसा में वह बह जाये। फिर आत्मीयता देकर अच्छे-अच्छे महाराजों में नाम लेकर धीरे-से कहना, स्वामी! अमुक महाराज की क्या प्रभावना है। उनकी चर्या देखो। आप भी तो महाराज हो, आप क्या नहीं कर सकते हो? विश्वास रखना, जो तुम ईंट पत्थर कागजों में छपाते हो, उनके चारित्र की प्रभावना करके उनको चारित्र में स्थित कर दो, इसका नाम प्रभावना, स्थितीकरण, वात्सल्य अंग है। पर होना चाहिये युक्ति और आगम। आचार्य आदेश कर रहे हैं—'रोकिये -रोकिये, मन को रोकिये.....।'

अज्ञानाद्यदि मोहाद्यत्कृतं कर्म सुकुत्सितम्।
व्यावर्त्तयेन्मनस्तस्मात् पुनस्तन्न समाचरेत्॥ सा. स. 176॥

हे ज्ञानियो! घर में कीचड़ न हो जाये तो पानी के बहने पर तुम दीवाल खड़ी कर लेते हो। न हो तो आप कपड़ा डाल लेते हो। मेरे मित्रो! अपने भीतर भी व्यवस्था कर लो। यह मन कुमार्ग में चला गया तो पापों की कीचड़ हो जायेगी, गन्दगी फैल जायेगी। हे आत्मन् आज से तू अपने आप में भेदविज्ञान का वस्त्र डालकर उसको रोकने का विचार करना।

"आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

'कर्म-फल कटु है'

अचिरेणैव कालेन फलं प्राप्स्यसि दुर्मते।
विपाकेऽतीव तिक्तस्य कर्मणो यत्त्वया कृतम्॥ 177॥

अन्वयार्थ-दुर्मते = हे दुर्बुद्धि!, **त्वया यत् कृतम्** = तूने जो कर्म किये हैं, **अतीव तिक्तस्य कर्मणः** = उन अत्यन्त बुरे कर्मों के, **विपाके** = पकने पर, **अचिरेण एव कालेन** = थोड़े-से ही काल में तू, **फलं प्राप्स्यसि** = फल प्राप्त करेगा।

भावार्थ-हे दुर्बुद्धे! तूने जो कर्म किए हैं, उन अत्यन्त तीव्र कर्मों का विपाक होने पर तू शीघ्र ही उनका फल प्राप्त करेगा।

स्वल्पेनैव कालेन फलं प्राप्स्यसि यत्कृतं।
शश्वदात्मकर्मभ्यां गोपयत्सुमनागपि॥

भावार्थ-हे जीव! निरन्तर उपार्जित किये हुऐ जिन कर्मों का फल तू थोड़े ही समय में प्राप्त करेगा, उन कर्मों से तुझे अब किंचित् भी अपनी रक्षा करनी चाहिए अर्थात् उन्हें समभाव से भोग लेना चाहिए।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में कह रहे हैं कि ध्रुव टंकोत्कीर्ण परमपारणामिक भाव से युक्त निज भगवान्-आत्मा है। उस निज भगवान्-आत्मा के स्वरूप को न समझने के कारण अज्ञानी प्राणी काषायिक भाव से उलझा हुआ है। वह काषायिक भाव आत्मा का भूतार्थ स्वभाव नहीं है। इस बात को वह समझा रहे हैं।

अहो विज्ञ! कितने ही क्लेश को प्राप्त कर लो, संकल्प-विकल्प कितने ही

उपस्थित कर सकते हो, लेकिन किसी द्रव्य के स्वतन्त्र द्रव्यत्वपने का आप विनाश नहीं कर सकते। कितनों का शुभ सोचा, कितनों का अशुभ सोचा। यदि शुभाशुभ सोचना बन्द हो जाता तो न शुभ होता, न अशुभ होता, तू शुद्ध ही होता। राग की कणिका ने यह सोचने का समय ही नहीं दिया कि मेरे द्वारा पर का शुभ नहीं हो सकता, मेरे द्वारा पर का अशुभ नहीं हो सकता। राग की कणिका यही प्रकट कराती रही कि मैं जो करूँगा वही होगा। हाँ, तू जो करेगा, वही होगा, यह तेरे स्वयं के द्वारा किये गये स्वयं के परिणामों का फल होगा। शुभ परिणाम करेगा तो शुभ फल होगा, अशुभ परिणाम करेगा तो अशुभ फल होगा। लेकिन आप यूँ कहना चाहो कि मैं जो करूँगा वही होगा, तो वह पर के लिये घटित नहीं होगा, स्वयं के लिये ही घटित होगा। पर के लिये घटित करने के राग में अपने सम्पूर्ण जीवन की सुखानुभूति का भी नाश कर लेता है। परमार्थ की सुखानुभूति तो छोड़िये, संसार की भी सुखानुभूति को नष्ट कर बैठता है। ऐसे लोक में कितने जीव होंगे जिनका किंचित् भी किसी से क्लेश हो गया तो उस क्लेश के राग में, पर को संक्लेश पहुँचाने के द्वेष में, पूरी पर्याय नाश कर दी।

ज्ञानियो! धन भी कमाया तो केसों में गया, दूसरों को खिलाने में गया कि मेरे शत्रु का नाश कर देना। हे मित्र! शत्रु का नाश तो उसके अशुभ से होगा, पर तेरे पुण्य का नाश प्रतिक्षण चल रहा है। लोक में ऐसे-ऐसे जीव हैं। पर का अशुभ करने के लिये पैसा गवाँया, कि इसकी हिंसा करदो, इसके लिये इतना द्रव्य दूँगा।

एक वे जीव हैं जो पैसा कमाकर जिनमन्दिर बना रहे हैं, दूसरे वे जीव हैं जो जिनेन्द्र के रथ निकलवा रहे हैं। एक वे जीव हैं जो तीर्थंकर के पंचकल्याणक करा रहे हैं। वे अज्ञानीजीव हैं जो पैसा कमाकर पर की हिंसा करने के लिये पैसा लगा रहे हैं। भैया! स्वर्ग-नरक की व्यवस्था को निहारने के पहले जीवन की व्यवस्था को निहार लो। स्वर्ग-नरक तो व्यवस्थित स्थान है। उनकी व्यवस्था देखने की आपको कोई भी आवश्यकता नहीं है। स्वर्ग भी शाश्वत है, अकृत्रिम

है और नरक भी शाश्वत है, अकृत्रिम है। उनकी व्यवस्था के बारे में आप न सोचें तो बहुत अच्छा रहेगा। लेकिन उन स्थानों पर जाने की व्यवस्था उन स्थानों की व्यवस्था से नहीं है, तेरे परिणामों की व्यवस्था से है। जो अपने परिणामों को व्यवस्थित रख पायेगा, वह स्वर्ग के सुख देखने चला जायेगा और जो अपने परिणामों को व्यवस्थित नहीं रख सकेगा, वह नरक की व्यवस्था में पहुँच जायेगा। ज्ञानी! वहाँ की व्यवस्था बड़ी व्यवस्थित है। स्वसंचालित है। नरक की भूमि का स्पर्श करने से कष्ट होता ही है। वहाँ परस्पर के जो दुःख हैं, वह मिलते ही हैं। असुर जाति के देवों के द्वारा भड़काने पर जो कष्ट होता है, वह होता ही है। शीत-उष्णता की जो वेदना है, वह होती ही है। बड़ी बात तो यह है कि यदि आपके देश में किसी को जेल में डाल दिया जाय, हो सकता है कि आपका कोई नेता सहयोगी बन जाय और आपसे पैसे लेकर कोई सहयोगी बन सकता है जेल से निकलवाने में, पर नरक में तो तीर्थंकर-जैसे नेता की भी सिफारिश नहीं चलती है।

भैया! आप चाहो कि आचार्य विद्यासागर महाराज से कह दूँ, विरागसागर महाराज से कह दूँ, और-किसी आचार्यभगवन्त की सिफारिश लगवा दूँ या कोई विदेह से फोन करवा दूँ कि हे सीमंधर भगवान्! आप कह दो कि मुझे नरक में कोई दुःख न दिया जाए, मेरे मित्र! यहाँ तो कोई भी तीर्थंकर-जैसे मोक्षमार्ग के नेता अरहन्त भगवन्तों की भी सिफारिश नहीं लगती है। वे भी कह देंगे कि ज्ञानी! मैं भी तीर्थंकरप्रकृति का बन्धक निर्ग्रन्थ मुनि बना था, तब ऋषभदेव कह रहे थे कि सुन भैया! मेरा कर्म भी उदय में आ गया था तो मैं भी छः महिने घूमता रहा, मुझे भी कोई विधि बनानेवाला नहीं मिला। जो मेरे चरणों में सौधर्म इन्द्र खड़ा रहता था उसने भी नहीं कहा कि ऐसी विधि बना लो, जब मुझ-जैसे पुण्यात्मा जीव को भी कर्मसिद्धांत के अनुशासन के भंग करने की अनुमति नहीं है, तो हे ज्ञानियो! आप कौन हो सकते हो? और स्वर्ग की व्यवस्था भी बड़ी व्यवस्थित है। जिस जीव ने स्वर्ग-आयु का बन्ध कर लिया है, उस जीव का

कोई चाहे कि मैं धकेल कर नीचे गिरा दूँ, तो ऐसी किसी में ताकत नहीं है। अगर कोई कहे कि मैं इसे स्वर्ग जाने ही नहीं दूँगा, तो ऐसी किसी में शक्ति ही नहीं है। हाँ, ऊपर आयु का बन्धक नीचे रह सकता है। वह भी ताकत तेरे ही अन्दर है।

देखो भैया! धर्म के स्थान पर आने के उपरांत भी कदाचित आपको केवलज्ञानी अवधिज्ञानी आदि मुनिराज के नियोग से मालूम चल जाए कि अहो! आपने तो स्वर्ग आयु का बन्ध कर लिया है। **"नान्यथा मुनिभाषणं"** मुनि के भाषण अन्यथा नहीं होते। जिनेन्द्र के वचन अन्यथा नहीं होते हैं। तू स्वर्ग जायेगा। अब क्या हुआ? जब जीव ने सुन लिया कि मैं तो स्वर्ग जाऊँगा। बहुत विवेक से शब्दों को सुनना, इसी में रहस्य छिपा हुआ है। मैं तो स्वर्ग जाऊँगा, ऐसा तेरा निर्णय जब हो गया, क्यों? मुनिराज ने कहा है, सर्वज्ञदेव ने कहा है, वो तो निश्चित हो गया है। पर मेरे मित्र! निश्चित तेरा हो गया है, वह तो आयु का बन्ध है। मैं मानता हूँ कि उसे कोई नहीं टाल सकता है। आपने जब आयु का बन्ध किया था, तब विशुद्धि अंश बड़े पवित्र थे, परिणामों की विशुद्धि निर्मल थी। वृद्ध दादाओ! बड़े ध्यान से सुनना। क्यों? क्योंकि हम भ्रम में पड़ जाते हैं। मैंने तो सम्मेदशिखर की यात्रा कर ली, अब तो निश्चित ही मेरी दुर्गति नहीं होगी। पर तुम भूल चुके थे। **"भाव सहित बन्दे जो कोई"** उस भाव सहित में आपको सम्यग्दर्शन और ग्रहण कर लेना चाहिये। सम्यक् की रक्षा करता रहा, तब तिर्यंच, नरक, मनुष्य नहीं बन सकता यदि पूर्व में आयुबन्ध नहीं किया था तो। मनुष्य, तिर्यंच आदि का यदि कर लिया तो भोगभूमि का तिर्यंच बनना पड़ जायेगा, भोगभूमिया मनुष्य बनना पड़ जायेगा। अबन्धक है, सम्यक् की आराधना करता रहा, सम्यक् नहीं छूटा, तो वह जीव देव-आयु को ही प्राप्त करेगा। आपने धर्मकार्य किये, जीवनभर यतियों को आहार दिये, अरहन्त बिम्बों की स्थापना की, जिनवाणी का प्रकाशन किया, लेकिन इतना सब करने के बाद भी कर्मसिद्धान्त कह रहा है कि अमृत, मिश्री, शक्कर, खांड पुण्यप्रकृतियाँ चाररूप हो रही हैं। निम्ब, कांजी,

विष, हलाहल पापप्रकृतियाँ चाररूप फलित हो रही हैं। यह करणानुयोग से कह रहा हूँ। पाप-प्रकृतियाँ, पुण्य-प्रकृतियाँ। **'शुभःपुण्यस्याशुभः पापस्य।'** शुभ किया है तो पुण्यास्रव, पाप किया है तो अशुभ आस्रव। मेरा तो देव-आयु का बन्ध निश्चित हो गया है। मैं तो निश्चिंत हूँ। ठहरिये अभी। हमारे आचार्यों ने ग्रन्थों में निबन्धन किया, यह हमारा सौभाग्य है। नहीं-तो आदमी स्वछंदी हो जाता कि नियत हो गया। इसलिये 'क्रमबद्ध' लागू नहीं होता है। 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' जी में दस करण-परिणामों का वर्णन है। उन करण-परिणामों में उत्कर्षण, अपकर्षण भी है। उदय, उदीरणा भी है। निधत्ति-निकाचितपना है। संक्रमण भी है। सत्त्व भी है, पत्थ भी है। बिल्कुल सरल विषय है। पर की बातें कठिन हो सकती हैं, लेकिन यह तो अपनी बात चल रही है। अपनी बात दो प्रकार से होती है। एक अपनी बात बन्धदशा में, दूसरी अपनी बात निर्बन्ध दशा में। समयसार की बात हो तो शुद्ध जीवद्रव्य की व्याख्या। गोम्मटसार (जीवकाण्ड), षट्खण्डागम आदि की व्याख्या हो तो अशुद्ध जीवद्रव्य की व्याख्या। लेकिन व्याख्या जीव की ही है। शुद्ध समयसार और अशुद्ध समयसार।

भैया! क्या हुआ? मैंने तो जीवनभर धर्म किया है। आपने किया, जीवनभर किया, बहुत अच्छा किया, आपका धर्म करना श्लाघनीय प्रशंसनीय है। पर मेरे मित्र! मिष्ठान्न बनाने के लिये पचास किलो शक्कर को घर में रख लेना ही सबकुछ नहीं है। जिस स्थान पर आपने शक्कर को रखा हुआ है, मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना कि वहाँ चींटियाँ तो नहीं आ रही हैं? वहाँ वारिस का पानी तो नहीं टपक रहा है? लेकिन मूसलाधार पानी गिरा, तू इसी में मस्त रहा कि मेरे पास तो पचास किलो शक्कर है। जिस स्थान पर शक्कर रखी थी, पानी भर गया, तो पता चला कि पचास किलो शक्कर का अस्तित्व ही समाप्त हो चुका था। ओहो! यह जीव यही समझता रहा कि मेरे घर में तो पचास किलो शक्कर रखी हुयी है। जैसे ही बेचारा मौसम के खुलने पर मिष्ठान्न हेतु शक्कर को देखता है, उसमें देखा कि कुछ भी नहीं था। सुनो ध्यान से। जिसने रखी थी, उसने

क्या कहा? कि मेरे घर में तो पचास किलो शक्कर है। भैया! सुन, ऐसे ही तूने जीवन भर धर्म किया, खूब पुण्य कमाया और दिगम्बर मन्दिरों की स्थापना की, निर्ग्रन्थों के संघों के विहार कराये, आप तो यही समझ रहे थे कि मेरे पास तो पर्याप्त पुण्य संचय है, पर मेरे मित्र! तू भूल चुका था कि संग्रहित पुण्य के ऊपर तू विषय-कषाय के पानी की बूँदों को डाल चुका था और पुण्य तेरा नीचे बह चुका था। अब क्या करे? धोखे में रहा कि मैंने तो इतना पुण्य संचय कर लिया था। जितना धर्म कर रहे हो, जप-तप-स्वाध्याय आदि, उतना आपको ध्यान भी रखना पड़ेगा कि परिणाम मेरे कैसे चल रहे हैं? एक वर्ष का तप, एक मुहूर्त तो बहुत बड़ा होता है। एक समय प्रमाण की संक्लेशता क्षण भर में पूरे तप को नष्ट कर देती है। और ऐसा भी होता है कि जब संक्रमण हो गया तो साता का द्रव्य असाता में भी बदल जाता है और असाता का द्रव्य साता में भी बदल जाता है। हम सोच रहे थे कि पुण्य का द्रव्य रखा है, जबकि पूरा साता का द्रव्य असाता में बदल चुका था। क्यों? रोटी सेंकते-सेंकते तवा गर्म था, समय पर उतार लिया तो पेट भरने के लिये रोटी मिलेगी, समय पर नहीं उतार पाये तो राख फेंकने को मिलेगी। ऐसा नहीं है क्या?

ज्ञानियो! आप जो पुण्य के द्रव्य की रोटी बनाकर रख रहे थे, तो कषाय की ज्वाला इतनी तीक्ष्ण हो गयी कि पूरी पुण्य की रोटी तेरी राख हो गयी। तब कितनी वेदना होती होगी? भरोसे में तो तुम हो कि मेरे घर में तो अमुक द्रव्य रखा है। जबकि द्रव्य अन्दर-ही-अन्दर नष्ट हो चुका है। बस, भैया! यह अपने धोखे की साधना धोके के पुण्य में कहीं भूल मत जाना। पर ध्यान रखना, जाकर देख भी लेना कि पुण्य के खजाने में कषाय की आग तो नहीं लगी है। भैया! **कभी-कभी गेहूँ के दाने चमकदार दिखते हैं, लेकिन अन्दर घुन लगा होता है तो भीतर खोखले हो जाते हैं। ऐसे ही बाहर की पर्याय चमकती दिखती है। परिणामों में मान के घुन लग गये तो, जैसे गेहूँ के अन्दर का द्रव्य नष्ट हो चुका है। मात्र छिलका बचा है। इसी तरह अगर तेरे पुण्य का द्रव्य नष्ट हो गया, तो बाहर का कवच मात्र बचा है।** यह मत सोचना कि ये मात्र आपको

सुना रहा हूँ। मैं आपको भी सुना रहा हूँ और अपने आपको भी सुना रहा हूँ। क्यों? सँभल-सँभल कर जीने की आवश्यकता है। हर क्षण जाग्रत होने की आवश्यकता है। स्वलक्ष्य पर लक्ष्यपात करने की आवश्यकता है। मैंने देव-आयु का बन्ध कर लिया है और सर्वज्ञदेव ने कहा है। पर सर्वज्ञदेव ने यह भी तो कहा है कि आयु बन्ध का नाश तो नहीं होगा, पर उत्कर्ष का अपकर्ष तो हो सकता है। जो आपने सोलहवें स्वर्ग की आयु का बन्ध किया था, आपने इतनी संक्लेशता वर्त ली कि गिरते-गिरते अब तुम भवनत्रिक में चले गये। अब तुम क्या करोगे?

"सागरोपमेऽधिके।" सागर से कुछ अधिक। यह कुछ अधिक क्यों? इस जीव को उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक मिली थी। परन्तु संक्लेश परिणाम से आयु का घात कर लिया, इसलिये कुछ अधिक बचा, परन्तु मुख्य नहीं बचा। श्वास के निरोध से, आहार के निरोध से, विष के भक्षण से, शीत-उष्ण इत्यादि निमित्तों से आयुकर्म का क्षय होता है। युवाओ यदि आपने अपने आप को तीव्र संक्लेशित करके जीवन जीना शुरू कर दिया, बेटा! आपकी आयु आप बाँध कर तो सौ वर्ष आये थे, हो सकता है कि पचीस साल में ही तुम ऊपर चले जाओ। यह पिछत्तर साल संक्लेशता से कम हो गये। शरीर की शक्ति क्षीण हो गयी, रोगी बने और उसी संक्लेशता से आपकी शीघ्र मृत्यु हो गयी। बिना जहर खाये, बिना भोजन त्याग किये, बिना रेल की पटरी के यदि संक्लेशता बरतते रहे तो असमय में मर जाओगे।

ज्ञानियो! यदि किसी को अपनी आयु भारभूत लग रही हो तो टेंशन में जीवन व्यतीत करो। जो होना है, सामने आयेगा। नाई से क्या पूछने का कि कितने बाल सफेद कितने काले हैं? थोड़ा रुक जाओ, सब गिरने वाले हैं। देख लेना। बस, तनाव से मुक्त हो जाओ। जो भी शुभाशुभ होगा, सब सामने आयेगा। पर धैर्य को अपने पास रखना। हाँ, जब संकट के दिन आयें, जब कहीं कोई चारा ही नजर न आये, बस, इतना निर्णय कर लेना कि अब तो जो है, सो है। सामने

दिखाई देगा। समझ में आ रहा है? जैसे आप यहाँ शान्ति से विराजते हो, विश्वास रखना, यदि ऐसे ही जीवन शान्ति से व्यतीत करोगे, तो आपकी आयु को कोई तृणमात्र भी कम नहीं कर सकता है। पर होना यही है कि जो चेहरे अभी झलक रहे हैं, भावों की विशुद्धि, गद्गद् परिणाम, तो यमराज भी तुमको देखकर थक कर चला जायेगा। यदि कोई ऐसे निमित्त भी बने, तो वह निमित्त भी टल जायेंगे असंक्लेशता से, पर संक्लेश परिणामी को अशुभ-अशुभ निमित्त ही मिलते हैं। आप चाहो कि सारे जगत् में मेरे लिये अनुकूलता ही मिले, तो भैया! तुम इतने बड़े पुण्यात्मा कब हो गये हो? चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र जैसे जीवों को भी पूर्ण अनुकूलतायें नहीं मिली। आप इतने पुण्यात्मा नहीं हो कि चौबीस घण्टे आपको सब अनुकूलता ही मिलें। थोड़ा सहन करना भी पड़ेगा। देखो, श्री राम से पूछो, कितने सुख मिले उनको, विषमतायें कितनी सामने रही? वनवास, रावण युद्ध, अवधपुरी लौटे, लोकापवाद सीता का, अग्नि परीक्षा, फिर सीता मिली। फिर भी देखो सीता दीक्षित हो गयी।

अहो! आश्चर्य। उस देव का ही मन मचल गया। भाई का मन भी तभी मचला जब दैव ऐसा था, (दैव = होनहार) कि राम लक्ष्मण की प्रीति ऐसी है। जगत् में भाइयों में ऐसी प्रीति किसी की नहीं हो सकती है। एक देव से सहन नहीं हुआ, वह परीक्षा करने पहुँच गया और उसने आकर श्री राम से कह दिया कि लक्ष्मण का वियोग हो गया, इस शब्द को सुनते ही श्रीराम निष्चेष्ठ हो गये। बताओ क्या है जीवन? जिसने इतना बड़ा वैभव देखा हो और आज अवधपुरी सूनी दिख रही हो, भैया को अपने कंधे पर लिये घूम रहे हों श्री राम, तब देखो लगता है कि क्या है जीवन?

माँ! कहना पड़ेगा कि नारी का धैर्य विराट होता है। इसमें कोई शंका नहीं करना। अठारह-बीस साल जिस घर में रही हो, उसे दूसरे घर में भगाया जाता है। जिस घर में आप बहू बनकर आये थे, उस घर में पुण्यात्मा हरा-भरा परिवार तुमने देखा। ऐसा नियोग बना कि सुयोग्य पति मिला, पुत्र आदि भी हो गये।

सबकुछ देखने के बाद एक दिन ऐसा आया कि सबका वियोग हो गया। माँ बैठी है, नाती की शवयात्रा निकल गयी। भइया! आश्चर्य नहीं करना। अब सोचो उस माँ के धैर्य को। क्या सोच रही होगी? हाय! मेरे देखते-देखते क्या-क्या हो गया? कैसे-कैसे दिन देखे मैंने?

'पद्मपुराण' के पढ़ते समय अनेक बार नेत्र सजल होते हैं, कण्ठ रुँधता है। जिसने इतना बड़ा वैभव दिखा हो, आज कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। जब राग सताता है, तब दु:ख होगा और वस्तुस्वरूप दिखता है तो लगता है कि कुछ नहीं, कुछ भी नया नहीं हुआ है, यह तो जगत् का स्वभाव है। यह ऐसा ही है। इसलिये भैया! आज से ही इस जगत् के स्वभाव का चिन्तन कर जीना प्रारम्भ कर दो। जो कुछ तुझे दिख रहा है, प्रभात के सूर्य की लालिमा जब पूर्व दिशा में नजर आती है, आप संध्या की लालिमा का ध्यान तभी कर लिया करो। **जिनको संक्लेशता से मुक्त जीवन जीना हो, वे प्रभात की किरणों को देखकर संध्या की किरणों का चिन्तवन करें।** तभी आप अच्छे से रहोगे। सुना कुछ? प्रभात की लालिमा प्रकाश देकर जायेगी, संध्या की लालिमा अन्धकार देकर जायेगी। जब एक ही दिन में दो धारायें प्रचण्ड सूर्य के साथ घटित होती हैं, तो तुम्हारा पुण्य सूर्य के प्रचण्ड तेज की तरह नहीं है जो तुम्हारे साथ घटित न हो। जो पूर्व की दिशा में उदित होकर मध्याह्न के बारह बजे की बेला में सारे लोक को झुलसा रहा था, वही सूर्य संध्या के काल में अस्ताचल की ओर चला जाता है। **सबके दिन एक-से नहीं होते।** सूर्य ढलता है, सूर्य उबलता है।

काल कहता है कि मैंने उगते सूर्य को भी देखा, मैंने ढलते सूर्य को भी देखा। काल कहता है कि मैं अचल हूँ। सारे चक्र, चक्रवर्ती के चक्रों को भी मैंने घूमते देखा। तीर्थंकर का धर्मचक्र भी मैंने चलते देखा। कर्म का चक्र भी मैंने देखा। पर सारे चक्र मैंने टूटते भी देखे, फिर भी मेरा कालचक्र अनवरत चल रहा है। समय कालचक्र कहता है कि सारे चक्र चलते-चलते टूट गये, पर मेरा चक्र अचल है। मेरे चक्र का जो स्वरूप है, **"वर्तना परिणाम क्रियाः परत्वापरत्वे च**

कालस्य", यह कालचक्र का स्वरूप है। समझो, इस विद्या को भी सीखो। अन्तिम दशा सबकी यही है। काल सबको देख रहा है। उसने आपको माँ के उदर से जमीन पर गिरते भी देखा, उसने आपको घुटनों चलते भी देखा। उसने आपको तीन चक्के की गाड़ी को पकड़ते भी देखा। उसने आपको माँ-पिता की उँगली पकड़ते भी देखा। उसने आपको माँ के हाथों दुलार करते भी देखा। उसने आपको माँ को भगाते भी देखा, उसने आपकी पुण्य की सत्ता को और पाप के उदय को दोनों को देखा है। पर हे ज्ञानी! तू जगत् में किसी से बात कर लेना, लेकिन काल से बात नहीं करना, क्योंकि उसने आपको निगोद में भी देखा, स्वर्ग में भी देखा, नरक में भी देखा। नानी के सामने ननिहाल की बात क्यों करते हो? काल के सामने अपनी क्या बात करता है? इसलिये घर जाकर क्या करोगे? स्तब्धता आती है।

ज्ञानियो! तुमने जो सफेद कर्म किये हैं, वह भी काल ने देखे हैं। तुमने जो काले कर्म किये हैं, वह भी काल ने देखे हैं। तुम काली कोठरी में थे, तब भी काल देख रहा था। तुम प्रकाश के मध्य थे, तब भी काल तुझे देख रहा था। ज्ञानियो! दुनियाँ से छिपा पाओगे, पर काल से नहीं छिपा पाओगे।

अजगर के मुख में से बचकर लोग आ जायें। घड़ियाल के मुख से लोग बच गये, पर यमराज से तीर्थंकर भी नहीं बचे।

उसका कौन शरण होगा, जब सुरेन्द्र, नरेन्द्र, ब्रह्मा, आदि को भी काल ने कवलित कर लिया है? फिर भी काल देख रहा था। जिसे काल देख रहा है, तू चाहे तो तू भी देख सकता है। श्रुतज्ञान की तो वह महिमा है कि एक लोक की परिक्रमा को पैरों से करने में तो तुझे अनन्त भव लग जाय, पर तीनलोक की परिक्रमा एक कक्ष में बैठकर भगवती जिनवाणी के प्रसाद से हो जाती है। तटस्थ होकर बैठ जाओ, निहार लो कि कहाँ-कहाँ नहीं तूने देखा। सबकी पर्याय परिणतियाँ तूने देखी हैं। अब कुछ नया नहीं, कुछ पुराना नहीं। वो तो जो है, सो है। बस इतना ध्यान रखना कि 'जो है, सो है' का दुरुपयोग मत करना।

वस्तु-तत्त्व का दुरुपयोग मत करना। यह इसलिये है कि तेरी सम्पत्ति भी छिन गयी है, तब भी नहीं रो रहा है। जो है, सो है। तेरी पर्याय भी नष्ट होते दिख रही है, अब मत रोना, क्या मरेगा? जो है, सो है। परिणमन है।और क्या है?

यथार्थ मानिये। एक दिन ऐसा आयेगा, मैं आपको आशीर्वाद दे रहा हूँ, यूँ हाथ उठाकर समझा रहा हूँ, मेरे मित्र! मुझे समझ में आ रहा है, यह हाथ उठाने के लिये भी मुझे किसी का सहारा लेना पड़ेगा। और वह दिन भी आयेगा कि जब कोई हाथ लगायेगा तब भी नहीं उठेगा। हाथ उठाना तो बहुत बड़ी ताकत का विषय है, आँख का पलक भी मैं उठा नहीं पाऊँगा। वो दिन भी होगा, फिर क्या करेंगे? जो उठा ही नहीं रहा है, उसे उठाने की क्या आवश्यकता है? जो उठा रहा है, वह गिरने न पाये, उसे सँभालना है। जब वह दिन आ जाये कि मैं हाथ भी न उठा पाऊँ, पैर भी न चला पाऊँ, मुख भी न हिले, जिह्वा न कुछ कह सके, ज्ञानी! जो इन सबको उठवा रहा था, वह थक गया है। बस, अब उसे मत उठने देना, बाहर मत जाने देना, इतना ही ध्यान रखना। आँख का पलक उठाने में शक्ति चाहिये। वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम चाहिये। एक दिन ऐसा आयेगा जब पलक भी न उठा पाओगे, तब कहना कि बस, जब उठने वाला है ही नहीं, तो व्यर्थ में पुरुषार्थ क्यों करूँ? अब तो मात्र पुरुष से ही बात करूँगा, पर से कोई बात नहीं करूँगा। अब कहना 'जो है, सो है।' कुछ नहीं, कुछ नहीं है। लगता है सुहावना-सा, पर होता कुछ नहीं है।

ज्ञानी! सत्य यही है। अब सोचिये कि अध्यात्म की व्याख्या में जब इतनी शक्ति है तो अध्यात्म के जीवन में कितनी शक्ति होगी? यदि आप लोग झेलने की क्षमता रखते तो कितने गूढ़ रहस्य सामने आ सकते हैं। कभी-कभी मुझे ही सोचना पड़ता है कि ऐसा न हो कि बेचारों को समझ में न आये, फिर मैं आपको व्यवहार में लेकर आता हूँ।

माँ! हलचल में आनन्द है कि शान्ति में आनन्द है? तो आज घर में मौन ले लेना। अब सोचो, इस निर्मल भवन में इतनी शान्ति है, तो स्वाधीन है कि

पराधीन? आप चाहो तो अपने घर में ऐसा ही माहौल बनाकर रख सकते हो और फिर वह प्रत्येक भवन समाधिभवन होगा। अपनी ऐसी भावना है भगवन्! विश्व में जितने भवन हैं, समाधि-भवन हों। सभी के घरों से संस्तर निकले, किसी के घर से अर्थी न निकले। समाधि भवन होंगे। क्यों होंगे? जब ऐसी शान्ति छा जायेगी, बस, कुछ नहीं देखना, मात्र काल से पूछना कि आपने मेरा क्या-क्या देखा? वह कह देगा कि कितने भवों के बारे में पूछना चाहते हो। आपका अन्त नहीं है। आपका आदि नहीं है। आपका द्रव्य सनातन है। सनातन मैं हूँ। इसलिये सनातन को सनातन से अवाच्यभूत में जानो। जब तक मुख से बोला जाता है, तब तक विषय पूर्ण नहीं होता है। जब पूर्ण विषय पर जाने का मन करेगा, विश्वास रखना, वहाँ तेरा मौन हो जायेगा, अवाच्य हो जायेगा, अवक्तव्य हो जायेगा। अवक्तव्य भंग क्यों है? तुम जितना बोल चुके हो, उतना सर्वस्व नहीं है। ऐसा भी है, जो बोला नहीं जा रहा है, पर है। ऐसे-ही मुमुक्षुओ! जितना मैं आपको कह रहा हूँ, उससे कई गुना मेरे पास है। पर अब शब्दों में ताकत नहीं है कि उस सत्व को आपके पास कैसे भेजा जाये। अब आपको मुनि बनकर मौन लेकर बैठना पड़ेगा, तब तुम सत्य को पहचान पाओगे। रात्रि के बारह बजते हैं, तब योगी ध्यान में बैठता है। तब और-कुछ समझ में आता है।

विश्वास मानो, यह विद्युत प्रकाश भी ध्यान को भंग कर रहा है। यह पंखा, यह प्रकाश, यह ताप, सब ध्यान को भंग कर रहे हैं। रात्रि के बारह बजे सम्पूर्ण नगर का प्रकाश बन्द करा दो, फिर देखो कितनी शान्ति छा जाती है। पूरे नगर के कूलर मशीनें, ए. सी., सब मशीनें बन्द हो जायेंगी, जब शान्त नीरव समय होगा, तब बाहर के रव बन्द हो जायेंगे, फिर भीतर का रव भी समाप्त कर दो, फिर देखो प्रकृति का आनन्द प्रकृति में....।

ज्ञानियो! आपको बाहर की शान्ति का भी अभी पता नहीं है। मित्रो! वेदन करो शान्ति का। माँ! बीमारी तुम्हारे घरों से जा नहीं सकती है, विश्वास रखना, क्योंकि मस्तिष्क को विश्रांति मिल ही नहीं रही है। जो आवाज पंखे की आ

रही है, वह कान सुन रहे हैं कि नहीं? इससे भी थकान आ रही है। एक क्षण को सब बन्द करके निहारना। घर में मशीन चलती रहती है, जब बाहर की मशीनें बन्द नहीं कर पाते हो, तो बाहर शान्ति नहीं मिल रही है। और भीतर की मशीनें बन्द नहीं हैं, सो भीतर शान्ति नहीं मिल रही है। सो अशान्ति-अशान्ति है। बाहर की मशीनें बन्द करके भीतर रागादिक बन्द करो, फिर देखो कि क्या शान्ति है। फिर गूँजता है सूत्र—

"स्यान्दीभूत स्वरूपोऽहं, स्यान्दीभूत स्वरूपोऽहं"

एकमात्र स्यान्दीभूत। जगत् की सारी कथायें समाप्त हो गयीं।

हे जीव! यदि इस दशा पर नहीं पहुँचा, तो कर्म का कटु फल तो भोगना ही पड़ेगा।

अचिरेणैव कालेन फलं प्राप्स्यसि दुर्मते।
विपाकेऽतीवतिक्तस्य कर्मणो यत्त्वया कृतिम्॥ सा. स. 177॥

पुनः कह रहे हैं—हे दुर्बुद्धि, जो तेरे द्वारा किया गया कर्म है, वह कैसा है? जो तूने अशुभ कर्म किये हैं, वह अत्यन्त तीव्र कर्म का विपाक होने से तू शीघ्र ही उसके फल को प्राप्त करेगा । सत्य है कि कितने ही व्यक्ति छुप-छुप कर अशुभ कर रहे हों, पर प्रकट होते तो दिखते-ही-दिखते हैं।

मेरे मित्र! जितनी आयु भोग चुके हो, उतनी भोगने को मिल जाये, कोई नियत नहीं है। इसलिये भैया! यदि तेरे अन्दर किंचित् भी करुणा हो, तो आज स्वयं चिन्तन करना कि मुझे नीरव रस का पान करना है। और अपने मित्रों को जरूर बता देना कि एक दिन तो सारे भौतिक उपकरणों को बन्द करके एक क्षण को शान्ति का वेदन कर लो और यदि लोक की शान्ति की बात कर रह हो तो चलो यमुना के तट पर सुबह, मात्र वृक्ष, पानी, भूमि, प्रकृति के साथ खड़े होकर करना कायोत्सर्ग। जब प्रकृति के भेष को प्राप्त किया है, तो प्रकृति को प्रकृति में होना चाहिये।

मित्रो! जो भौतिक उपकरणों से अपनी आत्मा का उपकार कर लेते हैं, वे सुखी रहेंगे। माँ! आज घर में जाकर समाधि महल बनाना है। किसी प्रकार की किसी के आने पर भी आवाज नहीं करना है। कोई पूछे कि क्या हो गया, तो कहना कि मेरे घर में आज विभाव भावों की मृत्यु हो गयी है। यही आज का नियम है।

"आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"ज्ञान की महिमा"

वर्धमानं हि तत्कर्म संज्ञानाद्यो न शोधयेत्।
सुप्रभूतभूतसंग्रस्तः स पश्चात् परितप्यते॥ 178॥

अन्वयार्थ-यः = जो कोई, **तत् हि वर्धमानं कर्म** = इस बढ़ते हुए पापकर्म को, **संज्ञानात्** = सम्यग्ज्ञान के द्वारा, **न शोधयेत्** = दूर नहीं करता है, **सः** = वह, **सुप्रभूतभूतसंग्रस्तः** = अति तीव्र कर्मरूपी भूत से पकड़ा हुआ, **पश्चात्** = पीछे, **परितप्यते** = पछताता है।

भावार्थ-हे भव्य! यदि अज्ञान या मोह के वशीभूत होकर अपने से पापकर्म हो जावे तो उसकी शुद्धि सम्यग्ज्ञान के द्वारा धर्माचरण करके करनी चाहिए। जो कोई धर्म की ओर लक्ष्य नहीं देता है और पापकर्म को बढ़ाता ही रहता है, उसका बाँधा हुआ तीव्र पापकर्म जब उदय में आता है तब प्राणी को बहुत कष्ट होता है। तब उसके मन में पश्चाताप भी होता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में कर्म की विचित्रता की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि हे ज्ञानी! कर्मबन्ध के उदय की विचित्रता की व्याख्या तो आपने अनन्त बार सुनी है। कर्म जो उदित है, वह तो विगलित होनेवाला है। पर सत्ता में रखा जो कर्म है, वह उदय में आने वाला है। चाहे उदित कर्म हो, चाहे सत्ता में रखा कर्म हो, इन दोनों कर्मों का कोई दोष नहीं है।

मुमुक्षुओ! बेटे के अच्छे होने पर मात्र माता-पिता ही मुस्कुरा पाते हैं, पर तपस्वी और विद्वान् के ज्ञानी होने पर पूरा राष्ट्र मुस्कुराता है।

उदित कर्म, विगलित कर्म, इन दोनों का कोई दोष नहीं है। चिन्तन की धारा को चित्त की ओर ले जाओ। उदित कर्म हो, चाहे विगलित कर्म हो, वे तो कर्म ही हैं। वे जड़भूत हैं। बालू पड़ी है जमीन पर, वह तो अपने स्वभाव में है। किसी के तन को मलिन करने में बालू क्या कर सकती है? यदि तुम्हारे शरीर में चिकनाई नहीं है, तो बालू के कण नहीं चिपक सकते हैं।

ज्ञानी! राग की चिकनाई तुम्हारे अन्दर नहीं है तो जड़कर्म बेचारे क्या कर सकते हैं? राग की चिकनाई, द्वेष का रूक्षत्व आपकी आत्मा के अन्दर है। इस राग-द्वेष के स्निग्ध-रूक्षत्व ने ही कर्म को बन्धित किया है। कर्मों ने आपको बाँधकर नहीं रखा है। यह कर्माधीन होने की दृष्टि नहीं है। हम कर्म के आधीन नहीं है। आप स्वाधीन हो। कर्म के बन्ध का जो कार्य है, वह कर्म ने नहीं किया है, वह तेरे कर्मों ने किया है। दो रूप में कर्मों को देखना है। आप बन्धित कर्म को तो दोष देते हो, पर कर रहे कर्मों को दोष क्यों नहीं देते हो? जो बँधे हुये कर्म हैं, उनके उदय आने पर आप उनको गाली दे रहे हो। अरे! कर्मों को क्यों गाली देते हो? आपने भावकर्म किये थे और आपने कर्म किये थे। जो कार्यभूत कर्म हैं, जिसको हम करतूती कहते हैं, उस करतूती को तो ठीक नहीं कर रहे हो, कर्मों को दोष दे रहे हो। कर्मों को दोष मत दो, करतूती को दोष दो। हमारी अन्तर्तत्त्व दृष्टि कहाँ चली गयी? जिसे-जिसे बाँधा था, उस बँधे को तो तू दोष दे रहा है, पर बाँधनेवाले को दोष क्यों नहीं दे रहा है? बाँधे किसने थे? कर्मों को नहीं बाँधा, जिसमें कर्म बँधे हुये हैं, उसी ने कर्मों को बाँधा है। कर्म किसमें बँधे हैं? कर्म आत्मा में बँधे हुये हैं। तो बाँधने वाली आत्मा ही है। ऐसा मत कह देना कि कर्म ही कर्म कर रहे हैं, आत्मा तो स्वतन्त्र है। यह सिद्धान्त जैनदर्शन का नहीं है। यह सांख्य का सिद्धान्त है कि प्रकृति कर्म कर रही है, पुरुष स्वतन्त्र है।

ज्ञानियो! प्रकृति कर्म नहीं करती, पुरुष ही कर्म करता है। यह पुरुष का ही विभाव है। पुरुष का ही राग है। पुरुष का ही विकार है। जिसे मैं पुरुष कह

रहा हूँ, वह वेद का पुरुष नहीं है। जिसे मैं पुरुष कह रहा हूँ, वह आत्मा है। **"अस्ति पुरुषश्चिदात्मा।"** जो चैतन्य आत्मा है वही पुरुष है। उसका ही शुभाशुभ कर्म चला है।

अहो! कर्म को दोष दे रहे हैं कि मेरे घर में कष्ट क्यों है? मुझे गरीबी क्यों सता रही है? कर्म को दोष दे रहे हो कि मेरी बुद्धि काम क्यों नहीं कर रही है? कर्म को दोष देते हो कि मेरा परिवार मेरे से प्रीति क्यों नहीं रखता है? मेरे मित्र मुझे क्यों नहीं स्वीकार कर रहे हैं? समाज, पड़ौसी कोई भी क्यों नहीं स्वीकारता है? मेरा सगा भाई भी मुझे दुत्कार रहा है। कर्म! तुम कितने खोटे हो? मेरे साथ ऐसा हो रहा है। पहले तूने खोटा किया, सो कर्म का बन्ध किया। अब तू पुनः खोटा कर रहा है, दूसरे को गाली दे रहा है। कर्म को नहीं देखता है। ज्ञानी! चाहे जड़ को गाली दो या चैतन्य को, गाली तो गाली है। चाहे छोटे से द्वेष करो, चाहे किसी पुरुष से द्वेष करो, द्वेष तो द्वेष ही है। पत्थर पड़ा हुआ था, उसमें ठोकर लग गयी और तू गाली देकर पत्थर उखाड़ कर फेंक रहा है। ज्ञानी! उस गाली में कषाय थी कि नहीं? ज्ञानियो! **आज उपदेशों के माध्यम से क्रियायें तो प्रचुर हो चुकी हैं, पर संवेदनायें शून्य हो चुकी हैं। पिता जी को महल बना कर तो बेटा दे सकता है, लेकिन वात्सल्य की घुटी पिलाना बन्द हो चुकी है। वह महल जो दिया है, वह इस बात के लिये कि कोई कह न पाये कि पिता जी की सेवा नहीं की। चार नौकर भी यही सोचकर लगा दिये कि कोई कह न पावे कि पिताजी की सेवा नहीं हुयी।** पर मेरे बेटे! पिताजी को नौकरों के हाथ से पिलाया गया पानी वह अहंकार का प्रतीक है। स्वयं के द्वारा किया गया कर्म पिता के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है। वह तो समाज में अपने मान की रक्षा के लिये आपने चार नौकर भी पिता जी के लिये लगा दिये हैं। तब भी बेटे! तेरी सेवा 'सेवा' नहीं है। तूने वेतन पर नौकर लगा दिया पिता जी के लिये।

बेटो! उस पिता को तो देखो जिसने तन देकर तुझे जन्म दिया है। और तू

वेतन से पिता की सेवा करवा रहा है। ब्रह्मधर्म का नाश करके तुझे जन्म दिया है। अपने तन की शक्ति को क्षीण करके तुझे जन्म दिया है। उसको भूल ही गया। वित्त के राग में चित्त को अशुद्ध मत कर लेना। जितने चित्त अशुद्ध हो रहे हैं, सब वित्त के राग में।

कर्म से कह रहा था कि कर्मों का दोष है। नहीं, मित्रो! कर्मों का कोई दोष नहीं है। कर्म तो महान् ईमानदार हैं। वे किसी को दुःख भी नहीं देते हैं, वे किसी को सुख भी नहीं देते हैं। तुम्हारी करतूती जैसी होती है, कर्मों को वैसे आना पड़ता है। तुम कर्म का तो कह रहे हो जो आया है उदय में; पर जो तुम करते हो, उस कर्म को क्यों नहीं कह रहे हो? ज्ञानियो! छुपकर पाप करके आओगे, पर पाप का फल तो सबके सामने आयेगा। तुम उदय में आये कर्मों को दोष दोगे, पर जो किये हैं उन कर्मों को दोष नहीं दोगे। यह कर्मों का दोष नहीं है, तेरी करनी का ही दोष है। कर्म किसने किये? माँ! उदय को देखकर बिलखती हो। उदय के काल में जो कारण बनकर आया है, उस कारण को दोष देती हो। जब भी विपाक आयेगा, तो कारण को दिखायेगा। दोनों तरफ चलना। शुभ, अशुभ कार्य को देखकर मुस्कुराता है और कारण को पुरुस्कार देता है। पर अभी तेरी भूल चल रही है। तू उच्चकुल में धनपति पिता का बेटा बना बैठा है। इस अवस्था को देखकर तू मुस्कुरा रहा है। और जैसा तू कहता है वैसा तेरा पिता कर देता, तो पिता को देखकर तू खुश होता है। अपने मन में पिता को पुरुस्कार देता है। पर यह सब ऊपरी दशा है। अभी समझ में आता है। हे ज्ञानी! जो तेरा जन्म है, वह कारण नहीं है, कार्य है। तू स्वयं को कार्यभूत में देख रहा है और लोक में तू पिता को कारणभूत देख रहा है। यहीं-के-यहीं मुस्कुरा लेता है। और एक जीव गरीब के घर में जन्मा, वह पचास दिन पहले कहता है कि पिताजी अमुक सामग्री चाहिये, लेकिन सौ दिन बाद भी पिता नहीं दे पा रहा है।

ज्ञानी! कार्य है तेरी गरीबी, तेरा नीचकुल; लेकिन तेरी विवेकहीनता यह कार्यभूत है। मित्र! तुझे कारण दिख रहा है अपना पिता, कि इसने जीवन में

कुछ नहीं कमाया, सो मुझे कुछ नहीं दे पा रहा है। ज्ञानी! यह आपकी भूल है। अब तो आपको समझ में आ रहा होगा?

माँ! आप अपने पति पर लगा लेना और विषय को इतने अच्छे से समझना कि आज से घर में क्लेश बन्द हो जाना चाहिये। तेरा पति तेरी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पा रहा है तो तू पति को दु:ख देती रहती है। पर तू यह क्यों नहीं सोचती है कि मैंने ऐसा अशुभ कर्म का बन्ध किया था कि ये दरिद्री पति के घर में आयी हूँ। यह पति का दोष नहीं है। उसका क्षयोपशम उसके साथ है। लेकिन तूने कर्म न किया होता, तो तू ऐसे घर में आयी कैसे? अब तू कारण को गाली दे रही है कि मेरा पति मेरी इच्छा की पूर्ति नहीं कर रहा है। हे माँ! तू पूर्व में इतनी इच्छाओं की पूर्ति कर चुकी थी कि अब तेरी इस पर्याय में पूर्ति होना असम्भव है। बहुत अच्छा है कि पूर्ति तो हो नहीं पा रही है, इसलिये इच्छाओं को समाप्त कर दो, तो शौचधर्म प्रारम्भ हो जायेगा। पति भी सुखी हो जायेगा, आप भी सुखी हो जायेंगी। नहीं तो ऐसे ही बेचारा शाम को आता है। आप अनेक इच्छायें सामने रख देती हो, सिर पटकती हो और कहती हो कि मेरे भाग्य फूट गये इस अभागे के यहाँ आकरके। अब सोच कि सामने-के-सामने तू ऐसा बोल रही है तो उस बेचारे के परिणाम कैसे हो रहे होंगे? कि यदि गरीबी न होती तो आज पत्नि के ताने-बाने तो न सुनने पड़ते। कोई किसी को अस्त्र चलाकर घात कर देता है तो तत्क्षण में पर्याय का विनाश होता है। तुम अपने घर में, कुटुम्ब में रोज इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर रहे हो, प्रतिक्षण उसके शरीर में बाण भेद रहे हो, प्रतिक्षण हिंसा हो रही है, प्रतिक्षण घात चल रहा है।

सोचो! जीते-जीते आप कितनी बार अपने बेटों को मार चुकी हो? कितनी बार अपने पति को मार चुकी हो? बता सकते हो? जब पति से अशुभ बोलना प्रारम्भ किया था, तब तुमने यह सोचा था कि उसके अशुभ होने पर तुम्हारी माँग भरी रहेगी क्या? यह जो दृष्टि चल रही है, यह समझो।

यदि आप व्यवहार नय में इतने ऊपर चले गये कि जिससे तुम्हारे अन्दर से निश्चयनय विलीन हो चुका है, तो तुम उस पत्नि के समान हो चुके हो जो कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति में पति से इतना द्वेष कर बैठी कि अपने पति का ही अशुभ कर दिया। अब सबसे पहले उससे पूछना कि शृंगार किसका मिटेगा? जब बिछुआ उतरकर फिकने लग गये, चूड़ियाँ उतरकर फिकने लग गयीं, माँग मिटने लग गयी, तब समझ में आया कि यह तो मेरा शृंगार नष्ट हो गया। ऐसे ही ज्ञानियो! तुम एक नय में इतने ऊपर चले गये कि दूसरे नय को तुम छोड़ गये। तब मालुम चला कि मेरा ही शृंगार नष्ट हो गया, मैं तो सोच रहा था कि मैं पर का श्रृंगार नष्ट कर रहा हूँ, लेकिन नाश मेरा ही हो चुका है। जो व्यवहार-व्यवहार में लीन हो रहा है, वह परमार्थ से शून्य हो रहा है। जो निश्चय-निश्चय चिल्ला रहा है और व्यवहार को छोड़ चुका है, ज्ञानी! वह न तो परमार्थ में है न व्यवहार में है। वह दोनों से च्युत हो रहा है और नरक की ओर जा रहा है।

हम तो यह सोच रहे थे कि इसका घात हो जायेगा, पर हे नारी! घात किसका हुआ? कैसा ही स्वामी हो, वह तुम्हारी चूड़ियों की तो रक्षा कर रहा है। समझ में आया? तुम्हारी माँग की रक्षा कर रहा है।

मित्रो! ध्यान दो, उस माँ से कहना, हे माँ! तेरी माँग व चूड़ियों की रक्षा कर रहा है, इसलिये इतना मत माँगो कि जिससे तुम माँग रही हो वह ही मर जाये, तेरी चूड़ियाँ फूट जायें। क्या हो गया? गम्भीर क्यों हो गये हो? इतना मत माँगो।

बेटा! तू सोच रहा था कि मेरे पिता ने मेरे लिये इतना किया है। वर्तमान की आँख से तू देखेगा तो वर्द्धमान तू माँ त्रिशला और पिता सिद्धार्थ का बेटा होगा और वैशाली का तू राजकुमार होगा, लेकिन भेदविज्ञान की आँख से देखेगा तो आत्मप्रदेश का स्वामी होगा और पुण्य पाप की आँख से देखेगा तो पूर्व के पुण्य का उदय तेरे साथ है। न त्रिशला का बेटा है, न सिद्धार्थ का बेटा है। तू

अपने पुण्य का बेटा है। पुण्य की सन्तान की वर्तमान पर्याय के दाता सिद्धार्थ और त्रिशला हो सकते हैं, परन्तु हे पुत्र! तेरे पुण्य का पिता तो तू ही है। मित्र! तेरा कोई पुत्र है तो वह तेरा ही पुण्य है। **भैया! विश्वास रखना, आज से कभी मत सोचना कि मैं कुछ हूँ, कोई मेरे हैं। न मैं कुछ हूँ, न कोई मेरे हैं। जो पुण्य का द्रव्य था, उसके सब चेरे हैं। वह बिखर गया तो न कोई मेरा है न कोई तेरा है। जो है, सो है। झूठा झमेला है, कुछ-और नहीं है।** हम चाक्षुस मात्र को देखते हैं, दृश्यमान को देखते हैं; पर दृश्यमान जिससे दिख रहे हैं, जिससे तुम्हारा वैभव दिखाई दे रहा है, वह पुण्य अदृश्यमान है। कर्म अदृश्यमान है। जो कर्म है, उस कर्म को करनेवाले जो कर्म हैं, वे भूत की पर्याय के हैं। जो कर्म का उदय है, वह भूत के कर्मी का है और जो तुम भोग रहे हो, वह वर्तमान की पर्याय है। मित्र! जिसके लिये तुम रो रहे हो, वह भविष्य की पर्याय है। पागलों की भीड़ है।

वर्तमान में वर्द्धमान परिणाम पवित्र करेगा तो वर्तमान फिर वर्द्धमान ही हो जायेगा। वर्तमान के परिणामों को यदि हीयमान किया, तो वर्तमान भी हीयमान हो जायेगा। भूल कहाँ चल रही है? कार्य को देखकर हर्ष-विषाद चल रहा है। कारण को तिरस्कार और पुरुस्कार दोनों ही मिल रहे हैं। **क्लेष हुआ है, दुःख हुआ है, विपत्तियाँ आयी हैं, तो कारण कोई हो सकता है, पर कार्य विपत्ति है। पर यह वर्तमान का कारण ही कारण नहीं है, भूत का कारण तू ही है। तूने किसी को दुःखी किया था, आज उदय में आया है, उसे तू देख नहीं पा रहा है।** वर्तमान के कारण को दोष देकर और-नवीन कर्म का बंध कर रहा है। इसलिये भैया! जिसे तुम सुन रहे हो, इसे जीवन में उतारने के लिये बहुत शक्ति चाहिये। अभी शान्ति से बैठकर सुन रहे हो, लेकिन अभी-अभी कोई हर्ष-विषाद का कारण मिल जाए तो आप दोनों समय में कैसे रहोगे? गरीबी को गरीबी स्वीकारना छोड़ दो। अमीरी को अमीरी स्वीकारना छोड़ दो। हम दोनों से भिन्न हैं। जो गरीबी के दिन हैं, वह भी मुझे दुःखी कर रहे हैं, अमीरी के

दिन भी मुझे दु:खी कर रहे हैं। मैं दोनों को इसलिये स्वीकार रहा हूँ। अभी शर्ट फट जाये तो तेरा चेहरा उदास हो जायेगा और सुन्दर शर्ट मिल जाए तो मुस्कुरा देगा। फटी शर्ट थी, तब भी तू नहीं था और सुन्दर शर्ट थी, तब भी तू नहीं था। जब तू हँस रहा था, तब भी तू नहीं था। हँसते समय और शर्ट को फटा देखने के बाद भी, यह दोनों में ही अपने में नहीं था। जो अपना न होने दे, जो अपने से न मिलने दे, अपने की बात न करने दे, ऐसे वस्त्र को धिक्कार हो।

ज्ञानी! यदि तू अच्छे पहने था, तो अहंकार में दिख रहा था कि मैं सेठपुत्र हूँ। जब तेरे कपड़े फट गये, तो तू मलिन मुख करके खड़ा हो गया कि मैं गरीब-पुत्र हूँ। मेरे मित्रो! तुम कपड़े उतारकर फेंक दो, पिच्छि-कमण्डलु ले लो, अब तुम गरीब पुत्र हो या अमीर पुत्र हो, बताओ तुम क्या हो?

गरीबी है तो पर में है, अमीरी है तो पर में है। पर से भिन्न हो जाओ तो दिगम्बर मेरा धर्म है। यही शाश्वत धर्म है। कुछ अन्य नहीं है। जब कपड़े उतरने से अमीरी और गरीबी दोनों उतर गयीं, तो जो अमीरी को देखकर पान खिलाने लाये थे उनके हाथ भी पीछे हट गये और गरीब कह कर जो तेरे लिये चेहरा बिगाड़ रहे थे, उनके हाथ जुड़ गये। अब आनन्द है जब अमीरी-गरीबी दोनों चली गयीं। चक्रवर्ती भी आकर सिर टेक रहा है—'भो स्वामी! नमस्तुभ्यं।' यह है धर्म का प्रभाव, रत्नत्रय धर्म की महिमा।

ज्ञानियो! आप समझो उतार दो, उतार देना। पर मित्रो! वस्त्रों को उतारने के पहले कषायों को उतार देना। इसलिये विवेकपूर्वक उतारना। एक उतारते हैं, एक के उतरते हैं। मुझे पता है, सबके उतरेंगे। ज्ञानी! हंस निकलने के बाद उतारे गये तो मुर्दा हो जायेगा और हंस निकलने के पहले उतार दिये तो मुनिराज हो जायेगा। धिक्कार हो। मुर्दा होकर तो सबके उतरते हैं। अरे! मुनि बनके उतारो तो जानें। समाज के उतारने के पहले दे जाना। न गरीब बनकर जाना, न अमीर बनकर जाना, वीतरागी तपोधन बनकर जाना।

ज्ञानियो! बहुरूपिया ब्रह्मगुलाल ने अनेक रूप बनाकर सभा में दिखा दिये। सम्राट कहता है ब्रह्मगुलाल! आप सिंह का रूप बनाकर दिखाओ। कहता है, राजन्! सिंह बनूँगा तो आपको अपराध माफ करना पड़ेगा। विवेकहीन होकर सम्राट ने वचन दे दिया 'स्वीकार है।' राजसभा में सिंह बनकर आ गये ब्रह्मगुलाल। एक ओर राजकुमार बैठा हुआ था। उसके ऊपर पंजा मार दिया। सम्राट के अंतरंग में प्रतिशोध की भावना थी, पर कर क्या सकते थे, क्योंकि वचन दे दिया था। राजा ने कहा—अरिहंत मुद्रा बनाकर दिखा। ब्रह्मगुलाल ने कहा— ठीक है। लेकिन अरिहंत मुद्रा ग्रहण करने के बाद उसे नहीं छोड़ा जाता है। इसलिये हे राजन्! आप मुझे सात दिन दीजिये। सात दिन ले लिये और घर जाकर अभ्यास प्रारम्भ कर दिया।

अन्तर विषय वासना वर्ते, बाहर लोकलाज भारी।
यासों परम दिगम्बर मुद्रा, धार न सके दीन संसारी॥

सारे विश्व को जीत लेना सरल है, पर लोकलाज लज्जा को जीतना सरल नहीं है। अभ्यास किया, फिर निर्णय कर लिया कि ब्रह्मगुलाल! अब यह तुम्हारी अन्तिम लीला है, अन्तिम बहुरूपियापन है। यूँ ही मंच पर आकर खड़े हो गये। अहंकार नहीं था। जिनमुद्रा का बहुमान होना चाहिये। सारी सभा खड़ी हो गयी, यह वीतरागी मुनि हैं। यह सरागी आसन पर नहीं बैठते हैं, यह वीतरागी आसन पर बैठते हैं। काष्ठासन ही वीतराग आसन है। जैसे ही मुनिराज राजसभा में पहुँचे, राजा ने सिंहासन छोड़ दिया। मुद्रा ही ऐसी है। यथार्थ मानिये, वीतराग मुद्रा को देखकर अलौकिक ही अनुभूति होती है।

आज सभा का माहौल ही भिन्न था। राजा नमोस्तु निवेदित कर कहता है -हे स्वामी! तत्त्वोपदेश करें।' राजन्! अवश्य ही। ब्रह्मगुलाल मुनि के प्रवचन सुनो। कार्य को देखकर प्रसन्न मत हो। कार्य को देखकर दुःखी मत हो। घड़ी के काँटे देखते-देखते बहुत समय बीत गया, पर काँटे चल किस पर रहे हैं? सैल को भी देख। काँटों के बन्द होने पर तुम क्लेश को प्राप्त हो रहे हो। काँटों

को ही क्यों देख रहे हो? दीवाल और घड़ी के बीच में कुछ और भी है, उसे क्यों नहीं देखते हो? उसका नाम सैल है।

हे मुमुक्षुओ! संसार के सुख-दु:ख के काँटे जिसके द्वारा चल रहे हैं, उस पुण्य की सैल को तो देख, पाप की सैल को तो देख। कारण को देखे बिना कार्य को देखकर हर्ष-विषाद कर रहा है। जो भाव अशुभ किये हैं, उन भावों को शीघ्र ठीक कर लो, नहीं तो चिरकाल तक बिलखना पड़ेगा। अनेकांत और स्याद्वादी की वाणी गूँज गयी। राजसभा के विघटने का समय हो गया। राजा कहता है—स्वामी! आपकी लीला पूर्ण हुई। अब आप अपने भेष में आ जाओ।

राजन्! क्या पीलिया रोग है आपकी आँखों में, या आयु की पूर्ति हो गयी है? 'स्वामी! ऐसी क्या बात है?' नकली भेषों को तू असली भेष कह रहा है, तुझे दिख नहीं रहा है? जब जन्मा था और मृत्यु होगी, तब भी जलाते समय लोग इसी मुद्रा में कर देंगे। यह असली भेष है। नकली भेष को मैंने छोड़ दिया है। इस भेष को नहीं छोड़ सकता हूँ। 'नहीं, स्वामी! मैंने तो मात्र आपको लीला के लिये कहा था।' जगत् की मुद्राओं में लीला है। पर यह जगत् की मुद्रा नहीं, यह जिनमुद्रा है। इसमें लीला नहीं है। राजा थक गया। पत्नि खड़ी है—'स्वामी! चलो।' हे पतन करानेवाली! अब में उस पत्नि के साथ रहूँगा जो उर्ध्वगमन करानेवाली होगी, अधोगमन नहीं करायेगी। अभी तक मैं स्वामी को भूला था, अब में अपने एकत्व-विभक्त चिद्रूप स्वामी से मिलने जा रहा हूँ। पिता कहता है—'तुम मेरे एकलौते लाल हो।' हाँ, जनक! आप सत्य कह रहे हो। मैं अकेला ही हूँ, अकेला ही रहूँगा। आप से यह कह किसने दिया कि मैं दो हूँ? मैं तो एक ही हूँ। 'बेटा! तुम तो राजसभा में दृश्य दिखाने आये थे।' हाँ, तात! दृश्य ही तो दिखा रहा हूँ। अब तक झूठे दृश्य दिखाये थे। अब सच्चा दृश्य दिखा रहा हूँ। 'घर नहीं चलोगे क्या?' पिता जी! किसने मना किया है? घर में ही तो जा रहा हूँ। अभी तक पर घर जाता था, अब निज घर की ओर जा रहा हूँ। आप क्यों कह रहे हो कि घर नहीं जायेगा? बोले 'बेटे! सुन। तेरी पत्नि बिलख

रही है। क्या तुझे शर्म नहीं आ रही है?' हाँ, तात! तुम बिल्कुल सत्य कह रहे हो। मेरी रमणी अनन्त पर्यायों से बिलख रही है। आज वही विचार कर रहा हूँ, सो आत्मरमणी को मनाने जा रहा हूँ। अब तुम विकल्प मत करो। जगत् के राग-रंगों में लिप्त होकर अपनी आत्मरमणी को बिलखाया और व्यभिचारी बनकर भटका हूँ। मेरी पत्नि मेरे घर में रो रही है, मेरी पत्नि आत्मरमणी है। पिता जी सोचते हैं कि इसकी बुद्धि को हो क्या गया है? तो पिता कहता है ब्रह्मगुलाल की माँ से कि तू ही समझा। माँ खड़ी हो गयी 'लाल! चलो।' हाँ, माँ! तू चिन्ता मत कर। मैं तुझे कभी नहीं छोड़ सकता हूँ। जो सुलाने वाली माँ है उसके साथ नहीं, जगानेवाली माँ जिनवाणी को मैं कभी नहीं छोड़ सकता हूँ। 'बेटा! चलो। मैंने शरीर को कमजोर करके तुझे जन्म दिया है। तू मेरी बात क्यों नहीं मान रहा है?'

'फूल झड़े बिना फल आते नहीं। फूल झड़ता है, फल आता है।' मित्रो! जिनके-जिनके फल यहाँ बैठे हैं, उनके फूल झड़ चुके हैं। बेटे तेरा फल है। तेरा ब्रह्म का फूल झड़ने पर वह आया है। ब्रह्मधर्म का नाश हुये बिना संतान का जन्म होता नहीं, सारी-की-सारी सभा समझा रही थी, पर ब्रह्मगुलाल कह रहे थे कि खेल-खेल में मुनि तो बना जा सकता है, पर मुनि बनकर खेल नहीं होता है। अब तो खेलना नहीं, खिलना है। जाकर खिलूँगा सिद्धशिला पर। सम्यग्ज्ञानी, तत्त्वज्ञानी जीव जीने के लिये नहीं जीता है। तत्त्वज्ञानी जीव जी भी रहा है तो जन्म-मरण के नाश के लिये जी रहा है।

जो पाप-कर्म बढ़ रहे हैं, उनका शोधन सम्यग्ज्ञान के द्वारा यदि नहीं करता, तो वह जीव अतितीव्र पापकर्मरूपी भूत से पकड़ा जायेगा।

कोई कह दे कि वहाँ जाओगे तो भूत लग जायेंगे, तो फिर-तो कितने सुरक्षित हो जाते हो। मुमुक्षुओ! मरे भूतों से डरते हो, जिंदा भूतों को पकड़ते हो।

ज्ञानियो! ध्यान दो, आपको भूत का तो डर लगता है। आचार्यभगवान् क्या कह रहे हैं? जीव! तू नहीं सँभल सका तो पापकर्मरूपी भूत तुझे लग जायेंगे।

फिर पीछे तुझे पछताना पड़ जायेगा। इसलिये अभी से सँभल जाओ। जो उदय में हैं, उन कर्मों से मत डरो। जो कर्म करते हो, उन कर्मों से डरो। जो अशुभ कर्म तुम छुपकर कर रहे हो, वो तुम्हें दिखाई दे रहे हैं कि नहीं? कर्म ने कर्म नहीं बुलाये, तेरे कर्मों ने कर्म बुलाये हैं। सत्य बताओ, कर्मों से डर लगता है कि नहीं?

मित्रो! यदि कर्मों से डर लग रहा है तो वह कर्म करना छोड़ दो जिन कर्मों से डर लग रहा है। कर्मों से नहीं डरोगे और अशुभ करते रहोगे तो कर्म तुझे छोड़नेवाले नहीं हैं।

कर्मों से मत डरो। कर्मों से डर लगता है तो कर्मों (करनी) से डरो। कल्याण तेरा हो जायेगा।

आत्म स्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"सुखाभास के दुःख"

सुखभावकृताः मूढाः किं न कुर्वन्ति मानवाः।
येन सन्तापमायान्ति जन्मकोटिशतेष्वपि॥ 179॥

अन्वयार्थ-सुखभावकृताः मूढाः मानवाः = सुख पाने के भाव से प्रेरित होकर मूर्ख मनुष्य, **किं न कुर्वन्ति** = क्या-क्या पाप नहीं कर डालते हैं, **येन** = जिस पाप से, **जन्मकोटि शतेषु अपि** = करोड़ जन्मों में भी, **सन्तापं आयान्ति** = दुःख को पाते हैं।

भावार्थ-अहो भव्यात्मन्! सुखाभास से प्रेरित मूढ़ मनुष्य वह कौन-सा पाप है जो नहीं करता है? उस पाप से वह कोटि जन्मों में भी दुःख भोगता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के स्वाभाविक और वैभाविक दो धर्मों की युगपद् व्याख्या कर रहे हैं। जब तक वैभाविक धर्म का बोध नहीं होगा, तबतक स्वाभाविक धर्म का बोध नहीं होगा। स्वभाव को उपादेय दृष्टि से समझो, विभाव को हेय दृष्टि से समझो। दोनों अवस्थाओं का बोध होगा, तभी एक का ग्रहण कर सकेगा और दूसरे का विसर्जन कर सकेगा। विभाव का कर्त्ता भी वही है, जो स्वभाव का कर्त्ता है। कालभेद है और क्रियाभेद है। पर्याय भेद है, परिणाम भेद है। पर कर्त्ताभेद नहीं है। इस सिद्धान्त को जिसने समझ लिया है, वह जैनदर्शन का ज्ञाता है। मित्र! जो आत्मा को स्वभाव से कर्त्ता ही मानता है, वह भी जैनत्व शून्य है। जो आत्मा को विभाव से कर्त्ता ही मानता है, वह भी जैनत्व शून्य है। विभावकर्त्ता विभावकर्त्ता ही आत्मा होगा, तो निर्वाण किसका होगा, समझना ध्यान से। जब तू स्वभाव से ही स्वभावकर्त्ता है, तो निर्वाण किसका होगा?

मित्रो! लोक में ऐसे भी दर्शन हुये जो आत्मा को कर्त्ता नहीं स्वीकारना चाहते हैं। आपके बीच में भी ऐसे जीव हुये हैं, वे भी कर्त्ता नहीं स्वीकाना चाहते हैं। उनको डर लगता है कि कहीं मैंने आत्मा को कर्त्ता कह दिया तो अशुद्ध हो जायेगी। जिनको आत्मा के अशुद्ध होने का डर लग रहा है, वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि निर्भय होता है, निशंक होता है। अरे। वस्तु व्यवस्था को व्यवस्थित करने में आपको डर किस बात का? आत्मा कर्त्ता नहीं है, यह भी एक भय है।

अरे मुमुक्षु! जिसे डर लग रहा है, वह शुद्ध है कैसा? जिसे अपने शुद्ध होने का अहम् है, वह विशुद्ध नहीं है, शुद्ध तो छोड़िये। शुद्ध होने के लिये विशुद्धि चाहिये। विशुद्धि के बिना शुद्ध होता नहीं। मैं परद्रव्य का कर्त्ता नहीं हूँ। क्या तू अपने रागादिक भावों का भी कर्त्ता नहीं है? यदि रागादिक भावों का कर्त्ता नहीं, तो संसार में कैसा?

हे जीव! तू कर्त्ता है। पहले यह स्वीकार करो कि मैं कर्त्ता हूँ। राग का कर्त्ता हूँ, द्वेष का कर्त्ता हूँ, विकारी भावों का कर्त्ता हूँ। जब कर्त्ता है, तो भोक्ता भी है। कर्त्ता-भोक्ता जब तू रागादिक भावों का है, तो उस कर्तृत्व भोक्तृत्त्व से द्रव्यकर्मों का आस्रव तू ही करता है। जब द्रव्यकर्मों का आस्रव तू कर रहा है, तो द्रव्यकर्मों के फल का भोक्ता और नोकर्मों के फल का भोक्ता भी तू है। मेरे दु:ख का कर्त्ता अन्य नहीं है, मेरे सुख का कर्त्ता अन्य नहीं है। जो तेरी बुद्धि चल रही है। कि अमुक ने ऐसा किया, यह अमुक के प्रति द्वेष लगाने की जो दुर्दशा तेरे मन में चल रही है, यह भी तेरा विभाव भाव ही है। स्वभाव व विभाव दोनों का कर्त्ता मिल जाए आपको, तो क्रिया तुम्हारी बदल सकती है। कर्त्ता जब तक तुझे नहीं मिल रहा है, तब तक तेरी क्रिया बदलने वाली नहीं है। मेरे से भगवान् कह गये, मुझ से गुरु बोल गये कि बेटा! ऐसा कर लेना। गहरे में चिन्तन ले जाने की आवश्यकता है।

हे विशुद्धसागर! तुम्हारी परिणति तुम जानो, लेकिन वीतरागी, जो सिद्धालय

में विराजमान हो चुका है, उनसे बातें करने की बात करके अरहन्तों को, सिद्धों को तुम संसारी मत बनाओ। परमात्मा अगर तुम से बातें करने आयेंगे तो वे परमात्मा नहीं होंगे, जो परमात्मा होंगे वे पंचमकाल में किसी से बातें करने नहीं आयेंगे। अन्तरात्मा ही चर्चा करते हैं, बहिरात्मा ही चर्चा करते हैं। जैसे जनसामान्य में बातें होती हैं, ऐसे परमात्मा किसी से बातें नहीं करते हैं। इस विषय को भी समझना। इसलिये समझना क्योंकि लोक में जो मिथ्यात्व भरा है। वह इस बात का बहुत तगड़ा मिथ्यात्व है कि भगवान् मुझे स्वप्न दे गये।

हे ज्ञानी! कोई रागी का स्वप्न मैं मान सकता हूँ, पर वीतरागी का स्वप्न ऐसा कभी नहीं होता है। मैं आपसे कहा रहा हूँ कि आप ऐसा कर लेना, यदि ऐसा स्वप्न भगवान् देने आ रहा है, तो विश्वास रखना, वह भगवान् नहीं है। स्वप्न परसापेक्ष नहीं है। मित्रो! जिनवाणी के रहस्यों को समझो। लोक की व्यवस्था भिन्न है और आगम की व्यवस्था भिन्न है। माना कि किसी जीव को स्वप्न आया कि उसे महाराज जी के प्रवचन सुनने जाना है।

हे जीव! लोक यह कहेगा कि किसी देव ने प्रवचन दे दिया। लोक यह कह सकता है कि किसी साधु ने स्वप्न दे दिया। आप भगवान् का भी बोल सकते हो कि उनने स्वप्न दे दिया। स्वप्न आया किसे है? मुझे आया है। ज्ञान का क्षयोपशम किसका काम कर रहा था? यह मेरा कर रहा था। सुप्त दशा में भी क्या उपयोग मेरा नष्ट हो जाता है? स्वप्न में भी जीव अच्छे से अच्छा काम कर लेता है। स्वप्न में ही जीव बुरे से बुरा काम कर लेता है। हे जीव! तू स्वप्न में जैसा कृत्य कर रहा है, कर्मसिद्धान्त कहेगा कि उसका फल भी तुझे भोगना पड़ेगा। मैं यहाँ बैठा-बैठा सीमंधर स्वामी का चिन्तन कर रहा हूँ, तो क्या चिन्तन के कर्त्ता सीमन्धर स्वामी हो गये? मेरे ज्ञान का विषय सीमन्धर स्वामी हैं, मेरे ध्यान का विषय भी सीमंधर स्वामी हैं, मेरे ध्येय सीमंधर स्वामी हैं, पर मेरा ध्यान सीमंधर स्वामी नहीं हैं, मेरा ध्याता सीमंधर स्वामी नहीं हैं। ध्याता की जो एकाग्रता है, उसका नाम ध्यान है। ध्येय भिन्न हो सकता है, ज्ञेय भिन्न हो सकता है, वस्तु

पर हो सकती है; लेकिन स्वप्न लेनेवाला 'पर' नहीं होता है। अज्ञानी कह सकता है कि स्वप्न पर ने दिया है, पर ज्ञानी! स्वप्न आया स्वयं में है। उपयोग किसका था? समझ में आ रहा है? उपयोग मेरा है। जो-जो मेरे ध्यान में आयेंगे, मेरे ध्यान के कर्त्ता वे हो जायेंगे, तो ज्ञानी! मेरे ध्यान का जो विचार होगा, उसका बन्धक वह होगा जो ध्यान में आ रहा है। मित्र! अरहन्त जो हैं, सर्वज्ञ जो हैं, वह अठारह दोषों से रहित हैं। जो भी अठारह दोषों से रहित है, वह स्वप्न देने नहीं आयेगा। इसको समझना तो पड़ेगा। श्रद्धा, बुद्धि भिन्न विषय है। जो सम्यक् की श्रद्धा है, वह भिन्न होती है। मिथ्यात्व की अन्धश्रद्धा भिन्न है। सम्यक्त्व की श्रद्धा वाला जो जीव है, वह सर्वज्ञ को मात्र सर्वज्ञ मानेगा। सर्वज्ञ जो समवसरण में विराजमान है, उसको तो वाचक मानेगा। जो सर्वज्ञ सिद्धालय में विराजे हैं, उसे वाचक नहीं मानेगा। वक्ता तब तक सर्वज्ञ है, जब तक समवसरण में है।

ज्ञानियो! आप 'सारसमुच्चय' मात्र नहीं सुन रहे हो, आप जैनदर्शन के गूढ़ दर्शनशास्त्र को भी साथ में समझ रहे हो। वक्ता सर्वज्ञ अवश्य होता है, लेकिन सर्वज्ञ को वक्ता होना ही चाहिये। यह अनिवार्य नहीं होता है कि वक्ता सर्वज्ञ हो। मेरे जैनदर्शन में सभी वक्ताओं की प्रमाणिकता तभी होती है, जब सर्वज्ञ वक्ता के अनुसार होते हैं। सर्वज्ञ वक्ता के अनुसार नहीं होते हैं तो वहाँ वक्ताओं की प्रामाणिकता नहीं होती है। जो सर्वज्ञ होता है, वह वक्ता अवश्य होता है, लेकिन सभी सर्वज्ञ वक्ता हों, यह नियत नहीं है। मूककेवली भी होते हैं। वे सर्वज्ञ तो होते हैं, ज्ञाता तो होते हैं, पर वक्ता नहीं होते हैं। वक्तव्यपने में सर्वज्ञता की न्योछावर नहीं है; लेकिन वक्तापन तभी होगा, जब सर्वज्ञ होंगे। यदि सर्वज्ञ वक्ता ही होकर रहेंगे, तो सिद्धशिला में विराजे वे सिद्ध परमेश्वर सर्वज्ञ हैं कि नहीं? सिद्ध प्रभु सर्वज्ञ हैं, सर्वज्ञाता हैं, पर सर्ववक्ता नहीं हैं क्योंकि जो वचन प्रणाली है, वह काययोग के अधीनस्थ है। काययोग व वचनयोग का जहाँ अभाव हो चुका है, वहाँ वक्तापन का अभाव है।

मित्रो! यहाँ ध्यान देना कि जो-जो वक्ता होगा, वह नियम से कर्म-आस्रव

करेगा। चाहे एक समय का क्यों न करे, लेकिन करेगा। जो तेरहवें गुणस्थान के वक्ता हैं अरहन्त देव, उनको भी कर्मास्रव होता है। सिद्धान्त की धारा ऐसी है। ज्ञानियो! जो मस्तिष्क अरहन्तदेव के चरणों में झुक चुका है, जो मस्तिष्क जिनवाणी सुन चुका है, भावलिंगी योगियों की वन्दना कर चुका है, वह अब जिनागम शून्य की बात को स्वीकार कर नहीं सकता है।

ज्ञानियो! मस्तिष्क को कोई छिन्न-भिन्न करना चाहे तो विकल्प मत करना, पर जब तक इसमें हंस विराजमान है, तबतक मस्तिष्क को मिथ्यात्व में झुका मत देना। द्रव्यमिथ्यात्व से बचना बहुत सरल है, पर द्रव्यसम्यक् के भेद में भाव मिथ्यात्व जिसको बैठा हो, उसको मिथ्यात्व से बचा पाना बहुत कठिन है। द्रव्य मिथ्यात्व से बच पाना कठिन नहीं है, पर जिसका भेष द्रव्य-सम्यक्त्वभूत हो, ऐसा श्रमणाभास यदि कोई है और उस जीव के अन्तस् में यह बैठा हो कि आत्मा कर्त्ता नहीं है, जो भगवान् कहता है वह आत्मा करती है अथवा यूँ कहे कि द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र नहीं है, जैसा केवली के ज्ञान में आ रहा है वैसा द्रव्य का परिणमन होता है, ज्ञानी! वह सम्यग्दृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि है। जो केवली के ज्ञान के अनुसार द्रव्य में परिणमन स्वीकार कर रहा है कि भगवान् ने मेरे से ऐसा कहा है, वर्तमान में विराजी चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रतिमा हमसे ऐसा कह रही है, यदि ऐसा उपदेश आप कर रहे हो, विश्वास रखना, आप कहीं-न-कहीं सम्यक् से च्युत हो चुके हो। क्यों? केवली के कहने से वस्तु का परिणमन नहीं होता है। वस्तु का स्वतन्त्र परिणमन होता है, केवली के ज्ञान में वैसा झलकता है। हम भक्त हैं, लेकिन कण-कण स्वतन्त्रता के साथ भक्ति करते हैं। भगवान् को कर्त्ता बनाकर भक्ति करने वालों में नहीं हूँ। लोक का गहनतम मिथ्यात्व कोई है, तो पर को अपना कर्त्ता बनाना और खुद को पर का कर्त्ता बनाकर बैठ जाना। यह जीवन का घोर अन्धकारमय मिथ्यात्व है। पूजनपद्धति को बदलने में देर नहीं लगेगी, पर भीतर की बैठी जकड़ी पद्धति को बदलने में बहुत देर लगेगी। सबकुछ उतर सकता है। कितने संस्कार बैठे हुये हैं। घर में किंचित् भी काम

बिगड़ता है तो धीरे-से कह देते हो—'भगवान् मुझ पर ही रूठे थे क्या?' यह कर्त्तृत्ववादी सिद्धान्त तुम्हारे रग-रग में भरा हुआ है—'भगवान् मुझ पर ही नाराज हैं। मेरे भैया को तो इतना सुखी कर दिया और मैं दु:खी होकर दर-दर की ठोकरें खा रहा हूँ।' मेरे मित्रो! तुम ऐसा मत सोचो। भगवान् इतना रागी-द्वेषी नहीं है, जो आपको दर-दर की ठोकरें खिलायेगा। यह कर्म ही तुझे रुला रहे हैं। कर्म भी बहुत अच्छे हैं, वे बलात किसी को परेशान नहीं करते हैं। जो आपने भावकर्म करके अशुभ/खोटे कार्य किये थे, वे कर्म ही तुमको रुलाते हैं।

मित्रो! भूल क्या हो रही है? या तो भगवान् को व्यक्ति ने कर्त्ता बनाया या फिर जड़ कर्मों को कर्त्ता बनाया, पर अपनी करनी पर चिन्तन नहीं ले जा रहा है। कहीं छुपकर सिगरेट तूने पी थी, अब कैंसर हो गया, सो तू कर्मों को दोष दे रहा है, परमात्मा को दोष दे रहा है, अपनी करनी को दोष क्यों नहीं दे रहा है? करनी को देखने लग जाओ तो घर-घर के युद्ध बन्द हो जायेंगे।

एक माँ के चार बेटे भी एक-जैसे नहीं होते हैं। इसमें माँ पिता का क्या दोष? बोल दो कि नामकर्म का दोष है। नामकर्म का भी दोष नहीं है। नामकर्म से भी नामकर्मों का बन्ध नहीं हुआ है। उमास्वामी महाराज से पूछ लेना, 'तत्त्वार्थ सूत्र' के छटवें आठवें अध्याय को समझ लेना। जो तुमने भाव किये, उससे बन्ध हुआ है। ज्ञानियो! जब मैं अपने जीवत्व का कर्त्ता नहीं हूँ, तो मैं जड़द्रव्यों का कर्त्ता कैसे हो सकता हूँ? तू यदि कर्त्ता है, तो मात्र अपने राग-द्वेष परिणामों का कर्त्ता है। निश्चयनय से अपने शुद्ध भावों का कर्त्ता है। परमशुद्ध निश्चयनय से तू इन सब से भी भिन्न है। जब मैं इन सबसे भिन्न हूँ, तो मैं जगत् के कर्त्तृत्व में लिप्त कैसे हूँ? स्थूल परसमयी है वह जीव जो पर को अपना कर्त्ता स्वीकार कर रहा है। रतिभाव की महिमा देखो कि सारे विश्व को अपना स्वीकार रहा है।

ज्ञानी! क्या तू इस देह को अपने साथ लेकर जायेगा? इस भवन में कितने लोग हैं जो इस देह को अपने साथ लेकर जाने की तैयारियाँ कर रहे हैं?

मेरे मित्र! तू क्या ले जा सकेगा? मैं भी नहीं ले जा पाऊँगा। जब नहीं ले जा पाऊँगा, तो निर्णय आज ही कर लो कि इसके साथ रह अवश्य रहा हूँ, पर साथ नहीं ले जाऊँगा, तो छूटनेवाले के राग में भावी भगवन्तों का अनादर क्यों करूँ? इसलिये भैया! अपने पड़ौसी के भीतर भी तुम द्रव्यदृष्टि से वही देखना जो तुम अपने आप को देखते हो। पर्याय की प्रत्यासत्ति में श्वान दिख सकते हैं। इंसान दिख सकते हैं, लेकिन द्रव्यत्व की दृष्टि में देखोगे तो भावी भगवान् सभी हैं।

हे कुन्दकुन्द! आपको तो एकेन्द्रिय में भगवान् दिख रहे थे, इन्हें पंचेन्द्रियों के अन्दर भगवान् क्यों नहीं दिखाई देते हैं? निर्ग्रन्थों में भगवान् क्यों नहीं? अरहन्तों में भगवान् क्यों नहीं? जब तक यह दृष्टि नहीं आ रही है, तब तक तुम्हारी मन्त्र-जाप की सामायिक हो सकती है, पर सामायिक नहीं हो सकती है। उसको तो अभव्य मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है। अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव जो नौवे ग्रेवेयक तक जा रहा है, वह सामायिक के बल पर नहीं जा रहा है, द्रव्यसंयम का समीचीन मिथ्यात्व की सत्ता में पालन करने से जा रहा है। यह द्रव्यसंयम की महिमा है कि ग्रेवेयक तक जा रहा है। सामायिक करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि ही होता है। मिथ्यादृष्टि के सामायिक होती ही नहीं है। इसमें कोई भूल मत कर लेना।

विद्यानन्द स्वामी 'श्लोकवार्तिक'-कर्त्ता और 'पंचाध्यायी' कार पण्डित राजमल इन दोनों के चिन्तन बहुत भिन्न हैं। जो पंचाध्यायीकर्त्ता हैं, उन्होंने मिथ्यादृष्टि को प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य घटित किया है; परन्तु आचार्य विद्यानन्द स्वामी ने 'श्लोकवार्तिक' ग्रन्थ में स्पष्ट कर दिया है कि जिसके सम्यक्त्व नहीं है, उसके प्रशमपना कैसा? क्रोध-कषाय को प्रकट नहीं होने देना, लोग इसको प्रशमपना मान लेते हैं। कषाय का उत्पन्न नहीं होने देना प्रशम है, तो आप दुकान पर बैठकर ग्राहकों पर गुस्सा आते हुये भी नहीं कर पाते हो। लोक में जब भी कषाय का नाम आता है तो लोग क्रोध को ही कषाय कहते हैं। लोभ, मान, माया यह सब कषाय नहीं हैं क्या? मान की भूमिका में बैठा हुआ है। अनन्तानुबन्धी मान में

डूब रहा है कि जो कुछ हूँ, मैं ही हूँ। वह शान्त बैठा है। भद्र दिख रहा है। यह अनन्तानुबन्धी की अनुभूति ले रहा है, सम्यक्त्व की अनुभूति नहीं ले रहा है।

ज्ञानियो! करणानुयोग के सिद्धान्तों को न जानने से चरणानुयोग द्वारा छला जायेगा। जितने दृश्यमान हैं, अदृश्यमान भी हैं। चेहरे की भद्रता बनायी जा सकती है, पर भावों की भद्रता तो होती है। तीर्थंकर के समवसरण में श्रीमण्डप भूमि पर चेहरे की भद्रता बनानेवाले जीव नहीं पहुँचते हैं। श्रीमण्डप भूमि पर वही जीव पहुँचते हैं—**"भवन्ति अभद्रोपि समंतभद्रः"** अभद्र जीव भी समन्तभद्र हो जाता है। **जो भावों का भद्र होगा, उसके चेहरे पर नियम से भद्रता होगी। पर जिसके चेहरे पर भद्रता है, उसके भावों में भद्रता हो, यह नियत नहीं है।** इसलिये आचार्य कुलभद्र स्वामी बार-बार इंगित कर रहे हैं।

जीवन का सर्वस्व किसी को सोंप देना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, पर श्रद्धा को समझकर ही सौंपना। भैया! धन-धरती दे देना तो परवस्तु है, पर अपनी श्रद्धा का श्रद्धेय बनाना यह निज का विषय है। हम आस्था सभी को नहीं दे सकते हैं। विश्वास सभी को नहीं दिया जा सकता है। विश्वास तो मात्र उस पर ही होगा जो विश्व के वास से भिन्न होकर फिर भी विश्व में वास कर रहा है। परमात्मा ऐसे ही हैं। सिद्ध कहाँ हैं? विश्व में हैं कि नहीं? त्रिलोक से बाहर कोई द्रव्य नहीं है। जो मैं कह रहा हूँ, उसको समझने के लिये कोटि-कोटि भव भी लग जाएँ तब भी कम स्वीकारना। आवश्यकता नहीं है कि जो आज सुन रहे हो वह आज ही समझ में आ जाए। आप सब उस दिन स्वीकारना जिस दिन सामने तेरे द्वारा अर्जित द्रव्य को तेरी सामर्थ्य के होने पर भी तेरे हाथ से कोई उठा कर ले जा रहा है। उस समय मात्र ज्ञाता-दृष्टा बनकर देखते रहना। कौन ले जा रहा है, क्या ले जा रहा है—यह विकल्प भी जिस दिन न आये। और देखते ही रहो, जानते रहो। **देखो, जानो, जाने दो।** विकल्पशून्य होकर जी रहा है। उस दिन मेरे मित्र! कहना कि आज मेरे भीतर का धर्म प्रकट हो चुका है। जब तक मैं अपनों को अपना मानूँ, परायों को अपना न मानूँ, तो अभी तक

मैं धर्म से शून्य हूँ। लोकधर्म में जी रहा है, लोकोत्तराचार से बहुत दूर है।

हे प्रभो! जब-जब आपके चरणों में आऊँ, तब-तब ऐसा भाव प्रकट हो। मुझे स्वर्ग नहीं, सिद्धत्व की भी कामना नहीं, पर एक भावना है कि मेरे अन्तस् में वह धर्म उद्घाटित हो जाए कि सामने सबकुछ होता रहे, तब भी में शिव को न छोड़ पाऊँ। मेरा शिवत्व नियम से होगा।

ज्ञानियो! मोक्ष की भावना भा लेना कठिन नहीं है। स्वर्ग की कामना कर लेना कठिन नहीं है। मैं नरक से बच जाऊँ, यह सोचना भी कठिन नहीं है। ज्ञानियो! मैं अपने आपको पर से भिन्न समझ पाऊँ, यह बहुत कठिन है। जिनसे तुमको राग हो, उनका सिर दु:खे तो तुम्हारा चार गुना सिरदर्द हो जाता है। भैया! ऐसा होता है। धर्म कहाँ है? हम लोगों ने यही समझ रखा है कि सुबह-शाम जिनालय चले जाओ। बहुत अच्छा, जाना बन्द मत करना, पर उसके ऊपर जो है वह और सुन लो। हमने यही समझ रखा है कि चार बार जिनालय हो आओ, नगर में आये योगीराज की चर्या का पालन करा दो और शाम-सुबह उपदेश सुन लो, सन्तान को जन्म दे देना, बस, इसे ही तूने अपना धर्म मान लिया है। ज्ञानी! यह तो धर्म से बहुत दूर की बातें हैं।

तूने यह सोच लिया कि तूने अभक्ष्य का त्याग कर दिया, अरे भाई! तूने अभक्ष्य ही तो त्यागा है, भोजन तो नहीं त्यागा है। अरे! अभक्ष्य छोड़कर तूने किसी पर एहसान कर दिया है क्या जो मुझे सुना रहा है? हर नगर में ढिंढोरा पीट रहा है। पेट वाली भूख तो चार रोटी से भर जाती है, पर कानों की भूख तो इतनी खोटी है कि लाखों-लाखों लोग भी प्रशंसा करने लग जाएँ तब भी नहीं अघाता। जिनवाणी की भाषा में बोलो तो कापोत लेश्या खड़ी हुयी है। करणानुयोग से प्रश्न करो तो कापोत लेश्या खड़ी हुयी है, जो उसे प्रशंसा के अलावा कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। अपनी धन-सम्पत्ति को लुटाना पसन्द करता है, बस, मेरा नाम होना चाहिये। जबकि तुझे पता ही नहीं है कि जिसका नाम है, वह तू है ही नहीं। इतना भ्रमित हो गया है कि इतनी सबकुछ **जिनवाणी सुनने के उपरांत भी जीव को आपा-पर में भेद नहीं दिख रहा है। सबसे कठिन साधना**

आपा-पर का भेद देखना है। जब तक आपा-पर का भेद नहीं हो रहा है, ग्राह्य-अग्राह्य का बोध नहीं आ रहा है, हेय-उपादेय पर दृष्टि नहीं आ रही है और भिन्नत्व का निर्णय नहीं हो रहा है, तब तक कोई सम्यग्दर्शन नहीं है।

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।

देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

मेरे मित्र! यह सारी व्याख्यायें अनेकांतिक दोष से दूषित हैं। देव शास्त्र गुरु की पूजा करते अभव्य भी मिल जायेगा। ग्यारह अंग का ज्ञाता, तत्त्व का कथन करनेवाला अभव्य भी मिल जायेगा; परन्तु हे जीव! आत्मा को आत्मा समझने वाला, आत्मा से भिन्न को भिन्न स्वीकार करनेवाला भीतर से भव्य ही मिलेगा। साथियो! पूरा विषय स्वयं को लक्ष्यभूत करके सुनना।

हाय! मैंने अनेक जीवन आराधना में निकाल दिये। आराधना के क्षेत्र में भी आराध्य को कम देखा और आराधना में निमित्त बननेवाली देह को ज्यादा देखा कोई पुत्र के लिये, कोई सम्पत्ति के लिये, कोई निरोगी काया के लिये पहुँचा। आराध्य को तो तूने देखा ही नहीं, यह तेरा अशुभ कर्म का तीव्र उदय था। अब आप यूँ कहते हो कि समवसरण में पहुँचकर भी प्रभु को नहीं देख सका, यह तो बहुत सरल विषय था, लेकिन भीतर समवसरण होने पर भी अपने समवसरण को नहीं देखा, कितना अपमान का विषय है?

मुमुक्षुओ! जो भगवान् हुये हैं, वे सब नरदेहधारी थे कि नहीं? मनुष्य के ही तो शरीर में थे। मैं, मेरे का ही अस्तित्व नष्ट करना है तो? मैं भेद को प्राप्त हो जायेगा। 'मैं भी कुछ हूँ' यह अस्तित्व गुण से मुझे दूर रख रहा है। 'मैं कुछ हूँ' यह मेरेपन का और जो मेरे होने का अस्तित्व है, वह मेरे अस्तित्व से दूर रख रहा है।

आपने यहाँ के अध्यक्ष से कहा कि में अमुख नगर से आया हूँ, महाराज का

बहुत बड़ा भक्त हूँ। क्या स्थापित किया आपने? मैं महाराज का बहुत बड़ा भक्त हूँ। आप अपने मान के अस्तित्व को ख्यापित कर रहे हो। परन्तु हे जीव! तू अपने अस्तित्व गुण से चैतन्य धर्म से दूर हो रहा है। तू अपनी पर्याय और महाराज की पर्याय के राग को प्रकट कर रहा है कि मैं महाराज की पर्याय का रागी हूँ। महाराज के गुणों का रागी होता तो उनका भक्त नहीं होता, मात्र **"पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः।"** पूज्य के गुणों में जो अनुराग है, उसका नाम भक्ति है। महाराज के भक्त भी बनकर आये, तब भी पर्याय की प्रधानता को लेकर आये। ऐसे ही तीर्थों में भी तुम गये वहाँ भी किसी का नाम लेकर तुमने कमरा खुलवाया था। दूसरे का नाम इसलिये लिया था कि मेरी व्यवस्था बन जाए।

ज्ञानी अपना परिचय नहीं देख सका, परिचय दे ही दिया। यदि तू वहाँ कमरा में न रुककर जहाँ स्थान मिलता वहाँ ही शान्ति से रात भर सामायिक कर लेता, तो विश्वास रखना, तुझे परिचय देना नहीं पड़ता, लोग तेरा परिचय लेते और कमरे में क्या भवन में रोक देते कि आहा! कितना बड़ा धर्मात्मा। इसने सबकुछ सहन किया और रात्रिभर सामायिक की है। कौन तेरे परिचय से अपरिचित रह पाता?

श्रुतसागर मुनिराज को अकम्पनस्वामी ने कहा कि अब तुम वहीं जाओ जहाँ शास्त्रार्थ हुआ था। उसके पहले कौन उनको जानता था? जहाँ शास्त्रार्थ हुआ था, वहाँ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हो गये। धन्य हो उन योगी को। नहीं कहा स्वामी! मेरा अकेले क्या होगा? यही कहा कि गुरु-आज्ञा स्वीकार है। **"अहमिक्को खलु शुद्धो"** सूत्र लेकर चले और वह कषायी चार मन्त्री आकर उपसर्ग करने खड़े हो गये। लेकिन हे ज्ञानी! जो उत्सर्ग कर चुका है, उस पर उपसर्ग कुछ करता नहीं। जिसका उपसर्ग कुछ करता है, उसका उत्सर्ग हुआ नहीं।

नमोस्तु स्वामी आपके धैर्य को और चिन्तन को। (उत्सर्ग = त्याग)। धन्य हों वे मुनिराज, जो शरीर का उत्सर्ग करके सामायिक करते हैं। फिर उपसर्ग किस पर होते हैं? उपसर्ग जिस पर होते हैं, वह मैं नहीं होता हूँ। जो मैं होता हूँ, वह

उपसर्ग झेलता नहीं है। झेलनेवाला शरीर है, मैं तो स्वानुभूति में डूबा हूँ। निहार लो उन श्रुतसागर मुनिराज को। चार नंगी तलवारें हैं, बीच में योगीराज हैं।

हे श्रमण! आज तेरा श्रम दिखाई दे रहा है। वो चल दिये थे मारने के लिये, पर मार तभी पायेंगे जब मरना नियत होगा। परघात नामकर्म का उदय नहीं है तो मारनेवाले तुम अपना पुण्य मार लोगे, पर तुम उसको मार नहीं पाओगे। ज्ञानी! बचानेवाला कोई नहीं है, तो मारनेवाला भी कोई नहीं है। बचानेवाला कोई नहीं था, फिर भी वे तो बच गये, क्योंकि

'चत्तारि शरणं पव्वज्जामि'
'धम्मं शरणं पव्वज्जामि'

निर्भय होकर जिओगे तो भय किसका.....? स्वछन्द नहीं होना, स्वतन्त्र होकर जीना।

भैया! अगर तुम आगरा आकर, महाराज के दर्शन के बाद, आगरा घूम लेते हो ताकि किसी को कहने न रह जाये। ऐसे ही इस पर्याय से जाने के पहले तनक उसे देख लो जिसे तूने अनन्त भवों तक नहीं देखा, कि तेरी दिगम्बर मुद्रा कैसी होती है। फिर कहने को न रह जाये कि मनुष्य बनकर यह रह गया। भैया! मनुष्य तुम बन ही गये हो। कहीं अल्प पुण्य से स्वर्ग भी चले गये और किसी देव ने पूछ लिया कि भैया! क्या करके आये हो?

बोले, बाकी तो सब भेषों का अनुभव कर लिया, बहुत फोटो खिंचवाये, लेकिन मैं दिगम्बर रूप का दर्शन नहीं कर पाया, फोटो नहीं खिंचा पाए।

भैया! एक काम कर लो, इस देह से जाने के पहले अपने आप को दिगम्बर भेष में देख लो। जिसकी दुर्गति का बन्ध हो चुका है, वह जीव ऐसा कभी नहीं सोच पायेगा। मनुष्य आयु तक का बन्धक जीव स्वयं को दिगम्बर मुद्रा में नहीं देख पायेगा। या देव आयु का बन्धक या अबन्धक ही दिगम्बर मुद्रा को धार सकता है। भावलिंग में, यह ध्यान रखना। बहुत कठिन है?

घर जाकर सोच लेना कि साधु बनने के भाव आते हैं कि नहीं? किसी से बोलना नहीं, बस, चिन्तन करना। इन सब विद्वानों से पूछ लेना कि यह सच है कि नहीं? जिसने नरक, मनुष्य, तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया है, वह जीव स्वप्न में भी संयमी बनने का सोच नहीं सकता। मुनि बनने के परिणाम उसके हो ही नहीं सकते। ऐसा विद्वानों से पूछना, फिर अपने हृदय से पूछना कि भावना हो रही कि नहीं?

सुख के लिये पापों का विसर्जन कर दो। बहुत सारे लोग सुख के लिये दु:ख कर रहे हैं। उसे ही छोड़ दो, बस, वही तो सुख है। सम्पत्ति के लिये दु:ख है। सम्पत्ति को विपत्ति मान ले, सम्पत्ति का राग छोड़ दे, यही तो सुख है। सुख के लिये दु:खियों की संख्या सर्वाधिक है। बाकी के दु:ख कहीं नहीं हैं। स्वतन्त्रता का भान हो जाये तो दु:ख तो कहीं है ही नहीं।

सुखभावकृता मूढाः किं न कुर्वन्ति मानवाः।
येन सन्तापमायान्ति जन्मकोटिशतेष्वपि॥ सा. स. 179॥

सुख के राग में कितना दु:खी हो रहा है। सुख की भावना से मूढ़ हुआ जीव क्या नहीं कर रहा है। जिससे संतापित होकर उस पापकर्म को करता है, क्या-क्या पाप नहीं कर रहा है? किसके पीछे? मात्र सुख के लिये। पापकर्म के उदय से करोड़ों जन्म तक दु:ख पाते हैं, फिर भी सुख की चाह कर रहे हैं। हिंसा कर रहे हैं, जीवों का बध कर रहे हैं वर्तमान के सुख के लिये। इसका फल क्या होगा? इसलिये मनुष्य को विवेक से कार्य करना चाहिये। मनीषियो! ऐसे व्यापार मत करना जिससे कोटि-कोटि हिंसा हो।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मायाचारी का फल"

परं च वञ्चयामीति, यो हि मायां प्रयुज्यते।
इहामुत्र च लोके, वै तैरात्मा वञ्चितः सदा॥ 180॥

अन्वयार्थ-परं च वञ्चयामि इति = दूसरे को ठग लूँगा ऐसा विचार कर, **यः हि** = जो कोई, **मायां** = मायाचार, **प्रयुज्यते** = का उपाय करते हैं, **तैः** = उन लोगों ने, **लोके च इह अमुत्र** = इस लोक तथा परलोक दोनों में, **सदा** = सदा ही, **आत्मा वञ्चितः** = अपने आपको ठगा है।

भावार्थ-मैं दूसरों को ठगता हूँ, ऐसा विचार कर जो मूढ़ प्राणी दूसरों को ठगने के लिए मायाचार में प्रवृत्ति करता है, वह इस लोक में तथा परलोक में सदा अपने आपको ठगता है।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी जिस तत्त्वविद्या को भगवान् सीमंधर स्वामी से प्राप्त करके आये थे, उसी विद्या को अपरवर्ती आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया। कुलभद्र स्वामी आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा में ऐसे अलौकिक श्रमण हुये जिन्होंने सम्पूर्ण धर्मनीतियों को 'सारसमुच्चय' में निबंधित किया है।

सुखाभासों में जीता जीव अपने सत्यार्थ मार्ग से अनभिज्ञ हो गया। इतना अनभिज्ञ हुआ कि इस बात को ही भूल गया कि मैं भी एक द्रव्य हूँ, इस द्रव्य की एक स्वतन्त्रता है। यथार्थ मानिये, अपनी सत्ता को पहचान पाना, यह बहुत बड़ी तपस्या है। हमने कभी अपने आप को माता-पिता के हाथ में सौंप दिया, कभी गुरुओं के हाथ में सौंप दिया, तो कभी देव-देवियों के हाथ में सौंप दिया। पर सत्यता यह है कि मेरी सत्ता त्रैकालिक स्वतन्त्र थी, त्रैकालिक स्वतन्त्र है,

त्रैकालिक स्वतन्त्र रहेगी। पराधीन क्यों होऊँ? सुखाभासों में मूढ़ होकर अपने सत्यार्थ मार्ग को क्यों खो दूँ? हमने जो माया की है, वह स्वयं के ही साथ की है। जिससे दूसरों को ठगा जाता है, उसे आप छल कहते हो, मायाचारी कहते हो। जो माया कषाय है, तेरी माया तेरे ही अन्दर है।

अग्नि का पिण्ड यदि दूसरे को मारेगा तो अग्नि उसे जलायेगी; लेकिन जब सामने कोई नहीं होगा, तो अग्नि किसे जलायेगी। गूढ़ता में प्रवेश करो। बात गहरी है। जब कोई जलनेवाला नहीं है, तो अग्नि किसे जलाएगी? हे मुमुक्षु! जब सामने कोई जलनेवाला नहीं है, तो अग्नि, अग्नि में ही जलेगी, अग्नि अग्नि को ही जलाएगी। ऐसे ही माया जो कषाय है, हे पुरुष! तेरे भीतर है और तू सोच रहा है कि मैं अपनी माया से किसी पुरुष को ठग लूँ, लेकिन जब सामने कोई ठगने योग्य नहीं होगा, तो वो माया किसे ठगेगी? अहो मायावी! मायाचारी अपना काम कर रही है। मैं कैसे बैठूँ कि अच्छा लगूँ? मैं ऐसे रह लूँ कि अच्छा लगूँ। **"जैसे नहीं हो, वैसे होना, उसका नाम माया है।"** विचार करो जीवन में कितनी माया की है?

मित्रो! जितनी तुम घर में माया नहीं जोड़ पाये, उससे कोटि-कोटि गुनी तुमने माया की है। भावों से पूछो कि मनोयोग ने क्या किया है? कितने प्रकार के पाप किये हैं? कितने प्रकार के जाल फैलाए हैं? भैया! जंगल में जाल फैलानेवाला एक-दो प्राणी को फँसाता है, पर अपने भीतर में माया का जाल फैलानेवाला अपने अनन्त गुणों को फँसा डालता है। जब भगवान् के चरणों में थे, तब उनके पास नहीं रहा। जब जिनवाणी के नजदीक थे, तब जिनवाणी नहीं सुन सका। तब भी मन कहीं-और चला गया।

विश्वास रखो, जैसे किसी कक्ष में कैमरे लगे हों, आप ध्यान दो या न दो, चाहे आड़े बैठे चाहे तिरछे, चाहे मुस्कुराओ चाहे रोओ, पर प्रत्येक क्षण का चित्र उस कैमरे में आ रहा है। आपको ध्यान नहीं था कि इस भवन में कैमरे लगे

हुये हैं। जब सी.डी. बनकर आ जाए, फिर तुमको ही दिखाया जाए, तो सिर पर हाथ रखकर पटकोगे—हाय! मैं ऐसे भी बैठा था, यह मेरे ही चित्र हैं? मैं भी ऐसा बैठ सकता हूँ? मैं ऐसा बोल सकता हूँ क्या? कुछ नहीं, भैया! जो मनुष्यपर्याय चल रही है, जो मनुष्य भव तुम्हारा है, वह तो कैमरा है। यह मनुष्यपर्याय भोग्यवान अवस्था है। जिसे तुम भोग रहे हो, यह तो कैमरे के तुल्य है। वर्तमान की आपकी आत्मा जिस पर्याय में है, वह कैमरे के स्थान पर है। सारे-के-सारे कर्म आत्मा में संग्रहित हो रहे हैं। हे जीव! जब तेरी तिर्यंच पर्याय उद्घाटित होगी, उसमें रंग-बिरंगे कीड़े बनोगे। आड़े-तिरछे चेहरे वाले बनोगे। कोई पूँछ-सींग वाले बनेंगे, कोई एक टाँग के बनेंगे, तब तुम देखना कि हाय यह क्या दिख रहा है?

मुमुक्षुओ! जो तुमने भरा है, वही आज सी. डी. में दिख रहा है। कुछ नहीं है। माया के चित्र तिर्यंचपर्याय में झलकना प्रारम्भ हो चुके हैं। कुछ भी नया नहीं हो रहा है। कुछ भी अघटित नहीं, घटित हुआ है। जो घटित हुआ था, उसका ही फल दिखाई दे रहा है। जो हमने किया था, वही दृष्टिगोचर हो रहा है।

बेटों के साथ भी छल किया था। माताओ! कम-से-कम अपने नवजात शिशुओं के साथ छल तो मत करो। माँ! उसे तू मीठा नहीं खिलाना चाहती थी, तो यूँ कहती है कि बेटा! अधिक खायेगा तो बीमार पड़ जायेगा। पर तूने उसे क्या सिखा डाला? हाथ में लिया और नीचे गिरा दिया, फिर कह दिया कि हउआ ले गया है। बोले, ठीक, माँ! अच्छा सिखाया, कि हउआ ले गया है। आपको पता नहीं था कि कितनी पैनी प्रज्ञा उसकी है। यही तो नवीन मशीन है। प्रत्येक पदार्थ को संग्रहित करने की बालक की बुद्धि बहुत तीक्ष्ण होती है। उसने समझ लिया कि इस माँ ने मेरे साथ छल किया है। वस्तु को गिराकर कह दिया कि हउआ ले गया है। ठीक, माँ! चिन्ता मत कर। जब तू अपने छोटे से बालक को छल सकती है, वह सोचता है कि जब मेरे साथ छल कर सकती है, तो पता नहीं मेरे पिता और दादा के साथ कितना छल किया होगा? जिसे तूने जन्म

दिया है, उसके साथ छल कर रही है तो जिससे तूने जन्म लिया है, उसके साथ कितना छल किया होगा? मित्रो! ध्यान दो, मैं क्या कह रहा हूँ? पिता से बोलकर बेटा-बेटी जाते हैं कि स्कूल जा रहे हैं। पिता से बोलकर आये कि मैं मन्दिर जाता हूँ। पर पता नहीं तू कहाँ पहुँच जाता है। स्कूल-कॉलेज के नाम पर तुम पता नहीं कहाँ पहुँच जाते हो। पढ़ाई की थी अथवा चारित्र को नाश करके आ गये थे। यह माया तुमने अपने माता-पिता के साथ कितनी बार की थी? कॉलेज की पुस्तकें कॉलेज में पड़ी हों, विद्यार्थी कहीं अन्यत्र ही भटक रहा है।

भैया! लोगों ने यह समझ लिया है कि जब से हमारी समझ आयी है और मैं गृहस्थ हो गया हूँ, शादी हो गयी है, तब से धर्म प्रारम्भ हो गया है। ज्ञानी! अज्ञानता को छोड़ो। कषाय भाव उसी दिन से है, जिस दिन से तू संसार में है। तू संसार में कब से है? सनातन है। तो कषाय भी सनातन है। माँ और पिता यह विकल्प आज से छोड़ देना। अन्दर से निकाल देना कि बच्चों को तो चलता है। क्या उनको पाप का बन्ध नहीं होगा? बेटा! यह मत सोचना कि कॉलेज की जिन्दगी चल रही है तो सब क्षम्य है। कुछ भी क्षम्य नहीं है। कम-से-कम हमारे बुजुर्ग ही जो स्वयं आलोचना नहीं कर पा रहे हैं, स्वयं निन्दा और गर्हा नहीं कर पा रहे हैं, इस सभा में बैठकर ही अपनी निन्दा करें।

मुझ मायावी लोभी ने क्या किया? यह बातें हमको सबको बतायी हैं, जिसने मेरी पीठ थपथपायी है। वे बातें मैंने किसी को नहीं बतायी जिससे कर्म मेरी पीठ तोड़नेवाले हैं। हमारे नगर में साधु आये, विद्वान् मनीषी आये, सभी को सुना दी। क्योंकि मैंने माला को पहनना सीखा, पर पर्याय की माला विघटित हो रही है, इसको पहचानना नहीं सीखा। हमने सबको बताया कि महाराज जी हमने इतना दान किया, इतने विधान किये हैं, इतने साधुओं के विहार हमने कराये हैं, हे स्वामी! इतने ग्रन्थों का प्रकाशन किया है, इतने बार हमने तीर्थवन्दनाएँ की हैं।

मेरे मित्र! तूने कितना ही कुछ कर लिया है, तब भी वह कम ही है। जितनी तूने मायाचारी की है, उससे सब कम-ही-कम है। क्योंकि पिता जी ने तुझे पढ़ने के लिये पैसा दिया था, पर तूने कहाँ-कहाँ खर्च किया? मुझे बताना मत, स्वयं को ही बता देना। पिता जी ने भोजन, वस्त्र आदि दिये थे, उनका उपयोग कहाँ किया? फीस के नाम पर भी बेटे ताश जुआ आदि खेलकर आ जाते हैं। कारण-कार्य विपर्यास.....।

ज्ञानी! मन्दिर के लिये आये थे, पर रास्ते में किस-किस को किस-किस दृष्टि से देखते आये हो? मन्दिर में तू कितनी भक्ति करेगा? बीच में तू कितनी अभक्ति कर चुका है? उसको देखेगा तो भक्ति न्यून-से-न्यून है। इतनी सुन्दर भाषा बोलना भी सीखा था कि सामने खड़े लोगों को हमने सबकी आँखों में धूल झोंकते देखा है। कोई मेरी मायाचारी को समझ ही नहीं सका। और हम प्रसन्न हो रहे थे। ऐसी मेरी बुद्धि कि कोई नहीं मुझे पकड़ सका। हे ज्ञानी! यह तेरी बुद्धि का प्रभाव नहीं, यह तो तेरे पूर्व पुण्य का प्रभाव है कि तू पकड़ा नहीं गया। जिस दिन पुण्य क्षीण हो जायेगा, तब क्या होगा? त्रिखण्डाधिपति रावण का भी जब तक पुण्य चलता रहा, इन्द्र-जैसे राजा को भी अपने घर में बन्दी बनाकर चाकरी कराता रहा। परन्तु जिस दिन पुण्य क्षीण हो गया, उसी लंका में धराशायी हो गया। यह मत सोचना कि मैं अपनी युक्तियों से पाप से बच जाता हूँ, पाप के फल से, लोक के अपमान से छुप कर बच रहा हूँ।

मुमुक्षुओ! तुम युक्तियों से बच रहे हो। **युक्तियाँ तो बहुत सारे लोगों के पास होती हैं। पुण्य जब तक है, तब तब युक्तियाँ तुम्हारी काम कर रही हैं। पुण्य के क्षीण होते ही युक्तियाँ भी तुम्हारी क्षीण हो जायेंगी** माँ! वृद्ध-अवस्था आते ही, कर्म तुम्हारे सारे क्षीण होते ही, उसमें पुण्य भी कर्म रहता है, साथ में वह भी क्षीण होता है। आप स्वयं भी चिन्तन करो। जितने भी माता-पिता बैठे हैं, आपको एक समय के लिये वहाँ ले जाना चाहता हूँ जब आप अपने घर के मुखिया थे। युवा थे, प्रौढ थे, पुण्य अपनी सीमा पर था। बेटे की

शादियाँ हो रही हैं। घर में नई बहुयें आ रही हैं और तू सासू माँ बन रही है। पैर दब रहे हैं। जहाँ देखो वहाँ समधी लोग तुम्हारा सत्कार कर रहे हैं। ज्ञानी! घर में अनेक प्रकार के वस्त्र-आभूषण भेंटों को आते आँखों से देखो। सब तुम्हारे सामने आते दिखाई दे रहा है। और ज्ञानी! दस साल गुजरते ही उन्ही बहुओं ने तुझे दुत्कारना शुरू कर दिया। जिस घर में तेरा राज्य चलता था, उसी घर में चारपाई पर पड़ा-पड़ा कहता है कि भोजन बना है क्या? ये कौन बुलवा रहा है? जिस घर में हमने साम्राज्य पद सँभाला हो, आज उसी घर में मेरी क्या हालत हो रही है? यही कारण है कि मुनिसंघ परम्परा में एक बड़ी अच्छी व्यवस्था है, अब वो विषय अलग है कि कितना कर पाते हैं। क्योंकि इस काल की ऐसी बहुत-सी विषमतायें खड़ी हो गयी हैं। आचार्य परमेष्ठी अपने शिष्यगणों के बीच में रहते हैं। शिष्यों के बीच जब शरीर में सामर्थ्य होती है तो सभी आज्ञा में रहते हैं। हमारे आगम की व्यवस्था अलौकिक है कि जब तक शिष्य आज्ञा में है, शरीर स्वस्थ है तब तक ही आचार्य पद पर रहते हैं। जैसे ही देखा कि मेरे शरीर की स्थिति नाजुक होने वाली है। वे शीघ्र ही अपने पद को अपने शिष्य को सौंपकर, उनके साथ नहीं रहते, यतियों को बुलाकर बताते हैं कि हे मुनियो! आज से तुम्हारे आचार्य यह होंगे। स्वयं अपना पद छोड़कर अभिनव आचार्य को आचार्यत्व देकर, एक-दो साधुओं को लेकर परगण की ओर चल देते हैं। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा। क्यों?

वृद्ध-अवस्था में सबसे बड़ी विषमता होती है दु:ख की। तन काम करता नहीं, मन मानता नहीं, बोले-बिना चैन पड़ता नहीं। जिसका मन माने नहीं, बोले-बिना चैन पड़े नहीं, उनको कहीं कोई चैन देता नहीं। वृद्ध हो रहे हो, इसलिये मौन का अभ्यास अभी से शुरू करो, जिससे वृद्ध अवस्था में तुम पूरे मौन रहो। एक कक्ष में बैठकर स्वाध्याय, चिन्तन, मनन करो। कुछ नहीं बने तो शान्ति से तुम लेटे रहना। आँखें बन्द करके तत्त्व का चिन्तन करना। भैया! ज्यादा आँखें मत खोलना। आँखें बन्द होने के पूर्व जो आँखें बन्द करके रह लेते हैं, उनको

जगत् की आँखें खोल-खोल कर देखते हैं। उनको जगत् में कोई दोआँखें भी देखने नहीं आती हैं जो आँखें बंद होने के पूर्व अपनी आँखें बंद नहीं करते हैं। इसलिये ज्ञानी! आँखें बन्द होने के पहले आँखें बन्द कर लेना।

ज्ञानियो! चलती बिरिया है। जगत् में जो हो रहा है, उसे कोई रोक नहीं सकेगा। ऐसा होता आया है, होता ही रहेगा। आँखें बन्द करने वाले आये थे, वे कैवल्य की आँखें खोल कर चले गये। आँखें बन्द से मतलब समझिये। ज्यादा देखोगे तो ज्यादा सोचोगे, जितना सोचोगे उतना ही बोलोगे। आज के युग को हम दोष दे देते हैं, पर हर युग में ऐसा होता था। वृद्धों की हालत हर युग में ऐसी होती थी। जो वृद्ध होने के पहले आँख व मुख बन्द कर लेते थे, वे सम्मान को प्राप्त होते थे। जो अधिक बोलते थे, वह निरादर ही होते थे। हम सब भी तो बूढ़े होंगे।

भैया! तू तो मुझे भी उस अवस्था में सचेत कर देना कि महाराज जी आपने आगरा में बोला था कि आँखें बन्द होने के पहले आँखें बन्द कर लेना चाहिये। द्वैत में अर्थ समझना। आँखें बन्द होने के पहले आँखें बन्द कर लेना। अक्ष यानी इन्द्रियाँ और अक्ष यानि आत्मा। आँख यानि आँख। जो अपनी इन्द्रियों को वश करेगा और जगत् को देखना बन्द कर देगा, उसका सम्मान होता रहेगा। इसलिये सम्मान के साथ वृद्ध अवस्था को पूर्ण करने की आकांक्षा हो तो आज मेरी इतनी-सी बात को मान लेना। क्योंकि पुण्य क्षीण होना प्रारम्भ हो जाता है। पुण्य भी अवस्था के ढलते ही ढलने लग जाता है। बिरले जीव हैं जो अन्तिम श्वास तक ज्यों-का-त्यों पुण्य लेकर जाएँ। बूढ़े पिता की बात बेटे भी नहीं मानते। इसलिये अपनी वृद्धावस्था के आने के पहले हम विवेक से काम लें। मित्रो! कुछ नीति तो सीखकर चलना ही पड़ता है।

ज्ञानियो! वे आचार्यपरमेष्ठी संघ क्यों छोड़ रहे थे? उस संघ में रहकर भी तो समाधि कर सकते थे? नहीं, क्योंकि उनको मैंने आदेश दिये हैं, वे हमारी आँख देखकर घबराते थे। वृद्ध-अवस्था का यही तो कष्ट है कि वे ही जब आँखें दिखाने लगते हैं तो फिर सहन नहीं होता है। मैं तो सहन कर भी लूँगा, पर मान

कहाँ सहन कर पायेगा? फिर मन यूँ करेगा—भज अरिहंताणं, भज सिद्धाणं। वो तो भज ही जायेंगे, पर सामने दिखेगा कि मेरा बेटा मेरा अनादर कर रहा है और मेरा शिष्य मुझे आज्ञा दे रहा है। इसलिये हमारे आचार्यों ने व्यवस्था की है कि जब सल्लेखना का समय आये तो निर्यापकाचार्य की खोज कोई दूसरे संघ में की जाती है।वहाँ जाकर समाधि करें। क्यों? वहाँ कोई मेरा परिचित नहीं होगा। यदि मुझे डाँट भी देगा तो मुझे विकल्प नहीं होगा। क्योंकि जिसको मैंने निर्यापकाचार्य बनाया है, उसे अधिकार है। पर जिसे मैंने दीक्षा और शिक्षा दी, उसको मैंने ही आचार्य बनाया और वृद्ध-अवस्था में मेरे से कोई कमी होने लग गयी तो मुझे आदेशित करेगा कि महाराज ऐसा मत करो, तो मन क्या कहेगा? कि आज मुझे सिखा रहा है, मैंने तो सबको सिखाया है। पर मेरे मित्र! बुद्धि काम करती भी है वृद्धावस्था में भी, पर देह काम नहीं करती है। वृद्ध-अवस्था में बुद्धि का हरण न भी हो, पर देह का हरण तो हो ही जाता है। इसलिये आज से सँभलकर जीना। वृद्ध होने के पहले मैं वृद्ध हो जाऊँ तो मुझे बुढ़ापे का दु:ख नहीं देखना पड़ेगा। जो वृद्ध होने के बाद भी युवापने को नहीं छोड़ पाते हैं, उनके बूढ़े होने पर उन्हें दर-दर ठोकरें खाना पड़ती हैं। शरीर तो बूढ़ा हो गया, पर कामना चटपटे खाने की बूढ़ी नहीं हुयी। दुनियाँ को देखना बूढ़ा नहीं हुआ, मन की इच्छायें बूढ़ी नहीं हुयी, वृद्ध तो तन हुआ है, पर चैतन्य बूढ़ा नहीं हुआ है। वृद्ध दादाओ! बुरा मत मानना। बुरा लगे तो क्षमा कर देना। मैं आपको ही बता रहा हूँ। जो है, सो है। उसमें मैं भी हूँ। बहुत सारी बातें आप अब तक समझ गये होंगे। यथार्थ बताऊँ, आप सब के बीच में अपने आप को समझाता हूँ। दादा! बिल्कुल सँभलकर रहना। स्वार्थी दुनियाँ में स्वार्थी लोगों को देखना तो, पर अपना मानना मत। कब कौन बिगड़ कर खड़ा हो जायेगा, कोई नियत नहीं है। दुनियाँ तुझ से बिगड़ जाये तो तनाव में नहीं रहना, पर अपने मन को मत बिगड़ने देना।

माया, छल, वंचना, कपट किसके साथ किया? पयुर्षण में तो दस धर्म की व्याख्या अनेक बार सुन लेते हो। बस, दस दिन के लिये धर्म हुआ, चला गया। मित्र! धर्म दस दिन के लिये नहीं आता, दस दिन तो तुम्हारे समझने के लिये

हैं। धर्म जीवनभर का होता है। इसलिये इतनी देर तक आपको मैंने स्मरण दिलाया था कि अपनी युवावस्था और विद्यार्थीजीवन तक पहुँच जाओ। पहुँच गये क्या? अब सोचिये..। जो कर्मों की व्याख्या करणानुयोग के शास्त्रों में लिखी है, वह व्याख्या पूर्ण सत्य है। उस व्याख्या को देखोगे तो सोच में पड़ जाओगे कि मैंने तो कितने बार क्या-क्या कर डाला। पर तू कहाँ मुझ से कहने आया था कि महाराज मैंने छल से अपने भाई के द्रव्य को भी हड़प लिया है? कब तू कहने आया कि मैं दो सौ की सामग्री छः सौ में बेचकर आया हूँ? यही कहा कि यह तो व्यापार है, इसमें तो छल चलेगा, इसमें पाप का बन्ध नहीं होगा। भैया! पाप का कहीं कोई भी समझौता नहीं है। वो तो बन्ध नियम से होगा। समझ आप यह रहे हैं कि ये छल से कमा रहा हूँ। पर सत्य यह है कि तेरा पुण्य कितना तेज है कि मायाचारी यानि पाप करने पर भी तुझे लक्ष्मी प्राप्त हो रही है। यदि ईमानदारी से करेगा, तो तेरा पुण्य में पुण्य बढ़ेगा, तो कितना-और प्राप्त होगा। मायाचारी से जब तू इतना कमा सकता है, तो फिर पाप छोड़ने पर तुझे और-कितना मिलेगा।

भैया! इस नगर की कितनी गलियों में जीव के पिण्ड, माँस के टुकड़े रखे बैठे हैं लोग और वे पैसा कमा रहे हैं। तटस्थ होकर हम तत्त्व का चिन्तन तो करें। जीवों का सुबह से टुकड़े-टुकड़े करनेवाला व्यक्ति पैसा कमा रहा है और अच्छा मस्त मोटा हुआ बैठा है। अब कल्पना करो कि जब हिंसा करने में उसे इतना द्रव्य मिल रहा है, तो इसका लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम कितना होगा कि पाप करने के बाद भी उसे पैसा मिल रहा है। उस बेचारे को विवेक जग जाए कि तू पुण्य करने लग जाए तो तेरे लिये कितना-और पैसा मिलेगा। पर क्या करें? जिसकी बुद्धि में दुर्बुद्धि बसी हुयी है, उसे भगवान् भी नहीं समझा सकते हैं। कम-से-कम आप लोग तो ऐसा मत करना जिस व्यापार में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती हो। कहीं जीवन में कर लिया हो तो प्रायश्चित्त ले लेना। पर अब उसे छोड़ देना। आजीविका ही सबकुछ नहीं है। **जीवन की अन्तिम**

विदाई का भी ध्यान रखना। क्योंकि हम लोग चार्वाकी नहीं हैं कि शरीर के नाश के साथ ही आत्मा का नाश हो जायेगा। हम तो आत्मा को त्रैकालिक समझने वाले हैं, अतः त्रैकालिक आत्मा का ध्यान रखना। वर्तमान की पर्याय का भोग करके भविष्य में आत्म द्रव्य को बिलखने के लिये मत छोड़ देना।

द्रव्य, गुण, पर्याय के अलावा विश्व में कोई भी व्याख्यान नहीं है। कभी गुण की प्रधानता से, कभी द्रव्य की प्रधानता से, कभी पर्याय की प्रधानता से कथन करता है। कभी स्वभाव गुण का कथन होता है, कभी विभाव गुण का कथन होता है। अभी जो कथन चल रहा है, वह गुण-गुण का ही तो कथन चल रहा है। विभाव गुण का कथन कर रहे हैं।

ज्ञानियो! क्रोध, मान, माया आदि यह जीवद्रव्य की विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय है। द्रव्य, गुण, पर्याय। मनुष्य मेरी पर्याय है, जीव मेरा द्रव्य है। ज्ञान-दर्शन मेरा गुण है। अब तो समझ में आ गया? गो-रस द्रव्य है, दुग्ध पर्याय है। उसमें माधुर्य गुण है। अब आया समझ में? अब चाहे तुम मट्ठे की बात करो या दही की या घृत की, द्रव्य-गुण-पर्याय की ही व्याख्या है।

मित्रो! जो इतना समय दिया है, सोच लिया कि नहीं? कॉलेज के जीवन से आज तक माया की या नहीं की? तुम दूसरे को कैसे बोल देते हो कि यह मायाचारी कर रहा है? भैया! उसकी स्थूल माया तुमको दिख रही है, पर तुम इतनी सूक्ष्म माया कर रहे हो जिसे कोई दूसरा देख नहीं पा रहा है। पर माया तो माया है।

माँ! रोटी बनाते-बनाते जो रोटी अधिक फूल गयी, तब तेरे मन में भाव आ गया कि यह तो छोटे बेटे को दूँगी और तूने उस रोटी पर दूसरी रोटी रख दी। माँ! चाहे ज्येष्ठ पुत्र हो या लघु पुत्र हो, पुत्र तो तेरे ही थे। पर कितना माया भाव रहता है? आपने उस रोटी को नीचे छिपाकर रखा। जैसे ही दोनों बेटे भोजन करने बैठे, तुरन्त आपने अपना काम कर दिया। दोनों ही रोटियाँ तेरे बेटे को दी

गयी, पर माँ! तूने मायाचारी का बन्ध तो कर ही लिया। ऐसा नहीं होता क्या? सच बोलिये.....।

भोजन बनाते-बनाते द्रव्य से तो अग्निकायिक आदि की हिंसा चल ही रही थी और भावों की मायाचारी चल रही थी। इतना ही नहीं होता है। कभी-कभी भक्तों का राग कैसे परेशान करता है। जिस परिवार ने इनसे विधान कराया था उसी परिवार में कुछ सदस्यों के बीच में किसी एक सुन्दर बालक पर तेरा ऐसा राग टपका कि जब शान्तिधारा का नम्बर आया तब तूने उस बच्चे के हाथ में कलश थमा दिया। दूसरे किसी सदस्य को नहीं दिया। तुझे क्या मिला?

मेरे मित्र! मायाचारी का फल मिलेगा कि नहीं? बेटा! ऐसा हो जाता है, मैंने छात्रजीवन में देखा है। हे राग! तू सत्य को देखने ही नहीं देता, क्योंकि मायाचारी की चादर बिछा देता है। एक शिष्य हजार गल्तियाँ कर रहा है, तब भी दिखाई नहीं दे रही हैं। दूसरा बेचारा कोई गल्ती नहीं कर रहा है, तब भी उसे परेशान किया जा रहा है।

वो तो माया सबके लिये लागू होगी। देखो, सिद्धान्त में है। संविधान/कानून जो है, वह किसी को छोड़ता नहीं है। कितने-कितने कामों में कितनी-कितनी माया बर्त चुके हैं। पूजा करते-करते मायाचारी करता है। चार बादाम थी, पाँच चढ़ाने वाले थे तो उसे चावलों के बीच छिपा दिया। धीरे-धीरे से उठाता है। हाथ में लेकर कहता है—'आओ, भैया! चढ़ाओ', लेकिन छोड़ता है नहीं। ससुराल गया, सासू ने पैसे दिये, कहता है कि नहीं चाहिये और हाथ में इतना जोर से पकड़ा है कि छूट ही नहीं रहा है। और दिखाऊँ आपको? प्रेक्टिकल में दिखाता हूँ कि लोग कैसे मायाचारी करते हैं। किसी के यहाँ अच्छा भोजन था। खाते-खाते शरम लगने लग गयी। अब कहता है कि नहीं चाहिये, नहीं चाहिये, पर थाली पर हाथ लगाया नहीं और यूँ कर रहा है कि रख दे भैया।

माँ! यहाँ तक की यात्रा आपने कर ली, नारीपर्याय तक आ गयी हो, अब तिर्यंच पर्याय की यात्रा करने का शौक हो तो आप थोड़ी-और माया

बढ़ा दो। यदि नहीं जाना है तो आज से प्रत्याख्यान कर दो कि हे महाराज! मैं मायाचारी का प्रत्याख्यान करती हूँ।

कुन्दकुन्द स्वामी ने 'प्रवचनसार' जी में लिखा है कि **तीर्थंकर का गमनागमन, उनका उठना-बैठना, चलना, बोलना ऐसे ही सहज है जैसे स्त्री का माया धर्म सहज है।** चाण्डाल की कथा में सिपाहियों ने कहा कि आज ही गया था बाहर, आज ही राजकुमार को फाँसी लगना है। आज ही बहुत द्रव्य मिलने वाला है। तब क्या कह रही थी वो? कि बाहर गये हैं और अन्दर की तरफ संकेत कर रही है। पति को भी नहीं छोड़ा। इसलिये कभी दिन में समय मिल जाये तो दो मिनिट अपने जीवन के बारे में इतना चिन्तन कर लेना कि यदि सही में मायाचारी का फल तिर्यंच गति होता है, तो मेरा क्या होगा? इसलिये कौआ अच्छे लगते हैं। वे भीतर बाहर दोनों जगह काले होते हैं। मायाचारी तो नहीं कर रहे हैं। बगुले अच्छे नहीं हैं जो बाहर गोरे, भीतर काले।

कौआ किसी को छलता नहीं। जैसा बाहर, वैसा भीतर। पर फिर भी कौआ को चाण्डाल कहा है पक्षियों में। सोचो, ध्यान दो, कि मैंने अपने जीवन में कितना छल किया? सोचता था कि मैंने दूसरे को छला है, पर मैं ही छला गया। आचार्य कुलभद्र स्वामी यहाँ लिख रहे हैं–

परं च वञ्चयामीति, यो हि मायां प्रयुज्यते।
इहामुत्र च लोके, वै तैरात्मा वञ्चितः सदा॥ सा. स. 180॥

जो मायाचारी में प्रवृत्ति करता है, दूसरे को ठगता है, वह इहलोक और परलोक में सदा अपनी आत्मा की ही वंचना करता है। यानि अपनी आत्मा को ही ठगता है। क्योंकि कर्म का बन्ध मुझे होगा, संसार में भ्रमण मेरा होगा। किसको मैंने छला? मैंने खुद को ही तो छला। इसलिये आज से उस परम धर्म की ओर लक्ष्यपात करना। उत्तम मार्दव धर्म, उत्तम आर्जव धर्म। मान गया, तो मार्दव आ गया। माया गयी, तो आर्जव आ गया।

धन्य हैं वे श्रमण, जो आर्जव गुण से युक्त हैं। सारी विद्यायें आने पर भी कभी किसी को छलने के भाव न लायें, इसका नाम आर्जव धर्म है। बहुत कठिन है। इसमें कोई शंका नहीं करना। जो नीतियाँ खेलता है, उसको मायाचारी करते बहुत अच्छे से बनता है। ज्ञानियो! जितनी नीति के विशाल ग्रन्थ हो सकते हैं, जो लिखे गये हैं, जैनदर्शन या अन्य दर्शन में, प्रायःकर मैंने सबका अध्ययन किया। सार इतना निकला कि जो नीति के अनुसार जीवन जियेगा, उसे मायाचारी करना पड़ेगी। नीति का अर्थ जानते हो क्या होता है? सुना कभी नीति का अर्थ? जो संसार में कूटनीति है, उसका अर्थ बता रहा हूँ। **जैसे बने वैसे अपना जीवन सुखी रखना। अपने जीवन को सुखी रखने के लिये दूसरे को दुःखों में डुबा देना, इसका नाम कूटनीति है।** न मुझे छल से मतलब, न कपट से मतलब। रणनीति देखी आपने? साम, दाम, दण्ड, भेद। मेरा राज्य सुरक्षित रहना चाहिये। कितने ही जीवों के प्राण निकल जायें, पर मुझे सुखी रहना चाहिये। आप क्या कर रहे हो? नीति तो आपके साथ है ही, अपने को अच्छे से सुरक्षित रखने के लिये आपने एक भवन खड़ा किया। बताओ कितने जीवों के भवनों को नष्ट करके तुमने अपना भवन बनाया है? नींव खोदी थी, उसमें कितने जीवों के बिल खोदे थे? जो पत्थर लगे हैं, कितने पर्वतों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे? ईंटें बनी थीं, कितने अग्निकाय, कितने जलकाय, कितने वायुकाय, कितने पृथ्वीकाय का घात करके लाए हो? आदमी अपना जीवन सुखमय करने के लिये कुछ भी कर सकता है, पर पता ही नहीं कि यह मैंने पाप किया है।

नगरसेठ का भवन अच्छा दिखना चाहिये। जितना तूने पाप करके कमाया था, सब पत्थरों में लगा दिया था। जो बचा है, पत्थरों में बैठकर मुख में लगा देगा। जो बचा है, दूसरे के मुख में डलवा देगा। फिर भी बचा है तो गले में माला पहनवा लेगा, टीका लगवा लेगा। फिर भी बचने पर श्मसान में चादरा के काम आयेगा।

भैया! बुरा नहीं मानना, वस्तु का स्वभाव ऐसा ही है। जो है, सो है। कितना

कमाने का भाव रहता है, पर चला ही जाता है। लघु जीवन जीने के लिये कितना तनाव लेना पड़ता है? इतना तो जीवन आनन्द से निकल सकता है। क्या करूँ? रोज कहता हूँ, फिर भी नहीं मानते हो। चलो मेरे साथ। लघु जीवन है, कहाँ झंझट में पड़े हो? डण्डे-कण्डे से जाने की अपेक्षा पिच्छि-कमण्डलु के साथ चलो, वह ज्यादा अच्छा है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

'पुण्य की पूँजी'

पंचतासन्नतां प्राप्तं, न कृतं सुकृतार्जनं।
स मानुषेऽपि संप्राप्ते, हा! गते जन्म निष्फलम्॥ 181॥

अन्वयार्थ-पंचतासन्नतां प्राप्तं = जो व्यक्ति मरण के सन्निकट होने पर भी, **सुकृतार्जनं न कृतं** = पुण्य का लाभ नहीं करता है, **सः** = वह, **मानुषे अपि संप्राप्ते** = मानव-जन्म पाकर भी, **जन्म निष्फलं गतं** = अपना जन्म व्यर्थ खो देता है, **हा** = यह बड़े खेद की बात है।

भावार्थ-अहो भव्य! इस लोक में जो मनुष्यभव धारण करके भी पुण्योपार्जन नहीं करता है, उसका जन्म लेना भी व्यर्थ ही है।

'संसार-सागर से पार'

कर्मपाश विमोक्षाय यत्नं यस्य न देहिनः।
संसारे च महागुप्तौ बद्धः संतिष्ठते सदा॥ 182॥

अन्वयार्थ-यस्य देहिनः = जिस प्राणी का, **यत्नं** = उपाय, **कर्मपाशविमोक्षाय न** = कर्म के जाल से छूटने का नहीं है, **महागुप्तौ संसारे च** = इस महान् गम्भीर कैद के समान संसार में वह, **सदा बद्धः** = सदा बन्धा हुआ, **संतिष्ठते** = रहेगा।

भावार्थ-अहो मुमुक्षु! जिस प्राणी का उपाय कर्मबन्ध से छूटने का नहीं है, वह संसाररूपी सागर से पार नहीं हो पायेगा।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के वैभाविक और स्वाभाविक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

अहो प्रज्ञ! माया जो होती है, वह आत्मा का प्रबल शत्रु है। हम अपनी पाप-क्रिया को, पापप्रकृति को लोक के सामने छुपा सकते हैं, परन्तु स्वयं के सामने छुपाने की कोई शक्ति नहीं। जगत् के सामने पर्दा डाल सकता हूँ, परन्तु स्वयं और सर्वज्ञ इन दोनों के नेत्रों के सामने कोई पर्दा नहीं है। वंचना करके तुम धन कमा सकते हो, यश की कामना कर सकते हो, लेकिन वंचना को बचाकर नहीं रख सकते हो। वंचना नियम से प्रकट होती है। जिस दिन तुम्हारा रहस्य खुलेगा, उस दिन आपको मालूम चलेगा कि हाय मैं तो यूँ सोच रहा था कि जगत् में मेरा कोई देखनेवाला नहीं है। परन्तु कर्मसिद्धान्त कहता है—ज्ञानी! कितने ही छुपा कर अशुभ कर लेना, पर उदय जब आता है, तो सबको ज्ञात हो ही जाता है। कितने प्रकार का दुर्भाव भाव किया है? कितने प्रकार का विभाव भाव किया है? कितने प्रकार से जीवन को आपने जिया है? यदि स्वयं के जीवन जीने की शैली पर ही चिन्तन किया जाये, तो मालूम चलेगा कि विश्व में मेरे से बड़ा मायाधर्मी कौन है? गिरगिट के रूप बहुत कम बदले जाते हैं, पर मनीषियो! परिणामों के अनन्त रूप बदले जाते हैं। बहुरूपिया क्या रूप बना सकेगा, नाटक का जोकर क्या रूप दिखा पायेगा, जितने बहुरूपिया रूप नहीं बदल पाता है, उतने जीव के परिणाम बदल जाते हैं। जितनी पर्यायें प्राप्त नहीं की हैं, उतने परिणाम हुये हैं। एक ही भव के भावों को देखा जाये तो तू गिनती नहीं गिन पायेगा। इतने प्रकार से स्वयं के परिणाम कर चुका है। एक मुहूर्त में ही कहाँ-से-कहाँ नहीं पहुँच जाता है। अड़तालीस मिनिट के अन्दर इतने भाव कर लेता है कि जितने लोक में तारे हैं, सागर में पानी की बूँदें हैं, इतने प्रमाण के परिणाम जीव अन्तर्मुहूर्त में कर लेता है। इतने परिणाम किये हैं कि यदि परिणामों के काल में स्वयं के परिणामों की गणना करने बैठ जाये, स्वयं के परिणामों को जीव ज्ञेय बनाये, तब समझ में आयेगा कि जितना जगत् में मुझे शत्रु ने दुःखी नहीं किया, कालिया नाग ने डस कर दुःखी नहीं किया, सिंह के दाँतों से दुःख नहीं मिला, वो तो शरीर से दुःखी करता है, लेकिन मेरे जो स्वयं के परिणाम

हैं, यदि ऊपर-नीचे हो गये तो जब तक साम्यभाव नहीं आ रहा है, तब तक दु:ख-ही-दु:ख है। तनाव की जो वेदना है, उसे वही जान सकता है जिसको तनाव है। या फिर मन:पर्ययज्ञानी या केवली जानें। अवधिज्ञानी भी किसी के मन की व्यथा को नहीं बता सकते हैं। यदि सरल-सरल परिणाम कर रहा है तो ऋजुमति बता पायेंगे और अत्यन्त वक्र परिणामों की धारा (चिन्तन) कर रहा है तो क्या चिन्तन कर चुका है, क्या चिन्तन करनेवाला है यानि चिन्तित, अर्द्धचिन्तित, अचिन्तित इन तीनों विषयों को बताने की सामर्थ्य किसी में है तो विपुलमति मन:पर्याय ज्ञानी में है। पर इस खोटे काल में अपन इतने अभागे हैं कि क्या कहूँ? न कोई ऋद्धिधारी मुनि नजर आते हैं, न कोई भी अवधिज्ञानी योगी दिखते हैं, न कोई मन:पर्ययज्ञानी दिखते हैं। न इस भारत की भूमि पर विशिष्ट देवों का गमनागमन है। फिर भी हम इतने धर्मात्मा हैं कि धर्म का प्रत्यक्ष फल दिखाई नहीं देता तो-भी हम धर्म में लगे हैं। तुम पीठ ठोकने के लायक हो।

ज्ञानियो! साक्षात् केवली भगवान् को समवसरण में देखते हों, अरहन्तदेव को निहार रहे हों, देवों की भीड़ लगी हो, उन जीवों को वैराग्य हो, यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। पर आज इस खोटे दग्ध काल में सूखी अवस्था में भी जीवों को वैराग्य हो रहा है। ये नवयुवक दीक्षा लेकर मोक्षमार्ग पर जा रहे हैं। विश्वास मानो, यही पंचमकाल का विशिष्ट चमत्कार है। कोई धर्म का प्रत्यक्ष फल नहीं दिख रहा है, तब भी आस्था कहीं-न-कहीं तो लगी हुयी है। श्रद्धा अवस्थित है। मन:पर्ययज्ञानी योगी के सामने किसी भी जीव की मायाचारी चलती नहीं है। वो पहले ही बता देंगे कि तू क्या सोच रहा है, क्या कर रहा है, क्या बोल रहा है। चिन्तनधारा तेरी कुछ है, बाहर की प्रवृत्ति कुछ-और है, लक्ष्य तेरा अन्यत्र है। यथार्थ मानना, जब हम सोचकर कुछ आते हैं, करते कुछ-और हैं तो स्वयं का हृदय कह रहा है कि तेरा जीवन असत्य का चल रहा है।

भैया! दूसरे को दु:खी तुम बहुत समय बाद तभी कर पाओगे, जब उसका अशुभ कर्म का उदय होगा। पर को छलने का भाव आते ही दु:ख प्रारम्भ हो

जाता है। वह जीव कषाय के आवेग में यह कह नहीं पा रहा है कि मैं मायाचारी कर रहा हूँ। कषाय के आवेग में माया को छोड़ भी नहीं पा रहा है। लेकिन सत्य यह है कि सत्य दिखाई देता है।

कर्नाटक की घटना है। गोमटेश बाहुबलि स्वामी के चरणों में गोमटेश नरेश हर सप्ताह दर्शन करने बड़ी आस्था के साथ जाया करता था। श्रद्धा विश्वास के साथ जाया करता था। कर्नाटकी परम्परा के अनुसार वह गंधोदक को भी पी जाते हैं। तो मैसूर नरेश को बाहुबली स्वामी के चरणों में अगाध श्रद्धा थी। वह जब-जब वहाँ जाता था वहाँ के पुजारी से एक कटोरा गंधोदक लेकर पी जाता था। पर जगत् में सत्य कितना ही विशाल हो, परन्तु शत्रु तो उसके भी होते हैं। **शत्रुओं की ईर्ष्या को देखकर सत्य में दोष मत देख लेना।** शत्रु की शत्रुता को देखकर सत्य को मत छोड़ देना।

मित्रो! शत्रु को सत्य पर भी असत्यता दृष्टिगोचर होती है। परन्तु शत्रु के द्वारा सत्य को असत्य कहने से सत्य असत्य हो नहीं जाता। तीर्थंकर वर्द्धमान को तीर्थंकर नहीं माननेवालों के द्वारा तीर्थंकरत्व का लोप नहीं हुआ था।

हे श्रमण! हे श्रावक! ईर्ष्याभाव से युक्त होकर एक जीव भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कथित धर्म में कोई दोष लगाने लग जाए, तो उस अज्ञानी के दोषारोपण की भाषा को सुनकर तुम जिनेन्द्रकथित भगवान् के शासन को छोड़ मत देना, अरहन्त की भक्ति से तुम अपनी आत्मा को वंचित मत कर लेना। कहनेवालों का मुख बन्द नहीं कर पाओगे। कहावत है कि हड़िया पर पारा हो सकता है, पर बोलनेवालों के मुख पर पारा नहीं होता है। आप अपने निंदालुओं के मुख पर पारा नहीं रख सकते हो। कहनेवालों ने राम को नहीं छोड़ा, तो तुम कौन होते हो?

सबसे बड़ी नागिन कोई है, उसका नाम ईर्ष्या है। कोई आप पर ईर्ष्या करने लग जाए, तो आपको मन में कोई भी क्लेश नहीं लाना चाहिये अपितु यह सोचना चाहिये कि उसका कोई दोष नहीं है। अपनी हीनता को प्रकट

करने के अनेक मार्ग होते हैं, उसमें एक यह भी मार्ग है। इसका मतलब है कि जो मेरे ऊपर ईर्ष्या कर रहा है, उसकी श्रद्धा में है कि सामनेवाला उन्नतिशील है।यदि आपके प्रति किसी जीव का ईर्ष्याभाव आता है, तो वह किसी के श्रद्धा में आ चुका है कि मेरी शक्ति को हीन करनेवाला कोई व्यक्ति अवश्य है। पर की ईर्ष्या आपकी उन्नति की प्रमाण है। नहीं-तो ईर्ष्या क्यों?

मैसूर नरेश के साथ यही हुआ। जो दूसरे क्षेत्र का सम्राट था, वह ईर्ष्या से भर गया और उसके घात करने का विचार करने लग गया। मैसूर सम्राट ने अपने प्रण की रक्षा की, तो उसके धर्म ने उसके प्राणों की रक्षा की।

हे भगवान्! मैं लाख का हो जाऊँ या खाक का हो जाऊँ, पर आपके चरणों का अनुराग न छोड़ूँ। कह देना आज भगवान् के चरणों में जाकर कि हे स्वामी! जब तक निर्वाण को प्राप्त न कर लूँ, तब तक आपके चरणों में यूँ ही लगा रहूँ। **तव पादौ मम हृदये।** हे जिनेन्द्र! आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में विराजें और मेरा हृदय आपके चरणों में विराजे। कब तक? जब तक मैं निर्वाण की प्राप्ति न कर लूँ? और जब तक कण्ठ में प्राण कुण्ठित रहें, तब तक हे नाथ! आपकी भक्ति करता रहूँ। यह रासायनिक तत्त्व है।

जब देखा कि सम्राट शक्तिमान है, इसका घात बड़ा कठिन है, तो लोग षड़यन्त्र रचते हैं। सामने से वार नहीं कर पाता है, उसके लिये 'मूलाचार' जी में एक शब्द आया है। किसी निर्दोष के लिये यदि कोई पीठ-पीछे निन्दा कर रहा है, प्रभावशाली है, तो फिर जीव गीदड़वृत्ति करता है। पीठ-पीछे से वार करता है। 'मूलाचार' जी में साधु के लिये कहा हे मुनि! हे श्रमण! तू धर्मात्मा साधकों की आलोचना करके **"पिट्ठमांसभोजी"** मत बन। सुना कभी? जो मुनि होकर मुनि की आलोचना कर रहा है, उसको पीठ के मांस का सेवन करनेवाले गीदड़ के समान बताया है।

हे मित्रो! तुम शुद्ध प्रासुक आहार ही करो, पीठ का माँस मत खाओ और शुद्ध प्रासुक कुये का पानी पीने के बाद भी यदि पर की आलोचना करना नहीं

छोड़ पाये, तो मुख का सेवन शुद्ध चल रहा है, लेकिन भावों का सेवन तुम्हारा माँस का चल रहा है।

ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है आगम में, (अष्टपाहुड में)। लिंगपाहुड, शीलपाहुड को पढ़ने पर तो रोंगटे खड़े होते हैं कि क्या लिख रहे हैं आचार्यभगवान्।

हे दिगम्बरो! आज तुम क्यों मुस्कुराते हो? अपने पास चौरासी पाहुड होते और यदि जिनसेन स्वामी को और उम्र मिल जाती, तो आज भारत की भूमि पर सर्वाधिक कोई साहित्य होता तो दिगम्बर जैन आगम होता, क्योंकि अठारह पुराण मात्र वैदिक पुराण हैं और हमारे यहाँ चौबीस होने वाले थे। महापुराण जैसे चौबीस पुराण। ज्ञानियो! जिनसेन स्वामी ने प्रतिज्ञा की थी चौबीस पुराण लिखने की। पर क्या करूँ? हे काल! **यमस्य करुणा नास्ति।** इसलिये भैया! जिनसे जो धर्म के काम बन रहे हैं, करते जाओ। कोई तेरी निन्दा/आलोचना करे, तब भी आगे बढ़ते जाओ। देखो, मैं तो विद्वानों से कहता हूँ कि आपकी प्रज्ञा काम कर रही है, आपसे छंद सवैया बनाते बनता हो, आप तो लिखो। पर कोई आगम का आधार लेकर लिखो। हम चले जायेंगे लेकिन साहित्य रहेगा, तो समाज का हित होगा। **कुछ भी लिख देना, इसका नाम साहित्य नहीं है। जिससे लोगों के चित्त चारित्र भ्रष्ट हों, वह साहित्य नहीं है। जिसके माध्यम से प्राणियों का हित हो, वही लेखन 'साहित्य' संज्ञा को प्राप्त है। जिससे हित नहीं, विनाश हो, वह साहित्य नहीं, शस्त्र है।** साहित्य लिखना चाहिये। भाषा कुछ भी हो, साहित्य होना चाहिये। यह मत सोचना कि मेरी ऊँची भाषा नहीं है। नहीं, लोक में हर प्रकार के जीव हैं। म्लेच्छों को म्लेच्छों की भाषा में समझ में आता है। व्याकरण का विकल्प ज्यादा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि व्याकरण जो है, वह भाषा के पीछे चलता है। जब भाषा आगे बढ़ जाती है, तब व्याकरण को पीछे चलना होता है।

ज्ञानी! छंद बनता है, लिखो। बस, जिनवाणी ही होना चाहिये, और- कुछ नहीं। वर्तमान की लोकव्यवस्था मत देखना। अरहन्त की जो व्यवस्था है, वह

लिखना। ऐसा नहीं कि वर्तमान को देखकर बात करें। वर्तमान की बात वर्तमान की हो सकती है, लेकिन जो वर्द्धमान की बात को वर्तमान में कहेगा, उसका नाम धर्मात्मा है। वर्तमान का मत देखना, वर्द्धमान को देखकर वर्तमान में बोलना। वर्द्धमान को भूलकर बोलोगे तो वह साहित्य नहीं, शस्त्र होगा। वर्तमान में तो क्या-क्या नहीं हो रहा है। जो मेरी आत्मा का कल्याणकारी हो, उसका नाम साहित्य है। आप भले ही किसान नहीं हो, पर खेत तो देखे होंगे। जिस वर्ष फसल अच्छी आती है, उस वर्ष कीड़े भी बहुत होते हैं। आम के बौर यदि अच्छे होते हैं, तो किसानों के चेहरे पर मुस्कुराहट आती है। पर साथ में दु:ख यह होता है कि आँधी तूफान भी उसी वर्ष ज्यादा आता है।

वे प्रबल पुण्यात्मा किसान हैं जिसके अच्छे बौर आने पर बेमौसम जलवृष्टि न हो, आँधी-तूफान न आये। किसान के खेत में फसल अच्छी आ जाये, पर अभी प्रशन्न मत हो जाना जब तक घर में दानें नहीं पहुँच जाएँ। चैत्र के पूरे महिने में फसल लहराती रही और जब निकालने का समय आया तो ओले पड़ गये। पर ये जो प्राकृतिक प्रकोप हैं, वे आपको इंगित कर रहे हैं कि हे जीव! जब तेरी उन्नति का काल आता है, किसान के खेत में फसल अच्छी होती है, तब कीड़े भी लगते हैं। उन्नति के समय में जगत् में तुमको गिरानेवाले कीड़े जरूर लेगेंगे, पर आपका पुण्य तेज होना चाहिये। कितने ही कीड़े लगें, पर फसल घर में आ जाए। कितने ही संकट/उपसर्ग आ जाएँ, लेकिन धैर्य मत छोड़ना। सल्लेखना हो गयी, तेरी फसल तेरे घर में पहुँच गयी।

मित्रो! मैसूर नरेश को मारने का भाव चल रहा था। पर सामनेवाले को कोई युक्ति नहीं दिख रही थी। **लोक में कैसे-कैसे पापीजीव होते हैं? उनको ईर्ष्यावश पाप से भी घृणा नहीं होती है। परमात्मा के चरणों में पहुँचकर भी पाप कर लेते हैं।** माया देखो, माया पर टिकती नहीं है माया। किसी ने कान भर दिये शत्रु राजा के कि मैसूर नरेश गोमटेश बाहुबलि स्वामी का भक्त है और यह वहाँ जाकर गंधोदक का पान करता है। (इसका मतलब आप मत

करने लग जाना।) एक उपाय है कि मन्दिर के पुजारी का सहयोग लिया जाए। भैया! सँभलकर रहना। झाँसी की रानी का घात कैसे हुआ? जो नजदीक होते हैं, घर का भेदी लंका ढाये। बुंदेलखण्ड में कहते हैं कि जब आँख फूटती है तो घर के कुनबे से फूटती है। इसलिये बहुत सँभलकर रहने की आवश्यकता है। हुआ यही कि यूँ कह दिया कि पुजारी को वश किया जाए। वश करने के लिये सुन्दर उपाय है—धन का लालच।

धन के लोभ में धर्म के विपरीत कथन करने कभी मत बैठ जाना। आप सभी को एक यही नियम देना चाहता हूँ।

ये वैभव, यह धन, धरती, यह सदा रहनेवाले नहीं हैं। पर्याय की अनित्यता को निहार लेना कि मेरे लिये कितने समय तक है? राग के वश में, लोभ के वश में तुमने कोई माया का काम कर भी दिया, उस धन को देखता भी रहेगा, तेरी माया से किसी की मृत्यु हो गयी, किसी का अपयश फैल गया। हे जीव! जब भी तू शान्ति से बैठेगा, तब यही सोचेगा कि हाय अब मैं इसका क्या प्रायश्चित्त लूँ, क्या प्रतिक्रमण करूँ? हाय मेरे जीवन में इतना बड़ा दोष हो कैसे गया? विश्वास मानना, बड़े-बड़े योगियों के बीच में रह चुका हूँ। मुनियों और विद्वानों के बीच रह चुका हूँ। आप सब समझ रहे हो। जितनी मेरी उम्र आप सबके बीच नहीं गुजरी है, उतनी उम्र मेरी मुनियों के बीच गुजरी है। आयु के जो निषेक हैं, जितने त्यागियों के बीच निकले हैं, उतने रागियों के बीच नहीं निकले हैं। यदि किसी योगी के मन में कुछ खोटे विकल्प आ भी गये और कुछ खोटा कर भी लिया उस जीव ने, विश्वास रखना, कितना भी छुपाकर रखेगा, पर मन के विकल्प को तो नहीं छुपा सकेगा। पैर में काँच चुभ गया है तो पैर भले ही छुपा ले, पर तेरी मार्ग पर चलने की चाल बता देगी कि तेरे पैर में कुछ है। ऐसे ही भैया! भीतर का विभाव चेहरे पर टपकना प्रारम्भ हो जाता है कि हृदय में कुछ है। व्यक्ति के चेहरे की एक उमंग तरंग सहज चमक विलीन होने लगती है।

मित्रो! ले लिया नियम? भूखे सो जाना। कोई यही कहेगा कि धनहीन हो गया, वह शब्द सुन लेना। धनहीन सुनना कठिन नहीं है। चारित्रहीन हो गया, यह शब्द सुनना बहुत कठिन है। क्या सलाह दी? पुजारी को पटा लो, उसको धन का लोभ दे दो। क्या लोभ दिया? कि मैसूर नरेश जब गोमटेश बाहुबली स्वामी की वन्दना करने पहुँचे, आप उसको गंधोदक में जहर मिलाकर पिला देना। और कोटि मुद्रायें राजकोष से ले लेना।

भैया! मुद्रा तो ले ली उसने, लोभ में आ भी गया, पर **हे मारनेवालो! तुम मारने का उपक्रम तो कर सकते हो, पर आयुकर्म का क्षय तुम्हारे हाथ में नहीं है। वह स्वकर्म के हाथ में है। परघात नामकर्म का उदय नहीं है तो तू कुछ भी नहीं कर सकता है। पुण्यात्मा का बाल-बाँका नहीं होता है। तुम मारने की सोच पाओगे, पर मार नहीं पाओगे।** भैया! हुआ यही कि गंधोदक में जहर मिला दिया। नियत समय पर मैसूरनरेश पहुँचता है। वन्दना के पश्चात श्री जी का अभिषेक देख कर कहता है पुजारी जी! प्रभु के चरणों का अमृत दो मुझे! कटोरा तो उठाया। पर सत्य है, जिसने जीवन भर भगवान् का अभिषेक किया हो, जिनवाणी सुनी हो, वह इतना घोर पाप करने की हिम्मत रखता नहीं है।

सम्राट कहता है—आप विलम्ब क्यों कर रहे हो? शीघ्रता कीजिये। अंजुलि कर देता है। उस पुजारी का कटोरा काँपने लगा। पूछते हैं—'क्या कर रहे हो पुजारी जी?' कुछ भी कहो, सत्य तो बोलता है। राजन्! क्षमा करना। यह पापी हाथ काँप रहे हैं। 'क्या मतलब?' स्वामी! आज वह पुजारी का हृदय नहीं है जो एक सप्ताह पहले था। यह पापी का हृदय है। अब मैं आपको यह गंधोदक दे नहीं सकता हूँ। 'पर मैं तो पिऊँगा।' राजन्! यह गंधोदक नहीं है। मैंने इसमें जहर घोल दिया है। 'जहर आपकी आँख में है, पर मेरी श्रद्धा में गंधोदक ही है।' जिसके मिथ्यात्व/अश्रद्धान बैठा है, उसकी आँखों में जहर है। जिसकी दृष्टि में श्रद्धान बैठा है, उसकी आँखों में गंधोदक अमृत है। 'नहीं, मुझे तो आप यही

दीजिये।' नहीं, राजन्! अब रहस्य खुल गया। मैं आपको यह नहीं दे सकता हूँ। बोले, नहीं, आज तो प्रभु के चरणों में मेरी आस्था पर प्रश्नचिह्न है। यदि मेरी भक्ति होगी और गोमटेश में शक्ति होगी, तो आज मैं विश्व को दिखाऊँगा कि जहर का प्याला भी अमृत होगा। और नहीं तो जहर पीकर मैं बाहुबलि स्वामी के चरणों में अमर हो जाऊँगा।' पुजारी काँपता रहा, राजा के प्रभाव को नहीं झेल सका, उसने जहर मिश्रित गंधोदक अंजुलि में दे दिया। सम्राट क्या कहता है? **"विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत पन्नगाः। विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे"।** पी गया। जैसे ही उसने पान किया, पुजारी सोचता है कि अब तो बस, सम्राट गिरने ही वाला है। पर सम्राट के शरीर में जो किंचित् फोड़े फुंसिया थे, वे भी दूर हो गये, क्योंकि वह जहर अमृत बन गया। आस्था/विश्वास होना चाहिये। जिसका विश्वास सत्य है, गलित कुष्ट को भी स्वर्णमयी देह बना देगा। भैया! कहीं दर-दर मत भटको, अपने भावों को माया धर्म से दूर कर लो और अरहन्त की भक्ति में लीन हो जाओ, तो कर्म की बाधायें नष्ट हो सकती हैं, तो शरीर के सामान्य रोग क्या काम कर पायेंगे? कोई कार्यकारी नहीं हैं। विश्वास होना चाहिये, आस्था होना चाहिये।

मित्रो! माया छुपती नहीं है। इसलिये आचार्यभगवन् ने स्पष्ट कर दिया कि हे जीव! अपनी आत्मा को वंचित मत कर। मत ठगो अपनी आत्मा को। मित्र! पर को तो नहीं ठग सकते हो, जो भी ठगेगा अपने आप को ही ठगेगा। एक लोभ जरूर आना चाहिये कि मेरी आत्मा की विशुद्धि नष्ट न होने पाए। इतना लोभ चौबीस घण्टे रखना कि मेरी श्रद्धा की डोर कहीं खिसकने ना पाए। शरीर की वेदना कर्माश्रित है। धन आदि का अभाव लाभान्तराय कर्म के आश्रित है। ज्ञानियो! श्रद्धागुण जो है, वह आत्माश्रित है। जब छींक आने का समय होता है तो हमें मालूम चल जाता है कि अन्दर का मल बाहर फिकने वाला है।

मित्रो! विश्वास रखो, यदि अपने **अशुभ दिन आने वाले होते हैं तो वह भी छींक की भाँति मालूम चलने लगते हैं। उस काल में जितनी भी धन-सम्पत्ति**

हो, शीघ्र-से-शीघ्र उसको धर्मकार्य में लगा देना। क्योंकि-धन तो नष्ट होने वाला ही है। क्यों न मैं अरहन्तों की प्रतिमा विराजमान करूँ, निर्ग्रन्थों को दान दूँ, अरहन्त की वाणी का प्रकाशन करूँ, तीर्थों का निर्माण करूँ? ऐसे भाव करके धर्म में लगा देना चाहिये।

मित्रो! ऐसे ही जिसका पुण्योदय आता है, उसको भी समझ आने लगता है, कि चार दिन पहले मैं कुछ करता था, सब असफल ही हो जाता था। आज से तो चित्त भी प्रसन्न है। सर्वत्र लाभ प्राप्त हो रहा है। ज्ञानी! तेरे शुभ के दिन आ गये हैं। शुभ-अशुभ के फल को मिलने में कम-से-कम समय लगे तो अन्तर्मुहूर्त। उदय में कर्म इतने समय में आ सकता है। जो मैं कह रहा हूँ, वह आपको समझ में आ रहा है क्या? विश्वास मानो, जीव आदत का लाचार है। भैया! छोड़ दो यह विष। व्यसन छोड़ना सरल है, पर मायाचारी का व्यसन छोड़ना कठिन है। जिसकी मायाचारी की आदत पड़ जाए, वह किसी काम को सीधा करना ही नहीं चाहता है। वक्रपरिणति बात भी करेगा तो घुमाकर करेगा। बाँस की जड़ों में कम वक्रता होगी, पर जीव के भावों में उससे भी चौगुनी वक्रता है। इसलिये हे ज्ञानी! यदि अपने मानवजीवन को सफल बनाना है, तो माया को छोड़ना पड़ेगा। नरदेह मिली है तो परमात्म तत्त्व की सिद्धि करना है। उसको आचार्य महाराज कह रहे हैं।

पंचतासन्नतां प्राप्तं, न कृतं सुकृतार्जनं।
स मानुषेऽपि संप्राप्ते, हा! गते जन्म निष्फलम्॥ सा. स. 181॥
कर्मपाशविमोक्षाय यत्नं यस्य न देहिनः।
संसारे च महागुप्तौ बद्धः संतिष्ठते सदा॥ सा. स. 182॥

मुमुक्षुओ! आचार्यभगवान् कह रहे हैं। मानव पंचतत्त्व में विलीन होने के काल में है, तब भी पंचपरमेष्ठी को नहीं भज रहा है और पंचपाप को नहीं छोड़ पा रहा है। एक भैया बता रहे थे कि एक ऐसा जीव मृत्यु को प्राप्त हुआ जिसको लोगों ने कहा कि दादा! अब तो कुछ कर लो, नजदीक है समय। तब भी उस

जीव ने कुछ नहीं सुना। सत्य घटना है अभी की। अचानक ही बेचारे के प्राण निकल गये। अब सुनो हुआ क्या? श्मसान घाट पर ले जाकरके जब लोगों ने उनके कपड़े उतारे तो उस वृद्ध की जेबों से हजारों के नोट निकले। वह वृद्ध कितना अज्ञानी जीव होगा कि जाते-जाते भी नहीं छोड़ सका।

क्या कह रहे हैं? कि मृत्यु के सन्निकट होने पर भी नहीं छोड़ सका। धन्य हो उन योगियों की दशा। दिगम्बर मुनि यदि पुल भी पार करें, तो समाधि लेकर चलते हैं। जंगल पड़े, तब भी कायोत्सर्ग करते हैं, समाधि लेकर चलते हैं। जब तक जंगल पार करूँगा, तबतक चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग। त्याग किये होने के बाद भी प्रतिज्ञा को दोहराते हैं। क्यों? कहीं कोई घटना भी घट जाए तो सल्लेखना के साथ तो जायेंगे। विधिपूर्वक त्याग किया है। पर आप चलते-चलते भी नहीं छोड़ पा रहे हो। धिक्कार हो।

नियम क्या है? जो बुद्धिपूर्वक त्याग है, वही व्रत है। जैसे ही चारपाई पर पैर रखो कायोत्सर्ग कर लेना कि मेरा चार प्रकार के आहार का त्याग और सल्लेखना। कहीं सोते-ही-सोते रह गया, तो त्याग के साथ तो जायेगा।

ज्ञानियो! धन्य हों वे योगी जो एक-एक पल में सल्लेखना लेकर चल रहे हैं। आहार को जाते समय भी त्यागकरके जा रहे हैं। अरे! रास्ते में ही यदि कोई घटना घट गयी तो? इसलिये त्याग के साथ जाते हैं। जैसे ही आहार पूर्ण हुआ, तुरन्त कायोत्सर्ग करते हैं। चौके में वहीं भुक्ति कर त्याग कर देते हैं। चौबीस घण्टे का पुनः त्याग। ऐसा जाग्रत जो जीवन है, वास्तव में इसका नाम ही साधुजीवन है। चौबीस घण्टे जाग्रत रहना। अपने आप में कहीं सो न जाएँ। आँखों में नींद आये तो विश्राम कर लेना, लेकिन भावों में नींद न आने पाए। प्रमाद न आए।

मृत्यु निकट है, फिर भी यदि सुकृत का अर्जन नहीं कर रहा है, पुण्य नहीं कर रहा है, पाप से आत्मरक्षा नहीं कर रहा है, उसके लिये मनुष्य-पर्याय

मिलने पर भी सब व्यर्थ है। एक समय था जब 'हा, मा, धिक्' से काम चलता था। प्रथम काल में किसी से अपराध होता तो दण्ड व्यवस्था थी 'हा', तो यह बहुत बड़ा दण्ड था और जीव वक्रपरिणामी होते गये तो दूसरा दण्ड आया 'मा'। अब मत कर। जो हो गया, अब मत कर। इतने में आदमी पानी-पानी हो जाता था और वक्रपरिणाम आये तो 'धिक्'। हाय! ऐसा मत कर। धिक्कार हो।

अनादि मोह की वासना बड़ी जटिल है। घोड़े की जो लीद होती है। रोड़ पर कहीं दिख जाए तो देखना कि चमकती दिखती है, लेकिन हाथ में उठाने पर क्या होगा दुर्गंध का.....? ऐसे ही मोह की जो गंध है, चमक है, वह घोड़े की लीद के समान है। बुरा लगा तो क्षमा करें, 'पर जो है, सो है।'

आचार्यों ने चुनचुनकर उदाहरण रखे हैं। अब अन्तिम विदाई की बेला है। जीवन में कुछ नहीं कर पाए, तुम्हारा जीवन निष्फल निकल गया। तुम तो श्रीजी विराजमान करो। पर्याय के जाने के पहले परमात्मा की प्रतिमा विराजमान कर देना। इस भावना के साथ कि मैंने मूर्ति विराजमान कर दी, मैं स्वयं मूर्तिमान कब बनूँ? और-कुछ नहीं चाहिये।

धन्य हो चामुण्डराय। आज जब भी दिगम्बरों के नाम पर विश्व में चर्चा चलती है तो विश्व में गोमटेश स्वामी ही नजर आते हैं। ज्ञानियो! जब कला का नाम आता है तब खजुराहो के जिनालय ही नजर आते हैं।

हाय! मेरा जन्म निष्फल गया जो धर्म नहीं किया। मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके भी जिस जीव ने कर्म के जाल को नष्ट करने का यत्न नहीं किया ऐसा जीव संसाररूपी कारागृह में बँधा रहता है। आश्चर्य है कि जीव अपने कर्म के नाश का उपाय नहीं करता है। बंधु ही बन्ध के मूल हैं।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

'बान्धवों में बँधा प्राणी'

गृहाचारकुवासेऽस्मिन् विषयामिषलोभिनः।
सीदंति नरशार्दूलाः, बद्धाः बान्धवबन्धनैः॥ 183॥

अन्वयार्थ-अस्मिन् गृहाचार कुवासे = इस गृहस्थ के खोटे वास में रहते हुए, **विषयामिषलोभिनः** = पाँच इन्द्रियों के विषयरूपी माँस के लोभी, **नरशार्दूलाः** = नरसिंह होने पर भी, **बान्धवबन्धनैः** = बन्धुजनों और परिवार के स्नेह द्वारा, **बद्धाः** = बँधे हुए, **सीदंति** = दुःख उठाते रहते हैं।

भावार्थ-मनुष्यगण इस गृहस्थ के कुवास में रहते हुए पाँच इन्द्रियों के विषयरूपी माँस के लोभी नरसिंह होने पर भी बन्धुजनों और परिवार के स्नेह द्वारा बँधे हुए दुःख उठाते रहते हैं।

'गर्भावस्था के दुःख'

गर्भवासेऽपि यद्दुःखं, प्राप्तमत्रैव जन्मनि।
अधुना विस्मृतं केन, येनात्मानं न बुध्यसे॥184॥

अन्वयार्थ-अत्रैव जन्मनि = इस ही जन्म में, **गर्भवासे अपि** = गर्भ के भीतर रहते हुए भी, **यत् दुःखं प्राप्तं** = जो दुःख तूने उठाए हैं, **अधुना केन विस्मृतं** = अब तू क्यों उनको भूल गया है, **येन** = जिससे, **आत्मानं न बुध्यसे** = तू अपने आत्मा को नहीं पहचानता?

भावार्थ-अहो भव्य! तूने गर्भवास में अनेकानेक दुःखों को सहन किया है, अब उन्हें भूल गये हो, इसलिये अपनी आत्मा की प्रतीति नहीं कर रहे हो।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में हेय-उपादेय दृष्टि को लक्ष्य करते हुये जीव की स्वभाव और विभाव उभयधारा की व्याख्या कर रहे हैं। स्वभाव दृष्टि से तो परमात्मा है, अशरीरी चिद्रूप है, भगवान् है। अहो आश्चर्य! इस सहजस्वरूप के बारे में अनन्त बार इस जीव ने सुना, तब भी मोह की धारा से निज की रक्षा नहीं कर सका। **अजगर के मुख से छूटकर भाग जाना सरल है, अग्नि की लपटों से बच जाना सरल है, सागर की सुनामी लहरों से सुरक्षित हो जाना भी सरल है, लेकिन भीतर के मोह से अपनी रक्षा कर पाना अत्यन्त कठिन है। संसार में यहाँ तक कोई लेकर आया है तो अजगर का मुख लेकर नहीं, अग्नि की लपटें लेकर नहीं आयी हैं। जो भीतर इच्छाओं की लपटें झुलसा रही हैं, वही सारे जगत् को झुलसा रही हैं।** समझो, भैया! अग्नि झुलसा रही है। बारिस हो रही है तो तू रक्षा कर लेगा स्वयं की, लेकिन मित्रो! कामना की ज्वाला, वासना की बूँदों से तू बच गया होता तो कुछ बात थी। इनमें ही सारा विश्व भीग रहा है और जल रहा है। कुछ नहीं है संसार में। इच्छाओं की पूर्ति के राग में नगर-नगर में, डगर-डगर में, देश-विदेश में भ्रमण कर लेता है, किसके पीछे? इच्छाओं के पीछे इतना भी विचार नहीं कर पाता कि मैं घर सुरक्षित पहुचूँगा कि नहीं पहुँचूँगा। जिस भवन को बनाया है, सत्य बताना, उस भवन में कितने घण्टे रह पाता है? **शीत की बाधा, बारिस की बूँद, ग्रीष्म की तपन को भी सहन कर ऐसा भवन तैयार किया था, फिर भी उस भवन में कितने घण्टे रह पाते हो? देह को भवन में कितनी देर रख पाते हो और तेरे भवन को अपने भीतर तू कितनी देर रखता है? वन में हो, तीर्थ में हो, गगन में, अवनितल पर हो, पर भीतर**

का भवन बराबर रहता है। तेरे भीतर भवन बराबर निवास कर रहा है।

भैया! चक्रवर्ती को सारे देश पर दिग्विजय करने में साठ हजार वर्ष लग जाते हैं। इतने वर्ष तक दिग्विजय को निकलता है चक्रवर्ती। साठ हजार वर्ष जीवन में कितना मायने रखते हैं। जब उसने नगर में प्रवेश किया, तब चक्ररत्न ने प्रवेश नहीं किया। यानि अभी भी कोई शत्रु है। सेनापति! चक्ररत्न क्यों नहीं प्रवेश कर रहा है? तब वह कहता है—स्वामी! बाहर के आपके सारे शत्रु वश हो चुके हैं, लेकिन घर का शत्रु वश में नहीं हुआ। बोले, कौन है? 'आपका अनुज बाहुबली।' जाओ, बाहुबली से कह दो कि प्रथम तीर्थंकर का प्रथम पुत्र और आपका ज्येष्ठ भ्राता दिग्विजय करके आया है। आप उनकी अधीनता स्वीकार करो, नमस्कार करो। मैं प्रथम चक्रवर्ती हूँ। हे भूमि! हे धरती! तुझे धिक्कार हो! महाराज! धरती को क्यों धिक्कार रहे हो? उस पर तो तीर्थंकर भी विचरण किये हैं। धरती को नहीं, धरती के राग को धिक्कार हो। पृथ्वी को क्यों दोष देते हो? उसने तो किसी से नहीं कहा कि मुझे स्वीकारो? रागियों ने ही धरती को स्वीकार कर रखा है। पर बाहुबली ने सेनापति को बोल दिया 'जाओ, मेरी प्रतिज्ञा है कि जीवन में भाई के नाते तो झुक सकता हूँ, पर चक्रवर्ती के नाते नहीं झुकूँगा।' यह सूचना शेष 99 भाइयों को और मिली, कि भैया का चक्ररत्न नगर में प्रवेश नहीं कर रहा है। बाहुबलि स्वामी के साथ उन 99 भाइयों को भी समाचार थे कि आपको चक्रवर्ती की आगवानी करना है। यह चक्ररत्न का नियोग है कि चक्रवर्ती की आधीनता को स्वीकार न-करनेवाला एक भी व्यक्ति नहीं रहना चाहिये। जब तक कोई अवशेष बचता है, तब तक चक्ररत्न अन्दर प्रवेश नहीं करता है।

भैया! वह क्षण कैसा होगा जब 99 घर एक क्षण में सूने हुये होंगे। वृषभसेन आदि आपस में चर्चा करते हैं कि अपनी तो प्रतिज्ञायें हैं कि देव-शास्त्र-गुरु के अलावा किसी को सिर नहीं झुकायेंगे। यह जीवन का बहुत बड़ा व्रत होता है। यह मस्तिष्क जब भी झुकेगा, वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु को ही झुकेगा। चक्रवर्ती

अपने चक्ररत्न के मद में उन्मत्त है। लेकिन जिसने तीर्थंकर ऋषभदेव को नमस्कार किया हो, अब वह मस्तक किसी दूसरे के चरणों में नहीं झुका सकता है। ऐसा वे 99 भाई चिन्तन कर रहे हैं। तो भैया! चक्रवर्ती के नियोग की पूर्ति कब होगी? बोले 'उनके नियोग की पूर्ति जब होगी तब होगी, लेकिन अपना नियोग है। प्रातः सूर्य की किरण फूटते ही हमारे चरण आचरण की ओर चले जायेंगे। हम भवन से वन की ओर जायेंगे। एकसाथ 99 भाई तीर्थंकर के समवसरण में पहुँच गये। भगवान् आदिनाथ स्वामी की चरण-निश्रा में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। भरत को मालूम चला कि मेरे 99 भइया दीक्षित हो गये हैं, तब वह कहता है कि धिक्कार हो मुझे। इस भूमि और राज्य के चक्र से क्या प्रयोजन? मैं वापस लौटकर भाइयों से भी नहीं मिल सका और पिताश्री दीक्षित हो ही चुके थे। भइया! मैं भरत की बात नहीं कर रहा हूँ, अपने हृदय से पूछो।

मित्रो! बेटे का वियोग हो जाये तो तुम बेटे के तो जन्म दे सकते हो, पर भइया का वियोग होने पर तुम भइया को जन्म नहीं दे सकते हो। इसलिये भाई को भाई मानना तो स्वीकार लो। धन को देखोगे तो धर्म नहीं दिखेगा। भैया जो हमें धन मिला है, वह पूर्व का पुण्य और वर्तमान का पुरुषार्थ एकसाथ चल रहा है। लेकिन पुरुषार्थी तो जगत् में बहुत सारे जीव हैं, पर पूर्व का योग यदि साथ न दे, तो पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता है। पर इतना ध्यान रखना, पानी चाहे आपके भवन पर गिरा हो चाहे आँगन में गिरा हो, पर जब वह बहकर जाता है तब वह एकसाथ ही जाता है। छत पर गिरा हो चाहे आँगन में गिरा हो, सब नाली में बहता है। नाली में गिरा भी नाली में बहता है और वह पानी समधार होकर ही चलता है।

अहो प्राणियो! आप छत मत देखना, बहते हुये पानी को देखना कि पानी की धार एकसाथ चलती है। ऐसे ही अपने पुण्य के भवनों को मत देखना, आप तो जीवों के अन्दर जो वीतराग धर्म है, उस धर्म को देखना। चाहे हम छोटे पिता के सुत हों, चाहे बड़े पिता के सुत हों। मतलब गरीब के हों, चाहे धनपति के

हों, लेकिन बेटो! इतना ध्यान रखना कि जब मन्दिर में पहुँचो तो अपने पिताओं को भूल जाना। मात्र परमपिता परमात्मा को देखना। तुम अपने पिता को देखकर आओगे तो तुमको भगवान् नहीं दिखेंगे। यहाँ मन्दिर में भी तू ऊँचा स्थान माँगेगा, क्योंकि मैं धनपति का बेटा हूँ। नहीं, उस समय आप एवंभूतनय से आना। समझ में आ रहा है? एवंभूतनय कहता है कि अगर आप कपड़े धो रहे हो तो धोबी हो। जिस समय जो कार्य कर रहे हो, उस समय वह व्यक्ति वही है। मैं तो भगवान् की पूजा करनेवाला पुजारी हूँ। ऐसा विचार करना। मैं अध्यक्ष नहीं, मैं मन्त्री नहीं, मैं समाज का सेवक भी नहीं। मैं अरहन्त का पुजारी मात्र हूँ। जिस क्षण का जो कार्य है, तत्क्षण की अनुभूति लेकर करोगे तो ज्ञानी! आनन्द आयेगा।

भैया! इस जीव को देखो, इसने बड़े-बड़े नाटक किये हैं। जिस समय जीव नाटक में सम्राट की भेषभूषा को धारण किये हो, ड्रेस पहनते ही सम्राट का पाठ कर रहा हो, लेकिन सम्राट के तद्रूप भाव-भंगिमा नहीं आयेगी। वैसा पाठ करने पर भी तद्रूप भावभंगिमा नहीं आयेगी तो तू अपने पाठ में सफल नहीं हो सकेगा। उस समय राजा का पाठ करनेवाला स्वयं को राजा समझता है। बड़े ध्यान से सुनना, विषय को अपने अन्दर ले जाना है। राजा का पाठ करनेवाला अपने आपको राजा समझता है। यहाँ तक कि विधान में चक्रवर्ती बननेवाला स्वयं को चक्रवर्ती समझता है। सौधर्म इन्द्र आदि बननेवाले की चाल सामान्य इन्द्रों की अपेक्षा बदल जाती है। उसका भाव बदल जाता है। स्वयं को यदि सौधर्म इन्द्र नहीं स्वीकारेगा, तो उसे आनन्द ही नहीं आ सकेगा। सची इन्द्राणी को देखो। सची का पाठ करनेवाली इन्द्राणी भी जब जिनबालक को हाथ में लेती है, तो अति गद्गद् भाव से निहारती है।

हे देवी! जब पंचकल्याणक में सची का पाठ करनेवाली इन्द्राणी के ऐसे भाव होते हैं, तो साक्षात् सौधर्म इन्द्र की सची जिनबालक को लिये होगी उस समय उसके परिणाम और भक्ति का क्या प्रभाव होगा? वही भक्ति उसके लिये एकभवावतारी बना देती है। विद्यार्थी खुद को यदि विद्यार्थी न स्वीकारे, अपने

को व्यापारी बूढ़ा मानने लग जावे, तो पढ़ने में उसका मन नहीं लगेगा। मैं विद्यार्थी हूँ, अध्ययन कर रहा हूँ। जितने निर्ग्रन्थ तपोधन इस ढाईद्वीप की भूमि पर विचरण कर रहे हैं, यह सारे-के-सारे पूर्व के कितने महान् पुण्यात्मा जीव होंगे। इन सारे जीवों को सोचना चाहिये, कि मैं अपना सारा-का-सारा जीवन विद्यार्थी के रूप में व्यतीत कर दूँ। तब तक विद्यार्थी बनकर रहूँगा जब तक कैवल्य को प्राप्त कर भगवान् न बन जाऊँ। तब तक श्रुत का अभ्यास करना। श्रमणों का योगियों का धर्म ही यही है कि तबतक वह ज्ञान का अध्ययन करते हैं। अन्य क्रियायें एक-दो बार, लेकिन स्वाध्याय को आगम में चार बार बताया है। आदेश है, करना ही होगा, अनिवार्य है। जब जगत् के लोग सो रहे हों, तब वीतराग निर्ग्रन्थ तपोधन जगकर स्वाध्याय कर रहे हैं। दिगम्बर मुनि तो चौबीसों घण्टे जागता है। उसको सोने के लिये आदेश ही नहीं है। घबराना नहीं। **जहाँ सारा जगत् सोता है, वहाँ श्रमण जागते हैं। स्वानुभूति की अनुभूति में सारा जगत् सोया है। सारा लोक सोया है, वहाँ वीतरागी तपोधन जागते हैं।** 24 घण्टे नहीं सोते। तात्पर्य समझना। सोना ही नहीं चाहिये। यदि सो गये, तो मुनिपना नष्ट हो गया। निर्ग्रन्थ योगी प्रतिक्षण जाग्रत रहते हैं, सजग रहते हैं। थकान होने पर विश्रांति तो लेते हैं, पर जैसे तुम नींद लेते हो, वह वैसे नहीं सोते हैं। वे श्रम को दूर करने के लिये विश्रांति लेते हैं। नींद में होने पर भी सावधान हैं। करवट भी बदलना है तो पहले पिच्छी से मार्जन करते हैं। निर्ग्रन्थ योगी विश्राम लेने पर भी अन्दर से जाग्रत रहते हैं।

ज्ञानियो! क्षण-क्षण में अपने आप में सजग रहना। सेना का सैनिक एक बार प्रमाद में आ भी जाये, पर दिगम्बर मुनि जीवन में कभी प्रमाद में नहीं आते। **देश की रक्षा के लिये खड़ा हुआ सैनिक एकदम सजग है कि कहीं शत्रु-दल आकर मेरे देश की सीमा पर आक्रमण न कर दे। ऐसे ही वीतरागी दिगम्बर तपोधन प्रतिक्षण अपने आत्मप्रदशों की सीमा पर खड़े रहते हैं कि कर्मशत्रु प्रवेश न कर जाये। मुनिराज गुप्तिओं की गुप्ति लिये हैं। समितियों की सेना**

साथ में लिये हैं और दस धर्मों के बाण हाथ में हैं। वे वीतरागी तपोधन अपनी सीमा में खड़े हुये हैं कि कहीं शत्रु प्रवेश न कर जाये। तभी तो श्रद्धा से शीश झुक जाता है कि आपने विश्रांति का भी विकल्प नहीं किया है। दुनियाँ सोती है, तब आप जाग्रत रहते हो।

श्रावको! कभी जीवन में मुनि बनने के भाव आयें तो आज के विषय का ध्यान रखना। मैं पिच्छि-कमण्डलु का वजन न ढोता रहूँ। मैं दिगम्बर मुद्रा के राग में न सोता रहूँ। पिच्छि-कमण्डलु भी मुझे वजनदार लगने लग जाये, तब मेरा चिन्तन दौड़ेगा। हे प्रभु! वो दिन कब आये जब में इन सब से भिन्न होकर अशरीरी सिद्ध बन जाऊँ। पिच्छि-कमण्डलु का विकल्प भी तेरे सिद्धत्व को रोक देगा, फिर अनन्त रागियों का राग सिद्धालय में कैसे भेज सकेगा? नहीं भेज सकेगा। गम्भीर मत होओ। **जो है, सो है।** भैया! आप चेहरा बना भी लोगे, तब भी कुछ नहीं होगा। चेहरेवान् से मिलना पड़ेगा। उससे कहना कि सजग हो जाओ।

चक्रवर्ती भरतेश! क्या विडंबना है। क्या चिन्तन कर रहा था? कि मेरे कारण मेरे 99 भइयों ने दीक्षा ले ली। जब इतना सोच ही लिया था, तब भी बाहुबली से युद्ध करने को खड़े हो गये। बाहुबली स्वामी ने समाचार दे दिया था—अब नमस्कार तो समरभूमि में ही होगा, रणांगन में ही होगा। पर धन्य हो सेनापतियों को। मन्त्री हों, सेनापति हों, तो ऐसे हों जैसे भरतेश और बाहुबलि स्वामी के थे। उन्होंने मन्त्रणा की कि ये तो चरमशरीरी लोग हैं। इनका तो कुछ बिगड़ने वाला नहीं है, परन्तु व्यर्थ में सेना नष्ट हो जायेगी यह था विवेक, यह थी करुणा, यह थी समय-सूचकता, दूरदर्शिता। इतना ज्ञान होना अनिवार्य है। समयसूचकता, दूरदर्शिता और विवेक होना बहुत अनिवार्य है एक मन्त्री के लिये। जिनमें यह गुण नहीं, वह कभी भी अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता है। **निर्णय लेने की सामर्थ्य सबसे बड़ी शक्ति है। हजारों-हजारों लोग काम करते हैं, पर काम वही लोग करते हैं जो निर्णय लेना नहीं जानते हैं। मजदूरी वही करते**

हैं, जिनमें निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं होती है। जो निर्णय लेने में सक्षम होता है, वह काम करता नहीं, करवाता है। मजदूर कितने होते हैं? अधिकारी कितने होते हैं? और वेतन किसको अधिक मिलता है? अधिकारी को मिलता है। बस, चाहे आप देश में लगाओ, राष्ट्र में लगाओ, समाज में लगाओ, अपने घर में लगाओ। धर्म की दृष्टि से देखो तो चाहे तुम आचार्य बनकर लगाओ, चाहे तुम श्रमण बनकर लगाओ। वह निर्णय की शक्ति तो होना चाहिये। जो मानसिक तनाव से बुद्धि को उन्मत्त करते हैं, वह वे ही लोग होते हैं जिनमें निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं होती है। कहीं विफल हो गया तो, कभी ऐसा हो गया तो? और विश्वास रखना, यह सारा ज्ञान पढ़ने से नहीं आता है। भैया! पढ़ने से तो जानकारी मिलती है। ज्ञान तो पूर्व के पुण्य से ही मिलता है। आप चाहो कि मैं पढ़कर श्रुतकेवली भगवान् बन जाऊँ, तो कभी सम्भव नहीं है। ज्ञानियो! इतना श्रुत है, इतना श्रुत है कि इतनी तेरी आयु नहीं है कि तू पूरा पढ़ पायेगा।

ज्ञानियो! ग्रन्थों का आलम्बन अल्प लिया जाता है और क्षयोपशम स्वयं प्रकट हो जाता है। आप सभी को आश्चर्य लग रहा है क्या? पण्डित जी! आप जितना पढ़े थे, उससे कई गुना तुम जान चुके हो। भैया! जब तू कॉलेज में पढ़ता था तब कुछ नहीं जानता था, पर जब से तू घर में कामकाज सँभालने लगा है, समाज में रहने लगा है, तबसे तू बहुत कुछ जानने लगा है। ऐसे ही साधकों को चाहिये कि वे ज्ञान के तनाव में बैठकर अपने परिणामों को कलुषित न करें। साधना में लीन हो जायें और देश में विहार करें। विहार करते-करते निज में विहार करेगा तू तो कैवल्य में विहार करेगा। तू कहाँ श्रुतज्ञान की बात कर रहा है? अपने आप ज्ञान की वृद्धि होती है, विशुद्धि चाहिये। भैया! जिन-जिन को ज्ञानी बनना है, अपनी डायरी पर लिख लेना और अपने घर में भी कह देना कि बेटा! तू 24 घण्टे पुस्तक लिये घूमेगा तो कुछ नहीं होगा। थोड़ा मस्तिष्क को भी ठण्डा किया करो। मस्तिष्क को थोड़ा विश्राम दो। विश्राम भी तो मिलना चाहिये। बस, **विशुद्धि जागेगी तो ज्ञान बढ़ेगा। जिनको किंचित् भी शंका हो, वे आज**

प्रेक्टीकल करके देख लेना। निर्मल परिणामों से अरहन्त की आराधना करना, पूजन करना, गुरुओं के पास बैठना, जिनवाणी सुनना। विश्वास रखना, जैसे-जैसे तुम्हारी विशुद्धि बढ़ेगी, वैसे-वैसे तुम्हारा ज्ञान बढ़ेगा। मैं तो यहाँ बैठे-बैठे बोल रहा हूँ। आप सबके हृदयांगन में क्या हो रहा है, यह तो आपको ही मालूम है। कितने प्रकार के निर्णय इस सभा में कितने लोगों के अन्दर चल रहे हैं। कुछ लोग सोच रहे हैं कि मैं अपने आप को खाली रखूँगा। कुछ लोग सोच रहे हैं कि मैं झगड़ा नहीं करूँगा। कुछ सोच रहे होंगे कि भइया से कहूँगा कि भइया! तुझे जो चाहिये सो ले ले, लेकिन हमें लड़ना नहीं है।

ज्ञानियो! यह सब परिणमन भीतर चल रहा है। धन्य हो उन मन्त्रियों को। मन्त्रणा कर दोनों पक्षों के सेनापतियों ने कहा कि हे स्वामी! जय-पराजय आप दोनों की होना है। क्यों न ऐसा हो जाये कि केवल आप दोनों ही युद्ध करो? अपने बल को ही तो देखना है। आप चक्रयुद्ध बन्द करो। यह नहीं चलेगा। आप अपना ही युद्ध करो।

जल युद्ध, मल्ल युद्ध, दृष्टि युद्ध। जब दृष्टि युद्ध हुआ, तो भरतेश 500 धनुष की अवगाहना और बाहुबली 525 धनुष की अवगाहना। जैसे ही दृष्टि युद्ध हुआ, भरतेश की आँखें झुक गयी और शंखनाद हो गया, विजय श्री बाहुबली स्वामी को मिल गयी। कुछ भी कहो, भले ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे, पर मन में रोष तो था। मित्रो! श्री का राग अच्छा नहीं है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव कैसे विकल्प ला रहा था। मेरा यह सोच है कि भैया! करोड़ों-करोड़ों नष्ट हो रहे हों, खुशी-खुशी से छोड़ देना, पर सामनेवाले से हाथ जोड़ कर कहना कि भैया! तू अब बता कि तुझे क्या चाहिये? लेकिन मेरे भीतर की शान्ति भंग मत कर। भैया! मैं मनुष्य जो बना हूँ, दुनियाँ के लोग जैसे मरने के लिये मनुष्य बन गये, वैसा मैं मरने के लिये मनुष्य नहीं बना हूँ। आज इतनी बात सीख कर जाना और अपने-अपने घरों में भी यह कह देना, भैया! जन्म लेकर, जन्म देकर, खा-पीकर मर गये, ऐसे तो बहुत लोग होकर चले गये। यह जीवन में सीखकर जाना कि

हरी घास खड़ी हो, दो बैलों के बीच में डाल दो, तब भी कमजोर बैल को शक्तिशाली बैल सींग मारता है। उसकी भी घास छीनना चाहता है।

मित्रो! यदि तुम धर्मात्मा हो और तुम्हारे मन में भाव आ रहा है कि मैं इसकी धन छीनूँ तो लगता है कि क्या है? बैल-जैसा ही तो रूप है। भैया किसी का भवन हो तो यह कभी जीवन में विचार मत लाना कि छोटे के पास कितना, बड़े के पास कितना, दादा या चाचा के पास कितना? कुछ नहीं है। हमें तो यह निर्णय करना है कि अपने देखते-देखते कितने जा चुके हैं। सब भवन खाली पड़े रह जायेंगे।

एक सज्जन सुबह एक बंगला दिखा रहे थे कि महाराज! देखो। मैंने कहा, 'ऐसी क्या विशेषता है?' बोले, विशेषता कुछ नहीं है। यह जितने बंगले बने हैं, सब जैनियों के हैं। मैंने कहा, 'आप अलग से क्यों बता रहे हो?' बोला—'महाराज जी! कभी इस बंगले के स्वामी ने बंगला बनवाया था, वह अब खाली पड़ा है। बोला, मैं भी चला जाऊँगा।' बोले, 'एक बेटे को जन्म दिया था। उसे पढ़ने विदेश भेज दिया। ऐसा पढ़ने गया कि वह विदेश से लौटा नहीं, वहीं घर बसा लिया। जवानी में बना लिया, अब हो गये बूढ़े, अब पूरे बंगले में करेंगे क्या? भूत और साथ में रहने लग गये। मैंने पूछा, फिर? बोले, जो सामूहिक फ्लेट बन रहे हैं, उनमें जाकर रहने लग गये, यह सारे बंगले सूने पड़े हुये हैं। इस बात के लिये कि अब इसको देखने कौन आयेगा? बस, मेरा आप सभी से यही कहना है कि इतना सब विदेशी कीमती द्रव्य पर मत चले जाओ कि एक बेटे को जन्म दिया, वह विदेश भेज दिया। इस भारतभूमि पर इतने तीर्थ बने हुये हैं, इनकी रक्षा के लिये बेटे कहाँ से आयेंगे? इसलिये अपने गाँव में रखो बच्चों को। साथ में रखो।

अब तो लगता है कि जैनियों ने ठेका ले लिया है देश की जनसंख्या को कम करने का। या तो ब्रह्मचर्य के साथ रहो और यदि असंयम का सेवन कर ही रहे हो तो अच्छे धर्मात्मा जीवों को जन्म दो। **न धर्मो धार्मिकैर्बिना।** धर्मात्मा नहीं होंगे तो धर्म कैसे चलेगा?

आचार्य महावीरकीर्ति महाराज को कटनी के चातुर्मास में 105 डिग्री बुखार चढ़ा था। उस समय भगवान् पार्श्वनाथ जिनालय की वेदी के सामने वे तपोधन सामायिक कर रहे थे। इतने बुखार वाले व्यक्ति को सोना चाहिये कि सामायिक करनी चाहिये? यदि आज का जीव होता तो कहता कि मेरे लिये विमान की तैयारी कर लो, पता नहीं बचा कि नहीं? पर धन्य हो उन योगी को। 105 डिग्री बुखार होने पर भी कायोत्सर्ग मुद्रा में सामायिक कर रहे हों। उसी बीच में काला नाग वेदी से निकला, उसने आकर महाराज की अंगुलि को पकड़ लिया। सत्य बताना, आप होते तो कैसा लगता? एक क्षण को देखो।

वे श्रमण क्या कह रहे हैं? हे जीव! यदि बैर है, तो देर क्यों? बैर नहीं है, तो अन्तराय क्यों? इतना बोलकर महाराज पुनः लीन हो गये। कालिया नाग ने अंगुली को छोड़ दिया। महाराज तो लीन थे ही। कोई जीव परीक्षा के लिये आया होगा। पर सत्य है, जब ऐसे श्रमणों की साधना की बात करते हैं तो अपने अन्तरंग में यह विचार आता है कि मेरे जीवन की साधना कैसी हो। भैया! सबकुछ लुटा देना, पर इतना जरूर बोलना कि मेरे मित्र! तुम संक्लेशता मत करो। घर में आग लग गयी तो नगरपालिका की गाड़ियाँ दौड़ पड़ेंगी। नगर के लोग भी आ जायेंगे अग्नि बुझाने के लिये। लेकिन भावों में आग लग गयी तो कोई भी काम नहीं आयेगा। निज के भावों की अग्नि को दूसरा बुझा नहीं सकता। भैया! क्या हो गया? चिन्ता कर रहे हो, कि चिन्तन में पड़ गये हो, कि शोक में डूब गये हो?

हे वर्द्धमान! जब मैं अपने मुख से आपकी बात को कहता हूँ, तो इतना आनन्द आता है। जब समवसरण में आप बैठते होंगे, गणधर-परमेष्ठी विराजते होंगे, वे भव्य मुनिगण और भव्य श्रोता कितने पुण्यात्मा जीव होते होंगे जो साक्षात् आपके श्रीमुख से आपकी देशना सुना करते होंगे। अपन तो वही आनन्द लूटते रहते हैं। यथार्थ मानो। एक भैया शाम को बोल रहे थे कि महाराज! जैसे आपके सामने तीन घण्टे परिणाम होते हैं, ऐसे कहीं 24 घण्टे हो जायें तो मेरा मोक्ष नियत है। हे ज्ञानी! सत्यता यही है। जैसे तू तीन घण्टे आनन्द लूटता है, ऐसे मैं भी प्रवचन

में तीन घण्टे आनन्द लूटता हूँ। कहीं अशुभ कुल में जन्म ले लिया होता, किसी पापी के घर में जन्म ले लिया होता, किसी मिथ्यात्व में दीक्षित हो गया होता, तो कुशास्त्रों की व्याख्या करना पड़ती और कहीं यदि नहीं भी दीक्षित हुआ होता, तो किसी की चाकरी में पूरा जीवन निकल जाता। अब अपना अहोभाग्य इस बात का है कि जिनकुल में जन्म लेकर जिनलिंग को प्राप्त करके अरहन्त की वाणी कहने का मन करता है। भैया! मुख से अरहन्त की देशना खिरे, इससे बड़ा जगत् में क्या पुण्य होगा?

हे प्रभु! आपकी वाणी की भक्ति का वह प्रभाव हो कि मुख का बोलना बन्द हो जाये और सर्वांग से बोलना प्रारम्भ हो जाये। विदेह में विराजे सीमन्धर स्वामी की यहीं से वंदना कर लो। हे नाथ! जब हमारे कुन्दकुन्द की वन्दना आपके पास पहुँच सकती है, तो मेरी वन्दना भी आपके पास पहुँच सकती है। **सारे जगत् की लीलायें जब समाप्त हो जातीं है, तब जिनवाणी का आनन्द प्रारम्भ होता है।**

मेरे मित्र! हम सभी का नियम से पूर्व भव का कोई सम्बन्ध रहा है। इसमें किंचित् भी शंका नहीं है। सीमंधर स्वामी या केवली भगवान् यहाँ होते तो हम सब पूछ लेते। वे जरूर कहते कि तुम सभी के पूर्व भव में यही सम्बन्ध रहे हो, सो अभी भी सब एकसाथ बैठकर जिनवाणी सुन रहे हैं। मंच पर देखो, कौन कहाँ का जन्मा है? भैया! कोई किसी के बुलाने से नहीं आता है। जिस जीव का जहाँ नियोग है, वह जीव वहाँ पहुँचता है।

अहोभाग्य यह मानो कि तुम तो जिनवाणी सुन भी लेते हो। उन जीवों के बारे में चिन्तन तो करो, कितना अंधकारमय होगा उनका जीवन, जो सुबह से काम में लगे और शाम तक काम-ही-काम में लगे रहे। जीवन ऐसे ही पूरा निकल जायेगा। वह भी लोग अभागे होंगे जो सुबह से छुरी उठाकर जीवों का घात करते होंगे।

मेरे मित्रो! आज से अपने आप को भाग्यहीन मत मानना। कभी मत सोचना।

भैया! तेरे से बड़ा भाग्यवान् कौन होगा? सुबह से जो मन्दिर जी जाता हो, उससे बड़ा भाग्यवान् कौन होगा? उनसे बड़ा अभागा कौन होगा जो सुबह से ही पैसे लेकर मदिरालय को चला जाता है। उन लोगों से पूछो जो माँस की दुकान पर खड़े मिलते हैं। उनसे अभागा जगत् में कौन होगा? चाहे गरीब बैठा हो या अमीर बैठा हो, एवंभूतनय से देखो, अमीरी-गरीबी भी परद्रव्य-सापेक्ष है। भगवान् की भक्ति एकत्वभूत है। धर्म जहाँ भी होता है, विशुद्धि के लिये होता है। जहाँ भी विशुद्धि का ह्रास हो, वहाँ क्रिया तो हो जायेगी, पर धर्म नहीं होगा।

यहाँ भगवान् कुलभद्र स्वामी 183 वीं गाथा में गृहवास को सिंह की गुफा की उपमा दे रहे हैं। यहाँ विषय हो रहा है। इसलिये ऐसा कहा कि यह विशुद्धि के प्राण हरणकर लेंगे, यह सिंह है। जो घर में बैठे हैं, वे सिंह हैं। तू जितनी विशुद्धि के प्राण सुरक्षित करेगा, वे सारे प्राणों को हरण कर लेंगे। हे मित्र! जैसे शेर की आवाज सुनकर तू भाग जाता है, ऐसे ही ज्ञानियो! तुम इन रागियों की बातें सुनकर भाग जाया करो। कब भागोगे? यह सिंह है, सिंह। भैया मैं नहीं कह रहा हूँ। जो लिखा है, वही कह रहा हूँ। **जो है, सो है।**

हे मुमुक्षुओ! यह गृहवास कुवास है। में मानता हूँ कि गृहस्थ हो, नहीं छोड़ पा रहे हो; पर मैं इतनी अनुभूति की बात आपसे पूछना चाह रहा हूँ, कि जब आप मंदिर में होते हो, तो कुछ अलग वेदन नहीं होता है क्या? जब आप तीर्थवन्दना में चले जाते हो, उस समय जो आनन्द आता है, यथार्थ मे वह तीर्थवन्दना का आनन्द है क्या? यथार्थ यह है कि घर की यादों से दूर होकर व्यक्ति चिंतामुक्त हो जाता है। जब-जब मन में विकल्प आये, तो तुम सिद्धभूमि की वन्दना को निकल जाया करो। कुछ नहीं है। ऐसे तीर्थ में जाओ जो भौतिकता से सुरक्षित हो। व्यवस्थायें जहाँ हों, वहाँ मनोरंजनस्थान बन जाता है। तीर्थों को पर्यटनस्थल नहीं, तीर्थस्थल ही बना रहने दो। पर्यटनकेन्द्र बनाने से देखने का तरीका बदल जायेगा। धर्मस्थान है दर्शन के लिये, पर्यटनस्थल निहारने-देखने जाया जाता है। यह तीर्थभूमि दर्शनीय नहीं, वन्दनीय स्थान है।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि गृहवास कुवास है जहाँ पाँच इन्द्रियों के लोभी जीव रहते हैं। वहाँ विषय-कषाय हैं। बन्धुजनों के स्नेह में बँधकर दु:ख उठा रहे हैं। जैसे कि विराट **शक्तिवान सिंह भी शिकारियों द्वारा पकड़ा जाता है। ऐसे ही हे मित्रो! तुम भी इतने शक्तिमान हो, फिर भी इन रागियों ने मकड़ी के जाल में तुमको बाँध रखा है। हे नरसिंहो! बताओ तुम सब मुनिराज होते, आर्यिका होते, तुम्हें किसने रोक कर रखा है? गृहवास की गुफा में तुझे इन रागियों ने फँसा लिया है। शिकारियों की भाँति ये तेरे अन्दर के परिणामों को खोखला कर देंगे। जब कुछ नहीं बचेगा, तब श्मसान में जलाकर आ जायेंगे।**

इतना सब होने के बाद भी जो तूने गर्भ के वास में दु:ख को प्राप्त किया है, सबसे बड़ी बात है। जीव भूल जल्दी जाता है। यदि नरक के दु:ख तुम्हें याद आ जायें, तो सब पाप छूट जायें। यदि आपको अपने गर्भ की भी याद आ जाये, तो सँभलकर रहो। सब भूल गया जिससे अपनी आत्मा को नहीं जान पा रहा है, नहीं पहचान पा रहा है। ज्ञानी! चिन्तन करना। इन सब जनों से दूर रहने का पुरुषार्थ करना।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"भव-भ्रमण"

चतुरशीतिलक्षेषु, योनीनां भ्रमता त्वया।
प्राप्तानि दुःखशल्यानि, नानाकाराणि मोहिना॥ 185॥

अन्वयार्थ-त्वया = तूने, **योनीनां चतुरशीतिलक्षेषु** = चौरासी लाख योनियों में, **भ्रमता** = भ्रमण करते हुए, **मोहिना** = मोही होने के कारण, **नानाकाराणि दुःखशल्यानि** = नाना प्रकार के दुःखरूपी काँटों को, **प्राप्तानि** = पाया है।

भावार्थ-हे आत्मन्! मोहवश चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए तूने अनेक प्रकार के दुःखरूपी काँटों को सहन किया है।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में जीव के गर्भस्थ दशा की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि अहो मुमुक्षु! ये भूलने की जो आदत है, वह कितनी विराट है। सुबह की वेदना शाम को भूल गये। घर में क्लेश था तब सोच रहा था कि अब तो घर में रहना ही नहीं मुझे, और शाम को जैसे ही बेटे ने पैर छू लिये, बस, मेरे बेटे जैसा बेटा तो किसी का नहीं। विसंवाद भी हो गया, पीड़ित भी हुआ, फिर भी सुबह का क्लेश शाम को भूल जाता है। जीव पुनः यह मान लेता है कि जो कुछ है, सो मेरे ही घर में है। जब इष्ट का वियोग होता है, अनिष्ट का संयोग होता है, उस समय सोचता है कि जगत्

में कुछ भी सुख नजर नहीं आता है। जैसे ही चन्द पलों के बाद सामान्य वातावरण हुआ, ज्ञानी! फिर तू उसी में उलझ जाता है। पिता की मृत्यु के बाद बेटे को लगता है कि अब तो संसार में कोई बचा ही नहीं है। मैं किसके सहारे जीऊँगा? कौन मेरा होगा? जैसे ही तीसरा दिन होता है, दुकान दिखना प्रारम्भ हो जाती है। मकान दिखना प्रारम्भ हो गया और दो चार दिन ही भूखा सो पाया, पुनः पकवान खाने में मस्त हो गया। पिता था कि नहीं था पता ही नहीं चला।

मोह तभी तक रहता है, जब तक मोह के लिये आलम्बन मिलता है। ध्यान से समझना। **क्रोध, काम, लोभ तभी तक विद्यमान होता है जब तक उसकी पुष्टि के साधन मिलते हैं। अब तू यूँ चाहे कि मैं मोह को छोड़ दूँ, मैं काम क्रोध को छोड़ दूँ, ज्ञानी! तीनकाल में सम्भव नहीं है। तू साधनों को तो छोड़ना नहीं चाहता है और मोह को दूर करना चाहता है। अग्नि को बुझाने की भावना है, तो अग्नि को बुझाने का प्रयास शुरू कर दो। लेकिन ईंधन को डालना भी बन्द करना पड़ेगा। जब तक ईंधन रहेगा, तब तक अग्नि तो झुलसेगी-ही-झुलसेगी। ऐसे ही जीव चाहे कि मेरा मोह समाप्त हो जाये, लेकिन मोह के साधनों से दूर नहीं होना चाहता है, तो मोह कभी भी समाप्त नहीं होगा।**

ज्ञानियो! जिसके प्रति राग है, उस रागी से अपने आप को दूर करने का प्रयास तो करो। लेकिन आप दूर होना नहीं चाहते हो, दूर करना नहीं चाहते हो। आपको लगता है कि वह मेरे पास नहीं होगा तो मेरी मृत्यु हो जायेगी, यदि वह मेरे बिना होगा तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। विश्वास रखो, इतना सरल मरना नहीं है कि तुरन्त मृत्यु हो जाये। पर राग यह कहता है कि मैं नहीं रहूँगा तो मृत्यु हो जायेगी।

मुमुक्षुओ! इस ब्रह्माण्ड में कितने बड़े-बड़े रागी होकर चले गये। उनके मरने के बाद परिवार जीता रहा, कि नहीं जीता रहा? यदि परिवार या सन्तान न जीते होते तो आज विश्व का नाश हो जाता। प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्। प्रत्यक्ष को प्रमाण

की क्या आवश्यकता है? एक क्षण को लगता है कि अब क्या होगा घर का? बेटा! जिस दिन पिता जी गये थे, उस दिन तेरा चेहरा कैसा था? 'अब तो कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होता। अब तो मेरा कोई नहीं बचा?' हाँ, ऐसा ही लग रहा था। जैसे ही कषायों ने तुझे पीड़ित किया और कषायों की इच्छा की पूर्ति किसी से हो गयी, तो पिताजी को तू भूल गया। जिसने जन्म दिया था? उसे तू भूल गया और जिसको जन्म दिया था, बस, उसी का नाम याद आने लगा।

मेरे मित्र! जब तू अपने जन्म देनेवालों को अपने जन्में की याद में भूल सकता है, तो तूने भी जिसे जन्म दिया है वह भी अपने जन्में के राग में तुझे भुला देगा। यह सत्य है कि नहीं? भैया! संसार चलता है, चलता रहेगा। जिस दिन सत्य समझ में आजाये, उस दिन असत्य से अपनी दृष्टि को हटा लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आपने ऐसा क्यों किया? हाँ, अज्ञानता में तुमने ऐसा कर लिया है, पर आज तो ज्ञान हो गया है। जब ज्ञान हो गया है, तो सत्य की खोज में चल देना चाहिये। यह आनन्द भी तो एक दिन लूट कर देखो। **जगत् में रहकर भी जगत् से भिन्न होकर कैसे रहा जाता है? यह वही जान सकता है जिसको भोजन की, भवन की चिन्ता न हो।**

भइया! समझो उन वीतरागी श्रमणों को जिनका आज का आहार जिस नगर में हुआ है, कल का आहार उस नगर में नहीं है। विहार चल रहा है। मालूम चल रहा है। दूसरे दिन 25-50 कि.मी. चलने पर आहार मिलेगा कि नहीं? मालूम ही नहीं था कि कल भोजन मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ध्रुव सत्य है, जो निज में मग्न होता है, उसका सारे जगत् में चमन होता है। जो निज में मग्न नहीं है, वह कभी भी सुखमय जीवन जी ही नहीं सकता है। निज में मग्न होना सीखो। **माँगने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो निज में मग्न होता है, उसके लिये देने वाले मिल जाते हैं। जो निज में मग्न नहीं होता है, उसे दर-दर माँगना पड़ता है।** निज में मग्न हो जाओ। एक दिन उस आनन्द को लेकर देखो। अपने लिये ही व्यवस्था बनाने से निज को भिन्न करके देखो। फिर देखो आनन्द को।

बहुत कम जीव हैं, जो निश्चिंत जीवन जी सकेंगे। संबंधों से मुक्त रहने वाले जीव बहुत कम हैं। **बन्धनों से मुक्त होकर, बन्ध से मुक्त होने के लिये जो बैठा है, वही निश्चिंत जी सकता है। जो बन्धुओं के बन्धन से मुक्त होकरके कर्म के बन्धन से मुक्त होना चाहता है, वही निश्चिंत हो सकेगा। कुछ करने का भाव है, तो अभी भव का अभाव नहीं है।** ज्ञानियो! जिसके भव का अभाव दूर है, उसे बहुत कुछ करना होगा। जिसके भव का अभाव नजदीक है। वह हाथ पर हाथ रखकर बैठ जायेगा। कुछ नहीं करने का अभ्यास करो।

मित्र मेरे! जब मन्दिर आते ही हो तो इतनी-सी बात समझ कर घर जाना। यथार्थ में मन्दिर हम कुछ करने के लिये नहीं जाते हैं। करने के स्थान तो बहुत हैं। हमारे जिनालय में जो जिनबिम्ब विराजमान है, देखा, वह अस्त्र-शस्त्र से दूर, किसी भी मुद्रा में नहीं दिखते हैं। दिगम्बर जैन परम्परा में अरहन्त की प्रतिमा आशीर्वाद रूप में स्थापित नहीं की जाती है। न कहीं वरदान देते मिलेगी? न श्राप देते मिलेगी। आप मन्दिर नहीं आ रहे हो तो भी हमारे भगवान् को आपसे कोई प्रयोजन नहीं है। आप मन्दिर आओ तो भी प्रयोजन नहीं है।

श्री जी जहाँ विराजमान हैं, वहाँ अर्हंत मात्र की प्रतिमा होनी चाहिये और-कोई सामग्री नहीं रखना। कलेण्डर तस्वीर फोटो कुछ नहीं। एकमात्र विशाल वीतराग प्रतिमा। श्री जिनालय में कभी भी यद्वा-तद्वा सामग्री मत रखना। यहाँ तक कि भगवान् की प्रतिमा के मार्जन के वस्त्र भी उस वेदी में नहीं टाँगना। अलग कक्ष में रखो। कारण पूछना, बात गहरी चल रही है। जब यह गर्भ में आते हैं, तब वहाँ भी कचरा नहीं होता है, वहाँ भी देवांगनायें गर्भ का शोधन कर देती हैं। तीर्थंकर जिनबालक के ऊपर मल का पिण्ड न पड़ जाये, ऐसा कवच बनाकर रखती हैं। जिनेन्द्र की वेदी के सामने मैं इसलिये आया था कि विश्व में ऐसा कोई प्रदेश नजर नहीं आ रहा था जहाँ करना न हो। आप बाजार जाओ, वहाँ मनुष्य मशीन-जैसा लगा हुआ है। तांगे में घोड़े की जगह मनुष्य जुता हुआ है।

आज से मन्दिर की विधि को बदलना। अभी तक आप अकर्त्ता के पास भी कर्तृत्व लाये थे। अजन्मे के पास भी जन्म माँगने पहुँच गये। ज्ञानी! जन्म, जरा, मृत्यु का नाश करनेवाले के पास भी तुम जन्म, मृत्यु को माँगने पहुँच गये। जगत् में शायद ही ऐसा कोई मन्दिर हो जहाँ परमात्मा आशीर्वाद भी न देता हो, नहीं-तो कहीं अस्त्र-शस्त्र, अथवा आँख फोड़े दिख जायेंगे कि सर्वशक्तिमान मैं ही हूँ। यदि तू अपनी शक्ति को दिखा रहा है, इसका रहस्य को समझिये। यदि भीतर भय न हो तो दूसरों को भयभीत क्यों करता? जैनत्व की विद्या के रहस्यों को समझिये। भीतर भय न हो तो बाहर भयभीत करने के लिये मुट्ठी बन्द क्यों?

यदि आप बन्दर को देखकर शक्ति प्रकट कर रहे हो, तो इसका मतलब है कि आप डर रहे हो। डरे हो तभी तुमने अपनी शक्ति को प्रकट किया है। भीतर भय नहीं, तो शक्ति का प्रकटीकरण क्यों? अस्त्र वही लेकर बैठेगा, शस्त्र वही लेकर बैठेगा, जिसके भीतर भय बैठा हो। जो निर्भय है, उससे बड़ा क्या अलौकिक दर्शन होगा? जिसको ठण्डी से डर न हो, गर्मी से भय न हो, पानी व अस्त्र-शस्त्र से भय न हो, वह दिगम्बर रूप में बैठा हुआ है। भय ही भयभीत हो जाये, इसका नाम जैन मुनि है। जिसको मरने की चिन्ता नहीं, वह जगत् से डरेगा क्यों? जिसको मरने की चिन्ता है, वह निर्भय होगा कब? मन्दिर हम जो जा रहे हैं, जो रागी बुजुर्गों ने यूँ कहके मन्दिर भेजा हो कि जाओ! बेटा सुख-सम्पत्ति मिलेगी। अरे भाई! उसमें शंका किस बात की है? यह कहने की आवश्यकता क्या थी?

सारे लोक में जितने प्रतिबिम्ब हैं, वे सभी कुछ करते दिखाई देंगे। पर जिनबिम्ब की तस्वीर भी देखो, प्रतिमा भी देखो, कुछ नहीं करते दिखाई देंगे। हाथ पर हाथ रखे हैं। एक-एक श्री जी की प्रतिमा को देखो। कितने शांत हैं? **जैसा चित्र सामने होता है, वैसा चित्त प्रभावित होता है। तुम करनेवालों की तस्वीर देखने जाओगे तो करने के भाव आयेंगे। विश्व में सबसे बड़ी कोई साधना है तो कुछ नहीं-करना सबसे बड़ी साधना है। जिनालय में मन्त्रजाप भी कर रहे हो, पाठ भी कर रहे हो, यह सब स्थूल क्रिया है। यह सब**

करने-करने का भाव है। यदि आप ने एक घण्टे तक जिनालय में पूजा की है। जिनालय में, मित्रो! कम-से-कम पाँच मिनिट और मन्दिर में देना। जो हाथ पर हाथ रखकर बैठे हैं, उन प्रभु को निहारना कि हे स्वामी! अभी तक मैंने दर्शन भिन्न प्रकार से किये थे। अब मैं चौबीस घण्टे में एक बार आया हूँ। मात्र इसलिये आया हूँ कि यह जान सकूँ कि नहीं करनेवाले का चेहरा कैसा है और करनेवालों का चेहरा कैसा है? जो करनेवाले चेहरे हैं, बोलनेवाले चेहरे हैं, उनके चेहरे पर अनेक प्रकार के हाव-भाव प्रकट होंगे और कुछ-नहीं करनेवाले का अंतरंग बहिरंग एकत्वभूत दिखाई देगा। आपको विश्वास न हो तो, देखो वीतराग अरिहंत जिन प्रतिमा जी को। कुछ नहीं है। करते-करते भटकता रहा हूँ। **नहीं करने का निर्णय जब हो गया, तब चित्त का भटकना बन्द हो गया। चित्त का भटकना बन्द हुआ, साथ ही चारित्र की भटकन भी समाप्त हो गयी। चारित्र और चित्त की भटकन के समाप्त होते ही चैतन्य आत्मा में एक हो गया है।** आप प्रवचन हाल में बैठे हो, पर सोच रहे हो कि कौन-सा विषय सुन रहे हो। यह कोई सामान्य चर्चा नहीं सुन रहे हो। चाहे श्रावकधर्म धारण करना हो, सबका उद्देश्य कुछ-नहीं करना है। इसलिये अब आज से जब भगवान् की वन्दना करने आओ तो भैया! भगवान् की उस मुद्रा को निहारना कि आप कुछ नहीं करते हुये भी कुछ अलग क्यों दिख रहे हो? करनेवालों के साथ लोग झगड़ते मिलते हैं। कुछ नहीं करने वालों को शीश नवाते हैं। करनेवालों के प्रति हीनाधिक भाव आते हैं। विश्वास रखना व्यक्ति धार्मिक कार्य भी करता है तब भी हर्ष-विषाद होता है।

भैया! यदि तू सिद्धचक्र विधान भी करा लेता है, तब भी तेरे मन में आ सकता है कि मेरे जैसा विधान तो इस सदी में किसी ने नहीं कराया। यदि तेरे मन में निर्ग्रन्थ के आहार का शुभ भाव (प्रशस्त भाव) भी आया। किसी दूर से आनेवाले को देखकर निकट रहनेवाले के मन में भी आ सकता है कि मैं भी आहार देने जाऊँगा। उसके मन में यह नया भाव आया तो इन दोनों के मध्य में एक द्वंद प्रारम्भ हो गया कि करनेवालों को तो अनन्त बार खिलाया, पर

न-करनेवालों के हाथ पर एक ग्रास रखने की अपार सन्तुष्टि हो रही थी। असीम आनन्द की अविरल धारा हृदय में चल रही थी। खानेवाला कोई होता है और आनन्द मुझे आता है। यह सब क्या रहस्य है। यदि इस विद्या को उद्घाटित नहीं कर सके जीवन में, तो जैनदर्शन की बहुत बड़ी विद्या को यूँ ही छोड़ कर चले जाओगे। मध्य की पीढ़ी देखती रही और निर्ग्रन्थ आचार्य लिख कर चले गये इस रहस्य को। यदि यह रहस्य उद्घाटित नहीं कर सके, तो दान देते-देते जो आनन्द आना चाहिये था, उस आनंद को प्राप्त नहीं कर पायेगा। रिश्तेदारों को भोजन कराया, गरीबों को भोजन कराया, लेकिन साधु के हाथ पर ग्रास रखने में जो सम्वेदना होती है, जो वेदन होता है, वह कुछ हटकर ही होता है। क्यों?

यह सत्य है कि रागी जैसा रागी है, तो रागी को भी आनन्द नहीं आता है। पापी से पापी को भी पाप को देखकर आनन्द नहीं आता है। भले स्वयं पाप करता हो, फिर भी पापीजीव को भी पाप पसन्द नहीं होता है, भले ही दो मिनिट को ही आता है।

ज्ञानियो! देखो, अस्सी वर्ष के वृद्ध बीस, पचीस, अट्ठाइस वर्ष के युवाओं के चरण छू रहे हैं। यह क्या लीला है? यह कहाँ के थके हैं? दो वृद्ध दादा वैयावृत्ति में आते हैं। आवश्यकता तो इनकी सेवा की है, पर ये सेवा करने आये हैं। तब समझ में आता है कि वे सेवा करने नहीं, इस बात की अनुभूति करने आये हैं कि पाप को झुकना ही पड़ता है। पाप में ताकत कितनी-सी है? इसलिये आप जब योगी के हाथ पर ग्रास रख रहे थे, तब गद्गद् भाव व आनन्द आ रहा था। मित्र! **महाराज जी के हाथ पर ग्रास रखने पर आनन्द आता है। खाने पर मात्र मजा ही आ सकता है, पर खिलाने पर जो आनन्द आता है, वह कहा नहीं जा सकता है। रागियों को खिलाने पर मजा लूटता है, पर वैरागियों को खिलाने पर मजा नहीं, आनन्द आता है। जिसमें रागधारा है, उसमें मजा है। जिसमें वैराग्यधारा है, उसमें आनन्द है।**

जो कुछ नहीं करने निकले हैं, उनके हाथ पर ग्रास रखने में इतना आनन्द आता है। ज्ञानियो! हमारे परमात्मा निकम्मा हैं, जो कृतकृत्य हो चुके हैं। आपसे कह दो तो कैसा गाली-जैसा लगेगा? पर वे तो कृतकृत्य (निकम्मा) ही हैं। ऐसे निकम्मा को मेरा बरम्बार नमस्कार है। ऐसा भगवान् जयवन्त हो। अरे मुमुक्षु! 148 कर्म-प्रकृतियों में पुण्यप्रकृतियाँ ही तो भाग्य है। जिन सिद्ध परमात्मा ने पुण्य-पाप दोनों प्रकृतियों का क्षय कर दिया है, ऐसे अभागे भगवान् जयवन्त हों।

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहिं संजुत्ता॥ द्रव्य संग्रह॥

जो निष्कर्म हो चुके हैं, कर्म निकलने के बाद आठ गुणों को प्राप्त कर चुके हैं, चरमदेह से किंचित् न्यून हैं, वे सिद्ध परमेश्वर हैं। लोक के अग्रभाग पर जो स्थिर हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त हैं, वे सिद्ध परमेश्वर जयवन्त हों।

जिनके कर्म निकल चुके हैं, वे निष्कर्म हो चुके हैं। मन्दिर की विधि में परिवर्तन की मैं क्यों कह रहा था? विधान किये, तो विकल्प आये, कि मैं इससे भी बड़ा करूँगा। भैया! जब तुम जिनालय पहुँचो, जिनमन्दिर में जिनदेव को निहारो, अब हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना, कोई जीव यह नहीं कहेगा कि इतनी देर क्यों?

क्योंकि द्रव्य चढ़ाते, पूजन करते तो लोगों के मन में भाव आते हैं कि इसने इतनी द्रव्य चढ़ा दी। सामायिक करोगे और किसी द्रव्य को छू नहीं रहा है, न आपसे मुझे लेना, न देना। हाथ पर हाथ रखे बैठा है। जो हाथ पर हाथ रखे हैं, उनको निहार रहा है। उसमें किसी द्रव्य का खर्च नहीं हो रहा है, कोई बाजा नहीं बज रहा है।

मित्रो! बताओ, जो व्यक्ति हाथ पर हाथ रखे बैठा है, वह व्यक्ति धर्म कर रहा है, कि नहीं कर रहा है? यथार्थ में हाथ पर हाथ धरे पुरुष यदि धर्म में लीन हो गया, तो तुम्हारी कोटि-कोटि विधान का पुण्य एक तरफ और उसकी

सामायिक का पुण्य एक तरफ होगा। वही ऊँचा होगा। श्रावको! जब-जब तुम्हारे व्रतों की व्याख्या होती है, साथ में सामायिक व्रत की भी व्याख्या होती है। **जो सामायिक करते हों वही प्रवचन करें। जो जीवन में मन्त्र की एक माला फेरने न बैठा हो, वह तो यही कहेगा कि ऐसा काम कर लो वैसा काम कर लो। वह तुम्हें आत्मशान्ति का वेदन तो होने ही नहीं देगा।** प्रत्येक प्रवचनकार को इस बात की विशेष व्याख्या करनी चाहिये।

विश्व में सबसे आनन्दमयी जीवन किसका है? जो द्रव्यप्राणों से भी शून्य हो चुके हैं, तब भी जी रहे हैं चैतन्य प्राणों से। सादि अनन्तकाल तक जियेंगे। ज्ञानी! जिस जीव ने देह को भी छोड़ दिया है, असमान जाति पर्यायों को पूर्ण भिन्न कर लिया है, ऐसा परमेश्वर परम आनन्द में लीन है। यदि वह परमेश्वर आपको दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है, तो सच्चे भावलिंगी मुनि को सामायिक में देख लेना, एक सच्चे भावलिंगी मुनि की चर्या को देख लेना। प्रसन्न मुख दिख रहा है। गद्गद् भाव से युक्त है। स्वामी! आपके पास ग्रह परिग्रह, सुख के साधन कुछ भी तो नहीं हैं। इन्द्रियों के 28 विषयों में से एक भी विषय नहीं है। सच्चे वीतरागी मुनि की व्याख्या समझना। स्वामी! फिर भी आप मुझे प्रमुदित क्यों दिखते हैं।

हे श्रावको! अब आपको अनुमान लगा लेना चाहिये कि इस व्यक्ति के पास धागा भी तो है नहीं, तब भी आनन्दमय जीवन जी रहा है। इसका मतलब कुछ-और है। जिसमें मैं आनन्द खोज रहा हूँ, उसमें मजा-ही-मजा है, आनन्द बिल्कुल भी नहीं है। भैया! विश्वास रखना, चंचलता को तो अनन्त बार देखा है। भगवान् को देखते समय इतना विचार लाना कि स्वामी! मैं आपके पास इतनी बार जो आया हूँ, नहीं-करनेवाले व्यक्तित्व को निहारने आया हूँ कि वो कैसा होता है? वैसे ही देखो कि कोई मेहनत कर रहा होता तो उसका चेहरा लाल होगा कि नहीं, पसीना टपक रहा होगा कि नहीं? हाँ, यह अनुभव की बात है। मेहनत करेगा तो सिर झुकेगा। (गड्ढा कर रहा है।) जो पापों के गड्ढे खोद रहे हैं,

उनके सिर झुकते ही हैं, चेहरे लाल होते ही हैं, उनकी गति भी खोटी होती ही है। जो कुछ नहीं कर रहे हैं, उनको देखो। जो स्वच्छ कक्ष में बैठा हो, उसका चेहरा अलग देखना और जो मेहनत कर रहा हो, उसका चेहरा देखना। तन से मेहनत करनेवालों का चेहरा अलग दिखता है और मस्तिष्क से मेहनत करने वालों का चेहरा दिखता है। जिनके तन, वचन, काय सबने करना छोड़ दिया है, उनका चेहरा देखो। वही वीतरागी मुद्रा है। आनन्द आ रहा है। आप तो आनन्दवान की चर्चा सुनके आनन्द ले रहे हो। जो तुमको रोज करने में आता है, उसकी तस्वीर क्या लगाना? उसकी तस्वीर लगाओ जिसको अभी तक नहीं जाना। मात्र वीतरागी भगवान् की ही फोटो-तस्वीर लगाना। भद्र तस्वीरों को लगाओ, जिनको देखकर हृदय गद्गद् हो जाये। करनेवालों को क्या देखना। मुझे तो कृतकृत्य को देखना है। अब भगवान् को दो मिनिट नहीं, पाँच मिनिट देखना और कहना, स्वामी! करते-करते, पंचपरावर्तन करते-करते इस पंचमकाल तक आ पहुँचा हूँ। अभी तक कुछ पता नहीं कि कब तक भटकूँगा। पर आपको देखता हूँ तो लगता है कि आपकी प्रतिमा ही जब इतनी सहज है, तो आप असल में कैसे होंगे?

बस, मुनिराजों से मेरा यही कहना है। जब किसी के पिता ऊपर चले जाते हैं और बेटा सुशील दिखता है, तो एक वृद्ध कहता है कि बेटा! तेरे पिता की छवि तुझ में दिखती है। ध्यान दो, किसी का बेटा ऊपर चला जाये तो दादी अपने पोते को देखकर ही जीवित रह लेती है। बोलो, माताओ! ऐसा नहीं है क्या? तेरे ही पति नहीं हों तो अपने पति की छवि बेटे में देख लेती है। ऐसे ही **हे मुनिराजो! अब हमारे तीर्थंकर परमेश्वर निर्वाण को प्राप्त हो गये हैं। इन श्रावकों को जब तीर्थंकर अर्हंतदेव न दिखें, तो वो कैसे जानें कि वे कैसे थे? तुम्हारी चर्या इतनी प्रशस्त हो कि बस, ऐसे ही तीर्थंकर भगवान् होते हैं।** कभी-कभी जब मैं आहार को निकलता हूँ, तब सोचता हूँ कि हे विशुद्धसागर! तू अहंकार में मत डूब जाना। तू यह देख कि महावीर कैसे जा

रहे होंगे। भैया! ऐसा चिन्तन आते ही ऐसा गद्‌गद्‌ भाव आता है कि देख, जिन गलियों में तू घूम रहा है इस मुद्रा में, यह तेरी मुद्रा नहीं है, तीर्थंकर महावीर की मुद्रा है। इन गलियों में महावीर घूमे होंगे, आज तुम महावीर की मुद्रा में जा रहे हो। अपना अहोभाग्य मानो। इसको मत लजाना। भाव इधर-उधर हों तो तुरन्त स्वयं को स्थापित करो। प्रतिक्रमण करो, प्रायश्चित्त करो। निज में निज को स्थापित करो। एक क्षण के परिणाम हर्ष-विषाद रूप होते हैं कि नहीं? अभी-अभी मैं इस सभा में देख चुका हूँ। कितने लोग मुस्कुराकर गम्भीर हो चुके थे। फिर ताली बजाकर फिर गम्भीर हो गये। परिवर्तन होता है कि नहीं?

एक श्वास प्रमाणकाल भी किसी को ऐसा झलक गया कि यही मुद्रा सत्य है तो समझ लो कि आप उनके सम्यक्त्व के कारण बन गये। यह सोचकर प्रवचन मत करना कि लोग हमसे प्रभावित हो रहे हैं कि नहीं? कभी नहीं करना। तुम यह सोच कर करना कि मैं अपने प्रवचनों से प्रभावित हो रहा हूँ कि नहीं हो रहा हूँ? क्योंकि तू जितना जानकार है, उतना सुननेवाले जानकार नहीं हैं। आम तो आम में पकता है कि आपके मुख में पकता है?

देखो, मैं इस ज्ञानी का नाम ले रहा हूँ। लेकिन आम तो आम में ही तो पकता है। पर देखना चेहरा किसका मुस्कुराता है? डाल का पका आम दिख जाये, फिर उसकी सुगंध देखो। भइया! चेहरा मुस्कुराता है कि नहीं? पका कौन है? आम तो आम में ही पकता है, पर चेहरा देखनेवाले का मुस्कुराता है। ऐसे ही साधक साधना में ही लीन होता है, पर देखनेवाले श्रावक भी मुस्कुराते हैं। ऐसा उपदेश होना चाहिये कि सुननेवाले अपने आप ही मुस्कुरायें।

माँ! आपके प्रतिदिन की अनुभव की बात बताऊँ। भइया! तेरे बेटे की माँ तेरे खाने के लिये रोटी बनाये और विश्वास रखना, अच्छी फूल जाय, उसे नहीं खाना है, उसे खिलाना तुझे है, पर उसका चेहरा फूल जाता है। खाना दूसरे को है, परन्तु दूसरे को परोसनेवाली रोटी के फूलने पर उसको भी मुस्कुराहट आ रही

है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! यदि साधक निर्मल साधना करता है तो श्रावक के भी चेहरे मुस्कुराने लगते हैं।

यहाँ आचार्यभगवान् क्या कह रहे हैं कि गर्भवास में रहते-रहते ज्ञानी ने कोटि-कोटि पीड़ा को सहन किया है। भगवान् से भइया! यही प्रार्थना करना कि मैं स्वर्ग की कामना नहीं कर रहा हूँ, मोक्ष की कामना नहीं कर रहा हूँ, पर मैं इतना चाहता हूँ कि मेरे जन्म में किसी माँ को दु:खी न होना पड़े। मेरे गर्भ की पीड़ा किसी माँ को न झेलना पड़े। हे भगवान्! वह दिन कब आये जब मेरे गर्भवास का निवास समाप्त हो जाये।

देखो, अच्छे काम करो। एक माँ बिलख रही हो, तुझे गर्भ में रखकर वजन को ढो रही है। तुझे दया भी नहीं आ रही है? कितनी पीड़ा उसे सताती है। ऐसी कामना करो, स्वामी! मुझे किसी माँ के गर्भ में न आना पड़े। किसी माँ के चर्ममयी आँचल को मुख में न दबाना पड़े। हे स्वामी! ऐसा दिन कब आये। आज से ही करना पड़ेगा, तभी सम्भव है।

विषय तो विराट है। आप विश्वास रखो, आगम इतना अगाध है कि मेरी अनन्त पर्याय भी पूर्ण हो जायेंगी, लेकिन आगम की चर्चा पूर्ण नहीं होगी।

चतुरशीतिलक्षेषु, योनीनां भ्रमता त्वया।
प्राप्तानि दु:खशल्यानि, नानाकाराणि मोहिना॥ 185॥

गर्भ आदि का दु:ख उठाते इस जीव ने चौरासी लाख योनियों में भ्रमण किया है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद इन सब की सात-सात लाख योनियाँ हैं। वनस्पतिकाय की दस लाख। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय की दो लाख। चार इन्द्रिय दो लाख। देव की चार लाख। पंचेन्द्रिय तिर्यंच चार लाख। नारकी चार लाख और मनुष्य की चौदह लाख योनियाँ हैं। इन सबको मिलाकर 84 लाख योनियों में इस जीव ने भ्रमण किया है। अनेक प्रकार के माया, मिथ्या, निदान शल्य रूप दु:खों को प्राप्त किया है। नानारूप

दु:खों के द्वारा दु:खी हुआ है यह जीव, तब भी बेचारा भूल जाता है कि मैंने दु:ख प्राप्त किया था।

मित्रो! आज कम-से-कम इतना चिन्तन कर लेना कि मैंने संसार में आज तक प्राप्त किया क्या है? करने में आनन्द नहीं है। नहीं-करने में ही परमानन्द है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

वैराग्य क्यों नहीं आता?

कथं नोद्विजसे मूढ! दुःखात् संसृतिसंभवात्।
येन स्वं विषयासक्तो लोभेनास्मिन् वशीकृतः॥ 186॥

अन्वयार्थ-मूढ = हे मूर्ख प्राणी! **संसृतिसंभवात् दुःखात्** = संसार के भीतर होने वाले दुःखों से, **कथं न उद्विजसे** = तुझे वैराग्य क्यों नहीं आता? **येन** = जिससे, **त्वं** = तू, **अस्मिन्** = इस संसार में, **विषयासक्तः** = विषयों के भीतर फँसा हुआ, **लोभेन वशीकृतः** = लोभ द्वारा जीत लिया गया है।

भावार्थ-हे मूढ आत्मन्! तू सांसारिक दुःखों से उद्विग्न क्यों नहीं होता है जिससे इस संसार में विषयासक्त हुआ तू लोभ कषाय के वशीभूत हुआ है?

'सामर्थ्य प्रकट करो'

यत्त्वयोपार्जितं कर्म, भवकोटिषु पुष्कलं।
तच्छेत्तुं चेन्न शक्तोऽसि, गतं ते जन्म निष्फलम्॥ 187॥

अन्वयार्थ-त्वया = तूने, **भवकोटिषु** = करोड़ों भवों में, **यत्** = जो, **पुष्कलं** = बहुत, **कर्म उपार्जितं** = कर्म बाँधे हैं, **तत् छेत्तुं** = उनके नाश करने के लिए, **चेत् न शक्तः असि** = यदि तू सामर्थ्य न प्रकट करेगा, **ते जन्म निष्फलं गतं** = तो तेरा जन्म निष्फल ही बीत गया ऐसा समझा जायेगा।

भावार्थ-हे आत्मन्! करोड़ों भवों में उपार्जित किए हुए कर्मों का नाश करने के लिए यदि तू सामर्थ्य प्रकट नहीं करेगा, तो तेरा मानव-जन्म निष्फल हो जायेगा।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर

जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में संसार के रागी जीव की राग दशा की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

अहो आश्चर्य! नाना क्लेशों को प्राप्त होता हुआ, नाना वेदनाओं को सहन करता हुआ, गृहवास में निवास करते हुये, किंचित् मात्र भी शान्ति की श्वास नहीं ले पा रहा है। तब भी जीव इस गृह के वास का त्याग क्यों नहीं कर पा रहा है? अन्तस् से पृच्छना करो, स्वयं से प्रश्न करो। जब से समझ आयी है, तब से शान्ति कितनी प्राप्त की है? सुख की बात नहीं कर रहा हूँ। सुख और शान्ति में अन्तर है। आपने सुख की खोज में शान्ति को खो दिया है।

मित्रो! सुख कब मिलेगा, यह भविष्य के गड्ढे में है, लेकिन वर्तमान की शान्ति तेरे हाथ में है। जो पर में सुख की कल्पना किये बैठे हुये हो, उस सुख की कल्पना को विराम दे दो तो अभी तेरे पास शान्ति है। शान्ति पर लक्ष्यपात करो। सुख जो है, वह इन्द्रियजन्य है, वह पराधीन है। भौतिक द्रव्यों का जो सुख है वह पराधीन है। शान्ति जो है, वह स्वाधीन है। जिसमें शान्ति नहीं, वह सुख कैसा है?

युवाओ! जिस दिन तुमने सोच लिया था कि आज मुझे ऐसा काम करना है और अमुक सामग्री मुझे चाहिये, उसी दिन से तुमने अशांति को जन्म दे दिया। जिद्द के राग में, वासनाओं की पूर्ति में व्यक्ति आत्मघात कर लेता है। समझ में आ रहा है? जीऊँगा तो ऐसा ही जीऊँगा, अन्यथा जीऊँगा ही नहीं। जो तेरा हुआ नहीं, जो तेरा था नहीं, जो तेरा होगा नहीं, ऐसे जगत् के द्रव्यों को संग्रह करने में तू सुख का अनुभव कर रहा था। ऐसे द्रव्यों को निहारने में तू सुख मान रहा था। पर शान्ति उसी दिन नष्ट हो चुकी थी जब से तेरे मन में संग्रह का भाव आया था।

लोक में क्लेश नहीं है। कष्ट भी नहीं है। लोक में उतनी वेदना नहीं है, जितनी तेरे सोच में वेदना है। लोक की वेदना कष्ट नहीं देती है, तेरी सोच की वेदना कष्ट देती है। डायरियों पर लिख लेना। जब तेरा पिता भी तुझे चिंता में देखे, तेरी चिंता में माथे पर हाथ रखकर बैठे, कहना—पिताजी! सुनो, आपको कष्ट मेरे कारण नहीं, कष्ट मेरी माँ के कारण नहीं, भाई के कारण भी नहीं। आपका दु:ख बस आपकी सोच के कारण है। सोच बदल दो, तो दु:ख शान्त होता है।

मित्रो! साधु कहीं आकाश से टपक कर नहीं आते हैं। जो सोच बदल देते हैं, साधु बन जाते हैं। या डाकू बन जाते हैं। साधु या डाकू सब सोच के कारण बनते हैं। परमात्मा भी बनेगा तो सोच के बदलने से ही बनेगा।

ज्ञानियो! बेटे की माँ भी बहन हो जाती है जिस दिन तेरे अन्तस् में वैराग्य का सागर हिलोरें लेने लगता है। जिसे तू पत्नि की दृष्टि से देखता था, तेरा मन कहता है कि धिक्कार हो मुझे। कितने बार विषयों का सेवन किया, एक भगवान् आत्मा को मैंने पत्नि के नाम से देखा है। नहीं, नहीं, आज से मैं अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करता हूँ। आज से मेरी पत्नि नहीं, भगिनी कहलायेगी। ज्ञानी! सोच बदल दी तो पत्नि बहन बन गयी। आज भी ऐसे श्रावक हैं जो घर में पति-पत्नि बनकर रह रहे हैं, पर सम्बन्ध भाई-बहन का चल रहा है। धन्य है उनके पवित्र परिणामों को। जब पति-पत्नि दोनों एकसाथ बाजार में कपड़े खरीद रहे हैं, वे परिग्रह की ओर जा रहे हैं। एक वे जीव हैं जो हाथ में श्रीफल लिये कोई सप्तम प्रतिमा, कोई तृतीय प्रतिमा का निवेदन कर रहा है, तब लगता है कि पंचमकाल में धर्म नहीं होगा तो साढ़े अठारह हजार वर्ष यह जिनशासन भारतभूमि में कैसे चलेगा? इसलिये कोई इस शोक में डूब मत जाना कि यह जिनशासन आगे कैसे चलेगा? नमोस्तु शासन ऐसे ही जयवन्त रहेगा।

शोक को ठीक करना है तो सोच को ठीक करना होगा। किसी के समझाने पर किसी के शोक शान्त नहीं होते। इष्ट का वियोग हो जाये तो जो मन

में शोक हो रहा है, चाहे कोई भी समझाए, लेकिन विश्वास रखना किसी के समझाने पर किसी को समझ में आता ही नहीं। जब स्वयं का सोच शौच होता है, तब व्यक्ति का शोक समाप्त हो जाता है। किसी को समझाने की चेष्ठा मत करो, उसका सोच बदलने की चेष्ठा करो। चिन्तन की धारा पवित्र हो जाये तो चारित्र पवित्र हो जाता है।

ईर्ष्या, डाह, क्लेश, अशान्ति यह कहीं वास करते हैं तो तुम्हारी सोच मात्र में करते हैं। ईर्ष्या किसके घर में रहती है? आपके भवन में ऐसा कोई कक्ष है जहाँ ईर्ष्या रहती हो? क्यों मेरे मित्रो! खून पसीना एक करके तुम पैसा कमाकर लाते हो। वो भी तुम बाहर कमरे में रख देते हो। लेकिन यह ईर्ष्या तेरी कितनी कीमती है जिसको तू बाहर भी निकाल कर नहीं रखता, भीतर रखे रहता है। धन्य हो, ईर्ष्या कितनी कीमती है, अनर्घवान है, जिसको तू बाहर निकालना ही नहीं चाहता है? भीतर रखे हुये है। कीमती द्रव्य को भी बाहर निकाल कर रखता है। माचिस तो दूसरे को जला रही है, पर तेरी ईर्ष्या लगता है कि दूसरे को जला रही है वह तेरी अग्नि है, तुझे ही झुलसाती है। संसार में जितने दु:खी हैं, दु:खी होंगे और दु:खी हो रहे हैं, ज्ञानी! दु:ख नाम की कोई वस्तु नहीं है। ईर्ष्या जो तेरे भीतर जल रही है, वही तुझे दु:खी कर रही है। कुछ बदलने की आवश्यकता नहीं है, मात्र सोच बदल दो। यही शान्ति है। कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं। आप सुख-शान्ति चाहते हो तो सोच बदल दो। अभी तुम्हारे मन में बगल के व्यक्ति की जेब के पैसे निकालने की बात आ जाये, विश्वास रखना, तू अभी टेंशन में आ जायेगा। जिसकी जेब में हैं, वह शोक में या कष्ट में नहीं है। पर जो निकालने की इच्छा रख रहा है, वह कष्ट में आ गया है कि इनकी दृष्टि कब फिरे, कहाँ जायेगा, कहाँ बैठेगा, तब में निकाल सकूँ। कष्ट में कौन आ गया?

विश्वास रखना, जितनी पीड़ा पाण्डवों को नहीं थी, उससे कई गुनी पीड़ा कौरवों को थी। इतना ध्यान रखना कि परसम्पत्ति को छीनने में जितना विश्वास

रखते हो, उतना परमात्मा के चरणों में विश्वास रखो तो पर की सम्पत्ति छीनने की आवश्यकता ही न पड़े। तेरा पुण्य बढ़ेगा तो तेरे घर में अपने आप सम्पत्ति को बढ़ना होगा। तो फिर छीनने का राग क्या करूँ? बेचारे अनादिकाल से तिर्यंच आदि पर्यायों से आये हैं। और-तो-और प्रत्यक्ष दिखता है कि पिताजी की कमाई माँ के द्वारा परोसी जा रही है, तब तक तुम बेटा! एक-जैसे दिखते हो। जिस दिन दूसरे की जन्मी बेटी तेरे घर में आयेगी, फिर तुम दोनों भाई एक-से बनकर दिखाना।

ओ हो हो! देखो, चेहरे कैसे हो रहे हैं? ज्ञानी! जिस भाई के साथ तूने एक थाली में बैठकर भोजन किया हो और यह आग कैसे लगने लग गयी, याद करो उस क्षण को। कि माँ जब एक थाली में भोजन परोसती थी, हम दोनों शान्ति से भोजन करके आ जाते थे। तब तो हो सकता है कि इतनी सुन्दर थाली भी न हो। आज तो तेरे घर में सोने, चाँदी की थालियाँ भी आ जायें। मिट्टी का बर्तन शान्ति से भोजन करा देता था। आज सोने की थाली में आग लग रही है। यह क्या हो गया? हुआ तो क्या हुआ? समझ में आ रहा है? हे धन! हे सम्पत्ति! तेरे से बड़ा जगत् में कष्ट देनेवाला कोई द्रव्य नहीं है। जो मेरे भाई में मेरा आत्मीय भाव था, वह भी तूने छीन लिया। मेरे भइया! ध्यान से सुनना। घर में जो पैसा रखा है, उसे आँखों से देखना और उससे कहना कि हे धन! जब गरीबी के दिन थे तो दोनों भाई एकसाथ बातें तो कर लेते थे कि भइया! गरीबी कैसे दूर होगी? जिस दिन से पैसा आया है, हम दोनों भाई आँखों से आँखें नहीं मिला पाये हैं।

हे धन! तुझे धिक्कार हो, मेरे भइया की प्रीति का तूने नाश करा दिया है। बेटा! कितनी ही ऊँचाइयों में चले जाना, पर इतना ध्यान रखना कि माँ ने जो एक थाली में भोजन कराया था, उस थाली को देखते रहना, क्योंकि आयु बहुत लम्बी नहीं है इस युग में। एक छोटी-सी आयु के काल में ही हम खोटा करके क्यों जायें? ऐसा ही करके जायें कि भाई ही नहीं, सारा विश्व मेरा आत्मीय

हो। ऐसा करके मत जाना कि सगा भाई ही का नाम लेने का मन न करे।

ज्ञानियो! कुछ भी हो जाये, भीख माँग कर खा लेना, लेकिन सोच को अशौच मत करना। कपड़ा मल में गिर जाये तो यमुना के पानी में धो सकते हो, शरीर में कीचड़ छप गयी तो तू बेतवा में डुबकी लगा सकता है, लेकिन मेरे मित्र! तेरे सोच में मल आ गया तो किसी नदी के पानी से साफ होनेवाला नहीं है। तन की मलिनता ने, वस्त्रों की मलिनता ने घरों को बर्बाद नहीं किया है, घरों का विघटन नहीं किया, राजवंशों का नाश नहीं किया। जब भी वंश का नाश हुआ है, मन की मलिनता से हुआ है। देश या राज्य नष्ट हो गये हैं, मात्र मन की मलिनता से बर्बाद हुये हैं। ऐसा उपक्रम करना कि मन में मलिनता न आने पाये। माताओ! सुन रही हो? यदि तू 'माँ' संज्ञा को प्राप्त हो रही है, तो तू इतना ध्यान रखना कि क्लेश नाम की वस्तु तेरे घर में प्रवेश न कर पाये जिसको तू हृदय में संजोये बैठा है। ईर्ष्या निकल जायेगी तो भगवान् भी यदि बोलते होते तो कह देंगे कि तेरे से बड़ा संसार में और-कौन साधुपुरुष होगा? साधु-भेष में भी तुम आ गये हो और भीतर से तुम्हारी ईर्ष्या की पोटली नहीं निकल पायी है, तो ज्ञानी! तुम नंगे बनकर जीवन तो निकल दोगे, पर नग्नत्व को प्राप्त नहीं कर सकोगे। नंगे होकर जीवन निकाल देना बहुत सरल है। विश्व में सर्वाधिक संख्या नंगों की ही है। कपड़े तो मनुष्य मात्र पहनते हैं। तिर्यंच नंगे हैं कि नहीं? जो ईर्ष्या के और वासना के वस्त्र उतारकर फेंकता है, उसका नाम दिगम्बर होता है। जो ईर्ष्या और वासना के वस्त्र नहीं उतार पाया है, वह तो मात्र नंगा है।

मुमुक्षुओ! मोक्षमार्ग नग्नत्व का मार्ग है, नंगों का मार्ग नहीं है। ज्ञानी! नग्नत्व जो है, वह निशल्य होता है। **"निःशल्यो व्रती"** जो निःशल्य है, वही व्रती है। लोग कहते हैं कि जिनवाणी समझ में नहीं आती है। जो मैं कह रहा हूँ, उसे आप आगम की भाषा न बोल सको, शैली की बात न कर सको, लेकिन यह मैं जानता हूँ कि विश्व में ऐसा कोई भी मानव नहीं है जो कि आगम की बात को पहचानता न हो। मैं जो कह रहा हूँ उसे आप ज्यों-का-त्यों कह तो नहीं

पायेंगे, पर जो मैं कह रहा हूँ, वह ज्यों-का-त्यों समझ में तो आ रहा है। चिन्ता नहीं करना, नया कुल्लड़ है। पानी की एक बूँद छोड़ दो, दिखेगी क्या? नहीं है क्या? पानी की एक बूँद जो डाली थी, दिख रही है क्या? नहीं। क्या उस सकोरे में नहीं है? है। अब आप लोग ज्ञानी नहीं हो क्या जब बात को इतनी जल्दी समझ गये? उसी में 10-20 बूँदें डाल दो, दिखना प्रारम्भ हो जायेगा कि नहीं? मुमुक्षुओ! तुम नये सकोरे हो, जिनवाणी की बूँदें पड़ रही हैं लेकिन दिख नहीं रही हैं। एक दिन यह बूँद कैवल्य के सागर को प्रकट करा देगी। कैवल्य के रूप में सागर लबालब भरा दिखाई देगा।

अहो नये सकोरो! तुम विकल्प नहीं करो। यह जिनवाणी की बूँदें पड़ती रहीं, पड़ती रहीं, तो एक दिन महासागर बनेगी। आनन्द है, परमानन्द है। फिर भी तू घर चला जायेगा। संकट कहीं भी नहीं है, कष्ट कहीं भी नहीं है। सुख छोड़ दो तो शान्ति आ जायेगी, सोच बदल जायेगा। जितनी सुविधाओं के बारे में तुम सोचकर बैठे हो, वह मिलती हैं नहीं। बस, चेहरा उतर जाता है। आपने पहले सोच लिया कि पिता जी मुझे दस का नोट देंगे। परन्तु पिता जी की जेब में मात्र पाँच का नोट था, उसमें तुम दो भाई थे। दस की सोच कर आये थे, मिले पाँच अब बोलो, तुम्हारा मन क्या कहेगा? चेहरा उतर जायेगा। यदि तू पाँच रु. में ही खुश होना चाहता है, तो मेरे पास एक विद्या है। बताऊँ क्या? जब तेरे पिता ने तुझे पाँच रुपये दिये, उस समय तेरी जेब में कितने थे? एक भी नहीं था। बेटा! तू ऐसा क्यों सोच रहा है कि पिता जी ने मात्र पाँच रुपये दिये? तू ऐसा क्यों नहीं सोचता है कि चलो, जेब तो भरी, कुछ तो आया?

ज्ञानियो! सकारात्मक सोच बनाइये तो आपका कष्ट अभी समाप्त होता है। सकारात्मक सोचना सीखो। माँ किसी के घर में मेहमानी करने गयी उसके घर में दूध कम था तो उसने आधा गिलास दूध दिया। अब तू मुँह सिकोड़ रही है। अरे! मुँह सिकोड़ा तो जितना स्वाद आनेवाला था, वह सब खत्म हो गया। अरे! यह क्यों नहीं सोचते कि धन्य हो इस को। भले ही कम दिया, पर किसी को

नहीं छोड़ा, सबको दिया है। मैंने क्या दिया? भैया! यह मुनिचर्या मैं आपको सिखा रहा हूँ।

'पराधीन मुनिवर की चर्या, परघर जाँय माँगत कछु नाँही।'

वीतरागी श्रमण अंजुलि लगाकर जब चर्या को निकल गये, तब क्यों किसी से कहेंगे कि आज यह खिला दो? कहेंगे तो मुनि बचे रहेंगे क्या? मित्रो! अगर सच्चे मुनि बनना चाहते हो तो घर में कम खाना सीखो। माँ परोसना भूल भी जाय, तब भी तुम मौन लेकर बैठे रहना। भैया! तुमने अगर माँगकर खा लिया, तो विश्वास रखना, तूने मुनिपने का संस्कार तोड़ दिया। जब तू यहाँ सहन करेगा, तब मुनि बन सकेगा। जो अपने कार्य में तन्मय होता है, उसे नमक की डली का राग नहीं सताता है। चामुण्डराय के शिल्पी का उदाहरण देखो। जब तक मूर्ति नहीं बनी, तब तब कोई विकल्प नहीं था। जिस दिन तैयार हो गयी, तब भी माँ ने बिना नमक का बनाया। पूछता है, माँ! आज भोजन में नमक नहीं है। तब माँ पूछती है, बेटा! मूर्ति पूरी बन गयी क्या? जिसके हृदय में आत्मज्ञान की तन्मयता नहीं है, उसे ही भोगों की डली का राग सताता है।

ज्ञानी! योग मत बदलो, बदल सको तो उपयोग को बदलो। उपयोग बदल गया तो योग अपने आप बदल जाता है। क्यों, माताओ! सत्य बताना। साग बनाते-बनाते आपको कभी छुरी नहीं लगी क्या? रोटी सेंकते-सेंकते अंगुलि नहीं जली क्या? लेकिन तब दर्द तो हुआ ही नहीं था। धुन में रहते हैं तो पता ही नहीं चलता। जब पूरा भोजन बन गया और सबको खिला दिया, स्वयं खा लिया, बर्तन माँजने के पहले एहसास हुआ कि जलन हो रही है। एहसास हो रहा है अभी, तब तू जड़ थी क्या?

महाराज जी! मैं जड़ तो नहीं थी, पर उपयोग अन्यत्र था, इसलिये योग पर लक्ष्य नहीं था। एक माँ को छुरी लगने पर भी वेदना नहीं हो रही है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन जब निज आत्मलीनता में होते हैं, उस समय उपसर्ग/परीषह के आने पर भी उनको वेदना का अनुभव नहीं होता है, मात्र निज वेदकभाव होता

है। यह है उपयोग की निर्मल दशा। इसलिये जिनका उपयोग निर्मल नहीं है, वे समाज के दलदल में फँसे मिलेंगे। आपको कोई कहेगा कि ऐसा करो वैसा करो। जिनको अपने उपयोग से ही फुर्सत नहीं है, वे तुम्हारे योग में कहाँ जायेंगे?

युवाओ! कभी मुनि बनने के भाव आ जायें तो इस बात का ध्यान रखना उपयोग पवित्र रख सको तो योगी बन जाना और यदि उपयोग पवित्र न रख पाओ तो योगियों की सेवा करते रहना। **भक्त बनके रहना अच्छा है भगवत्ता को बदनाम करने की अपेक्षा**। यह मोक्षमार्ग है, असिधार है। तलवार की धार पर तो जादूगर लोग चलते देखे गये हैं, पर कोई भी जादूगर मुनि बनते नहीं देखा गया। उस तलवार की धार पर चलना सरल है, पर निर्ग्रन्थ बनके भारतभूमि पर दौड़ना बहुत कठिन है। इसलिये तभी जी पाओगे। विषय का ध्यान रखो, 'सोच पवित्र करो।'

ज्ञानियो! आप दु:खी नहीं हो। आपने अपनी सीमा से ज्यादा सोच लिया है, इसलिये दु:खी हो। **"शोक बदलना है तो सोच बदलो"। सोच बदल गया तो शोक स्वयमेव बदल जायेगा।** इसलिये कोई किसी के समझाने पर नहीं समझता। जब उसका स्वयं का सोच बदलता है, तभी समझ में आता है।

श्री राम 6 महिने लक्ष्मण के मृतक शरीर को लिये घूमते रहे। इतने देव, राजा, महाराजा, मन्त्री आये, सेनापति पहुँचे, लेकिन एक नहीं बदल पाया राम को। पर स्वयं का भीतर का सोच बदला तो स्वयं का शोक बदल गया। यह दूसरे पर लागू मत करना, स्वयं पर चिन्तन करना। पर लगता है कि यह तो अपने भीतर की अन्दर की धारायें हैं। सुनते-सुनते आप शान्त क्यों हो जाते हो? इसका उद्देश्य समझो। जब अपनी निज की भीतर की बात आती है तो हर आदमी शान्त हो जाता है। हलचल तो पर की बातों में है। परचर्चाओं में शान्ति कभी होती नहीं और निज चर्चा में कभी अशान्ति होती नहीं।

भो ज्ञानी! लिख लो, घर में काम आयेगा। 'सोच बदलो तो शोक बदल

जायेंगे।' आज कोई नाराज भी दिखे तो उससे कह देना कि क्यों आँखें दिखा रहा है? बस, तू सोच बदल दे, तो मैं भी तेरा मित्र हूँ। माँ! सुन रही हो कि नहीं? तुम किसको भिन्न मानती हो? ये मेरे भगवान् हैं, ये मेरे महाराज हैं, जैसे जिसे तू अपने महाराज बोल रही है, वे भी दिगम्बर हैं। ये भी मूलगुणों का पालन करते हैं। बस, सोच बदल दो तो शोक बदल जायेगा। माँ! तू कर्त्तृत्व बुद्धि को लिये है, इसलिये तू शोक में डूब रही है। मेरा बेटा, तेरा बेटा। पर सत्य तो यह है कि न मेरा बेटा मेरा है, न तेरा बेटा मेरा है। वे स्वतन्त्र जीवद्रव्य है। राग रिश्तों मात्र का है। वस्तु का कोई राग नहीं, द्वेष नहीं है। तू तो जो है, सो है।

भैया! जबलपुर में आटोरिक्शे वाले भी बोलते थे कि शान्ति से बैठो, जो है, सो है। पर सत्य यह है कि शान्ति चाहिये तो यह अमूल्य मन्त्र है। कुन्दकुन्द देव के 'समयसार' जी में लिखा है **"जो सो दु सो चैव",** जो है सो है। यह समयसार का मन्त्र है छठवीं गाथा में। ज्ञानी! वस्तुस्वभाव में कोई विकल्प नहीं है।

ज्ञानियो! इतना जानने के बाद, इतना सुनने के बाद राग क्यों नहीं छूटता है? बोले, महाराज! समझ में तो सब आ गया है। यह भी नजर आता है कि सब मिले दिखाई देते हैं। ये छूटते क्यों नहीं हैं? मालूम है आपको कि न भाई आपका सहयोग कर सकेगा, न आप भाई का सहयोग कर सकेंगे। सब अपने-अपने भाग्य से जी रहे हैं। फिर भी छोड़ता क्यों नहीं है? तन भी बदल गया, परिणाम भी बदल गये, पर्याय भी बदल गयी, लेकिन सोच नहीं बदला।

मित्रो! भेष बदलने के पहले सोच अवश्य बदल लेना, नहीं-तो आप गृहस्थ बनकर ही रहना, मुनि बनने का मन मत करना और मुनि बनने का मन करे तो पहले सोच बदलना, क्योंकि सोच नहीं बदल पाओगे तो अभी जैसा तुम्हारा गृहस्थ अवस्था में भाव रहता है कि यह मेरा भूखण्ड, मेरी दुकान, ऐसे ही जब तू मुनि बन जायेगा तब भी यही सोचेगा कि यह मेरा प्रभावना क्षेत्र, मेरा

बुंदेलखण्ड, मेरा आगरा है। हे ज्ञानी! खण्ड-खण्ड को छोड़ने के लिये तो तू निर्ग्रन्थ बना था और खण्ड-खण्ड में लिप्त हो गया, तो निर्ग्रन्थता का आनन्द क्या होगा?

ज्ञानियो! लघु सोच वाले कभी विशालता को प्राप्त नहीं होते हैं। तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध लघु सोच वालों को नहीं होता है। धन्य हो उस जीव को जिसके अन्दर एक पवित्र भावना की ज्योति जाज्वल्यमान हो रही हो **विश्व के प्राणिमात्र का कल्याण हो।** कल्याण तो जीव के निज पुरुषार्थ से ही होगा, पर विश्वकल्याण की भावना करनेवाले का कितना विशाल सोच था कि तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध करता है। अभी-अभी यहीं बैठे-बैठे आप सभी के हित के बारे में सोचो। डाक्टर! जितने रोगी हैं, उनको दवाई की पुड़िया देने के पहले बोला करो कि निरोग होना चाहते हो तो सोच बदलो। जो तुम अपने शरीर और अपने परिवार मात्र को देख रहे हो, तुम्हारी जो वर्गणायें हैं, जो हार्मोन्स स्रावित हो रहे हैं, वे संक्लेषित भावों से युक्त हो रहे हैं। जब तुम सबके कल्याण के बारे में सोचोगे तो आत्मीय भाव जागेगा, तेरे परिणाम बदल जायेंगे और जो भोजन कर रहे हो उससे सबसे पहले रस बनता है। रस बनने के काल में आप टेंशन में आ गये तो पूरा रस विषाक्त हो गया। भोजन और भजन के समय चित्त प्रसन्न रखो। जो रस बननेवाली अवस्था थी, वह एकदम स्वच्छ होगी और उस रस से ही सभी आगे की धातुयें बनती हैं। जब धातुयें तुम्हारी शुद्ध होंगी, तो तन अपने आप शुद्ध होगा। तन कब शुद्ध रहेगा, जबतक तेरा मन शुद्ध रहेगा। मन कब शुद्ध रहेगा? जब सोच तेरा शुद्ध रहेगा। पूरे विषय का ध्यान रखना, घर-घर में चर्चा करना। जो चेहरा लटकाये मिल जाये, उनसे कहना है कि ज्ञानी! तू ताले-जैसा चेहरा लटकाये है। सोच ठीक करले तो अभी तेरा चेहरा ठीक होता है। सोच बदलते ही चेहरे का रंग बदलता है। विश्वास रखो। इतना तो आप समझते हो, मनुष्य हो? कभी सोचा है कि आप मनुष्य हो?

मित्रो! यदि आप मनुष्य हो तो एक बात बताओ, आपने कभी श्वान को

देखा है? श्वान किसी की आँख देखले तो तुम्हारे चेहरे को पहचान लेता है। यदि तुम प्रीति दिखा रहे हो तो पूँछ हिलाने लगता है। कहीं वह देख ले कि गुस्सा में आदमी पत्थर मारेगा तो वह पहले से ही भाग लेता है। जब आदमी की आँख को श्वान पहचानता है, तुम तो इन्सान हो, तुम पहचानना नहीं जानते हो क्या? जब किसी का चेहरा बिगड़ा दिखे, तो उससे कहना कि सोच बदलो। घर में किसी की मृत्यु हो जाये तो वृद्ध लोग चेहरा लटका कर बैठ जाते हैं। उनसे कहना, भाई! तुम ठीक हो जाओ। जिसकी मृत्यु हुयी है, कुछ गलत नहीं हुआ है, वह तो सहज है, आयुकर्म का क्षय हुआ है। तो ज्यादा मुस्कुराओ मत। कैसी बात है? अरे भाई! जिसने आयु का बन्ध किया है, वह जन्म लेगा कि नहीं? इसमें हँसने का क्या विषय है? मध्यस्थ होकर जिओ। जो जितना सुख के दिनों में मुस्कुराते हैं, विश्वास रखना, उनको उतना ही रोना पड़ता है। इसलिये सुख को भी मध्यस्थ भाव से देखो। सब सहज है।

आज तो घर जाकर कोई लड़ेगा नहीं। अगर लड़ने का मन भी करे तो अपने आप को पहले पाँच मिनिट दे देना। क्यों? कोई भी काम जब कराना पड़ता है तो तैयारी से रहना पड़ता है।

आप यहाँ आये तो कितने दिन से तैयारी कर रहे थे कि महाराज जी के प्रवचन सुनने जाना है। ज्ञानी! मन बनाकर आये हो कि चलो, महाराज जी के प्रवचन सुनने चलते हैं। तैयारी से आये हो, सो मन लग रहा है। ऐसे ही किसी से लड़ना भी हो तो तैयारी से आना। तैयारी क्या करना? सोचना कि आखिर में लड़ क्यों रहा हूँ? इनके बच्चे ने मेरे बच्चे के गाल पर चाँटा मार दिया, तुम लड़ने जाओगे तो आपस में दुश्मनी बाँध लोगे। वे बच्चों के खेल हैं। वे आपस में कल फिर खेलने लगेंगे। तुम दुश्मनी मत बाँधो, चलो लौट कर। देखो भैया! माताओं और बच्चों की बातों में तुम पड़ौसी से लड़ने मत लग जाना। न भैया से लड़ना। जितने घरों में दो चूल्हे रखे जाते हैं, सब अपने बेटों की माँ की बातों में आकर अपने भैया को भूल जाते हो। उतनी ही बात मानो जिससे तू अपनी माँ के बेटों

को न भूल पाये। इतनी बात मान लो, तो तुम्हारे घर में शान्ति फैल जायेगी।

हे मुमुक्षु! जब आत्मीयता प्रकट करते हैं तो कभी आपको ज्ञानी भी कह देते हैं, कभी मूढ भी कह देते हैं।

हे मूढ़-आत्मा! संसार के दुःख जो हैं, उनसे उद्विग्न होकर तू डरता क्यों नहीं है? जिससे तुम विषयों में आसक्त और लोभकषाय के वशीभूत हो रहे हो, इसीसे सबसे ज्यादा जीव परेशान है। ऐसे भी लोभी जीव मिल जायेंगे कि यमुना किनारे शौच को भी जायेंगे तो लौटा नहीं ले जायेंगे, बोलेंगे 'घर का लोटा-पानी क्यों बर्बाद करूँ? चलो, यमुना चलता हूँ। वहाँ से भरकर आयेगा कि यहाँ से? हो सकता है कि लकड़ी उठा लाये। जीव का राग देखो, यदि आदमी को एक दातुन का उपयोग होगा तो चार भर कर लायेगा। अभागे! तुझे पता होना चाहिये कि जिस वृक्ष को तू तोड़ कर दातुन लाया है, वह भी भावी-भगवान् है कि नहीं? तीर्थंकर महावीर स्वामी अकौआ की पर्याय में बैठे हुये थे। इस बात का ध्यान रखना। गाड़ियों से घूमकर कितने जीवों का नाश करते हो। मुस्कुरा रहे हो कि मैं तो घूम रहा हूँ। भइया! व्यर्थ में मत घूमना। हाँ, भगवान् के दर्शन करने जाना है तो ठीक है, पर व्यर्थ की घूमाघामी मत करना।

ज्ञानी लोग घूमते नहीं हैं। वे सुबह से जाकर मन्दिरों की वन्दना करते हैं। घूमते क्यों हो? उद्देश्य क्या है? स्वस्थ रहने का। अभागे! यहाँ-वहाँ घूमता है, तो क्यों न एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर की वन्दना करना? घूमना भी हो जायेगा। श्वासोच्छवास से माला फेरना, इससे प्राणायाम भी हो जायेगा। यहाँ पुण्य-ही-पुण्य का बन्ध होगा। जिनके पुण्य भी क्षीण हैं, उनके सोच भी पवित्र नहीं हो पाते हैं। सूत्र लिख लेना।

प्रक्षीण पुण्यम् विनश्यति विचारणम्

जिन जीवों के पुण्य क्षीण हो जाते हैं, उनके विचार भी क्षीणता को प्राप्त हो जाते हैं। जो पहले पवित्र विचार रखते थे, अब अशुभ दिन आते हैं तो व्यक्ति

को अच्छी बातें भी अच्छी नहीं लगती हैं।

आपके विचार अच्छे भी हों और आपके किसी अपने के विचार बिगड़ रहे हों, तो ज्यादा मत समझाना, बस, चिन्तन करना। जिसका पुण्य क्षीण हो गया है, उसके उच्च विचार भी नहीं आते। रावण को देखो, कितना ज्ञानी था। विभीषण व मन्दोदरी ने कितना समझाया?

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"अज्ञानी/ज्ञानी"

अज्ञानी क्षिपयेत्कर्म, यज्जन्मशतकोटिभिः।
तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा, निहंत्यन्तर्मुहूर्ततः॥ 188॥

अन्वयार्थ-अज्ञानी = मिथ्यात्वसहित ज्ञानधारी आत्मा, **यत् कर्म** = जितने कर्मों को, **जन्मशतकोटिभिः** = करोड़ों जन्मों के द्वारा, **क्षिपयेत्** = नाश करेगा, **तत्** = उतने कर्मों को, **ज्ञानी तु** = सम्यग्ज्ञानी तो, **त्रिगुप्तात्मा** = मन-वचन-काय की गुप्ति में ठहरकर, **अंतर्मुहूर्ततः** = एक अन्तर्मुहूर्त, **निहन्ति** = नाश कर डालता है।

भावार्थ-हे आत्मन्! अज्ञानी अर्थात् मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन सहित जीव करोड़ों वर्षों तक तप करके जो कर्मनिर्जरा करता है, उतने कर्मों की निर्जरा मन-वचन-काय को वश में करने वाला भव्य ज्ञानी एक अन्तर्मुहूर्त में कर देता है।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में जीवन की सफलता और जीवन की असफलता की चर्चा कर रहे हैं। **सफल जीवन उनका ही है जो अपने आप को जीते हुये जीते हैं। असफल जीवन उनका है जो जीते-जीते भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जिसके पास संयम है, शील है, चारित्र है, वह जीते-जीते जी रहा है और मरने के बाद भी जीता है।** कुछ वे लोग होते हैं जिनको जीते हुये लोग मरा समझते हैं और कुछ लोग वे होते हैं जो मरने के बाद भी जीवित रहते हैं।

हे जिनेश्वर! आप मेरे बीच में नहीं हो, आप मेरे पास नहीं हो, लेकिन फिर भी सारा विश्व आपको स्वीकारता है, क्योंकि आप आत्मानुशासन में लीन हैं और जगत् में जिनका अनुशासन चलता है, वह आत्मानुशासनहीन हैं, लोक व परलोक में सर्वत्र अपनी सत्ता को खो बैठते हैं। वस्तुस्वरूप को समझना है। जीवन की सफलता, जीवन की असफलता यह दूसरे से प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं है। **स्वयं में आनन्द और शान्ति का वेदन करने की सामर्थ्य उसी के अन्दर है जो अपने आप को संयम से युक्त करके आता है।** परपुरुष के द्वारा मेरा धर्ममय शरीर दिखता है। परपुरुष के द्वारा मेरी धर्मभूत पौद्गलिक साधना दिखती है, परन्तु पुरुष को स्वयं का पुरुषार्थ दिखता है। भीतर का पुरुषार्थ जिसका पवित्र है, उसको साधना से दूर कोई कर नहीं सकता है।

हे पुरुष! तेरे पुरुषार्थ की प्रबलता ही तुझे परमात्मा बनाएगी। पुरुषार्थ की हीनता ही मुझे नरक और निगोद ले जायेगी। पर की सामर्थ्य मेरे साथ नहीं चलती। परमात्मा उपदेशक तो हैं, परमात्मा निर्देशक तो हैं, पर परमात्मा मेरे साथ चलने वाले नहीं हैं। मार्ग में लगा बोर्ड इंगित तो कर रहा है, सूचित कर रहा है, कि पुलिया संकीर्ण है, लेकिन सावधान उस पुलिया को नहीं होना है, सावधान तो पुरुष को होना है। समझ में आ रहा है? पुलिया पर बोर्ड लगा हुआ है। वहाँ संकेत लिखा है— जीर्ण-शीर्ण है। सावधानी से आपको चलना है। साथ क्या बोर्ड चलेगा? हे पुरुष! तुझे सावधान होना है।

माँ जिनवाणी आपको संकेत कर रही है कि हे मुमुक्षु! परिणामों को साम्य रखेगा तो परमात्मा के सदृश हो जायेगा। ज्ञानी! तू परिणामों को साम्य नहीं रख सकेगा, तो तेरा निज का परमात्मा प्रकट नहीं होगा। यह भेष का मार्ग नहीं है। यह भावों का मार्ग है। जितना भेष सजाने की आवश्यकता है, उससे कोटि-कोटि पुरुषार्थ भावों को सँभालने का है। क्षण-क्षण के परिणामों पर ध्यान दो। अब पर्याय पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। यह सुन्दर शरीर, इसे तू कितना और सुन्दर बनाना चाहेगा? यह सुन्दर नहीं

बनेगा, यह तो ढलेगा-ही-ढलेगा। यह सुन्दर शरीर चमकेगा नहीं, ढलेगा। इस सुन्दर पर्याय को सजाने की आकांक्षा छोड़ दीजिये। पर्याय को सजाने की अपेक्षा मत कीजिये। सँभाल सकता है तो मनुष्यपर्याय में अपने परिणामों को सँभाल। ज्ञानी! परिणाम सँभाल लिये तो परमात्मा तेरी मुट्ठी में है। पर्याय को क्या सँभालना? वह तो सँभली है, नियत है। सबके दिन एक-से नहीं होते। पर्याय तो बदलती है।

भैया! पर्याय को तो सँभालकर हम नहीं रख पायेंगे। मेरे मित्र! विश्वास रखना, इसको आप वज्र-कपाट में भी रखवा देना, तब भी हंस निकल जायेगा और सड़ांध भी आयेगी-ही-आयेगी। भैया! कुछ दिन पहले यमुना के किनारे विशाल अवगाहना से युक्त एक ऊँट पड़ा हुआ था। प्रथम दिन उस मृतक का शरीर फूला दिख रहा था। दो चार दिन में कुछ और दृष्टिगोचर होना लगा। सारे परमाणु बिखर गये। शरीर की दुर्गंध भी एक सीमा तक थी, वह दुर्गंध भी समाप्त हो गयी। विशालकाय ऊँट समाप्त हो गया। बड़े-बड़े गजराज और भी धुरंधर शरीरधारी, सम्राट जो अपने आप को समझते थे कि मैं ही सर्वस्व हूँ, पर मित्रो! वह शरीर भी उनके नष्ट हो चुके हैं। कुछ समझना चाहो तो इतना समझ लो कि नशने वाले को क्या सँभालना? अविनाशी को सँभालो, तो नशने वाले को सँभालने की क्या आवश्यकता? नाशवान् के पीछे कितने भवों से भावों का नाश कर रहे हो? मुमुक्षुओ! एक पर्याय नाशवंत शरीर को नहीं, अविनाशी आत्मा को दे दो। युवाओ! नाशवन्त के लिये तूने अनेक पर्याय दी हैं, एक पर्याय अविनाशी को दे दो तो कभी नाशवन्त पर्याय ही न मिले।

मित्रो! देखो, क्या सुन्दर-सुन्दर चेहरे, क्या सुन्दर-सुन्दर शरीर, कुछ दिन के बाद फीके हो जायेंगे।यह सब निर्ग्रन्थ बनके निकले होते तो क्या आनन्द की मुद्रा थी। 'प्रवचनसार' जी ग्रन्थ में लिखा हुआ है—जिनेन्द्र की मुद्रा को धारण करनेवाले पुरुष का चेहरा सुन्दर होना चाहिये। आप कह सकते हैं—महाराज! वैराग्य में सुन्दरता किस बात की? 'अरे मुमुक्षु! असुन्दर वैरागी बने तो दुनियाँ

कहेगी कि कोई शादी नहीं कर रहा होगा, सो वैरागी बनके बैठ गया। सुन्दर वैरागी बने तो लोग कहेंगे कि वैराग्य में चारित्र की सुन्दरता है। देह की सुन्दरता और चारित्र की सुन्दरता एकसाथ मिल जाये तो कितने मुमुक्षु जीव उस सुन्दर चेहरे को देखकर कहेंगे–

अहो अहो! चेहरे की सुन्दरता इसे लुभा नहीं पायी और मोक्षमार्ग ने इसको खींच लिया। बाहुबलि स्वामी का नाम सुना है? विश्व में इतनी सुन्दर किसी की प्रतिमा नहीं है जो गोम्मटेश बाहुबली की प्रतिमा है। भारत सरकार को भी स्वीकार करना पड़ गया। कर्नाटक सरकार की झाँकी को दिल्ली में गोमटेश भगवान् की मस्तकाभिषेक की प्रदर्शिनी को पुरुस्कार मिला है। कर्नाटक को दिल्ली में भी पुरुस्कार मिला है। बात समझो, गोमटेश बाहुबली स्वामी की जो प्रतिमा खड़ी हुयी है, वह प्रतिमा किसी प्रतिमा को देखकर नहीं बनायी गयी, न प्रतिमा वास्तुशास्त्र को देखकर बनायी है, न प्रतिष्ठाग्रन्थ के अनुसार वह प्रतिमा बनी हुयी है। वह प्रतिमा प्रतिमावान को देखकर बनी हुयी है।

आचार्य नेमीचन्द स्वामी के संघ में एक सुन्दर मुनिराज थे। उनका चेहरा चमक रहा था। उन मुनिराज के चेहरे को देखकर शिल्पकार ने गोमटेश प्रभु का चेहरा बनाया। एक लम्बे मुनिराज के शरीर की अवगाहना को देखकर गोमटेश भगवान् की अवगाहना बनायी। नजदीक जाओगे तो वास्तु के अनुसार भी नहीं पाओगे। प्रतिष्ठाग्रन्थ के अनुसार भी नहीं है। वहाँ तो प्रतिष्ठावान को देखा है, मूर्तिवान को देखा है। हे गोमटेश प्रभु! अच्छा हुआ कि कामदेव-जैसे जीव निर्ग्रन्थ मुनि हो गये। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव तीन पद के धारी ज्ञानीजीव मुनि हो गये। हे मुमुक्षु! कामदेव से बड़ा विश्व में कौन सुन्दर होता है? जिसके रूप को देखकर अनेकानेक नारियाँ विवेक खो देती हों। पैरों के आभूषण कानों में और कानों के आभूषण पैरों में पहुँच गये। यह कामदेव के सुन्दर रूप की महिमा है। आपको मालूम माँगीतुंगी में कामदेव की प्रतिमा है? जब कामदेव का स्वस्थ शरीर लोगों को मोहित करता हो तो निर्वस्त्र शरीर को देखकर जगत् की नारियों की क्या

हालत होगी? जब उन्होने देखा कि जगत् की नारियाँ मेरे निमित्त से अपने भावों को विकृत कर रही हैं, तब उन्होंने पर्वत की ओर चेहरा करके साधना की। विश्व में मात्र एक ही प्रतिमा है, जहाँ मात्र पीठ दिखती है, चेहरा दिखता ही नहीं है। उस समय की प्रतिमा है इस बात के प्रतीक के लिये कि उसके शरीर को देखकर लोग आकर्षित होते थे, परन्तु धन्य हो उन योगी की दशा। 'मूलाचार' जी में लिखा हुआ है कि दिगम्बर मुनिराज अपने शरीर का शृंगार नहीं करते, स्नान नहीं करते। अहिंसा के साथ ब्रह्मचर्य के पालन के लिये, स्व के ब्रह्म के पालन के साथ-साथ पर के ब्रह्म के पालन के लिये भी करते हैं। क्यों? एक सेठपुत्र, एक राजपुत्र यह सुन्दर शरीर वाले लोग दीक्षित हो गये। इनको देखकर किसी का मन विकल्प को प्राप्त न हो जाये, इसलिये शरीर में मल छपा हुआ है, स्नान नहीं करते हैं, मुख नहीं धोते हैं, मंजन नहीं करते हैं। क्योंकि मेरे निमित्त से दूसरे के परिणाम विकल्प में न आयें। मित्रों! जो व्यक्ति शृंगार कर रहा है, स्वयं के लिये करता ही नहीं है, क्योंकि स्वयं का शृंगार स्वयं को दिखाई ही नहीं देता है। शृंगार जिसे तुम कहते हो, वह यथार्थ में चाल है। जैसे एक बहेलिया जंगल में जाल बिछा कर जीवों को पकड़ लेता है, ऐसे ही अज्ञानी प्राणी चेहरे पर अनेक प्रकार की प्रशाधन सामग्री को चिपकाकर दूसरे को आकर्षित करके अपने में फँसाने की कोशिश करता है। समझ में आ रहा है? चाल है, इसमें शंका नहीं करना।

ज्ञानियो! जिन जीवों ने कभी पाउडर ही न लगाया हो, जिन जीवों ने तेल ही न लगाया हो, क्रीम उबटन कुछ न लगाया हो, तब भी सुन्दर झलक रहे हैं। इसका तात्पर्य तो समझो। जिनको सुन्दर शरीर ही नहीं सुन्दर चेहरा भी चाहिये, तो आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने एक मन्त्र दिया है। जो सुन्दर है, उसका भी कारण है। जो पुरुष हुये हैं, उसका भी कारण है। जिन-जिन को सुन्दर रूप चाहिये, सुन्दर स्वरूप भी चाहिये, तो जिनेन्द्र के चरणों में जाना।

जब एक बिल्ली किसी जीव का घात करती है तो उसके नख भी रंगे होते

हैं और मुख भी खून से रंगा होता है। बस, यह मानना कि जब कोई माँ मन्दिर में शृंगार करके नेलपालिस क्रीम पाउडर लिपिस्टिक लगाकर आये तो वह स्यालनी होती है।

हे माँ! मन्दिर में शृंगार की आवश्यकता नहीं है, मन्दिर में शील की आवश्यकता है। शील के साथ आओ, शृंगार के साथ मत आओ। मन्दिर में पर्याय सजाकर मत आइये, मन्दिर में परिणाम सजाकर आइए। भइया! विश्वास रखना, परिणाम सज गये तो पर्याय तो अपने आप सज गयी। शृंगारदानियाँ, जिनमें अशुद्ध द्रव्य रखे हों, उन्हें फेंक देना। कोई माँ कोई बहिन जिसमें जीवों के कलेवर पड़े हों, ऐसी सामग्री को रखकर अपने शरीर को सजा रही हो, उससे कहना हे स्यालनी! भगवान् महावीर के सूत्र को सुन लेती तो माँ मुझको तुझे स्यालनी नहीं कहना पड़ता। मेरी भगिनी! मेरी माँ! तू शरीर को सुन्दर करना चाह रही है दूसरे की जीवन की सुन्दरता को नाश करके। यदि आपको सुन्दरता ही चाहिये है, तो "भक्तिः सुन्दर रूपं।"

हमारे जैनदर्शन में सवा महिने के बालक को लोग मन्दिर लाते हैं, क्यों? लोक में कहते हैं कि छाया पड़ गयी, परछाई पड़ गयी। अरे मुमुक्षु! यदि छाया भी पड़े तुम पर, तो तीर्थंकर अरहन्त देव की पड़े। जब उदर में शिशु हो, माँ गर्भवती हो, उसको सर्वाधिक भगवान् की वन्दना करना चाहिये। उसको सर्वाधिक महामन्त्र की माला फेरना चाहिये। गर्भस्थ अवस्था में किसी अभागे के चेहरे देखने की आवश्यकता नहीं है। मात्र वीतरागी अरहन्त की वन्दना करो। 'भक्तिः सुन्दर रूपं।' जिनको सुन्दर रूप चाहिये, वे भक्ति करें भगवान् की और जिनको मात्र यश-ही-यश चाहिये, तो वे भी ध्यान से सुन लें कि चाहने से यश नहीं मिलता। **"स्तवनात्कीर्ति तपोनिधिषु"** तपस्वियों का स्तवन करोगे, तो कीर्ति स्वयमेव ही फैलेगी। नगर में एक चातुर्मास हो जाये, यदि तू चार दिन महाराज के साथ आहार देने चला जाये, तो पूरे गाँव में लोग तुझे जानने लग जाते हैं। ओ हो! तपस्वियों के चरणों में आने से यश स्वयमेव ही फैलता है। यदि कोई आपसे कहे कि

आप अमुख महाराज के भक्त हो तो धन्य हो तेरे पुण्य को, तेरी पहचान महाराज के नाम पर हो रही है। एक वे अभागे लोग हैं जिनकी पहचान मदिरालय पर होती हो, वैश्यालय पर होती हो और एक वे जीव हैं जिनकी पहचान निर्ग्रन्थ गुरु और जिनालय से होती हो।

"भक्तेः सुन्दर रूपं" "स्तवनात्कीर्ति तपोनिधिषु"। भक्ति करने से सुन्दर रूप मिलता है। तपस्वी की स्तुति करने से यश फैलता है। यह तो लौकिक फल है। जिनेन्द्र के चरणों में जाने से रूप क्या, स्वरूप की प्राप्ति होती है। रूप तो तुच्छ है। रूप के लिये मत आना, स्वरूप के लिये आना। कदाचित तुमको रूप के लिये ही आना हो, तो भी दुनियाँ में भटकने मत जाना, जिनेन्द्र के चरणों में ही आना। कम-से-कम तू द्रव्य मिथ्यात्व से तो बचेगा। भगवान् को देखते-देखते कब भाव बदल जायें। भाव बदलते देर नहीं लगती। भव बदलते भी देर नहीं लगती। भगवान् कह रहे हैं कि आपको सफल जीवन बनाना है तो चारित्र को प्रकट करो, भावों को सँभालो। मचलते बेटों को माँ कैसे सँभालती हो? कभी मिठाइयाँ देती हो, कभी खिलौना देते हो। कभी पीठ थपथपाते हो, कभी गले से लगाते हो कि मेरे बेटे! तू चुप हो जा।

हे मित्र! जैसे तू मचलते बेटे को मनाने के लिये पुरुषार्थ कर रहा है, ऐसे ही मचलते मन को मना लेता तो बच्चों को मनाने की क्या आवश्यकता थी? बच्चे उन्हें ही पुचकारना पड़ते हैं जो अपने मन को नहीं मना पाते हैं। जो मन को मना लेते हैं, उन्हें किसी बच्चे को नहीं पुचकारना पड़ता है। समझ में आ रहा है? आप मन पुचकार लेना तो बच्चे नहीं पुचकारना पड़ेंगे। नहीं तो पता नहीं कितने बच्चों की नाक पोछना पड़ेगी।

हे मोह! तुझे धन्यवाद हो। अपने बेटे की नाक का मल भी अच्छा लगता है। दूसरे का अमृत भी तुमको बुरा लगता है। हे मोह! धन्य हो तुझे, कि धिक्कार हो? मोह की लीला तो देखो, अपनों की नाक भी अच्छी लगती है। भैया! एक क्षण की विषयानुभूति जीवन भर का नाश कर देती है। दिगम्बर मुनि कहीं भी

तुमको दिख जायें तो सारे काम छोड़कर सबसे पहले निर्ग्रन्थ को नमोस्तु कर लेना। 'हे स्वामी! अपकी वन्दना करने मात्र से मेरे कोटि-कोटि कर्म नष्ट हो चुके हैं।' कोई शंका मत करना इस विषय पर। सच्चे वीतरागी भावलिंगी मुनि के चरणों में श्रद्धापूर्वक सिर झुक गया, तो उसका जो आनन्द है वह भगवान् को अनुभव में नहीं आता। भक्तों को आता है। नमस्कार करने का जो आनन्द है, वन्दना करने का जो आनन्द है, वह भगवान् को नहीं आता है, क्योंकि भगवान् तो अपने स्वरूप में लीन हैं, परन्तु भक्त भगवान् की भक्ति की अनुभूति ले रहा है। भैया! चमत्कार कभी भी तपस्या से नहीं हुये हैं, न होंगे।

"तपसा निर्जरा च" तपस्या करने से तो निर्जरा और संवर होता है। चमत्कार जो होते हैं, वह तो भक्ति से होते हैं। जब भी चमत्कार होंगे, प्रभुभक्ति से होंगे। जबतक मानतुंग स्वामी तपस्या करते रहे, ताले एक भी नहीं टूटे। वादिराज स्वामी क्या तपस्या नहीं कर रहे थे? कुष्ट दूर क्यों नहीं हुआ? समन्तभद्र स्वामी तपस्या नहीं कर रहे थे क्या? चन्द्रप्रभ क्यों नहीं प्रकट हुये। तपस्या करने से कर्मों की निर्जरा होती है। आवश्यक नहीं है कि आप महावीर जी, पद्मपुरी जी, तिजारा जी या अन्य कहीं जायें तभी चमत्कार होंगे। किसी भी जिनालय में चमत्कार हो सकते हैं। पर भक्ति वैसी होनी चाहिये।

मित्रो! पूजन की जो विधि है, आप उस विधि से और शुद्धप्रासुक द्रव्य से यदि भक्तिपूर्वक पूजन करोगे, तो विश्वास रखो, आस्था और श्रद्धा से की गई आराधना अपने आप ही चमत्कार प्रकट कराती है। दिगम्बर मुनि भी तपस्या कर रहा हो तो रत्न नहीं बरसते। वही मुनिराज किसी श्रावक के यहाँ आहार लेने चले जायें, श्रावक की भक्ति और निर्ग्रन्थ योगी की विशुद्धि दोनों का जब संयोग होता है, तो स्वर्ग से भी देव रत्न वर्षाने आ जाते हैं। रत्नवर्षा होती है, पंचाश्चर्य होते हैं। कब? जब 'अहो! दाता। अहो! दान।' इसमें कोई शंका नहीं है, यथार्थ मानना कि कितने ही खोटे क्रूरपरिणामी जीव हैं, यदि निर्ग्रन्थ योगी के आहार घर में हो जायें तब वो भी अपने आप में विशुद्ध भावों को प्राप्त हो

जाते हैं। वैर छूट जाते हैं। जिनके घर में किसी से बैर हो, उनसे कहना कि आप तो साधु के आहार अपने घर में कराओ। जब जन्मजात विरोधी जीव नकुल, सर्प, बिल्लर, चूहा, सिंह, गाय एकसाथ कीड़ा कर सकते हैं, यह सब निर्ग्रन्थ योगी की पुण्य वर्गणाओं का प्रभाव होता है। बैर छूट जाते हैं। जब घर में सामान्य मेहमान आ जाये तो वातावरण बदल जाता है। जिसके घर में दिगम्बर मुनि मेहमान बनकर आ जाये, उसके घर का वातावरण कैसे नहीं बदलेगा? श्रावक खड़ा है कि 'हे स्वामी! पधारो।' और मुनिराज कहीं आ जायें सामने, फिर देखो कि क्या भाव आते हैं। यानि जीवन में जो सम्पत्ति के कमाने में आनन्द नहीं आता है, वह निर्ग्रन्थ मुनि के सामने खड़े होने पर आता है। वर्षों-वर्षों तक याद करते हैं कि मैंने महाराज जी को आहार दिये थे। हर प्रकार का शौक होता है। भैया! एक बार कोई व्यक्ति जिस प्रदर्शनी को देखकर आया हो, उसको पुनः मन करता है कि चलो देखने जाऊँ। हर व्यक्ति के अलग-अलग शौक होते हैं। यथार्थ बताऊँ, शौक का तात्पर्य क्या है? सन्तुष्टि, आनन्द और जिस व्यक्ति को यही शौक है कि मैं महाराज जी को आहार देकर आऊँ, विश्वास रखना, उसीको यह शौक भी आनन्द दे रहा है। जिसमें आनन्द है, वही क्रिया आदमी करता है, क्योंकि उसमें सन्तुष्टि है। इसलिये ये कभी भी भूल कर भी मत कहना कि स्वाध्याय में धर्म है, जप में धर्म है, दान में धर्म है। किसमें धर्म है? जितने भी षट्आवश्यक कर्त्तव्य हैं, इन सबमें जिनकी रुचि लग रही है और जिनमें जिनकी विशुद्धि बढ़ रही है, बस, अब वही उनके लिये धर्म है। यह बाँध कर मत रहना। कुछ लोगों ने तो बस यही कह दिया है कि स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो। अरे भई! स्वाध्याय तो करना ही चाहिये, क्योंकि परम तप है। ज्ञानियो! इतना भी ध्यान रखो कि स्वाध्याय में लिखा क्या है। वैयावृत्ति स्वाध्याय के अन्तर्गत आयेगी कि नहीं? साधु की सेवा स्वाध्याय में आयेगी कि नहीं? अरहन्तों की आराधना स्वाध्याय में आयेगी कि नहीं? क्या मात्र पढ़ना ही स्वाध्याय है? यदि कोई युवा दिगम्बर मुनि का कमण्डलु पकड़ करके दस किलोमीटर विहार कराने गया है, तो विश्वास रखना, उस बच्चे ने स्वाध्याय किया है। आप तो मात्र लिखा पढ़ रहे थे, उसने

लख-लख कर पढ़ा है। आपको जो मन्दिर और स्वाध्याय में आनन्द आ रहा था, उसको विहार में ही उसकी विशुद्धि बढ़ रही है, तो वह भी आपके लिये श्लाघनीय होना चाहिये। धर्मात्माओं को परस्पर में हर धर्मात्मा की धार्मिक क्रिया की प्रशंसा करनी चाहिये। जिसका स्वाध्याय में मन नहीं लग रहा हो और किसी का स्वाध्याय में मन लगता है, तो कमण्डलु उठानेवाले को चाहिये कि स्वाध्याय की भी प्रशंसा करे। स्वाध्याय की परम्परा यदि बन्द हो जायेगी तो फिर द्रव्यश्रुत का लोप हो जायेगा। द्रव्यश्रुत का लोप होगा तो भावश्रुत का भी लोप होगा।

किसी मन्दिर में आप देखो कि सुबह या शाम यदि स्वाध्याय नहीं होता है। तो भले ही बेटा! तुम पाँच मिनिट गद्दी लगा कर बैठ जाना, पर बैठ जाना। यह मत सोचना कि कोई सुनने आयेगा कि नहीं। प्रवचन यहाँ हो रहे हैं। देखो, वह वृद्ध दादा कल कह रहे थे—**"नमोस्तु शासन जयवन्त हो"** मैंने पूछा, दादा! तुम कहाँ से सीख गये? बोले, 'महाराज! कल जो आपने प्रवचन किये थे।' ज्ञानी! सोच सुधार लो तो सब सुधर जायेगा। अब सोचो, कौन जीव कहाँ सुन रहा है। मेरा विश्वास है कि यह युवा गद्दी लगाकर बैठ गये तो वृद्ध लोग आकर्षित होंगे।

भैया! सही बात ऐसी है कि छोटी उम्र सबको लुभाती है। जब यह युवा सामने जिनवाणी रखकर पढ़ रहे होंगे, विश्वास रखो, बहुत लोगों को लुभायेंगे। यदि एक युवा ने मन्दिर में शास्त्र वाचना प्रारम्भ कर दी तो मालूम है तुमने क्या किया है? बेटा! जो वेदी होती है, गर्भालय, उसको कहते हैं समवसरण। गंधकुटी बनाना चाहिये। गंधकुटी में जो पूजा होती है, उससे वातावरण प्रशस्त होता है। ध्वनि का प्रसारण होता है। कलश पर ध्वजा लगी हुयी है, सब प्रसारण हो रहा है। पूरा वातावरण प्रशस्त होता है। जितने भी मन्दिर बनाओ, खुले हाल में भगवान् विराजमान करना बन्द करो। प्राचीनकाल के जैसे गर्भगृहपूर्वक जिनालय की स्थापना करो। उसका नाम है समवसरण। समवसरण लगा है और वाणी न खिरे, तो कैसा लगेगा? जब तुम स्वाध्याय करने बैठो मन्दिर जी में, तो यह कल्पना करना कि समवसरण लगा हुआ है और बारह सभा में श्रावक की सभा में बैठा

हूँ और अरहन्त की वाणी खिर रही है। बेटा! तुमने उस स्वाध्याय को किया और चार लोग सुनने बैठ गये तो तुमने उनकी अनेक भवों की निर्जरा करा दी। यदि एक व्यक्ति ने भी सम्यक्त्व प्राप्त करा लिया, तो तुम्हारा बैठना सफल हो गया। मन्दिर में यदि एक घण्टे पूजा करते हो तो कम-से-कम पाँच मिनिट स्वाध्याय करो। वह मुझे मालुम है कि पाँच मिनिट को ग्रंथ खोलेगा और मन लग गया तो पता नहीं चलेगा कि कितनी देर हो गयी। करेगा-ही-करेगा। इसलिये हर जिनालय में स्वाध्याय होना चाहिये।

ज्ञानियो! जिस जिनालय में स्वाध्याय की परम्परा नहीं है, समवसरण की व्यवस्था नहीं बन पा रही है, प्रभु तो विराजे हैं, पर वाणी नहीं खिर रही है। इसलिये हर मन्दिर में स्वाध्याय होना चाहिये। उससे क्या होगा? **"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"** आपका भी उपकार होगा और सामनेवाले का भी उपकार होगा। आप चाहो कि में ज्ञानी बन जाऊँ, तो नहीं। श्रोता तुमको ज्ञानी बना देंगे। अध्यापक ज्ञानी नहीं होता, उसे तो छात्र ज्ञानी बना देते हैं। गुरु को ज्ञानी शिष्य बनाते हैं। शिष्य ही नहीं होंगे, कोई सुननेवाला ही नहीं होगा, तो तुम्हारे ज्ञान का प्रयोग क्या होगा? घोड़ा क्यों अड़ा, पान क्यों सड़ा, रोटी क्यों जली, विद्या क्यों बिसरी? फेरी नहीं। इसलिये फेरते रहो। अनुप्रेक्षा भी एक स्वाध्याय होता है। आनन्द आ रहा है, यह आनन्द तो तुम्हारे घर में भी है।

मुमुक्षुओ! राग-द्वेष की चर्चायें तो घर-घर में होती हैं, पर पुण्यात्मा जीव के घर में जिनवाणी होती है। ज्ञानी! इससे निर्ग्रन्थों पर आस्थावान होकर निर्ग्रन्थ की वाणी पर भी आस्था करना, अरहन्त की वाणी पर भी आस्था करना। जो जिनवाणी पर आस्था रखता है और जिनवाणी का विस्तार करता है, वह जिनशासन का विस्तार करता है। जिनशासन का प्रारम्भ कब से होता है? तीर्थंकर के जन्म लेने से ही तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ नहीं होता है। तीर्थंकर की दीक्षा होने से भी तीर्थंकर-शासन प्रारम्भ नहीं होता है। तीर्थंकर कैवल्य होने पर भी तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ नहीं होता है। जब तीर्थंकर की वाणी खिरती है, तब तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ होता है। धर्म की पहचान तो वाणी है। माताओ! यहाँ-वहाँ की

चर्चा करके समय को क्यों बर्बाद करते हो? आपको घर में भी समय मिले तो जिनवाणी विस्तार दो। मेहमान भी तुम्हारे घर में आये तो उनको यह महसूस हो जाये कि इनके घर में जिनवाणी गोष्ठी होती है और हमारे घर में गप्पों की गोष्ठी होती है। कोई बाहर से आये तो कुछ सीख कर जाये। भैया! मुझे तो क्रोंच की फली अच्छी लगती है। जो भी उसके पास से गुजरता है, उसे भूल नहीं पाता है। जरा भी लग गयी, फिर देखो, पूरे शरीर में खुजली चलती है। घर जायेगा तो याद तो रहेगी। हे ज्ञानी! क्रोंच की फली की याद तो कर रहे हो। चन्दन का मूठा भी तो है। हाथ में रखकर पुनः छोड़ दो, वह हाथ को सुगन्धित कर देगा। ऐसे ही मुमुक्षु! तुम्हारा घर उस चन्दन के मूठे के समान हो। जो भी तुम्हारे घर आये, वह अपने घर जाकर याद करे कि कहीं ऐसा भी घर है। जिनके घर में जिनवाणी गूँजती है, जिन घरों में निर्ग्रन्थों के आहार होते हैं और अरहन्तों की वाणी गूँजती हो, वे घर जिनालय के तुल्य हो जाते हैं। अपने-अपने घर में एक शास्त्र जरूर विराजमान करना। पर उचित स्थान पर रखना, अशुद्ध स्थान पर मत रखना। हर श्रावक के घर में जिनवाणी होना चाहिये। कारण पूछो क्यों?

माँ! जैसे आप अनेक प्रकार के द्रव्यों की सुरक्षा करते हो, ऐसे ही घर-घर में उचित स्थान पर जिनवाणी विराजमान करो। देव-शास्त्र-गुरु का अभाव हो गया तो विश्वास रखो, इन श्रावकों से जिनधर्म बचनेवाला नहीं है। समझ रहे हो ज्ञानी?

आचार्य कह रहे हैं कि एक तपस्वी निर्ग्रन्थ मुनि एक श्वास प्रमाण काल भी साधना करे तो कोटि-कोटि भवों के पापों का नाश कर लेता है। जिसने महिमा को जाना ही नहीं, वह क्या कर लेगा? इस बात को कह रहे हैं।

अज्ञानी क्षिपयेत्कर्म, यज्जन्मशतकोटिभिः।
तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा, निहन्त्यन्तर्मुहूर्त्ततः॥ सा. स. 188॥
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिनमाहिं त्रिगुप्ति तै सहज टरैं जे॥ छहढाला॥

जिन कर्मों की छपणा अज्ञानी जीव करोड़ों वर्ष में कर पाता है, उतने कर्मों की निर्जरा ज्ञानीजीव (वह कौन-सा ज्ञानी जीव? जो तीन गुप्तियों से युक्त है। वह तो वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन हैं।) एक श्वास मात्र के काल में उतने कर्मों को क्षय कर लेते हैं। इसलिये भैया! कर्मों को भिन्न करना चाहते हो तो रत्नत्रय को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। इसके बिना सम्भव नहीं है।

ज्ञानी! नरक जाने के लिये क्या करना पड़ता है? **"बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः"** बहुत आरम्भ और परिग्रह का संचय करो, बढ़ाओ आराम से आप नरक चले जाओगे। अच्छा परिग्रह जोड़ लो, खूब आरम्भ-सारम्भ करो तो कोई रोकने नहीं आयेगा, कोई भी गति अवरोधक नहीं है।

अब मेरा प्रश्न है। बेटा! तू पढ़ाई कर रहा है, तू कुछ कमाना चाहता है। क्यों? कुछ कमाने के लिये भी दुःखी किस बात पर है? कि महाराज! इतने से काम नहीं चल रहा है, और होना चाहिये, और होना चाहिए। **"बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः"** क्यों दुःखी हो रहा है? कि बहुत नहीं मिल पा रहा है। यदि बहुत मिलेगा, तो कहाँ जायेगा? नरक जायेगा। नरक जाने के साधन नहीं मिल रहे हैं तो दुःखी हो रहा है। हे अज्ञानी! सुन! नरक जाने के साधन कम हैं, इसलिये तू दुःखी हो रहा है। दुःखी होने के लिये दुःखी हो रहा है। क्या कभी सोचा था ऐसा? नहीं सोचा, तो आज सोच ले। ज्ञानी! दुःखी होने के लिये तू दुःखी हो रहा है। धन्य हैं वे निर्ग्रन्थ योगीश्वर जो करोड़ जन्मों में जो पाप करे थे, वह सारे पापकर्मों के बन्ध को श्वास मात्र में (अन्तर्मुहूर्त काल में) क्षय कर लेते हैं। पर ज्ञानी यानि त्रिगुप्ति से युक्त आत्मा। अज्ञानी करोड़ों वर्ष में भी उतनी कर्मों की क्षपणा नहीं कर पाता और वह ज्ञानी श्वास मात्र में (अन्तर्मुहूर्त में) क्षय कर रहा है।

भूल यदि जीवन में हो चुकी है तो उसे सुधार लो, लेकिन अब नयी भूल मत करो और जिनसे भूल नहीं हुई है, वे जानकर भूल न करें। भूल हो गयी है तो प्रायश्चित्त करके सुधार लो, परमात्मा हो जाओगे। प्रायश्चित्त तप है। अंतरंग

तप है। कपड़ा मलिन हुआ ही नहीं, कपड़ा मलिन होता ही नहीं। दिखता तो है, पर वस्त्रों में जो मलिनता है, वह वस्त्रों की नहीं है। पर की मलिनता से वस्त्र मलिन दिख रहा है। वस्त्र यदि मलिन हो जायेगा तो साबुन लगाने से साफ कैसे हो पायेगा? मलिनता वस्त्र में नहीं है, वह तो धूल की है। मल की जो मलिनता है, वह वस्त्र में आच्छादित हो गयी। साबुन आदि लगाकर उसको दूर कर देते हो। ऐसे ही मुमुक्षुओ! आत्मा में मलिनता नहीं है, भावों की मलिनता है। भावों की मलिनता ने आत्मा को मलिन कर दिया है। प्रायश्चित्त का साबुन लगायेंगे तो मेरी आत्मा भी धुल जायेगी। मेरी आत्मा भी वही हो जायेगी जो अरहन्तों और सिद्धों की है। मित्रो! जीवन में कभी दोष भी हो गये हों तो अपने आप को हीन मानकर बैठे मत रहना। कपड़े मैले होते हैं, क्या उन्हें फेंक देते हो? मेरे मित्र! जब मलिन वस्त्र को तू धोकर पहन लेता है, तो अपने मलिन चित्त को भी प्रायश्चित्त व आलोचना से धोकर पुनः परमात्मा की ओर चलना चाहिये। यही वस्तुस्वभाव है, यही आत्मा का धर्म है। ऐसी व्याख्या कर-करके लोग भ्रमित हो गये हैं कि तूने तो भैया! पाप कर लिये हैं, अब तू क्या कर पायेगा? उसको कहो कि कपड़े मलिन हो गये तो क्या फेंक दूँ? अरे! पाप मेरे मन ने किया है तो धोयेगा भी मेरा मन। जिस प्रज्ञा से बन्ध हुआ है, उसी प्रज्ञा से मोक्ष होता है। जिस मन से पाप हुआ है, उसी मन से प्रक्षालन भी होता है। इसलिये आप इस विकल्प में मत रहना और अपने आप को हीन मानकर मत बैठ जाना कि अब मैं कुछ कर ही नहीं सकता हूँ। पाप का प्रक्षालन करके आप भी परमात्मा बन सकते हो। बहिरात्मा ही अन्तर-आत्मा बनता है और अन्तर-आत्मा ही परमात्मा होता है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"तप रहित जीवन निष्फल"

जीवितेनापि किं तेन, कृता न निर्जरा तदा।
कर्मणां संवरो वापि, संसारासार कारिणाम्॥ 189॥

अन्वयार्थ-तेन जीवितेन अपि किं = उस मानव के जीवन से क्या जिसने, **तदा** = इस मानव-जन्म के अवसर पर, **संसारासार-कारिणाम् कर्मणां** = इस असार संसार में भ्रमण करानेवाले कर्मों का, **संवरः वा अपि निर्जरा न कृता** = न संवर ही किया और न निर्जरा ही की?

भावार्थ-हे आत्मन्! उस मानव-जीवन से क्या प्रयोजन है, जिसने इस असार संसार में भ्रमण करानेवाले कर्मों का न संवर ही किया और न निर्जरा ही की?

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में जीवन की सफलता की चर्चा करते हुये समझा रहे हैं। वे जीव महान् हैं, जिन्होंने जीवन में मरने के पहले कुछ करने का विचार किया है। वे ही श्रेष्ठ हैं, जो मृत्यु के पहले ऐसा करना चाहते हैं। **कर्म का कलंक धो लेना सरल है, पर जीवन में अशुभ कर्म के कलंक को धो पाना कठिन है। जीवन में आचरणविहीनता का जो कलंक है, उसे धो पाना अत्यन्त कठिन है। परमात्मा हो जाना सरल है, भगवत्ता की सिद्धि कर लेना सरल है, पर भाई-भाई के साथ जो विसंवाद हुआ है, उसके कलंक को धोने के लिये आपके पास कोई पानी नहीं है।** कैकई से

पूछना कि हे माँ! आपने आर्यिका दीक्षा भी ली, स्वर्ग को प्राप्त भी किया, लेकिन बेटा भरत को राज्य माँग कर राम जंगल चले गये थे उस बात का इतिहास तो नहीं मिटा।

बाहुबली-भरत से पूछ लेना कि आप दोनों चरमशरीरी निर्वाण को प्राप्त हो चुके हो, परमात्म पद को प्राप्त हो चुके हो, लेकिन जब भी इतिहास का पृष्ठ खुलता है तो कहता है कि भूमि के राग में भाई-भाई का युद्ध हो गया। भरतेश! अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य को प्राप्त करने वाले, शीघ्र निर्वाण को प्राप्त होने वाले, पर आपके जीवन में कलंक लग गया था कि आपने अपने सगे भाई पर चक्र चला दिया था। लेकिन चक्र तो समझदार था। वह कभी कुटुम्ब के ऊपर चलता नहीं। चक्रवर्ती का चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा लगाकर वापस लौट कर आ गया ज्ञानी! एक क्षण को अपने में बैठकर समझना। लोक की व्यवस्था तो भंग नहीं हुयी, चक्ररत्न ने अपनी मर्यादा को भंग नहीं किया, पर हे भूपति, हे चक्रवर्ती, हे षट्खण्ड के स्वामी! भारत भूमि का इस युग का प्रथम चक्रवर्ती का मान भंग हो गया। **जहर इतना घातक नहीं है, क्योंकि जहर खानेवाले के मात्र वर्तमान का शरीर नाश होता है, पर मान खानेवाले के भव-भव का नाश होता है। जितना विघात जहर ने नहीं किया है, उतना विघात मान ने किया है। मान के आवेश में मानवता का विसर्जन व्यक्ति क्षण मात्र में कर देता है।**

ज्ञानियो! भाई से भी दुश्मनी, पिता से भी दुश्मनी कि जो मैंने कह दिया, वह क्यों नहीं माना? सरलता का जीवन जीना चाहते हो तो 'मैंने कह दिया' इसे कहना बन्द कर दो। आनन्दमयी जीवन जीने के लिये 'जो मैंने कह दिया' उसे भूल जाओ। मित्र! मान तो आपके ही पास नहीं, दूसरे के पास भी है। वह भी चाहता है कि मैंने जो कह दिया वह हो जाये। जब दो मान के मान टकराते हैं, दो पत्थर आपस में घर्षित हो जायें, या सूखे बाँस रगड़ जायें, तो क्या होगा? इस बाँस में भी आग नहीं, उस बाँस में भी आग नहीं, पर दो बाँसों में घर्षण

से अग्नि की चिंगारी क्यों हो जाती है? दो पत्थर आपस में घर्षित हो जायें तो चिंगारी उत्पन्न हो जाती है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! दो मान के मान जब घर्षित हो जाते हैं, तो चिंगारी निकलती है। कषाय कहीं नहीं थी। आप भी शीतल थे, वह भी शीतल थे। हर जगह शीतलता थी। **ठण्डे बाँस में भी आग लग जाती है। ठण्डे पत्थर में भी चिंगारी उत्पन्न हो जाती है। यदि क्रोध को, लोभ को रोकना चाहते हो तो मान को रोक लो। मानवता को सुरक्षित रखना चाहते हो तो मान को रोक लो।** भीतर का स्वामी कहता है कि बेटा! तुमने अच्छा नहीं किया। जीवन के उन बिन्दुओं पर चिन्तन कर लेना कि तेरे जीवन में ऐसे दिन भी घटित हुये हैं जब मन कह रहा था कि मैं सही नहीं हूँ; पर मान कह रहा था कि मैं मानूँगा नहीं।

दशानन को भी पता था कि मैंने बुरा किया है। जब रावण अपने कक्ष में बैठता था और सम्यक् सोचता था, विवेकपूर्वक चिन्तन करता था, तो उसका मन भी कहता था कि मैंने गलत किया है, श्री राम की पत्नि का हरण करके एक सती को संकट में डाला है और मैंने अपनी कुल-परम्परा को लज्जित किया है। हाय! मैंने अच्छा नहीं किया। एक दिन रावण सोच रहा था कि राम ने मेरा बिगाड़ा ही क्या है? मैं तो राम की सीता को वापस कर दूँगा। लेकिन लंका को तो हनुमान ने ध्वस्त किया, हमारे भवनों को अंगद ने नष्ट किया है। इन दो को नहीं छोड़ूँगा। श्री राम ने तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा। राम तो बहुत सज्जन पुरुष हैं। यह ध्रुव सत्य है कि **सत्य को शत्रु भी सत्य ही समझता है। शत्रुता कषाय की है, सत्य की नहीं है।** लंकेश को भी मालूम था कि राम सज्जन हैं, राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उन्होंने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। मन सत्य कहता है, लेकिन मान सत्य पर चलने देता नहीं।

मुमुक्षुओ! मान सत्य पर चलने देता नहीं। मान के राग में कितनी बार आप अपने बेटे के साथ दुर्व्यवहार कर चुके हो, कितनी बार तुम अपनी माँ का अपमान कर चुके हो अपने मान के राग में। कितने बार अपने से

ज्येष्ठों को तुम बदनाम कर चुके हो? अपने मान के राग में। मान मानवता की पहचान नहीं होने देता, जब मानव को मानव न दिखे, तब समझ लेना कि मेरे ऊपर मान का पर्दा पड़ा है। किसी के चेहरे पर काला कपड़ा पड़ा हो तो उसमें चेहरा दिख सकता है। पर जिसके ऊपर मान का पर्दा पड़ा हुआ है, उसको सत्य का चेहरा दिखाई नहीं देता। ऐसा ही है। जो कुछ हूँ, सो मैं हूँ। भूल गये तुम, भारत की भूमि पर कोटि-कोटि सम्राट होकर चले गये हैं। आपके घर में तो वह भी नहीं है जो ईंट ढोता है। अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी का स्वामी भी जब घर छोड़कर दिगम्बर मुनि बन सकता है, तो तुम्हारे पास क्या है? बेचारों से एक कालीकलूटी भी नहीं छूटती है और वह छियानवे हजार को छोड़कर चला गया। सत्य यह है।

ज्ञानी! जैसे शरीर पर तेल मालिश के उपरांत पानी छोड़ दें, तो पानी मोती बनकर टपक जाता है, ऐसे ही जिसके अन्दर मान का राग बैठा है, वह सत्य को पानी की भाँति बाहर फेंक देता है। आचार्य कुलभद्र स्वामी यही कह रहे हैं—

हे मानव! अपनी मानवता को निष्फल मत कर। दुनियाँ माने या न माने, एक क्षण को अपने मान को मना ले। तीर्थंकर भगवान् भी पधार जायें तो मान उनके भी दर्शन नहीं करने देता। यदि किसी के मन में मान आ जाये कि मैं तो अपने पार्श्वनाथ जिनालय ही जाऊँगा, तो चन्द्रप्रभु जिनालय की देहरी से निकल जायेगा, पर ऊपर दर्शन करने नहीं जायेगा। जगत् में ऐसे भी लोग हैं। बोलते हैं कि मेरे वंश का मन्दिर है मैं तो वहीं जाऊँगा। अरे भाई! वह तीर्थंकर भगवान् की वन्दना भी नहीं कर सकता है। मैं तो नहीं जा सकता। क्यों भाई? जो पार्श्वनाथ आपके दादा के बनाये जिनालय में हैं, वही तो दूसरे के बनाये जिनालय में हैं। भगवान् में भेद कब से आ गया? बहुत अच्छा हुआ कि जितने तीर्थंकर थे, वे चतुर्थकाल में निर्वाण को प्राप्त हो गये। यदि पंचमकाल में भगवान् होते, तो भक्त उनको भी न छोड़ते। कान में कहते, सुनो भगवान्! जैसा मैं कहूँ वैसा

करो। अच्छा हुआ जो भगवान् पंचमकाल से सुरक्षित हो गये, अन्यथा इस कलिकाल के काले हृदय परमात्मा को भी नहीं छोड़ते। बोलते कि जैसा मैं कह रहा हूँ, वैसा करो आप। बहुत अच्छा हुआ कि भगवान् चतुर्थकाल में ही चले गये। ऐसा नियोग ही है।

भरतेश! कर्मकलंक से रहित आप हो गये, लेकिन इतिहास कह रहा है कि भाई-भाई में युद्ध हुआ था और भाई ने भाई को मल्लयुद्ध में उठाकर पटक दिया और भाई ने आवेश में आकरके भाई पर सुदर्शन चक्र चला दिया। पर चक्र ने भाई का घात नहीं किया, चक्र ने मर्यादा नहीं तोड़ी, लेकिन भइया ने भइया की मर्यादा तोड़ दी।

ज्ञानियो! वह क्षण कैसा होगा जब चक्र भरतेश के हाथ में है और बाहुबलि ने देखा होगा कि भरत की आँखें नीचे हैं। बाहुबलि का हृदय वैराग्य से भर गया। बेटा सोम को बाहुबलि ने बुलाया, उसका हाथ पकड़ कर बोले—हे भइया भरत! इसे आप सँभालो। ज्ञानियो! वह क्षण कैसा होगा? उस समय भरत की सारी शक्ति क्षीण हो चुकी होगी—हाय मैंने क्या कर लिया? माँ नन्दा-सुनन्दा क्या निहार रही हैं? कि मेरे बेटो! तीर्थंकर की पत्नि होने का सौभाग्य जो आनन्द दे रहा था, तूने एक क्षण में विलीन करा दिया। जो माँ गर्भ से यह कहती थी कि मेरा बेटा कामदेव, चक्रवर्ती है, वही माँ विचार करती है कि इतिहास में कलंक का टीका मेरे बेटे बन जायेंगे। बेटो! ध्यान से सुनना। पानी पीकर सो जाना, पर भाई-भाई कभी लड़ना मत। इतिहास काला मत खड़ा कर देना। तेरा भाग्य होगा तो श्मसान में तेरा भवन बनेगा। भाग्य नहीं होगा तो भवन श्मसान बनेगा।

मुमुक्षुओ! पुण्य प्रबल होता है तो श्मसान में भी भवन बनते हैं और पुण्य क्षीण हो जाता है तो भवन भी श्मसान बन जाता है। मुझे तो आज तक भूत-व्यंतर नहीं लगे। कई श्मसान में विश्राम किया। कई बार जली चिता की राख के ऊपर पाटा लगाया, पर भूत भी नहीं आया, व्यंतर भी नहीं आया मरघट पर। सारी

दुनियाँ घबराती है। वो भूत क्या करेगा जब मैं भूतनाथ का भक्त हूँ? वे तीर्थंकर ऋषभदेव, जिनको मानतुंग स्वामी ने भूतनाथ कहा है। जिसका आराध्य देव भूतों का नाथ हो, भूत उसका क्या कर सकेगा?

घबराने की, विकल्प की कोई आवश्यकता नहीं है। बस, भाग्य पर भरोसा रखना। दुनियाँ रूठ जाये तो विकल्प नहीं करना, लेकिन दो को कभी मत छोड़ना। एक भाग्य है और दूसरा भगवान् है। तीसरा कोई भी साथ देता नहीं है। मेरा भाग्य और मेरा भगवान्, दो ही मेरे अपने होने चाहिये। संकट में कौन साथ देगा? आपको मालूम है, जब द्रोपदी का चीर हरण हो रहा था, तब कभी भीम, कभी अर्जुन, तो कभी युधिष्ठर को निहार रही थी, नकुल व सहदेव को निहार रही थी कि पाँच में से कोई एक तो आओ, मेरी रक्षा करो। सत्य है कि जब तेरी चमकती चादर थी, सो भोगों की बलि पर भेंट कर दी। जब बूढ़ा हो गया, सो माला लेकर बैठ गया—नमः सिद्धेभ्यः, नमः सिद्धेभ्यः। समझ में आ गया कि सड़ गया सो भगवान् को सौंप दो, चमक रहा था सो भोगों को दे रहा था। आदमी कितना स्वार्थी है। जब देख लेता है कि मेरी अब नहीं चलती है, तब भगवान् का नाम लेता है। पहली तो अपनी चलाता है। द्रोपदी ने भी क्या किया? जब देख लिया कि पाँचों में से कोई काम के नहीं हैं, फिर कहती है—

इक गाँवपति जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी॥

हे स्वामी! एक नगर का सरपंच भी होता है वह दुखियों के दुःख दूर करता है। तुम तो तीनलोक के नाथ हो। मेरा चीर हरण होता है और आप देखते हो? क्षण नहीं लगा, चीर वृद्धिमान हो गया। कब? जब उसने भक्ति की। इसके पहले आप भी कभी भगवान् का नाम नहीं लेते हो। जब आदमी को डर लगता है, तभी भगवान् का नाम लेता है। इसके पहले तो 'जो कुछ हूँ, सो मैं हूँ।' मानवता इसी में धूमिल हो गयी, सज्जनता इसी में पलायन कर गयी। चिन्तन ही नहीं जा रहा है—कि अहो! मिट्टी के पुतलो! मिट्टी में मिलने में देर नहीं लगेगी, इसलिये

मिट्टी में मिलने के पहले कुछ ऐसा करके जाओ कि लोग तुम्हें मिट्टी में न मिला पायें।

भैया! धन्य हो उन जीवों को जो कभी भी मिट्टी में नहीं मिलते। जिनका निर्वाण होता है, उनका शरीर मिट्टी में नहीं मिलता है, कर्पूर की भाँति उड़ जाता है। यदि मिट्टी में नहीं मिलना है तो ऐसा पुरुषार्थ करो, अपने मन को मिट्टी मत बनाओ। मन सत्य जानता है। ऐसा यहाँ कोई जीव नहीं है जो मन की सत्यता को नहीं जानता हो। भइया! मेरे मन की आप नहीं जानते हो, यह मैं मान सकता हूँ। पड़ौसी के मन की नहीं जानते हो, यह भी मैं मान सकता हूँ। ज्ञानियो! आप अपने मन की जानते हो कि नहीं, इतनी-सी बात बता दो? सत्य बताना, झूठ मत बोलना। देखो भइया! दुनियाँ से झूठ बोला, सो पंचमकाल में आ गये। आज सत्य बोल देना। यहाँ कितने लोग ऐसे हैं जिनको अपने मन का ज्ञान नहीं है?

आज से कहना बन्द कर दो कि महाराज! मैंने गल्ती से पाप कर दिया, मुझे मालूम नहीं था। अपनी बात क्या तुझे मालूम नहीं है? सारा जगत् जो पाप कर रहा है, जान-जान कर बुद्धिपूर्वक कर रहा है। अपने मन के सम्पूर्ण विचार आपको मालूम हैं। आपको अपने मन की हर अवस्था मालूम है कि किस स्थान पर बैठकर तुमने क्या-क्या खोटा सोचा था। सब मालूम है। किस स्थान पर आप क्या करना चाह रहे थे, यह भी मालूम है।

हे मुमुक्षुओ! आप दुनियाँ को छल सकते हो, पर अपने मन को नहीं छल सकते हो। मन को सब पता है कि तुमने क्या किया है? दुनियाँ को काला चादरा दिखा सकते हो, दुनियाँ की आँखों में धूल झोंक सकते हो, लेकिन एक समय बैठकर अपने मन से ही पूछ लेना कि मन को छल पायेगा क्या?

भैया! तुम सबको असत्य को सत्य करके दिखा सकते हो, पर स्वयं के मन से पूछो असत्य-असत्य है और सत्य-सत्य ही है। यदि रहस्य समझना है तो आवाज मत सुनो, वस्तु को पहचानो। कानों के विषय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं,

पर आँखों के विषय तो एक-से ही होते हैं। आँखों से पहचानो। वे अज्ञानी लोग होते हैं जो कानों से सुनकर वस्तु को भिन्न समझ लेते हैं। कानों से ही मत सुनो, आँखों से भी देखो। चाहे गढ़ेल बोलो, चाहे लौकी, घिया, आल कुछ भी बोलो, पहले आँखों से देख लेना, फिर वस्तु की पहचान करना। सत्य यह है कि जिसने कानों का सुना और निर्णय कर बैठा, वह धोके में जाता है। आँखों से देखो, फिर निर्णय करो, यह कोई बलाय नहीं है।

कर्नाटक में जब श्रावक थाली दिखाता था तो मैं उनकी नहीं सुनता था, क्योंकि मुझे मालूम था कि यह अपनी भाषा में बोलनेवाले हैं। बस, हम तो सामग्री पहचानना जानते हैं कि यह ग्राह्य है और यह अग्राह्य है। कर्नाटक में हालू यानि दूध है। महाराष्ट्र में नमक को मीठ बोलते हैं। तुमने कहीं मीठ का मीट समझ लिया तो अनर्थ हो जायेगा? इसलिये शब्दों को नहीं, पदार्थ को देखना। वस्तु को सुनो मत, वस्तु को देखना सीखो। जितने भी संसार में युद्ध और विसंवाद हुये हैं, तुम्हारे घर में भी एक चूल्हे के चार चूल्हे रखे गये हैं, वह सुनने से रखे गये, देखने से नहीं रखे गये हैं। इसलिये सुनी मत सुनो, चलकर देख भी लो। जाकर देख लो कि वस्तु है क्या? देखा है नहीं, जाना है नहीं, मिले हो नहीं, ज्ञानी! विकल्प कहाँ से हैं आपके मन में? वस्तुस्वरूप समझो। **मान सत्य को देखने नहीं देता है। मान सत्य से मिलने नहीं देता है। मान सत्य को स्वीकारने भी नहीं देता है। इसलिये जीवन में मानवता का कोई घातक है तो मान है। जितने नष्ट हुये हैं, हो रहे हैं, होंगे भविष्य में, सबका कारण है मान।** मान जाओ मेरी बात, मत मानो मान की। मान सत्य को स्वीकार होने नहीं देता है। कितने बार जीवन में आपका मन करता है कि मैंने अमुक व्यक्ति के पैसे ले लिये थे, वापस नहीं किये, करना चाहिये। पर नहीं, कैसे करूँ?

मुमुक्षु! आदमी झुकना तो चाहता है, पर झुकने नहीं दे रहा है, वह कौन है? मान। व्यक्ति को अपने अन्दर की हर सचाई मालूम रहती है कि में भूतार्थ हूँ कि अभूतार्थ हूँ। यह आपको मालूम रहती है। लेकिन कैसे करूँ? मेरे मित्र!

मत कहो किसी से, पर उससे तो कह दो जो जान रहा है। वह कौन है? वह मन है। आपको समय सोचने का दे दूँ। कितने बार तुम क्या-क्या करके आते हो और मन कहता है कि तुमने आज अच्छा नहीं किया। पर मान कहता है कि मैं किसी को नहीं बताऊँगा। क्यों बालको! ऐसा हुआ कि नहीं? गुटका खाना सीख गये। बेटा! मेरी मत मानना, पर अपने ऊपर करुणा तो कर लेना। जब कैंसर का फोड़ा होगा, तो उसे कहाँ रख कर आओगे? जैसे कैंसर का फोड़ा है, वैसा ही मनुष्य का मान है। अन्दर की बात समझो। फोड़े जैसा ही, वह मन पता नहीं कहाँ फूट पड़े। शरीर में किसी भी अंग पर हो सकता है। ऐसे ही मनुष्य के अन्दर मान है। मान होता भीतर है, पर कैंसर में फोड़े की तरह फूटता है।

ज्ञानियो! यदि आपको आत्मा को कैंसर के फोड़े से सुरक्षित रखना है, तो मान का गुटखा खाना छोड़ दो। जो शरीर के कैंसर से बचना चाहते हैं, वे मुख का गुटखा खाना छोड़ दें। मुझे क्या लेना-देना? जो है, सो है। जिनको जल्दी ऊपर जाना हो, वह एक की जगह पचास खायें। यदि आत्मा की रक्षा करना चाहते हो तो आज संकल्प कर लो कि गुटखा नहीं खायेंगे। पुड़िया का गुटखा छोड़ना सरल है, पर मान का गुटखा छोड़ना कठिन है।

सत्य है कि सब छूटना सरल है, पर मान छूटना बड़ा कठिन है। जब तक मान नहीं छूटता, तब तक भगवान् बननेवाले तुम नहीं हो। इसलिये आचार्यभगवन् श्लोक में कह रहे हैं–

जीवितेनापि किं तेन, कृता न निर्जरा तदा।
कर्मणां संवरो वापि, संसारासार कारिणाम्॥ सा. स. 189॥

ज्ञानियो! उस व्यक्ति का जीवन भी किस काम का जिस व्यक्ति ने संसार में रहकर ऐसा कोई काम न किया हो जिससे कर्मों की निर्जरा हो, कर्मों का संवर हो? जिसने संवर-निर्जरा का पुरुषार्थ नहीं किया, उससे कह रहे हैं कि उस व्यक्ति का उत्तम कुल में जन्म लेना, नरदेह को प्राप्त करना निष्फल है। भैया! आज

से प्रयास करो कि मेरे कर्मों का संवर हो, अष्ट कर्म रुकें और जो हमने पूर्व में पाप किये वे नष्ट होने लग जायें, निर्जीर्ण होने लग जायें, वैसा काम करो। रास्ते चलते-चलते भी धर्म होता है। अच्छा सोचने के लिये क्या कुछ करने की आवश्यकता है?

प्रत्येक जीव का कल्याण हो। प्रत्येक जीव सुखमय जीवन जियें। प्राणिमात्र की रक्षा हो, मुमुक्षुओ! ऐसा क्या नहीं सोच सकते हो? यही तो धर्म है। अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु जहाँ लिखा हो, वहाँ जान लेते हो कि जिनालय होना चाहिये और कत्लखाने पर अर्हंत नाम लिखा हो, अब बताओ कि तुम्हारे अर्हंत का क्या होगा? बस, संकेत को समझो। जिनको हम पवित्र नाम से पूजते हैं, पता नहीं सरकार को क्या हो जाता है। पर इतना ध्यान रखें। हम लोग विवेकी हैं, समझदार हैं। विवेकपूर्वक उनको ऐसा उत्तर देना चाहिये कि वह समझ जायें कि परमेष्ठी का नाम पाप में नहीं लिखा जाता है। सुना आप लोगों ने? गाजियाबाद में ऐसा उपक्रम हुआ है, एक मिसाइल का नाम रखा था। अर्हंत हमारे परमेष्ठी हैं। उनके नाम पर ही नाम रख दिया तो कोई अर्हंत नाम लेना पसन्द नहीं करेगा। यह तो आपकी पहचान मिटाने का उपक्रम चल रहा है। ज्ञानियो! अपनी पहचान और अपने आपको सुरक्षित रखना है। अर्हंत का तात्पर्य कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है, किसी जीव का हनन करना नहीं है। ज्ञानियो! अपने जीवन में विवेक के साथ मानवता की पहचान को बनाकर रखना है और मानवता की रक्षा करना है। जीवन में महान् बनना है तो 'वाणी संयम' और 'प्राणी संयम', इन दो बातों को ध्यान में रखना। ऐसे वचन मत बोलना जिससे किसी की हिंसा हो जाये और ऐसा काम मत करना जिससे किसी के प्राण चले जायें।

जितना प्राणीसंयम महत्त्वपूर्ण है, उतना ही वाणीसंयम महत्त्वपूर्ण है। जितने लोक में अनर्थ हुये हैं, सब वाणीसंयम के अभाव में हुये हैं। आपके घर में झगड़ा होता है। मित्रों के बीच में भी ऐसे ही मजाक-मजाक में कुछ बोल दिया जाता है तो झगड़ा प्रारम्भ हो जाता है। इसलिये वाणीसंयम। बोलने के पहले तौलो।

विवेकपूर्वक बोलो। ऐसा मत बोलो जिससे लोगों की कषायें फूटें। ऐसा मत बोलो जिससे सम्यक् छूटे। ऐसा मत बोलो जिससे कि दूसरे के प्राणों का वियोग हो जाये। आज से सोच-समझकर बोलना। देखो, जानो, जाने दो। क्या करना है? झगड़े से बचना है। तो **देखो, जानो, जाने दो। जो है, सो है।**

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मानवजन्म की सफलता"

स जातो येन जातेन, स्वकृताऽपक्वपाचना।
कर्मणां पाकघोराणां, विबुधेन महात्मनाम्॥ 190॥

अन्वयार्थ-सः जातः = उसी का जन्म सफल है, **येन विबुधेन जातेन** = जिस बुद्धिमान ने जन्म लेकर, **महात्मनां पाकघोराणां कर्मणां अपक्व पाचना स्वकृता** = महान् कर्मों की, जिनका फल बहुत भयंकर है, पकने से पहले ही स्वयं निर्जरा कर डाली।

भावार्थ-हे भव्यात्मन्! उसी मानव का जन्म सफल है, जिस महात्मा ज्ञानी मानव ने परिपक्व (उदय) काल में भयंकर कर्मों की असमय (अपक्व अवस्था) में ही निर्जरा स्वीकृत की है। अर्थात् तप के द्वारा घोर कर्मों की अविपाक निर्जरा कर कर्मों का क्षय कर दिया है।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मानवजीवन की सफलता और असफलता दोनों की व्याख्या युगपत् कर रहे हैं। वह जीव धन्य है, वह जीव महान् है, जो महानता के लक्ष्य से शून्य है, जो महान् होने के लक्ष्य से दूर है। जो महान् होने का लक्ष्य लिये है, वह महानता को प्राप्त नहीं हो पाता है। जो महान् कार्य से युक्त है, श्रेष्ठ कार्य में संलग्न है, उसे महान् बनना नहीं होता है, वह तो महान् ही होता है।

"महाव्रतां महताम्" आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने एक सूत्र लिखा। हम चाहें कि लोक पर अनुशासन करके महान् हो जायें, कोई चाहे कि मैं राज्य करके महान् हो जाऊँ, सम्पत्ति को प्राप्त करके महान् हो जाऊँ, तो दिगम्बराचार्यों ने कहा है कि वह तो नरक ले जाने की साधन है। समझ में आ रहा है?

बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः। बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह की भावना है तो वह नरक-आयु का कारण है। जितना जीवन में तेरे पुण्य का द्रव्य नहीं है, उतना परद्रव्य के संग्रह का लक्ष्य है। परद्रव्य के ग्रहण का लक्ष्य तो हो सकता है, पर परद्रव्य की प्राप्ति लक्ष्य से नहीं होगी। वह पुण्य की सत्ता पर होगी। लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम यदि नहीं है, भोगान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं है तो विश्वास रखना, आप वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। साता का उदय नहीं है तो सबकुछ होने पर भी आपको सुख नहीं मिल सकता है। भोगान्तराय कर्म का उदय है और क्षयोपशम भी आ गया, लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम भी है, यदि असाता का उदय तीव्र चल रहा है, तो सब सामग्री सामने हो सकती है, पर सुख नहीं मिल सकता है। सुख प्राप्ति के लिये साता भी चाहिये। अब सँभलकर समझना। साता भी है, तब भी व्यक्ति सुखी नहीं है। ऐसा हो सकता है क्या? साता भी है, सुख नहीं है। शुभ आयु, शुभगोत्र, शुभ नाम। यह साता प्रकृतियाँ हैं। इन सबके मिलने के उपरांत भी मन में संतोष नहीं है तो कोई शान्ति नहीं है। **असाता के काल में, विषमता के काल में भी परवस्तु से निजवस्तु को भिन्न मानकर जी रहा है, वह ज्ञानी मरघट पर भी शान्ति का जीवन जी रहा है।**

अनियत को अनियत मानिये। नियत को नियत मानिये। अन्य को अन्य मानिये। अनन्य को अनन्य मानिये। अन्य में अनन्यत्व भाव जो है, वही अशान्ति का कारण है। शब्दों पर ध्यान दो। वे अज्ञानी जीव हैं जो अन्य में अनन्य को खोज रहे हैं। अतन्मयभूत द्रव्य तन्मयभूत हो नहीं सकता है और अतन्मय द्रव्य के राग में तन्मय को तू भूल रहा है, तो अतन्मयी तन्मयी कहाँ होगा?

ज्ञानी! खड़िया तो खड़िया है। दीवाल तो दीवाल है। दीवाल को सफेद कहा जा रहा है, पर सत्य यह है कि दीवाल सफेद नहीं है। सफेद तो खड़िया मिट्टी ही है ऐसे ही मुमुक्षुओ! रागी जीव परवस्तु को निजवस्तु स्वीकार रहे हैं। जो-जो परवस्तु में निजवस्तुत्व को देख रहे हैं, वे सब उपचार-दृष्टियाँ हैं। जीव उपचार-दृष्टि में संलग्न होकर भूतार्थ दृष्टि से विमुख हो रहा है। अरे भाई! समझौता किसके साथ है? जो समझौते की बात है, वह सब परवस्तु है। जहाँ-जहाँ सम्बन्ध है, सब परवस्तु है। निज में सम्बन्ध होता ही नहीं, सम्बन्ध निज होता ही नहीं। जहाँ-जहाँ 'सम्बन्ध' शब्द जुड़ा है, वह सब परवस्तु ही है। सम्बन्धकारक पर में ही जाता है। सम्बन्धकारक निज में जाता ही नहीं। देखो भाई! मस्तिष्क और प्रज्ञा का प्रयोग करके सुनना। तत्त्वोपदेश सुनते समय आपको थोड़ी मेहनत लगानी चाहिये।

सम्बन्ध जो है, निज में होता ही नहीं। निज का निज में सम्बन्ध होता ही नहीं। निज का निज में स्वभाव होता है और स्वभाव में सम्बन्ध होता नहीं। **जो सम्बन्ध होते हैं, वे स्वभाव होते नहीं। स्वभाव में कष्ट नहीं है, पीड़ा नहीं है, क्लेश नहीं है। रोश भी नहीं है। स्वभाव में तो मात्र 'जो है, सो है।' जो-जो दुःखी हो चुके हैं, सब सम्बन्ध में हुये हैं।**

मित्रो! यदि आपको अपना दुःख दूर करना हो तो छोटी-सी बात है। दुःख दूर करने के लिये कुछ नहीं करना होगा, बस, सम्बन्ध से निज को दूर करना होगा। सम्बन्ध स्थापित होते ही कष्ट प्रारम्भ हो जाता है। सम्बन्ध नहीं होता है उस समय कोई भी नहीं रोता है। भैया! जब आपकी ससुराल से आपका कोई सम्बन्ध नहीं था, उस समय उस घर में किसी की मृत्यु हुयी थी, तब तू बैठने क्यों नहीं गया? तब तू रोने क्यों नहीं गया था?

माताओ! आप तो इस विषय में परिपूर्ण ज्ञाता हैं। जब तक तुम किसी घर में बहू बनकर नहीं आयीं थीं, उस घर में मृत्यु हुयी थी कि नहीं हुयी थी? जिस दिन सम्बन्ध स्थापित हुआ, उसी दिन तुमको उस घर में रोना पड़ जाता

है। अब भले ही रोना न आता हो, पर दिखाना तो पड़ता ही है। सम्बन्ध स्थापित होते ही रोना प्रारम्भ हो जाता है। जिन-जिन को रोने से बचना हो, सम्बन्ध का त्याग करो। इस भव में ही नहीं, अनन्त भवों तक रोना हो, तो मुमुक्षुओ! अच्छे से सम्बन्ध स्थापित करो। **रोने से बचना हो तो आज से ही सम्बन्ध का विच्छेद करो। जहाँ-जहाँ सम्बन्ध है, वहाँ-वहाँ बन्ध है। बन्ध ही सम्बन्ध है, सम्बन्ध ही बन्ध है। जब तक बन्ध है, तब तक सम्बन्ध है। जब तक सम्बन्ध है, तब तक ही बन्ध है।** समयसार के सार को समझो। सम्बन्ध छोड़ दो तो बन्ध छूट जायेगा। अब मेरे पास मत आना कि महाराज! दु:खी हूँ। मैंने आपको सब बता दिया।

अरे मुमुक्षु! दु:ख है ही नहीं। तू सम्बन्ध स्थापित किये है, इसलिये रो रहा है। बस, सम्बन्ध छूट गया, फिर भैया! कोई भी दु:ख नहीं है। **जो है, सो है।** अभी तुझे नियत घर जाना पड़ता है, अभी तुझे नियत नगर जाना पड़ता है, क्योंकि सम्बन्ध स्थापित किये हैं। जब सम्बन्ध छूट जायेंगे, फिर न कोई नियत घर होगा, न कोई नियत नगर होगा। फिर तो हर स्थान पर तेरा स्थान होगा, हर प्रदेश में निज प्रदेश होगा। तेरा रमण निज में होगा। सम्बन्ध में बन्ध है। जितने रो रहे हैं, रोयेंगे, सब सम्बन्ध में रो रहे हैं।

ओ हो! चार दिन पहले माँ के द्वारा परोसी थाली में भोजन करके मुस्कुरा रहा था, पिता के दुलार को प्राप्त हो रहा था, अब शादी क्या हो गयी पिता से भी मुख मुड़ गया, माँ की थाली भी दूर हो गयी। अब तो मात्र तुझे वह सम्बन्ध दिख रहा है। ऐसा सम्बन्ध हुआ कि दो दिन तो लगा कि बहुत आनन्द आ रहा है, लेकिन तीसरे दिन समझ में आ गया कि क्या हुआ? क्या जगत् की लीला है? अब मत कहना कि मैं दु:खी हूँ, क्योंकि आप सुखी होना नहीं चाहते हो। यदि सुखी होने की आकांक्षा है, तो सम्बन्ध छोड़ दो। क्लेश कहीं भी नहीं है। एकत्व-विभक्त स्वभाव में ही आनन्द है। द्वैत में आनन्द नाम की कोई वस्तु नहीं है। द्वैत जहाँ-जहाँ खड़ा होता है, द्वैत का नाम ही द्वंद्व है। द्वंद्व, झगड़ा, विसंवाद

तो परेशानी है। मानसिक तनाव द्वंद्व है। जो दो है, उनमें ही द्वंद्व होता है। एक में कभी द्वंद्व नहीं होता है। इसलोक में सबसे सुन्दर कोई है, उसका नाम एक है।

एक में कभी चर्चा-वार्ता नहीं होती है। सबसे बड़ा विसंवाद जो है, वह चर्चाओं से होता है। आप अनुभवी हो, आपको क्या बताऊँ? यदि कामवासना में भी गया है, तो चर्चाओं से गया है। यदि चोरी भी की है, तो चर्चाओं के बाद की है। किसी की वस्तु को प्राप्त करने के भाव भी किये हैं, तो चर्चाओं से प्रारम्भ हुये हैं। जितने भी भ्रमित हुये, हो रहे, होंगे, चर्चाओं से प्रारम्भ होते हैं। पहले व्यक्ति देखता है, उपयोग ले जाता है, उसकी जानकारी लेता है। चाहे पुण्यभूत क्रिया हो, चाहे पापभूत क्रिया हो, पहले देखता है। जैसे ही जानकारी मिली और धारणा तेरी बनी, तो उस ओर तेरा गमन हो जाता है। इसलिये आगम कह रहा है कि ज्यादा मत देखो।

ज्ञानियो! आँख को वश करो। आँख पर लक्ष्य करो। यदि आत्मा में लीन होना चाहते हो तो आँख पर ध्यान रखो, अक्ष पर लक्ष्य करो। आत्मा में लीन होना चाहते हो तो आँखों को वश करो। देखा, उपयोग गया और ज्ञानी ने परिचय लिया, तो शीघ्र ही परिचित से अपरिचित हो गया और अपरिचित में लीन हो गया। **जो-जो निज से च्युत हुये हैं, वे सभी दुरात्मा अपने महात्मापने से दूर हुये हैं, वे पर के परिचय मात्र से हुये हैं। नगर-नगर में स्थान-स्थान पर सम्बन्ध स्थापित करने का जो अंतरंग में रागभाव है, वह निज से सम्बन्धविच्छेद का कारण है।** एक गहरी बात को आज तक क्यों नहीं सोच पाये? जैनदर्शन कभी भी प्रचारक संस्कृति नहीं रही। यह विचार-प्रधान नहीं, आचार-प्रधान दर्शन है। हमारे पास निज के रमण में समय ही नहीं है, तो हम पर्याय के प्रचार का समय कहाँ लगायेंगे? यदि किसी का प्रश्न यह हो कि सारे विश्व में जैनदर्शन क्यों नहीं फैला? क्योंकि दिगम्बरवादी की दृष्टि में अहिंसा प्रधान और आत्मधर्म प्रधान था। तुमने उसको स्वीकार नहीं किया। अहिंसा को खोकर धर्म का प्रचार

किस बात का? जो विदेश पहुँच गये हैं, वो मुख में अहिंसा तो बोलते रहे, पर वृत्ति में हिंसा प्रारम्भ कर चुके थे।

मुमुक्षुओ! विदेशों में जाकर विदेशी बन जाना, इसका नाम धर्म नहीं है। विदेशी को स्वदेशी बना लेना, इसका नाम धर्म है। गहराइयों में जाकर चिन्तन करना, क्योंकि वर्तमान के लोगों की जो सोच है, उथली-उथली सोच है। वह प्रचार को प्रधानता दे रहे हैं। कागज के फूलों पर छिड़की सेंट शाश्वत नहीं होती है। ऐसे ही मात्र प्रचार करने से धर्म की प्रभावना नहीं होती है। धर्म की प्रभावना उस दिन कहना जिस दिन तेरा मन कहे कि सम्बन्ध से अपने मन को हटा रहा हूँ। अंतरंग की विशुद्धि जिस दिन जागृत हो जाये, तब कहना कि धर्म का प्रचार हो गया। समझो, कभी भी समझौता नहीं करना। प्रवचन सुन रहे हो। **मुझे भीड़ नहीं, सत्य चाहिये, भूतार्थता चाहिये। भीड़ सत्य का प्रमाणपत्र नहीं है। सत्य का प्रमाणपत्र सम्यक्चारित्र है, जो कि निर्द्वंद्व है, निर्विकार है, निर्वस्त्र है।** विषय की गम्भीरता में प्रवेश कीजिये। मुनियों की संख्या कम क्यों? वस्त्रधारी नानाभेष वालों की संख्या अधिक क्यों? असत्य का बाहुल्य ही होता है, असत्य के भीतर में सत्य का निवास नहीं होता है। असत्य का बाहुल्य होता है, सत्य न्यून होता है। पर सत्य का निवास असत्य के आँगन में भी होता है। मुनियों की संख्या न्यून है। मुनियों को नमोस्तु न-बोलने वालों की संख्या उससे भी अधिक है। मुनि को मुनि मानने वालों की संख्या सर्वाधिक है।

ओ हो! मैंने आपको एक दिन अमरावती के उस आठ वर्ष के बालक की बात बतायी थी। अमरावती में अपने घर के चबुतरे पर बैठा बेटा मराठी में अपनी आई से बोल रहा था कि आई, 'जैनियों के भगवान् जा रहे हैं।' उस बच्चे को मुनियों में भगवान् दिखा। अनेक प्रकार के सम्प्रदाय भारत की भूमि पर हैं, पर इस बात को हर सम्प्रदाय का साधक स्वीकरता है। किस बात को?

'नग्नं पश्यतवादिनोजगदिदं जैनेन्द्र मुद्रांकितम्।' यह नग्नता ही जिनेन्द्र की मुद्रा है। यह जिनेन्द्र की मुद्रा ही मोक्ष की मुद्रा है। इस बात को सभी स्वीकरते

हैं। हर व्यक्ति स्वीकारता है। चारित्र में समझौता किस बात का? समझौते में चारित्र कहाँ?

क्या प्रचार को प्रधानता दोगे? हमने आपसे कहा कि असत्य के आँगन में सत्य रहता है। इस बात को आप लोग समझ पाये क्या? असत्य को बोलने वाला भी पंचमहाव्रती को मुनि मानता है कि नहीं? असत्य बोलनेवाला भी अर्हन्त को ही भगवन्त मानता है। ज्ञानी! असत्य के घर में भी सत्य की ही पूजा होती है। आपका बेटा आपकी पूजा क्यों नहीं करता? प्रेक्टीकल में ही देख लो। जबकि आपने उसको जन्म दिया, पालन पोषण किया, सेवा की है, मल भी पोंछा है। तब भी विश्वास रखना, तुम्हारा जन्मा बेटा भी तुम्हारी अष्टद्रव्य से पूजा नहीं करता है। आश्चर्य। देखो तो, पुत्र इतना समझदार है। कह रहा है कि भोजन करा सकता हूँ, पानी पिला सकता हूँ। आप तो पूजा की बात कर रहे हो, मैं तो इस पर्याय में उन्हें आहार भी नहीं दूँगा। बस, भोजन कराऊँगा।

मुमुक्षुओ! सम्बन्ध बन्धों का है। **बन्धवालों की वन्दना नहीं होती, निर्बंध की वन्दना होती है। वन्दनीय बंधक नहीं होता है। वन्दनीय निर्बंधक ही होता है। जो निर्बंध मार्ग पर लगे हुये हैं, वह वन्दनीय हैं। जो निर्बंध हो चुके हैं, वह वन्दनीय हैं। बंधक सम्बन्धी हो सकते हैं, सत्कार योग्य हो सकते हैं, पर पूजा के योग्य नहीं हो सकते।**

भगवान् महावीर स्वामी आपको इस पर्याय में तो नहीं मिले हैं, लेकिन फिर भी तू सब काम छोड़कर उनको नमस्कार करने जाता है, उनकी पूजा करने जाता है, आरती उतारने जाता है। महावीर भगवान् से डर लगता है, इसलिये पूजा करने जाते हो कि वह भगवान् सत्य हैं, इसलिये पूजने जाते हो? बस, भैया! सबकी आँखें खुल गयीं। जितने पिता बैठे हों, सुन लो ध्यान से। कर लो, कितना ही राग कर लो। कमा कर रखना है तो रख जाना, लेकिन तेरी पूजा होनेवाली नहीं है। पूजा तो भगवान् की ही करने जायेंगे। धन्य हो। अभी भी समझ में न आये तो अब महावीर स्वामी समझाने नहीं आयेंगे।

पिता ने सबकुछ किया, तब भी पूजा नहीं होती है। भगवान् ने कुछ भी नहीं दिया, तब भी पूजा है। यह विषय क्यों खोला है? इसलिये कि लोक जो सोचे कि मैंने जो उपकार किया तो मैं पूज्य हो जाऊँगा, ज्ञानी! **जैनदर्शन में उपकारी पूज्य नहीं होता, जैनदर्शन में वीतरागी पूज्य होता है। उपकारी का उपकार तो माना जा सकता है, स्वीकार है; पर उपकारी पूज्य नहीं होता है, पूज्य तो परमेष्ठी हैं। उपकारी जड़ भी होते हैं, चेतन भी होते हैं।** और लोक में जीव से पूछो कि उपकार तेरा कितने द्रव्यों ने किया। क्या धर्मद्रव्य का उपकार तेरे साथ नहीं है, अधर्म द्रव्य का उपकार तेरे साथ नहीं है, आकाश व काल का उपकार नहीं है क्या? छः द्रव्यों का उपकार तेरे ऊपर है। तब भी छहों द्रव्य पूज्य नहीं हैं। पूज्य तो वही हैं जो परमेष्ठी पद पर आसीन हैं। सत्कार के योग्य, सम्मान के योग्य अन्य हो सकते हैं, पर पूज्य तो परमेष्ठी पद पर आसीन ही हैं।

ऊखली, मूसल, घिनोची (जहाँ पानी रखा जाता है), कुआ की भी पूजा होनी चाहिये। इन सबसे तुम्हारा उपकार हुआ है। लोक की परम्परायें जो हैं, उनका आप निषेध नहीं कर पाओगे। उपकारी की यदि पूजा है, तो मूसल की भी पूजा करो। साइकिल की भी पूजा करो, वह तुम्हें रोज प्रवचन में लेकर आती है। मुमुक्षुओ! उपकारी की पूजा नहीं है। उपकारी जैसा है, उसे यथायोग्य सम्मान दिया जाता है, परन्तु पूजा तो पंचपरमेष्ठी की ही है। उपकारी तो अनन्त हो सकते हैं। अमूर्तिक भी उपकारी, मूर्तिक भी उपकारी तेरे हैं। जितने मूर्तिक उपकारी हैं, उतने ही अमूर्तिक तेरे उपकारी हैं। कालकृत, धर्म-अधर्म-आकाशकृत भी उपकार है। कोई अवगाहना दे रहा है, कोई वर्तना करा रहा है, कोई गमन में सहकारी है, कोई स्थिर करने में सहकारी है। यह उदासीन निमित्त है। उदासीन उपकार है यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की दृष्टि से कथन है। मित्र! उपादान से देखोगे तो न कोई मेरा उपकारी है, न कोई मेरा अपकारी है। मैं तो जो हूँ, सो हूँ।

लोग पहले तो व्यवहार को खूब कह देते हैं, फिर कह देते हैं कि जो है सो है। पर सत्य तो यही है कि निर्वाण जब भी मिलेगा, किसी के साथ नहीं मिलेगा। निर्वाण की बात भी क्यों कर रहे हो? जो है, सो है। यही हो जाये, इसी का नाम निर्वाण है। अमिश्रधारा, अद्वैतधारा। जो अमिश्र की प्राप्ति है, वही मोक्ष है। कठिन हो रहा है? देखो, रोओ या मुस्कुराओ, गल्ती आपने की है। बहुत बड़ी गल्ती की है। सुधारोगे क्या? क्या आवश्यकता थी पालकी में बैठने की? क्या आवश्यकता थी दूसरे के द्वार पर जाने की? तू बन्ध सम्बन्ध को प्राप्त हुआ है, सो बन्ध का फल भोग। अब कहता है कि बेटा ने डाँट कह दिया और बेटे की माँ ने भी डाँट दिया। आज कह रहा है कि पिट कर आ गया हूँ। उस दिन क्यों नहीं पूछने आया था कि घोड़े पर बैठना चाहिये कि नहीं? अब जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? आप लोग बुरा मत मानना। आप तो नेमिनाथ राजुल जैसे बन जाओ। स्वामी मुनि बन जाये, तो देखो, राजुल भी गिर पड़ कर वहीं पहुँच गई, सो पहाड़ भी गिरनारी हो गया। यह मत सोचना कि मेरा क्या होगा? यह तो व्यर्थ का पागलपन है। कोई किसी का कुछ करनेवाला होता नहीं। सारे जगत् का परिणमन स्वतन्त्र है।

उन माताओं से पूछना जिनके बेटे मुनि बन गये हों। वे मुस्कुराती हैं जब वह देखती हैं कि मेरा बेटा मुनि है। मुमुक्षुओ! इसलिये रागियों की माँ बनने से कोई लाभ नहीं है। जहाँ सम्बन्ध है, वहाँ बन्ध है। जहाँ द्वैत है, वहाँ द्वंद्व है। मुमुक्षुओ! आराध्य-आराधक भाव उपकारी में नहीं है, आराध्य-आराधक भाव परमेष्ठी में है। विषय की गम्भीरता में जाओ और भूतार्थ दृष्टि को समझो, नहीं-तो लोक में पता नहीं कितने लोगों के सामने तुमको सिर पटकना पड़ेगा। विनय तो 'विनय' होना चाहिये। विनय-मिथ्यात्व नहीं होना चाहिये। हर जगह सिर पटके, यह विनय नहीं है। यह विनय-मिथ्यात्व है। परमेष्ठी के चरणों में सिर टेको।

"विनयो मोक्खद्दारं" विनय मोक्ष का द्वार है। ज्ञानी! आगम के सूत्रों को भी बड़े विवेक के साथ लगाना। सूत्र को पढ़ लेना कठिन नहीं है, सूत्र को विवेक

पूर्वक लगा लेना कठिन है। 'मूलाचार' जी में लिखा हुआ है—"विनयो मोक्खद्दारं" विनय मोक्ष का द्वार है। पढ़कर क्या किया? पितृ देवो भवः, मातृ देवो भवः, अतिथि देवो भवः। सब में देवो भवः लग गया। गाय, सुअर, सबके पैर पड़ लिये। जटा-जूट वाले जो-जो मिले, सबके पाँय पड़ लिये। किसी ने पूछा कि क्या कर रहे हो? बोले कि जो मैं कह रहा हूँ, आगम में लिखा है—"विनयो मोक्खद्दारं।" अरे मेरे मित्र! इतना और सीख लेना कि "विनयो मोक्खद्दारं" किसके लिये लिखा है? किसकी विनय है? यदि सभी विनय मोक्ष का द्वार हो गया, तो विनय-मिथ्यात्व कहाँ जायेगा? अतः सम्यक् विवेचना करने की आवश्यकता है आज के युग में। आधी बात को पूरा किये बिना चले मत जाना। दिगम्बर जैन आम्नाय में आचारांग का कोई प्रधान ग्रन्थ है, उसका नाम 'मूलाचार' है। "विनयो मोक्खद्दारं।" पर विनय किसकी? जो विनय को समझे बिना विनय कर लेता है, वह निज-आत्मा की अविनय करता है। श्रद्धा को दृढ़ करो। जो वस्तु जैसी है, उसको वैसा समझो। ऊपर-नीचे हुयी तो सब गड़बड़ हो जायेगा। आगम के सूत्रों के अनुसार आप चलना सीखिये, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा।

पंचपरमेष्ठी की विनय मोक्ष का कारण है। जो तुम माता-पिता के चरण छूते हो, यह मोक्षमार्ग नहीं, संसारमार्ग नहीं, यह तो लोकाचार है। मिथ्यात्व नहीं है। यदि कुलिंगी के पैर पड़ोगे, तो मिथ्यात्व है। माता-पिता के पैर पड़ लिये तो सम्यक्त्व भी नहीं, मिथ्यात्व भी नहीं। बन्ध का कारण अवश्य है, क्यों? राग। फिर भी जब तक तुम घर नहीं छोड़ पा रहे हो, उन वृद्ध माता-पिता का ध्यान रखना। देखो, माता-पिता के पैर छूने का तो आदेश कर दिया, लेकिन कुलिंगी को नहीं कर सकते हो।

स्नेह के वश, लोभ के वश, राग के वश, भय के वश, आशा के वश न विनय, न प्रणाम। शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव प्राण दे सकता है, परन्तु शीश नहीं झुका सकता है।

हे ज्ञानियो! आपको मालूम होना चाहिये 'एसो पंचणमोयारो, सव्व पावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं।' चौबीस घण्टे जिनके कण्ठ में मंगल विराजते हों, उसका अमंगल करने कौन आयेगा? और जिसका अमंगल नियत है, उसको मंगलवार का दिन भी अमंगल कर देगा। विश्वास रखो। लोग शनिवार को अच्छा नहीं कहते, पर जिसका भाव मंगलभूत है, पुण्य मंगल चल रहा है, उसका शनिवार के दिन भी मंगल होता है। ऐसा नहीं है क्या?

जिस देश में, जिस काल में, जिस विधान से, जिस जीव की जो होनहार है, उसको कोई टाल नहीं सकता। चाहे इन्द्र आ जाये, चाहे जिनेन्द्र भगवान् आ जायें, वह भी कर्म के तीव्र उदय को नहीं टाल पायेंगे।

आदिनाथ स्वामी क्यों घूमते रहे छः महिने तक? विधि क्यों नहीं मिली? सौधर्म इन्द्र कहाँ चला गया था? भैया! जिस दिन पेट भरा हो, दुनियाँ पूछती है। जिस दिन न हो, उस दिन कोई तो पूछ ले।

ऐसे भी दिन होते हैं कि मुझे अपना कमण्डलु महिनों तक पकड़ने को नहीं मिलता और ऐसा भी दिन आता है कि कोई पकड़नेवाला नहीं मिलता है। ज्ञानी! **सबके दिन एक-से नहीं होते।** इसलिये घबराना नहीं।

"धम्मं सरणं पव्वज्जामि।" पर कौन-सा? केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वजामि। चिन्ता मत करना कभी जीवन में। संकट के दिन तो बड़े आनन्द के दिन होते हैं। ज्ञानी! सत्य की परीक्षा संकट में होती है। मित्रों की परीक्षा भी संकट में होती है। भीड़ को अपना मत मानना।

सत्य है कि सर्वार्थसिद्धि के देव के तेतीस सागर तत्त्वचर्चा में निकल जाते हैं। कैसे निकलते हैं? वो तो आप सब से ही पूछो। मध्याह्न में दो घण्टे निकल जाते हैं, मुझे ही कहना पड़ता है कि ज्ञानी! तुम्हारा समय हो गया।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि उसी का जन्म सफल है, उसी का जीवन महान् है, जिस महात्मा ज्ञानीजीव ने उदय के काल में, जब कर्म का उदय प्रचुर रूप

में सामने खड़ा हो, उसे समता से सहन करके उसे खिरा दिया। अथवा जो कर्म अभी उदय में नहीं आये, उन्हें तप-साधना के द्वारा नष्ट कर दिया।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"स्वात्माधीन सुख प्राप्त करो"

रोषे रोषं परं कृत्वा, मानेऽमानं विधाय च।
सङ्गे सङ्गं परित्यज्य, स्वात्माधीनसुखं कुरु॥ 191॥

अन्वयार्थ-रोषे रोषं परं कृत्वा = क्रोध पर तीव्र क्रोध करके, **माने अमानं विधाय च** = और मान में अमानभाव (विनम्रता) रखकर और, **संङ्गे सङ्गं परित्यज्य** = परिग्रह में संगभाव अर्थात् मूर्च्छा त्यागकर, **स्वात्माधीनसुखंकुरु** = अपने आत्मा के आधीन जो अतीन्द्रिय सुख है उसे प्राप्त कर।

भावार्थ-हे भव्यात्मन्! क्रोधादि कषायभाव आत्मीय गुणों के घातक हैं, अतः कषायों का त्याग करके अपने आत्मा के अधीन जो अतीन्द्रिय सुख है उसे प्राप्त कर।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मानवजीवन की सफलता और असफलता दोनों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। वे जीव धन्य हैं जो कर्म के विपाक के काल में विषाद को प्राप्त नहीं होते हैं। कर्म का विपाक जो है, वह द्वैतभूत है। शुभाशुभरूप है। अशुभ को (विषाद को) प्राप्त नहीं करना, ऐसा समझानेवाले ज्ञानी लोग बहुत हैं, पर शुभ के काल में जो विषाद होता है, वह विषाद नहीं करना, यह समझानेवाले ज्ञानी लोक में बहुत कम हैं।

ज्ञानियो! यह विषय अन्तस् में प्रवेश ही नहीं किया, सोचा ही नहीं है। आपने लोक में देखा भी होगा कि सिर पर लाठी का प्रहार होने पर संवेदनायें देनेवाले हजारों मिल जायेंगे। जमीन पर गिरने के बाद उठानेवाले हजारों दयालु मिल जायेंगे, लेकिन स्वयं के परिणामों में जो विकार हुये हैं, उसको संवेदना देनेवाला जगत् में कौन मिलेगा? परकृत उपसर्ग को सहन कर लेना सरल है। परकृत उपसर्ग को देखकर दूसरे उपसर्ग दूर करनेवाले आ जायेंगे, लेकिन स्वकृत उपसर्ग को दूर करने के लिये जगत् में कोई जीव मिलने वाला नहीं है।

मित्रो! दूसरे के द्वारा उपसर्ग होगा तो पड़ौसी रक्षा करने आ जायेगा। घर में आग लग जाये तो दूसरे बुझाने आ जायेंगे। पर स्वयं के भावों में लगी आग को बुझाने कौन आयेगा? हमने ईंट-चूने के घरों की आग तो बुझाई है, पर स्वयं के भावों की आग नहीं बुझाई। भावों की आग बुझाये बिना भगवान् कोई बनता नहीं। पर के द्वारा जो उपसर्ग हो, वह तो बड़ा कार्यकारी हो जाता है। जिन योगियों को वर्षों लगने वाले थे कैवल्य की प्राप्ति में, अहो! उपसर्गकर्त्ता के नियोग से ऐसे ध्यान में लीन हुये कि अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य को प्राप्त हो गये। देह का उपसर्ग तो विशुद्धि का कारण बन गया। देह का परकृत उपसर्ग विशुद्धि का साधन बनकर निर्वाण की सिद्धि का हेतु हो गया, लेकिन भगवान् बाहुबली स्वामी से पूछना कि हे नाथ! एक वर्ष तक आपके ऊपर किसी ने उपसर्ग नहीं किया। आप एक वर्ष तक उपवास से युक्त खड़े रहे।

दियंबरो जो ण च भीइ-जुत्तो,
ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कम्पो,
तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ गो-स्तुति॥

आचार्य नेमीचन्द स्वामी ने जो स्तुति की है, उस स्तुति में जो लक्षण दिये हैं, ऐसी प्रतिमा तो गोमटेश बाहुबली स्वामी की भी नहीं है। जो प्रतिमा ललितपुर

के क्षेत्रपाल जी के भोयरे में विराजमान है, जो चन्देरी की खंदारजी में विराजमान है, वह गोमटेश बाहुबली से भी प्राचीन प्रतिमा है। उस प्रतिमा की स्तुति कर रहे हैं आचार्य नेमीचन्द स्वामी "दियंबरो जो ण च भीइ जुत्तो।"

हे दिगम्बरो! वीतरागी तपोधन! आप भयभीत नहीं हुये। ज्ञानियो! जब आप अपने द्वारा ही अपने इतिहास को ध्वस्त कर लोगे, फिर कभी नहीं कह पाओगे कि मेरे मन्दिर ऐसे थे। अभी समाज की आँखों में धूल है, समझ नहीं पा रही है। प्राचीनता को नाश करके विवेक खो रही है।

हे दिगम्बर तपोधन! आप भयभीत नहीं हुये। किससे? सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो।" श्रमणवेलगोला में गोमटेश बाहुबली की प्रतिमा में मात्र लतायें हैं, परन्तु चन्देरी जी और ललितपुर में जो प्रतिमा हैं, उस प्रतिमा के ऊपर तो सर्प, बिच्छू आदि जीव घूम रहे हैं। ऐसा शिल्पकार ने प्रदर्शित किया है।

"सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो"

हे प्रभु! सर्पादि जंतुओं ने आपको फुंकार मारी, लेकिन तब भी आप कंपित नहीं हुये, परन्तु भरत की भूमि में खड़ा हूँ, इस बात ने इतना प्रभावित किया कि केवलज्ञान नहीं होने दिया।

ज्ञानी! भीतर का विकारी भाव कितना है कि एक वर्ष तक माधुरी लतायें लिपटी रहीं, विद्याधरियाँ आकर उन लताओं को हटा रही हैं। 'भरतेश वैभव' में लिखा है कि पक्षियों ने कानों में घोंसले बना लिये। धन्य हो उस वीतरागी तपोधन को। एक घण्टे में आपके पैरों में झुनझुनी चढ़ जाती है। जहाँ सभी ऋतुयें देखी गयी हों, सभी मौसम आये हों, मौसम बदल गये हों, पर प्रभु ने अपना मौसम नहीं बदला। मौसम ने मौसम बदल दिये, पर वे गोमटेश बाहुबली स्वामी खड़े रहे। लेकिन फिर भी कह रहे हैं—प्रभु! बहिरंग साधना में आपके कोई कमी नहीं थी। सर्पादि आपको हिला नहीं सके। बिच्छू आपको विचलित न कर सके। पर नाथ! भीतर का तो विकल्प था कि "ये भूमि भरतेश की है।"

भैया! निर्ग्रन्थों के चरणों में जाकर मात्र नमोस्तु निवेदित करना। कहना—हे वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन! जिस मुद्रा के लिये देवगण तरसते हैं, जिस मुद्रा को नारकी कभी देख नहीं पाता, देवता भी तरसते हैं, जिस मुद्रा को उत्कृष्ट आयु का नारकी तेतीस सागर प्रमाण देख नहीं पाता, दर्शन नहीं कर पाता, अनुमोदना कर सकता है, परोक्ष वन्दना कर सकता है, प्रत्यक्ष में किसी मुनि के दर्शन नहीं कर सकता है, वह सुर-दुर्लभ मुद्रा आपने धारणा की है।

हे ज्ञानियो! यह अहोभाग्य तुम्हारा है कि इस खोटे काल में भी दिगम्बर मुनियों के दर्शन हो रहे हैं। जब भी निर्ग्रन्थों के चरणों में जाना, नमोस्तु निवेदित करें, तब यही कहना—हे नाथ! जिस मुद्रा के लिये देव तरसते हैं, नारकी तड़पते हैं, तिर्यंच कभी धारण नहीं कर सकता है। तीन गति के जीव अनुमोदना मात्र कर पायेंगे, पर जिनमुद्रा को धारण नहीं कर पायेंगे। ढाईद्वीप के बाहर असंख्यात द्वीपसमुद्र हैं, लेकिन वीतरागी मुनि ढाईद्वीप मात्र में हैं। जिनमन्दिर मिल जायेंगे, जिनप्रतिमायें मिल जायेंगी ढाईद्वीप के बाहर, पर दिगम्बर मुनि ढाईद्वीप मात्र के अन्दर ही मिलेंगे। भारतभूमि के कण-कण में दिगम्बरत्व जयवन्त है। योगियों के चरणों में जब जाओ तब कहना—हे स्वामी! आपने इस मुद्रा की कीमत को जाना हो या न जाना हो, पर इस दिगम्बरत्व की कीमत मुझे मालुम है।

पण्डित दौलतराम, बनारसीदास, भूधरदास, भैयालाल कितने सारे विद्वानों को अपने जीवनकाल में दिगम्बर मुनिराजों के दर्शन ही नहीं हुये। ऐसे चारित्रमोहनीय की तीव्रता उनके अन्दर थी कि साधु नहीं बन पाये। अंतरंग का विषय है। जब कषायें प्रबल होती हैं, उस काल में साक्षात् अर्हंत देव क्यों न विराजमान हों, तब भी महत्त्व समझ में आयेगा, महिमा समझ में आयेगी, पर महिमामण्डित होने का भाव नहीं आयेगा। "महाव्रताम् महिताम्" इन महाव्रतों को निर्दोष पालन पुण्यात्मा ही कर पायेगा। क्षीण-पुण्यात्मा जीव को निर्दोष चारित्र का पालन होता नहीं। सर्वाधिक अभक्ष्य खाने वाले कौन हैं? निम्न वर्ग के लोग हैं। उनका भोजन, उनका भाषण, उनका पानी भी निम्न स्तर का होता है। आप देखना, जो निम्न

जीव होगा, उसका भोजन भी निम्न स्तर का होगा और भाषण भी निम्न स्तर का निकलेगा। कौआ और कोयल की आवाज को ही तो देखो।

भाषा व्यक्ति के भावों का प्रमाणपत्र है। जब गुस्सा आती है आदमी को, तब उसकी असलियत का पता चलता है कि इसकी पुण्य भाषा क्या है। मुख्य भाषा का ज्ञान करना है तो व्यक्ति को गुस्सा दिला दो, तब भी भाषा न बिगड़े, तब कहना कि हाँ, साधुपुरुष है।

निर्ग्रन्थ के चरणों में क्या देखना है? हे स्वामी! जगत् की सारी मुद्रायें जब असफल हो जाती हैं, तब जिनमुद्रा का प्रकटीकरण होता है और संयमी के चरणों में मनुष्य ही नहीं, देव भी आकर सिर टेकते हैं।

हे तपोधन! हम आपकी देह की वन्दना करने नहीं आये हैं। हम आपके तपस्वी भावों की वन्दना करने आये हैं। नग्न देह की वन्दना नहीं है। नंगे में और नग्नत्व में महान् अन्तर है। विषय-कषायी नंगा होता है और वीतरागी नग्नत्व से युक्त होता है। उसका नाम दिगम्बर है। दिगम्बर मुद्रा की कितनी महिमा है। उन दिगम्बर तपोधन के भावों की वन्दना है। वे भवातीत होनेवाले हैं। वे भाव वन्दनीय हैं, वे भाव नमस्करणीय हैं, वे भाव पूज्य हैं, जो भाव भवातीत बना रहे हैं। वे भाव वन्दनीय नहीं हैं जो भाव बन्ध करा रहे हैं। निर्बन्ध भावों की वन्दना। धरती के देवता, वीतरागी तपोधन, जितने श्रमण हैं, इन सबके भावों की वन्दना।

मुनिमन सम उज्जवल नीर। गंगा का पानी नहीं दिखा, यमुना का पानी नहीं दिखा, चम्बल का पानी नहीं दिखा, कवि क्या कह रहा है? मुनि मन सम उज्जवल नीर प्रासुक गंध भरा।

हे प्रभु! जैसा मुनि का मन है, ऐसा पवित्र पानी लेकर आया हूँ। मुनि के मन को देखूँ। बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। ज्ञानियो! ध्रुव सत्य है, यही धर्म का स्वरूप है। इस बात को आप विद्वानों से पूछ लो। भूधरदास जैसे लोग जब स्तुति करने बैठ गये, अर्हंत की वन्दना करके उनके भाव अर्हंतमय ही रहे

हैं। निर्ग्रन्थ की वन्दना करके उनके भाव अर्हंतमय हो रहे हैं। निर्ग्रन्थ की वन्दना करके निर्ग्रन्थमय भाव कर रहे हैं।

'अहो जगत् गुरुदेव' स्तुति पढ़ी कि नहीं? वातावरण को अध्यात्ममय बनाना है तो बनारसीदास, भूधरदास, दौलतराम जी की भाषा को ही बोलना है। जितने भी यहाँ आये हैं, वे सब मुनि के तन को नहीं, मुनि के मन को देखने आये हैं, क्योंकि तन तो तस्वीरों में भी दिख जायेंगे।

अब पुनः बाहुबली स्वामी से मिलते हैं। तनकृत उपसर्ग तो सुने हैं आपने, पर यह तो भावों का उपसर्ग है भावों पर। मेरे मित्र! किसी ने मुझे कुछ कर दिया तो तुम सब खड़े हो जाओगे, पर मैंने मेरे ऊपर कुछ कर दिया तो तुम कुछ नहीं कर पाओगे। मुनि महाराज के भाव यदि नीचे गिर गये, तो वे दुर्गति के पात्र बनेंगे। तन के गिरने पर तो लोग उठा पायेंगे, पर मन के गिरने पर लोग नहीं उठा पायेंगे। निज का प्रभु ही तुझे उठा पायेगा। भगवान् भी तुझे उठाने नहीं आयेंगे, इसलिये यहाँ लिख रहे हैं कि विपाक के आने पर भी विकल्प न आये, इसका नाम साधना है। अशुभ विपाक के काल में विषाद मत करो, पर शुभ के विपाक के काल में भी हर्ष न करो। ऐसा समझाने वाले अँगुलियों पर गिनने लायक हैं। किसी के घर में, किसी की मृत्यु हो जाये तो सब पहुँच जायेंगे। समझायेंगे कि यह सब तो होता ही रहता है, विकल्प मत करो। मुझे लगता है कि वह इष्ट का वियोग भी अच्छा है, कम-से-कम लोग सत्य सुनाने तो आ जाते हैं। जिस दिन सम्पत्ति बढ़े तो कोई कहने नहीं आता कि विकल्प मत कर, यह तो आती-जाती रहती है, इससे हर्ष करने की जरूरत नहीं है। यह कोई समझाने नहीं आता। यह कोई भी नहीं कहेगा कि यह नरकगति में पहुँचाने का सुन्दर साधन है।

बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः। त.सू.।

मेरे मित्र! इस वैभव को देखकर बे-भव को मत भूल जाना। वैभव अशाश्वत

है और बे-भव शाश्वत है। जिस बात को समझाना चाहिये, उसे कोई नहीं समझाता है, अपितु श्रीमान का सम्मान कर उसका मान और बढ़ा दिया।

ज्ञानियो! भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि आगरा में बैठकर देश के कितने मुमुक्षु तत्त्व का निर्णय कर रहे हैं। लेकिन सम्यक् ही करना। शब्द नहीं बोलते कि मेरा यह अर्थ है। वे मूक हैं, वे जड़ हैं। यह रागी-द्वेषी जीवों की महिमा है कि किस शब्द का क्या अर्थ कर दें। अज शब्द का अर्थ है पुराना धान। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी पापी ने क्या कर दिया? कि हवन में बकरे को चढ़ा देना। उल्टा अर्थ कर दिया कि नहीं कर दिया? इसलिये शब्दों पर ध्यान रखना। शब्द बोलने के पहले भावों को निहार लेना। **ज्ञानी होना कठिन नहीं है, आगम का सत्यार्थ ज्ञानी होना कठिन है। शब्द-ज्ञानी होना कठिन नहीं है।** जबतक तत्त्व का मूल निर्णय न हो जाय, तब तक किसी भी व्यक्ति की बातों से प्रभावित होने की आवश्यकता नहीं है।

पापोदय काल में जो उपसर्ग चल रहा है, वह तो भगवान् का नाम भी लिवा देता है। उस समय तो व्यक्ति को लगता है कि हे भगवान्! मेरे जीवन में क्या घटित हो रहा है? तो कम-से-कम 'भगवान्' तो कह रहा है। पर पुण्य का जो उपसर्ग चल रहा है, उसमें भगवान् नहीं आते, उसमें तो दुनियाँ की नारियाँ, शृंगार, भोग, विलासता नजर आते हैं। यह जीवन पर पुण्य का बहुत बड़ा उपसर्ग है। विद्वानो! यह मत कहना कि महाराज जी! ऐसी व्याख्या तो पहले कभी सुनी नहीं है। मैं कोई नयी व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। मैं तो आगम की प्राचीन व्याख्या को तुम्हारे सामने रख रहा हूँ, जिनको तुमने खोलकर देखा ही नहीं है। जो में यह कह रहा हूँ, वह आगम में लिखा है। लोगों ने इसे बन्द करके रख दिया है।

"नय-प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धि इति सिद्धा सिद्धान्तः।

नय और प्रमाण के द्वारा वस्तु की सिद्धि होती है। ऐसा सिद्धान्त ही सिद्ध

है। बिना नय के, बिना प्रमाण के किसी भी वस्तु की सिद्धि सम्यक् रूप से होती नहीं है। आप के साथ छल क्या हुआ है? जो सम्यक् व्याख्यान था, उसको आपको प्रभावित करने के राग में बन्द कर दिया और एक पक्ष का कथन कर दिया। पुण्य बढ़ाओ, पुण्य बढ़ाओ, पुण्य बढ़ाओ—यह तो ठीक है, पर पुण्य का उपयोग क्या होना चाहिये? पर पुण्य बढ़ाओगे तो उदय में आयेगा कि नहीं आयेगा, यह प्रश्न है मेरा?

ज्ञानी! यह जीव पहुँचा पण्डित जी के पास कि कुछ दिन से मुझे कमजोरी महसूस हो रही है। पण्डित जी ने बता दिया कि आप मिष्ठान्न, दुग्धान्न का सेवन करो। दोनों ही सामग्री वीर्यवर्द्धक हैं। उससे शरीर में शुक्र की वृद्धि होगी, तो आप ऐसा करो कि इनका सेवन करो।

मेरे मित्र! आपने बहुत अच्छी बात तो बताई, लेकिन इतना बताकर पण्डित जी साहब मन्दिर चले गये। अधूरा काम हो गया। उपाय तो बता दिया कमजोरी दूर करने का, पर कारण नहीं बताया कि अब्रह्म के अधिक सेवन से यह कमजोरी आ गयी है। यदि तू ब्रह्मचर्य का पालन करेगा ही नहीं, तो दुग्धान्न और मिष्ठान्न करेगा क्या? यदि इनसे अधिक शक्ति मिलेगी, तो तू और अशुभ में जायेगा।

मिष्ठान्न दुग्धान्न को समझाने के बाद यह और कहना था कि मेरे मित्र! आप एक घण्टे भगवान् का ध्यान करना। उससे क्या होगा? उससे शरीर में जो शक्ति वृद्धिमान हो रही थी, जो अधोगति में जानेवाली थी, वह ऊर्ध्वगत हो जायेगी और जिस वीर्य को तुम नीचे गिरानेवाले थे, वह ऊर्जा में बदल जायेगा, तेज में बदल जायेगा, ओज में बदल जायेगा। ओज में बदला हुआ तेरा शरीर में शक्ति देगा, चमक देगा और भावों में विशुद्धि देगा और भवातीत बनायेगा। कौन? वह दुग्धान्न और वह मिष्ठान्न।

हे ज्ञानी! सम्यग्दृष्टि जीव को देव-शास्त्र-गुरु की आराधना में लीन होना चाहिये। पुण्यक्रिया को कभी नहीं छोड़ना। लेकिन पुण्य करने के लिये नहीं,

पापों से बचने के लिये। वैभव की प्राप्ति के लिये नहीं, अशुभ की निवृत्ति के लिये। पर पुण्य का उपसर्ग, आपने ऐसा कह दिया, तो महाराज लोग पुण्य करना छोड़ देंगे। किसी अज्ञानी ने यह सुन लिया कि पुण्य का उपसर्ग, तो वह कहेगा कि पुण्य जब उपसर्गभूत है, तो पुण्य करना ही क्यों?

मेरे मित्रो! ध्यान दो, पुण्य का उपसर्ग कब होता है? क्या बेटे का उपसर्ग नहीं होता है? आप अपने मन का बताना, तूने बेटे को जन्म उपसर्ग के लिये दिया था क्या? पर बेटे के द्वारा भी पिता पर उपसर्ग होते देखा जाता है। ऐसा होता है कि नहीं? घर-घर की यही लीला है, क्या बताओगे? बेटे के द्वारा जब पिता पर उपसर्ग हो सकता है, तो पुण्य के द्वारा भी पुरुष पर उपसर्ग हो सकता है। कैसे होता है? बेटे ने पिता को घर के बाहर निकाल दिया। ऐसा विपर्यास फैलाया कि पिता को बेटे को बेटा कहने के लिये सोचना पड़ा, यह है बेटे के द्वारा पिता पर उपसर्ग। जबकि सन्तान को जन्म दिया था तब कितना मुस्कुरा-मुस्कुरा कर सोच रहा था। पुण्य के द्वारा आत्मा पर उपसर्ग, विषय गम्भीर है। पर समझ में आ गया तो जीवन भर मुस्कुराओगे। अद्‌भुत विषय था—**"पुण्य के द्वारा पुरुष पर उपसर्ग।"** अब देखो पाप के द्वारा पुरुष पर उपसर्ग। पाप का उपसर्ग तो भगवान् बहुत समय पहले उतार लेते हैं। सबसे लम्बे समय तक चलता है तो पुण्य का उपसर्ग चलता है। चौदहवें गुणस्थान में पुण्य का उपसर्ग ही दूर होता है। पाप का उपसर्ग तो तेरहवें गुणस्थान में दूर हो चुका होता है। ज्ञानियो! समझ में आ रहा है क्या? पुण्य के काल में भगवान् के दर्शन मत छोड़ देना। बीच-बीच में मुझे यह तुम्हारी सीमा देखकर बोलना पड़ता है। यदि शुद्ध तत्त्व का कथन करूँ तो यह या तो हिल जायेंगे या कहेंगे—महाराज! बस करो, बस करो।

सोलापुर में एक विद्वान् मुझसे बोले—महाराज जी! समयसार तो सुनाया करो। मैंने कहा, ठीक। जिस दिन मैंने शुद्ध समयसार सुनाया, वह विद्वान् हाथ जोड़ता है—स्वामी-स्वामी! आप ऐसा कथन कर दोगे तो व्यवहार का क्या होगा? मैंने कहा—धन्य हो ज्ञानी! तू ही तो कल कह रहा था कि समयसार सुनाओ। समयसार

में व्यवहार कहाँ और व्यवहार में समयसार कहाँ?

पानी में शैवाल नहीं होता है, पानी पर शैवाल हो सकता है। आप लोग छोटी बात भी नहीं समझ पा रहे हो। बस, समझो कि व्यवहार में समयसार नहीं होता। व्यवहार से समयसार जरूर होता है।

मतलब समझो। पुण्य करना पाप नहीं है। पुण्य करना हेय नहीं है। पुण्य के फलभूत जो विषय-कषाय है, इसमें लीन होना हेय है। पुण्य का उपसर्ग कैसा होता है, अब उसको सुनलो।

ज्ञानी! तू जैनकुल में पुण्य के उदय से जन्मा कि पाप के उदय से? यह सुन्दर शरीर मिला है, पुण्य से कि पाप से? तेरे घर में सम्पत्ति तेरे पिता की रखी हुयी है, तुझे मिलनेवाली है। वह कमा-कमा कर परेशान है। यह तेरा पुण्य है कि पाप? पाप करके तेरा पिता जो पैसा कमा रहा है, उस पाप के फल में तू कितना साथ देने जायेगा? देख लो भैया! बेटा कह रहा है कि अंशमात्र भी पाप में साथ भोगने नहीं जायेगा।

बेटा! तेरे पिता ने जो सम्पत्ति तुझे रखी है, वह पुण्य से कि पाप से? और तेरी शादी भी कर दी, वह पुण्य से कि पाप से? वह भी भोग-उपभोग सामग्री है। वह भी पुण्य से ही मिली है। ऐसे ही यह सबकुछ पुण्य-पुण्य से मिला है। अब तेरी शादी होने के बाद तू जो भोग करेगा, वह पुण्य होगा कि पाप होगा?

हे मुमुक्षु! जो पाप होगा, उससे जो तुझे फल मिलेगा, वह क्या होगा? दुर्गति होगी। नरक, तिर्यंच आदि। यह पुण्य के द्वारा आत्मा पर घोर उपसर्ग हुआ कि पुण्य के फल में लीन हो गया और नरक चला गया। यह पुण्य का उपसर्ग पुरुष के ऊपर हुआ है।

अब कितने लोग पुण्य का उपसर्ग चाहते हैं? यदि पुण्य का उपसर्ग नहीं चाहते हो, तो पुण्य तो करना, पर पुण्य के फल के भोग में मत चले जाना। पुण्य करने के बाद भी जैसे चक्रवर्ती, तीर्थंकर, कामदेव, शान्तिनाथ-कुंथुनाथ-अर्हनाथ पुण्य

के फल को जीर्ण तृण के समान छोड़कर चले गये, ऐसे ही तुम सब भी करना।

भैया! पाप का उपसर्ग जब आता है तो भगवान् की याद दिलाता है। पुण्य का उपसर्ग आने पर जीव सब भूल जाता है। कार्तिकेय स्वामी ने लिखा है–

पुण्य से गति, इन्द्रिय, विषयसुख मिलता है। पर विषयसुख को जो लिप्सा पूर्वक भोगता है, उससे दुर्गति की प्राप्ति होती है। ऐसा पुण्य भला नहीं है। पर वो पुण्य अच्छा है जिस पुण्य को प्राप्त करके तुम निर्ग्रन्थ मुनि बने। मुनि बनकर अर्हंत बने, अर्हंत बनकर सिद्ध बने, वह पुण्य भला है।

इसलिये विपाक के काल में विषाद नहीं करना।

यहाँ आचार्य कह रहे हैं कि हे आत्मन्! क्रोध पर और क्रोध कर, मानकषाय पर मान कर और परिग्रह में परिग्रह का त्याग कर, स्वात्माधीन सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर, क्योंकि ये कषायें आत्मीय गुणों की घातक हैं।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"करनेयोग्य कार्य"

परिग्रहे महाद्वेषो, मुक्तौ च र तिरुत्तमा।
सद्ध्याने चित्तमेकाग्रं, रौद्रार्त्ते नैव संस्थितम्॥ 192॥
धर्मस्य संचये यत्नं, कर्मणां च परिक्षये।
साधूनां चेष्टितं चित्तं, सर्वपापप्रणाशनम्॥ 193॥

अन्वयार्थ-परिग्रहे = परिग्रह से, **महाद्वेषः** = महान् वैराग्य, **मुक्तौ च उत्तमा रतिः** = मुक्ति की प्राप्ति में श्रेष्ठ प्रीति, **सद्ध्याने एकाग्रं चित्तं** = धर्मध्यान में चित्त की एकाग्रता तथा, **रौद्रार्त्ते नैव संस्थितम्** = रौद्रध्यान और आर्त्तध्यान में चित्त को न जोड़ना इन बातों का ध्यान ज्ञानीजनों को रखने योग्य है। **साधूनां** = साधुओं का, **यत्नं** = उद्योग, **धर्मस्य संचये** = धर्म के संग्रह में तथा, **कर्मणां च परिक्षये** = कर्मों के क्षय करने में होता है तथा, **चित्तं चेष्टितं सर्वपाप प्रणाशनम्** = उनका चित्त ऐसे चारित्र के पालन में होता है जिससे सर्व पापों का क्षय होता है।

भावार्थ-परिग्रह से वैराग्य मुक्ति की प्राप्ति में श्रेष्ठ प्रीति, धर्मध्यान में चित्त की एकाग्रता, आर्त्त-रौद्र ध्यान में चित्त को नहीं लगाना, कर्मों के क्षय करने में तथा धर्म के संचय में यत्न करना तथा चित्त की चेष्टा सर्वपापों के नाश करने में होना ही साधुओं का कर्त्तव्य है।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के उन

विशेष गुणों की व्याख्या कर रहे हैं जिन गुणों से अपरिचित हुआ पुरुष अपने पुरुषत्व से शून्य हो रहा है। **साधुजन गुणों की ओर दृष्टिपात करते हैं। असाधुजन छिद्रान्वेशी ही होते हैं। जिस जीव की दृष्टि गुणों की ओर है, उस जीव को सर्वत्र मोक्षमार्ग ही दृष्टिगोचर होता है। जिस जीव की दृष्टि अवगुणों की ओर है, उसको सर्वत्र दोष-ही-दोष दृष्टिगोचर होते हैं।**

आचार्य कुलभद्र स्वामी यहाँ भगवान् बनने के लिये क्या करना चाहिये, भगवान् कैसे बनना चाहिये, इस बात की व्याख्या नहीं कर रहे हैं। वह कह रहे हैं कि साधु बनने के लिये क्या करना चाहिये। भगवान् बनने के लिये पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता है, पुरुषार्थ तो वास्तव में साधु बनने के लिये किया जाता है। और जो साधु बन चुका होता है, वह भगवान् बन ही जाता है। पुरुषार्थ तुम्हारा भगवान् बनने का है और साधु बन नहीं पा रहे हो, ज्ञानी! विश्वास रखना, तीन काल में असम्भव है आपको भगवत्ता की प्राप्ति हो जाना। भगवान् बनने वाला पुरुष साधु ही बनता है। जो साधु बनकर बैठ जाता है, वह भगवत्ता को सिद्ध कर लेता है। इस बात को समझा रहे हैं कि साधु बनने के लिये क्या करना चाहिये।

ज्ञानियो! बहुत धैर्य से समझना। आज तक हमने स्पर्धा ही की है। आज तक चिन्तन ही किया है कि मैं भगवान् कैसे बनूँ, भगवान् कैसे बनूँ? भगवान् बनने की स्पर्धा तो जगत् में चल रही है और अधिकांशतः जीवों का जो समय जा रहा है वह भगवान् बनने में नष्ट कर रहे हैं। समझो मैं क्या कह रहा हूँ। हर एक गली में आपको भगवान् मिल जायेंगे। हर एक नगर में भगवान् मिल जायेंगे, क्योंकि आज विश्व में कोई सबसे कीमती वस्तु है तो भगवान् है। सबसे पूज्य है तो भगवान् है। इसलिये इंसान बनना, साधु बनना, सब व्यर्थ की बातें हैं। भगवान् ही बनना चाहिये। समझो बात क्या है?

10-15 लोगों का समूह तैयार किया और उन सबके बीच में खुद को भगवान् घोषित कर दो। न कभी पंचकल्याण तेरे हुये, न कभी सोलहकारण भावना भायी,

न कभी जिनदीक्षा को प्राप्त किया। यह सब श्रम के कारण हैं। यह सब कष्ट के कारण है। इसलिये सब घोषित करो और अज्ञानियों की भीड़ जगत् में है ही। **जिसके पास वचनबल होता है, प्रज्ञा होती है, वह अपनी प्रज्ञा के बल पर अज्ञानी जीवों से अपने भगवान्पने की घोषणा करा लेता है।** थोड़ा तो विवेक का प्रयोग करो, बुद्धि का प्रयोग करो।

ज्ञानियो! हमारे यहाँ जो प्राणिमात्र को भगवान् कहा गया है, वह द्रव्यार्थिकनय से कहा गया है। द्रव्यदृष्टि से कहा गया है, न कि पर्याय की दृष्टि से। संसार में जीनेवाला प्राणी भगवान् है। संसार में रहनेवाला जीव, संसार की सम्पूर्ण पर्यायों में यदि भगवान् ही है, फिर तो पुरुषार्थ करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

मुमुक्षुओ! सँभलकर जीना। आज साधुओं की कमी हो गयी, भगवानों की कमी नहीं है। भगवान् इतना महत्त्वपूर्ण शब्द है, कि व्यक्ति हर भेष में अपने आपको भगवान् घोषित कर देता है। सम्यग्दृष्टि जीव भगवान् की खोज नहीं करता है, साधु की खोज करता है। साधु की खोज साधु में मत करना। वे मेरे से भिन्न हैं। उनमें मेरे में अत्यन्ताभाव है। मैं साधु में साधु को नहीं खोजना चाहता हूँ। मैं निज के भगवान्-आत्मा में साधु खोजना चाहता हूँ। मैं निज में जब साधु खोज लूँगा और मुझे निज में यदि साधु मिल गया, तो नियम से मैं भगवान् बन ही जाऊँगा।

मित्रो! अपने समय और श्रद्धा को बर्बाद करना है, साधुओं में साधु खोजना, क्योंकि हम साधु में यदि साधु खोजने जायेंगे तो मुझे आँख खोलना पड़ेगी, मुझे चलना पड़ेगा। साधुओं में साधु खोजूँगा तो मेरे ज्ञान का क्षयोपशम नष्ट होगा। उतना मैं दूसरे के खोजने में क्यों लगाऊँ? मेरे भीतर साधु उत्पन्न हो रहा है कि नहीं, इसमें समय लगाइये।

ज्ञानियो! साधुओं में साधु खोजने से तुम्हारा आत्मा का हित होगा कि निज में साधु खोजने से आत्मा का हित होगा? माताओ! बहुत सँभलकर सुनना, यह

जिनागम है। आज तक मैंने क्या किया? एक क्षण का विषय दोहरा लो। बन्दर क्या करता है दिन भर? तोड़-फोड़ करेगा, फिर शान्त बैठेगा, फिर वही करेगा। **जिसके हृदय में तोड़-फोड़ का भाव है, वह साधुभाव नहीं है, वह बन्दरभाव है। जिसके भीतर में कहीं समाज को तोड़ो, कहीं भवनों को तोड़ो, यह तो बन्दर-स्वभाव है, साधुस्वभाव नहीं है।** बन्दर को यदि तोड़-फोड़ से समय मिलता है तो खाने में लगाता है। खाने से यदि फुर्सत मिले तो एक बन्दर दूसरे के जुआँ बीनता है और खा लेता है। जैसे बन्दर उन जुओं को मुख में रखता है, ऐसे ही जिन जीवों ने निज में साधु को नहीं खोजा, पर में साधु को खोजा और जब साधुओं को खोजते-खोजते अपने मुख को दूसरे की निन्दा में लगाया, तो यही जुओं को बीनना और फिर उनका भक्षण करने जैसा है। कठोर शब्द हैं, पर 'जो है, सो है।' जो अपना समय साधुओं की आलोचना में लगा रहे हैं, वह बन्दर की पर्याय का जीवन जी रहे हैं। भविष्य में इनकी पर्याय नियत है। ऐसे संक्लेश परिणाम होते हैं कि एक बन्दर ने पूर्व भव में मनुष्य की पर्याय में क्रूर परिणाम किये। मुनिराज पर उपसर्ग किया, तब वह आर्त्तध्यान से मरकर जंगल में बन्दर हुआ। तब भी वह बैर को नहीं भूला। वीतरागी मुनिराज जब ध्यान में लीन हुये जंगल में साधना कर रहे थे, बन्दर ने पेड़ की लकड़ी को उठाकर मुनिराज के शरीर पर पटक दी। माँ! जीवन में कभी मत सोच बैठना कि यह तो पशु-पक्षी हैं। उसको भी डण्डा मत मारना। उसने भी वैर बाँध लिया तो जब तुम्हारा वैर उनको स्मृति में आया, जब तुम्हारा उत्कर्ष का काल होगा, कहीं तुम साधना में बैठे थे, वह बन्दर भी उपसर्ग करने खड़ा हो जायेगा।

मित्रो! इसलिये इन मनुष्यों मात्र से ही मैत्रीभाव नहीं, प्राणिमात्र से मैत्रीभाव रखो। यदि साधु को खोजना है तो पर में नहीं, निज में खोज करो। अपना असाधु भाव का बोध हो जाए, यही साधुस्वभाव की खोज है। जब तक आपको निज के भीतर के असाधु भाव का बोध नहीं हो रहा है, तब तब तुम्हारे साधुस्वभाव की खोज नहीं है।

जैनदर्शन किसी को प्रताड़ित करनेवाला दर्शन नहीं है। कष्ट देना, उत्पीड़ित करना जैनधर्म का लक्षण नहीं है। किसी से अपराध हो गया और उस व्यक्ति को स्वयं ही अपराध बोध हो रहा है, तो उसे अब प्रताड़ित करने की क्या आवश्यकता है? वह स्वयं अपने आप कह रहा है कि हे स्वामी! मुझसे ऐसा दोष हो गया है। अब उसका प्रायश्चित्त दे दो।

धन्य हो उस जीव के परिणामों को, जिसने जीवन में खोटे-से-खोटे कार्य कर लिये हों और उन खोटे कार्यों के करने के बाद भी उसका भीतर का भगवान् बोल पड़ा कि हे ज्ञानी! साधु की खोज कर। इससे तेरी भगवत्ता की सिद्धि नहीं होगी। निज के भगवान् को देखना है तो इन अपराधों को दूर कर दो और जीवन में प्रायश्चित लेकर आत्मा की शुद्धि करो, यही साधुस्वभाव है। **दोष करके भी दोष करते जाना और छुपाकर रख लेना, यही असाधुस्वभाव है।**

ज्ञानियो! निज में झाँक कर देखना। साधुभेष प्रसंशनीय है, लेकिन पर-प्रशंसनीय है। साधुस्वभाव निज प्रशंसा के योग्य है। साधुभेष को तो पर ही पूज पाते हैं। साधुस्वभाव को स्वयं पूजा जाता है। जो साधुस्वभाव है, उसकी पूजा दूसरे नहीं कर पाते हैं। साधुभेष की पूजा दूसरे करते हैं। पर साधुस्वभाव की पूजा स्वयं के द्वारा होती है। साधुभेष जो है, वह चाक्षुष है। साधुस्वभाव अचाक्षुष है। साधुभेष की अनुभूति पराधीन हो सकती है, लेकिन साधुस्वभाव की अनुभूति स्वाधीन है। जितने-जितने भाव जीवों के बिगड़े हैं, यह पर में साधुस्वभाव खोजने में बिगड़े हैं। निज में साधुस्वभाव खोजता तो नियम से विशुद्ध परिणाम होते। तब नाक नहीं सिकुड़ती है, पश्चाताप होता है और विशुद्धि बढ़ती है। जब तूने दूसरे में असाधु स्वभाव देखा। नाक कब सिकुड़ी? वह आलोचना 'आलोचना' नहीं, वह निन्दा 'निन्दा' नहीं, वह गर्हा 'गर्हा' नहीं जिसमें तनाव बढ़े, टेंशन बने। कुछ लोग कहते हैं कि महाराज! स्वयं में ग्लानि हो रही है। इतने तनाव में रहा तो आर्त्तध्यान में चला गया।

ज्ञानी! आलोचना व निन्दा का अर्थ आर्त्तध्यान नहीं है। 'मैंने बहुत बड़ी भूल

की,' रो रहा है। पागल है वह। रोने से ठीक नहीं होगी जो मैंने बहुत बड़ी भूल की है। **"तस्समिच्छामे दुक्कडं"** हे प्रभु! मेरा दुष्कर्म मिथ्या हो। अब आगे ऐसा दुष्कर्म नहीं करूँगा। ऐसा विशुद्ध भाव बना रहा है, इसका नाम निन्दा, गर्हा, आलोचना है। प्रतिक्रमण है। दोष कर बैठा है, उसी में रो रहा है कि हाय! मेरी अब दुर्गति हो जायेगी। अरे भाई! तो रोने से बच जायेगी क्या? दुर्गति का काम किसने किया है? दुर्गति के भाव किसने किये हैं? सुगति का काम कौन करेगा? सुगति के भाव कौन करेगा? जो दुर्गति का मार्ग था, उसे सुगति में बदल दीजिये। साधु को खोजो। अद्भुत विषय दिया है आचार्य महाराज ने।

मित्रो! साधु को खोजो, पर साधुओं में नहीं, स्वयं में खोजो। जो साधुओं में साधु को खोज रहे हैं, वे साधु की हत्या कर रहे हैं। अब समझो जैनदर्शन को। प्रवचन की व्याख्या को समझो।

माना कि आप पीछे बैठे भइया में 'ब्रह्मचारी है कि नहीं' ऐसा खोज रहे थे। अरे ज्ञानी! तेरी दृष्टि में 'यह ब्रह्मचारी है कि नहीं' इसका मतलब है कि तेरी दृष्टि अब्रह्म में जा रही है। अब्रह्म में जब तेरी दृष्टि जा रही थी, तब तेरे साधुस्वभाव का क्या हो रहा था? देखो, स्पष्ट बोलो। दुनियाँ की कथा कर-करके धर्म का समय तो निकाल दिया, पर धर्म के पास नहीं पहुँच पाये। जब तुम दूसरे में 'ब्रह्मचारी है, कि नहीं' चिन्तन कर रहे थे, तो एक दृष्टि अब्रह्म में थी कि नहीं? यह कोई बाहर की चर्चा नहीं है, यह दार्शनिक पक्ष है। दार्शनिक पक्ष को विवेकपूर्वक समझो, निर्णय लो।

एक माँ से पूछो। बाजार से कोई सामग्री खरीद कर लायी गयी। बेटा खरीद कर लाया और माँ! जब तेरे मन में विचार आया कि यह शुद्ध है कि नहीं? इसमें मिलावट तो नहीं है? तो जब तेरे मन में भाव आया कि इसमें मिलावट नहीं है ऐसा सोच रही थी माँ, उस काल में माँ! तुझे दूध में पानी दिखता है कि दूध में पानी तो नहीं है? क्योंकि बाजार से लाया गया है। आपको दूध और पानी दोनों दिखेंगे कि नहीं? माँ तुझे एक ही क्षण में दूध भी और पानी भी

दोनों झलक रहे हैं। दूध पर भी दृष्टि है और पानी पर भी दृष्टि है। जब तू ब्रह्मचारी में ब्रह्मचारी की खोज कर रहा है, तब तेरी दृष्टि अब्रह्म पर भी है। जब तेरी अब्रह्म पर दृष्टि है, वह तेरा अशुभ भाव है। जो अशुभ भाव है, वह दुर्गति का कारण है, खोटे बन्ध का कारण है। पर में साधु को जो खोज रहा है, वह साधु की हत्या कर रहा है। आपको बुरा तो नहीं लग रहा है?

ज्ञानियो! तात्पर्य समझो। तेरे भीतर जो साधुस्वभाव था, उस साधुस्वभाव का तूने घात कर दिया। साधु की हिंसा नहीं की, अपने भीतर के साधुभाव की हत्या की है। जब तू खोज रहा था, उस समय तेरे अन्दर असाधुपना झलक रहा था उस समय तू अपने साधुपने से शून्य हो गया था। ज्ञानियो! साधु में साधु के नहीं, निज में निज के साधु को देखना है। सुनो ध्यान से। यदि तू किसी के अन्दर सज्जनता खोज रहा है, तो साधुपन खोजेगा कब? जब तुझे साथ में असाधुपना भी दिखेगा, तभी साधुपना खोजेगा। तो जितने क्षण असाधुपन को देख रहा था, उसी क्षण यदि आयुबन्ध का काल आ गया, तो तेरी असाधुपने में मृत्यु हो जायेगी।

मित्रो! बन्दर का जीवन तो बन्दर का जीवन है। जब वह खाली बैठा तो उसने दूसरे के जुयें बीनना, फिर खाना प्रारम्भ कर दिये। ऐसे ही जो पुरुष, चाहे साधुभेषी हो, जैसे ही फुर्सत में बैठा और वह दूसरे में दोष देखने लग गया, यहीं से उसका बन्दर की पर्याय का जीवन प्रारम्भ हो चुका है। दूसरे के जुआँ बीन रहा है, उसकी तो खुजली मिटेगी, पर तेरा मुख हत्या से भर रहा है। धिक्कार हो तुझे, बन्दर-पर्याय में चला गया। कैसा लगा? भैया! तुझे समझ में आ रहा है कि यह बन्दर-स्वभाव क्या होता है।

इन ज्ञानियों से बोलना कि बन्दरस्वभाव मत करो। यदि स्वभाव को बदलना ही है तो खाली बैठने पर गाय-स्वभाव बनाओ। दो स्वभाव हैं। एक गाय स्वभाव है और एक बन्दर-स्वभाव है। गाय-स्वभाव में आनन्द है। कोई बन्दर पेड़ पर बैठे तो पेड़ पर ही दूसरा बन्दर लेट जाता है और वहीं जुआँ बीनने लगता है।

गाय पेड़ के नीचे बैठें तो दिनभर जो खाकर आयीं थीं वे आपस में बैठकर गोष्ठी करती हैं, जुगाली करती हैं। जो खाकर आयी थीं, उसे पचाने के लिये रुंथन करती हैं। अन्दर से निकाल-निकाल कर पचाती हैं। ऐसे ही सम्यक्- **ज्ञानी जीव, तत्त्वज्ञानी जीव गाय की भाँति बैठता है। वह जो जिनवाणी सुनकर आया है, जिनवाणी पढ़कर आया है, उसका रुंथन करते हैं। गाय-स्वभावी होते हैं। जो दूसरे की निन्दा में बैठते हैं, वह बन्दर-स्वभावी होते हैं।**

भैया! अपने को देखना है। जिनवाणी के सोलह नाम हैं। सोलह नामों में 'बन्दर' कोई नाम नहीं है, पर 'गौ' नाम है। देखो मैं आपको कई बार बता चुका हूँ।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी॥
पंचमं विदुषां माता, षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी॥
नवमं च जगत्माता, दशमं ब्रह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदाभवेत्॥
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषा-चैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते॥
एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदाभवेत्॥
सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे कामरूपिणी।
विद्यारम्भं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा॥

हे गौ, हे वाग्वादिनी सरस्वती! आप मुझे सिद्ध हों। जैसे गाय जुगाली करती है तो चार थनों से दूध देती है, ऐसे ही माँ सरस्वती जिनवाणी चार अनुयोगों से आगम का तत्त्व का दुग्ध देती हैं। जो ज्ञानी, मुमुक्षु जीव होता है, वह गाय बनकर बैठता है और अज्ञानी पापी जीव बन्दर बनकर बैठता है। कोई व्यक्ति

किसी की निंदा करते मिल जाए, तब कहना अहो बन्दर पर्यायी मर्कट। मर्कट है। आप लोग तो कभी किसी की निन्दा करते ही नहीं होंगे? किसी की भी निंदा नहीं करना, यदि दुर्गति से बचना है।

हे ज्ञानी! चाहे एक जुआँ बीन कर रखे, चाहे पचास, पर हत्यारा तो हत्यारा ही है। मांसाहारी तो मांसाहारी ही है। जो व्यक्ति पर की आलोचना में जीवन बिता रहा है, वह ज्ञानी जुओं का मांस खा रहा है। क्या कर सकते हो? वट्टकेर स्वामी ने जिसको पिट्ठमाँसभोजी कहा है। बन्दर की पर्याय है। इसलिये साधु क्या खोजना ? अब तो मुझे निज में ही साधु खोजना है। क्योंकि निज में साधु खोजूँगा तो मेरा कल्याण हो जायेगा और पर में साधु खोजूँगा तो परपर्याय में मेरी परिणति विकृत हो जायेगी।

भावों की अशुद्धि का मुख्य बिन्दु परपर्याय पर दृष्टि है। जब भी भाव बिगड़ते हैं, वहाँ नियम से परवस्तु होती है। आप खोज कर लो। चाहे पर के परिणाम हों, चाहे पर की पर्याय हो, चाहे पर का द्रव्य हो, चाहे पर का गुण हो, लेकिन जब भी भाव बिगड़ते हैं, वहाँ नियम से परवस्तु होती है। निजवस्तु का चिन्तन करने में परिणाम बिगड़ते नहीं हैं। वहाँ तो भावों में विशुद्धि आती है। हाय! लोचन भी खोले तो पर के लोचनों को देखने के लिये। धिक्कार हो। निज के लोचन को शुद्ध करने के लिये लोचन खोलता तो हे ज्ञानी! तू सिद्धभगवान् बन जाता।

लोचन भी खोले तो पर के आलोचन में। इन आँखों ने कितनी आँखें देखी हैं। वे ही असाधु पुरुष हैं जिनकी आँखों ने पर की आँखें देखने के लिये निज की आँखें खोली हैं। अब समझो मैं क्या कह रहा हूँ।

हे ज्ञानी! तू अपने बेटे की माँ की आँखें देखने गया था, तब तेरी वैराग्य की आँख नष्ट हो गयी थी। समझ गये? यदि किसी कन्या की आँखें देखने नहीं जाता, तो हे अभागे! तू यहाँ नहीं, ऊपर बैठा मिलता। आँखों से तेरी साधुपने

की आँखें फूट गयी। अब समझ में आ गया। स्व की वैराग्य की आँख फूट गयी, क्योंकि राग भरी आँखों ने राग भरी आँखों को देख लिया। जो समय स्व साधु की खोज में जाना था, वह पर की पर्याय के राग में परिणामों के विकृत करने में नष्ट कर दिया। इसलिये भगवान् कह रहे हैं कि मत देखो राग की आँखों से राग की आँखों को। यदि देखना ही तुझे पसन्द है, तो **देख "वैराग्य की आँखों से वीतरागी की आँखों को।" देखना ही चाहता है तो जिनालय के पार्श्वनाथ स्वामी की मुद्रा को देख। यदि आँखों को देखने की ही आदत है, तो देखो वीतरागी की आँखों को, जिसमें चारित्र का रस टपक रहा है और निजानन्द की अनुभूति टपक रही है। ऐसी अमृत की आँखों को देखो। मत देखो उन आँखों को जिसमें वासना का जहर टपकता है।** अभी भी समझ में न आये तो विश्वास रखना, भगवान् महावीर तुमको समझाने नहीं आयेंगे। समझना हो तो समझ लो। छटवाँ काल आ गया तो कोई मुनिराज भी समझाने नहीं आयेंगे। समझ में आ रहा हो, तो आज से पर की निन्दा का त्याग कर दो। पर-साधुओं में साधु देखने का त्याग। मात्र निज के साधु को ही देखेंगे। साधु दिख गये तो मात्र देखना है, न कि असाधु देखना है। मुझे मात्र अपना साधु देखना है। राग की आँखों से देखोगे तो वासना का विष टपक रहा है। वैराग्य की आँखों से वीतरागी की आँखों को देखोगे तो वीतरागपन का अमृत टपकता है। अपन क्यों अमृत छोड़ें? मुमुक्षुओ! समय कम है। अमृतपान करना है कि विष पान करना है? निर्णय कर लो।

ज्ञानियो! यदि अमृतपान करना है तो अपने समय को पर के लिये मत दो। लोग कहते हैं कि महाराज जी! आप क्यों दिनभर स्वाध्याय करते हो? भइया! यह रहस्य आपको कुछ दिन बाद समझ में आयेगा। यह पंचमकाल है, इस काल में दुनियाँ की पर्यायों को सीधा करके बैठाया जा सकता है, लेकिन अपने वक्र परिणामों को सीधा कर पाना बहुत कठिन है।

ज्ञानी! स्वयं के ही वक्र परिणामों को सीधा कर पाना बहुत कठिन है। जो

वक्र परिणाम है, वही तो मान है वही तो माया है। आर्जव-मार्दव धर्म की प्राप्ति अवक्र भाव है। आप घर में एक छोटा-सा पौधा भी लगाते हो तो उसमें कुछ सहारा लगा देते हो। क्यों? सीधा जाना चाहिये। ज्ञानी! धन्य हो, आपका ज्ञान कितना विराट है कि एक वनस्पति को सीधा जाना चाहिये। लेकिन मेरे मित्र! तू अपने परिणामों के साथ चारित्र की बल्ली क्यों नहीं लगा रहा है, ताकि तेरे परिणाम सीधे जायें?

ज्ञानी! वृक्ष सीधा जायेगा तो तुझे क्या मिलेगा? और परिणाम सीधे जायेंगे तो सीधे सिद्धशिला मिलेगी। परिणाम सीधे करो, परिणति सीधी करो। जो टेड़े परिणाम करेगा, उसको टेड़ी ही जगह मिलेगी। ईशुगति वाला स्वर्ग जाता है, सर्वार्थसिद्धि जाता है। सिद्ध बनता है तो ईशुगति से बनता है। लेकिन तिरछे परिणामों से तिर्यंच या मनुष्य बने। मध्यलोक या तिर्यक्लोक। नहीं-तो नरकों के बिल आड़े-टेड़े हैं। जितने आड़े-टेड़े परिणाम होंगे, उतने ही आड़े-टेड़े नरक के बिलों में प्रवेश करना पड़ेगा। परिणामों, परिणामों में अन्तर है।

जो मायारूप परिणाम कर रहे हैं, वे कुछ हाथी-जैसे तिर्यंच बन जाते हैं, कुछ घोड़े बन जाते हैं, और वक्र-वक्र परिणाम होते हैं, वे श्वान बने, बिल्ली बने और-भी वक्र परिणाम हों तो उनके रहने के स्थान नरक बिल रहते हैं। गहरी बात पकड़ो। मात्र रट-रटके मत बैठो, सुनकर चिन्तन लगाओ। पर जिनवाणी के बाहर चिन्तन नहीं जाना चाहिये। आप देखो कि जितने मुख से कुतरने वाले प्राणी हैं, वे सब-के-सब बिलों में रहते हैं। काटनेवाले प्राणी बिलों में रहते हैं। यानि यह अनुभव करो कि बिलों में क्यों रह रहे हैं? जिसके भाव उच्च होंगे, वह ऊपर बैठने का भाव रखता है, अच्छे स्थान पर बैठेगा। आप नगर में ही देखो, सज्जन पुरुष/महाजन नगर के मध्य में बसते हैं। जो जैसे भाव रखता है, उसके निवासस्थान भी उसी स्तर के हैं। कोई नगर के बाहर रह रहा है। कोई नाली के पास रह रहा है। नदियों के किनारे, नालों के किनारे कौन रह रहे हैं? वह मछलीमार। यानि जिनकी जैसी भावना है, खोटे भाव हैं, उनका

जन्म ही वहीं होता है। जाओ बेटा! तुम फैलाओ जाल। पहले फैलाये माया के जाल, अब फैला रहे हैं मछली के जाल मछली पकड़ने के लिये।

देखो भैया! किसी पर लक्ष्य मत ले जाना, तत्त्व का उपदेश अपने लिये सुनना, स्वयं को ठीक करने के लिये सुनना। जो बिल में रह रहे हैं चूहा, नाग आदि उनके परिणाम जितने वक्र होंगे, उनके बिल भी उतने ही वक्र होंगे। जिनके रहने के स्थान बिल हैं, उनके भीतर के बिल कैसे होंगे? जिनको बिलों में रहना हो, वे टेड़े परिणाम करो। मायाचारी करो तो अच्छे बिलों में रहने को मिलेगा। और भी बड़े-बड़े बिलों में रहना है तो घोर पाप करो, खूब परिग्रह का संचय करो तो छोटे-मोटे बिल छोड़ो, नरकों के बिल मिलेंगे। चिन्ता मत करना। हर प्रकार के बिल हैं। नरकों के भी बिल हैं, चूहों के भी बिल हैं। अब जिस जीव को जिस बिल में जाने की इच्छा हो वैसे भाव कर लेना। बड़ा स्वतन्त्र परिणमन है। कोई रोकेगा नहीं, कोई टोकेगा भी नहीं, कि तुम कहाँ जा रहे हो। दूसरे के परिणामों को कुतरने के भाव हैं, दूसरे के गुणों को नष्ट करने के भाव हैं, तो चूहा क्या करता है? कितने ही सुन्दर कपड़े रखे हों, उसमें छेद कर ही देता है। उसको तेरी सुन्दरता से कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसे ही भइया! तुम कितने महान् बने रहना, पर चूहा-परिणामी जीव मिल गया तो तुम्हारे अन्दर दोषों का छेद कर ही देगा।

ज्ञानियो! वे उसी पर्याय से या तो आये हैं या उसी पर्याय में जानेवाले जीव हैं जो दूसरे के अन्दर छेद देखते रहते हैं। वे चूहे-जैसी परिणति वाले जीव हैं। ज्ञानी! अपने आप में साधु को खोजो।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं—हे जीव! किंचित् भी तुझे निज में प्रीति है, किंचित् भी यह भावना हो कि मेरा कल्याण हो और स्वयं के प्रति स्वस्वभाव भाव है, किंचित् भी भाव मन में आ रहा है, तो मेरे मित्र! विषय को गहरे में समझ लेना।

आचार्य क्या कह रहे हैं? किंचित् भी आत्मा में प्रीतिभाव है, तो मेरे मित्र!

तेरे घर में गेहूँ के दाने रखे होते हैं, उनको आटा बनाना चाहता है, तो पहले तू उसमें बीनता है। क्या बीनता है? कहीं कंकड़ तो नहीं हैं? अन्य कोई सामग्री तो नहीं है। उनको बीन-बीन कर बाहर कर देते हो। अपनी ही थाली के बीनते हो, जगत् में जितने गेहूँ पड़े हुये हैं, सबको बीनने तू नहीं जाता, क्योंकि सब तुझे खाने नहीं मिलेंगे। तुझे खाने तो उतने ही मिलेंगे जितने तेरे हैं।

मेरे मित्र! अपने भावों की थाली के विकारों को खोज-खोज कर बाहर कर देगा तो तेरा शुद्ध आटा बनेगा, किसकिसायेगा नहीं। यदि तू पर की थाली को साफ करने में लग गया और अपनी थाली को नहीं शोध पाया, तो तुझे खाने को क्या मिलेगा?

मुमुक्षु! कह देना सबसे कि न चूहे की पर्याय का जीवन व्यतीत करो, न बन्दर की पर्याय का जीवन व्यतीत करो। जीवन व्यतीत करना है, तो साधुस्वभाव का करो, निज दोषों को देखना प्रारम्भ करो, परदोषों को देखना बन्द करो। यह गहरी बात कर रहे हैं, क्यों? यदि आपको किसी में द्वेषभाव आता है तो किसी अन्य में द्वेष उत्पन्न मत करो।

तुम्हारी दुकान का ग्राहक अन्य दुकान पर पहुँच जाये, फिर देखो। जो रोष आता है, वह क्यों आ रहा है? व्यापार के क्षेत्र में, 'स्त्री' और 'श्री' के राग में भइया ही भइया को नहीं दिखता, चाहे जितना तू प्रीतिवान हो।

देशभूषण-कुलभूषण महाराज से पूछो। एक माँ के उदर के दो बेटे अपनी बहिन को देखकर ही विकार में भर जाते हैं। दोनों ही सोच रहे थे कि इससे मैं विवाह करूँगा, मैं विवाह करूँगा। तलवारें खिंच गयीं। रथ पर सारथी देखता है कि यह क्या हो गया? इतने में बहिन आकर आरती उतारने पहुँच गयी और माँ से पूछती है कि माँ! यह क्या हो रहा है? बेटे! तुम क्यों लड़ रहे हो? तब बोले कि यह झरोखे में बैठी कन्या। मैं बड़ा हूँ, मैं विवाह करूँगा। छोटा कहता है कि मैं विवाह करूँगा। बेटा! पहले मालूम तो करो कि है कौन? बेटा! तेरी सगी

बहिन है जिस पर तेरी कुदृष्टि जा रही है। धिक्कार हो। जो विवाह की बात कर रहे थे, वे साधु बनकर चले गये। स्त्री के राग ने भाई-भाई के बीच तलवारें चलवा दीं, धन के राग ने महाभारत खड़ा कर दिया। मैं पाण्डवों को सुई की नोंक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा, पाँच गाँव तो बहुत बड़ी बात हो जायेगी।

भैया! सारे जगत् से द्वेष क्यों होता है? तुझे यह परिग्रह उतर जाये तो विश्वास रखना, तुझे किसी से द्वेष हो ही नहीं सकता। दुनियाँ की झूठ व छलकपट जो कुछ भी करना पड़ता है, किसके पीछे? परिग्रह के कारण। पुण्य तेज होता है तो सामने वाले को उल्टा फँसा दो। हाँ, ऐसा होता है। पुण्य तेज है तो झूठ भी सत्य हो जाता है। पाप तीव्र है तो सत्य भी झूठ साबित होते देखा गया है। धर्म के पुण्य के प्रभाव से अग्नि भी पानी हो जाती है और पाप के उदय में पानी भी अग्नि उगलता है। यह सत्य नहीं है क्या? इसलिये पुण्य का दुरुपयोग मत करना। जो कुछ भी करो, ईमानदारी से करो, विश्वास के साथ करो।

भैया! सुनो, कभी-कभी जीव के भाव कैसे हो जाते हैं। एक थाली में चार बादाम होती हैं। पाँच चढ़ाने वाले थे। फिर देखो बादाम का क्या होता है? फल चढ़ाने के चक्कर में फल को ही भूल जाता है। मायाचारी कर जल्दी से पहले उठा लिया। चार फल हैं, पाँच पुजारी हैं। फल के राग में फल भूल गया। जिसके कारण सारे जगत् से द्वेष हो रहा है, कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, वह परिग्रह है। हे मित्रो! यदि तुम्हें द्वेष करना ही है तो परिग्रह से करो। परिग्रह से द्वेष करोगे तो परिग्रह से दूर हो जाओगे और सारा जगत् तेरा मित्र दिखेगा। यदि राग करना है, प्रीति उत्पन्न हो रही है, तो मुक्ति से प्रीति करो। चित्त लगाना है तो सत् ध्यान में लगाओ। न पुरुषों में लगाओ, न परस्त्रियों में लगाओ। पापों में नहीं लगाओ। चित्त लगाना ही है तो पंचपरमेष्ठी में लगा दो। पापों में जो पैसा लगाने वाला था, उससे तू भगवान् की पूजन का द्रव्य खरीद ला। तुरन्त पुण्य में पैसा लगा दो, ताकि पापों में लगाने का भाव ही न आये। जब ध्यान इधर-उधर भटकता है तो इच्छित सामग्री पर जाकर टिक जाता है। फिर नहीं हटता। सत्ध्यान में

चित्त को स्थिर करो, आर्त्त-रौद्र ध्यान से चित्त को हटाओ। पैसे के संचय में यत्न मत करो। यत्न करने की भावना है तो धर्म के संचय में यत्न करो और कर्मों का क्षय करो। ऐसा कार्य जिसके भीतर चल रहा हो, वही साधु की खोज है। ऐसी चेष्ठा जो कर रहा है, अपना प्रयत्न पापों से हटाकर धर्म में लगा रहा है, ऐसा जीव 'सर्व पाप प्रणाशनम्' वह जीव सम्पूर्ण पापों का नाश कर लेता है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परमपद प्राप्ति का कारण"

मानस्तम्भं दृढं भंक्त्वा, लोभाद्रिं च विदार्य वै।
मायावल्लीं समुत्पाट्य, क्रोधशत्रुं निहन्य च॥ 194॥
यथाख्यातं हितं प्राप्य, चारित्रं ध्यानतत्परः।
कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा, प्राप्नोति परमं पदम्॥ 195॥

अन्वयार्थ-दृढं मानस्तंभं भंक्त्वा = सुदृढ़ मान के खम्भे को तोड़कर और, **लोभाद्रिं च विदाय वै** = लोभरूपी पर्वत का खण्डन करके, **मायावल्लीं समुत्पाटय** = मायाचार की बेल को उखाड़ करके, **क्रोधशत्रुं निहन्य च** = तथा क्रोधरूपी शत्रु को मार करके, **ध्यानतत्परः** = ध्यान में लीन साधु, **हितं यथाख्यात चारित्रं प्राप्य** = हितकारी यथाख्यात चारित्र को प्राप्त करके, **कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा** = कर्मों का क्षय करके, **परमं पदम् प्राप्नोति** = परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ-हे भव्यात्मन्! यह प्राणी मान के सुदृढ़ स्तम्भ को तोड़कर, लोभ रूपी पर्वत का विदारण कर, मायाचार की बेल को उखाड़कर, क्रोधरूपी शत्रु को मारकर, शुभ एवं शुद्ध ध्यान में तत्पर हो, हितकारी चारित्र को प्राप्त कर और कर्मों का क्षय करके मुक्तिपद को प्राप्त कर लेता है।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में परमपद की प्राप्ति के हेतु का व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं—कि हे मुमुक्षुओ! यदि खोज करना

है तो जगत् के हृदयों से साधु असाधु की खोज करना बन्द कर दो।

ज्ञानियो! अपने ज्ञान को परज्ञेय में ले जाकर व्यभिचरित मत करो। निज की देह को पर की देह के आलिंगन कराने पर जब शील भंग होता है, तो हे ज्ञानी! निज के ज्ञान को पर के ज्ञेय में लगा देना भी शील का भंग होना है।देह का आलिंगन तो परवस्तु का आलिंगन है, परन्तु निज के ज्ञान को पर ज्ञेय में ले जाये बिना देह का आलिंगन होता नहीं। चिन्तन से जितना तूने चारित्र नष्ट किया है, उतना तूने शरीर से नष्ट नहीं किया है। निज ज्ञान का उपयोग क्या किया है? ज्ञान को परज्ञेयों में ले गया है। तब तक ही राग है, तब तक ही द्वेष है, जब तक ज्ञान ने ज्ञान को नहीं जाना है। ज्ञान जिस दिन ज्ञान को जान लेगा, जगत् का राग-द्वेष समाप्त हो जायेगा। उसी दिन ब्रह्मधर्म प्रकट होगा। उसी दिन उत्तम क्षमा-मार्दव-आर्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य धर्म प्रगट होगा। आत्मा के धर्म को भी हमने पर के भीतर देखा। आत्मा के धर्म को हमने दुनियाँ के दृष्टांतों में देखा, परन्तु आत्मा का धर्म आत्मा में निहार लेता तो जगत् के प्रपंच की आवश्यकता ही नहीं थी।

क्षमा की व्याख्या जब हम करने बैठे थे, तब पारसनाथ को देख रहे थे। हे प्रभु! आपकी क्षमा की महिमा को देखो कि दस भव तक कमठ आप पर उपसर्ग करता रहा, पर आपने अपनी समता को नहीं खोया। पर मेरे मित्र! उस समय तुम क्षमाधर्म में नहीं थे जब तुम पारसनाथ को देख रहे थे। वह तो क्षमाधर्म का दृष्टांत है। आप क्षमाधर्म में नहीं थे। ये तो वे हैं जो क्षमा के फल को प्राप्त कर चुके हैं। उनकी तुम महिमा को देख रहे थे। लेकिन तुम क्षमा में कहाँ थे? जिस समय आप किसी से क्षमा माँग रहे थे, उस समय आप क्षमा में नहीं थे, क्योंकि आपके सामने पर व्यक्ति था और आपको अपनी कषाय झलक रही थी कि मैंने इसके साथ कषाय की थी इसलिये क्षमा मुख से माँग रहा हूँ। जब तू क्षमा में होगा तो न माँगेगा, न करेगा। वो तो जो होगा, सो होगा।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी को तुम देख रहे थे, उस समय आपका ज्ञान

पारसनाथ को ज्ञेय बना रहा था। उस समय आपका ज्ञान परज्ञेय में लीन हो रहा था। पर की क्षमा को देख रहा था, लेकिन स्वयं क्षमा में नहीं था और जो क्षमा में होगा, उस समय उसे पारसनाथ नहीं दिखेंगे। मैं किससे क्षमा माँगूँ? वह पुरुष भी नहीं दिखेगा, क्योंकि सभी में क्षमामय होगा। वाणी में नहीं होगा, क्षमा में ही होगा। क्षमा है, तो बोलने की क्या आवश्यकता? क्षमा नहीं है, तो बोलने की क्या आवश्यकता? यदि है, तो कलुषता का अभाव है। यदि नहीं है, तो वचनयोग का संचार है। क्षमा है तो स्वभावभाव है, निज आत्मधर्म है। यदि क्षमा नहीं है, वचन से बोल रहा है, तो आपने वचनयोग का और परिणमन करके आत्मप्रदेशों का परिस्पंदन किया है भाषा के द्वारा। क्षमा नहीं है और बोल रहा है, तो मायाचारी भी है। और बोल रहा है कि सभी बोल रहे थे, सो मैंने भी कह दिया। ऐसे भावों से तू बोल रहा है तो हे ज्ञानी! आपको वक्र परिणाम चल रहे हैं। इसने एक वर्ष पूर्व मुझे गाली दी थी, पर क्या करूँ, सबके सामने मुझे हाथ जोड़ना पड़ रहे हैं।

मेरे मित्र! पानी बन जाओ, जो स्वयं में शीतल होता है और जिस पर गिर जाता है उसे भी शीतल कर देता है। मिट्टी पर गिरता है तो कठोर मिट्टी को भी गीला कर देता है। जिसका भाव निर्मल है, वह ऐसा क्षमावान है कि जिसके सामने होगा, वह भी क्षमाशील हो जायेगा। पानी बन जाओ, अग्नि मत बनो। अग्नि स्वयं में दहकती है और उसके सम्पर्क में जो आते हैं, सबको जला देती है। पानी स्वयं में शीतल होता है, सम्पर्क में आनेवालों तक को शीतल बना देता है। आयुर्वेद की दृष्टि से, जिसको पित्त का प्रकोप है, पेट में दाह है, कितने ही उपचार कर लेना, उसको समय लगेगा ठीक होने में। कितनी ही गोलियाँ खा लेना। यदि आपने शीतल पानी को कपड़े के माध्यम से शरीर पर छिड़क दिया तो वह दाह शीघ्र शमन को प्राप्त होगी। **भरे पानी में डुबकी लगाओ, दाह शान्त न हो और पानी की बूँदों के छींटे लगने मात्र से दाह समाप्त हो जाती है। ऐसे ही जो शीतलस्वभावी है, उसके वचनों के छिटकाव जहाँ**

पड़ेंगे, तो अन्दर की कषाय की दाह अपने आप शान्त होती है। जिसके अंतरंग में गुरु वचन कण रूप में नहीं आ रहे हैं, तब तक दाह शान्त नहीं होती है। वीतराग जिनेन्द्र की वाणी का जल-कण जब तक तेरे हृदयांगन में नहीं पड़ता है, तब तक तेरे अन्दर क्षमा की खुशबू जाने वाली नहीं है।

मान के दृढ़ बन्धन को हटाइये पहले, मायाचारी की सांकल को तोड़िये, तो क्षमा स्वयमेव सामने खड़ी हो जायेगी। क्षमा को बाँधनेवाला खूँटा कोई है तो वह मान है। सांकल है तो वह माया है। क्षमा क्यों नहीं खुल पा रही है? हर व्यक्ति के अन्दर साम्यभाव है। अग्नि में कोई रहना पसन्द नहीं करता। लेकिन क्यों नहीं क्षमा माँग पा रहे हो? मान का खूँटा नहीं टूट रहा है। जब तक मान का खूँटा नहीं छूटा है, तब तक माया की सांकल कैसे टूटेगी? इन सब के साथ ज्ञानी! तेरे क्षमा की गर्दन बन्धी-ही-बन्धी है।

हमने पर को बहुत समझाया, पर पर बहुत चर्चायें की, परन्तु मान के खूँटे जिस दिन हट जायेंगे, मित्रो! विश्वास रखना, तुमको क्षमा माँगने नहीं जाना पड़ेगा, क्षमा तेरे भीतर होगी। जो सारा लोक तुझे शत्रु के रूप में देख रहा है, वह तुझे साधु के रूप में देखेगा। पानी कभी किसी के घर में नहीं कहता कि आओ, मुझे पी जाओ। यहाँ से बहुत दूर यमुना बह रही है। पर कभी भी यमुना ने आपको बुलाया नहीं है। पर आप वहाँ दौड़े-दौड़े स्वयं पहुँचते हो, क्योंकि शीतलता का भान है। क्षमाशील के पास सारा विश्व पहुँच जाता है। मधुरता चाहिये, सरलता चाहिये, सहजता और कोमलता चाहिये। परिणामों में यदि मधुरता है तो सारा विश्व तुम्हारा मित्र है। क्षमावाणी पर्व है। आज के लिये नहीं, भव-भव में भी तुम जन्म ले चुके हो। शत्रु के घर में जन्मने वाले हो। शत्रु के घर में जन्म हो गया फिर पिता बोलोगे कि नहीं बोलोगे? माँ बोलोगे कि नहीं? जिसके घर से छीनता था, उसके घर में कमा कर रखेगा। क्या है? ये जितने संसार के जीव हैं, मुझे लगता है कि विश्व में सर्वाधिक संख्या किसी दर्शन की है तो चार्वाक की है। जबकि चार्वाक का नामोनिशान मिट चुका है। तब भी सर्वाधिक

संख्या उन्हीं की है। यदि चार्वाक-परिणति हृदय से विलीन हो जाये, तो सारे विश्व में धर्म-ही-धर्म है।

हे मेरे मित्र! मैं जन्म लेनेवाले जैन की बात नहीं कर रहा हूँ। जो जैनसिद्धान्त में जन्म ले रहा है, उसकी बात कर रहा हूँ। जन्म का जैन, दीक्षा का जैन, शिक्षा का जैन अनन्त बार हो चुका है, लेकिन यदि जैनत्व के भाव का जैन हो गया तो कभी यूँ रह ही नहीं सकता है। अर्थी में कन्धा लगाने से पहले कन्धा से कन्धा मिला लो, तो ज्यादा अच्छा है। अर्थी को उठाने पहुँच जाओगे, इसका मतलब है कि शरीर से द्वेष नहीं है आपको। उस मिट्टी को उठाने पहुँच गये, परन्तु भगवान्-आत्मा जो उसमें बैठी थी, उससे तू क्यों द्वेष कर रहा है? कषाय की पर्याय को विलीन कर दो। एक क्षण की पर्याय का यहाँ ध्यान करो। मत कहना कि ये मेरा भाई है, ये मेरा भतीजा है। देख सकते हो तो उसके भीतर भगवान्-आत्मा को देख लेना, यदि चार्वाक दृष्टि को हटाना है तो। अन्यथा पता चला कि वार्षिक उत्सव की दृष्टि से, परम्परा का निर्वाह करने की दृष्टि से तू क्षमावाणी मना लेगा। कहाँ? तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी के चरणकमलों में बैठ करके। लेकिन पार्श्वनाथ भाव बनाकर नहीं कर सका, तो ज्ञानी! तूने क्या किया?

भैया! आज कर ही लेना। क्षमाधर्म स्वयं का है, पर का नहीं है। मैं क्षमा कर दूँ, सामनेवाला बोलना ही नहीं चाहे, तो कैसे कर दूँ? ज्ञानी! यही तुम्हारी कषाय है। तुम सामनेवाले को क्यों देख रहे हो? मैं कमजोर हूँ क्या जो क्षमा माँगने जाऊँ? हाँ, मेरे मित्र! यही कमजोरी है कि तुम क्षमा माँग नहीं पा रहे हो। ये ही कमजोरी है कि तुम क्षमा माँगने के भाव अपने अन्दर नहीं ला पा रहे हो। सम्बन्धों को देखोगे, रिश्तों को देखोगे, तो कभी क्षमाभाव को प्राप्त नहीं हो सकोगे। स्वभाव को देखोगे तो कभी क्रोध को प्राप्त कर नहीं सकोगे, क्योंकि स्वभाव में सभी भगवान् हैं। भगवान् से क्रोध किस बात का? जो-जो काषायिक भाव हैं, वह सम्बन्धों में हैं। चाहे रागभूत कषाय हो, चाहे द्वेषभूत कषाय हो, सब कषाय सम्बन्धों में है। समझ में आ रहा है क्या? प्रत्येक कषाय का जो परिणमन

चल रहा है, वह सम्बन्धों के साथ है। इसलिये सम्बन्ध से निज को भिन्न कर लो। सम्बन्धों से जितने दूर रहोगे, आप विश्वास रखना, उतना ही शान्त जीवन जिओगे। भैया! आज तू घर से बाहर आगरा में बैठा है। यहाँ तेरा कोई रिश्तेदार नहीं है। क्या कोई विकल्प है किसी के घर जाने का? किसी को टीका लगाने जाना है क्या? किसी का सम्मान करने जाना है क्या?

हे ज्ञानी! जितना अपरिचय में आयेगा, उतना निज से परिचय बढ़ेगा। जितना पर से परिचय बढ़ायेगा, उतना निज से अपरिचय बढ़ेगा। निज से अपरिचितपन ही काषायिक भाव है। तुझे लगता है कि मैं किसी से कमजोर नहीं हूँ जो दूसरे से क्षमा मागूँ। ज्ञानी! यही तेरी सबसे बड़ी कमजोरी है जो तू क्षमा नहीं माँग पा रहा है। दो की ही चर्चा होगी। या तो चर्चा कषाय की होगी या चर्चा अकषाय की होगी। इतना कषायी था, इतना कषायी था, कि अन्तिम श्वास तक पिता ने पूछा कि बेटा स्वास्थ्य कैसा है? लोगों ने भी कहा कि भैया! अन्तिम श्वास चल रही है, पिता से क्षमा माँग ले, डाक्टर ने बोल दिया। पर बेटे ने मुँह फेर लिया। पिता फफक-फफक कर आँसू टपका रहा है कि मेरे होते बेटा जा रहा है। मेरे बेटो! तुम अपने पिता की बात को तो सुन लो एक क्षण भर के लिये। उन्होंने तुझे जन्म दिया है। इतना बड़ा किया है। आखिर में तूने क्या किया है? उसने शीलधर्म का नाश करके तुझे जन्म दिया है और तू अभागा मुख से भी नहीं बोलना चाहता है, तो तुझसे बड़ा पापी कौन होगा? इसलिये आज सबसे पहले क्षमावाणी माँगने जाना तो बूढ़े माता-पिता के चरणों में जाकर गिर जाना और कहना कि आप मुझे क्षमा कर दो, मेरे निमित्त से आपका शील भंग हुआ है और मेरे निमित्त से आपने पता नहीं कितनों से राग-द्वेष किया होगा। आज मैं आप से भी द्वेष कर रहा हूँ। धिक्कार हो उस बेटे को जो लड़-लड़ कर माता-पिता से अलग हो गया। पर की लाली के राग में माता-पिता से लड़कर अलग हो गया। अब माँ-पिता चले जायेंगे। वह लाली नहीं बचेगी, पर माता पिता का लाड़ तुझे सतायेगा, विश्वास मानो। **जिसने तुझे लाड़ दिया**

है, उसे तूने पर की लाड़ली के राग में छोड़ दिया है।

मित्रो! जब तेरा पुण्य तेज होता है और तू शिखर पर होता है, तब जो तेरे साथ रहते थे वे ईर्ष्या करेंगे, पर जिसने तुझे नौ महिने पेट में रखा था, तेरे मल को उठाया था, वे फिर भी मुस्कुरायेंगे। ध्यान दो, माता-पिता तेरी कुछ भी कमाई न माँगें, पर बेटी और पत्नि माँगती है। लेकिन मेरे मित्र! यदि तू धन में भी वृद्धि कर रहा है, तब भी माता-पिता मुस्कुराते हैं कि मेरा बेटा वृद्धिमान हो रहा है। तब भी वह बूढ़े माता-पिता मुस्कुरा रहे हैं। कब? जब बेटे की वृद्धि को देखते हैं। जिसने अपने तन को छील कर तुझे जन्म दिया, वे तब भी मुस्कुराते हैं। पर जिसने तेरा तन क्षीण किया है, वे तब भी माँगते हैं, देते कुछ भी नहीं हैं। कुछ दे सको या न दे सको, लेकिन कम-से-कम इतना कर लेना कि इन्हें कभी धोखा मत देना। मेरा सभी श्रावकों और साधुओं से कहना है कि तुम अपने माता पिता और गुरु को कुछ मत देना, लेकिन इतना ध्यान रखना कि जनक-जननी और गुरु को कभी धोखा मत देना।

मेरे मित्र! कहीं किसी के बारे में कुछ सोच भी लिया हो तो आज पानी हो जाना। नमक की डली पर पानी की बूँद पड़ती है तो वह नमक पानी हो जाता है। तेरे हृदय के आँगन पर जिनवाणी की बूँदें पड़ रही हैं, तुझे पानी-पानी हो जाना चाहिये। पानी जब होता है तो वह पानी में मिल जाता है। प्राणी को प्राणी में मिल जाना चाहिये। किसमें राग, किसमें द्वेष?

क्षमावाणी का पर्व तभी है, जब यथार्थ में क्षमा भीतर होगी। सागर बीना के मध्य में जब विहार कर रहा था तब एक ऐसा स्थान मिला जहाँ जमीन से पानी निकल रहा था। पानी तो जमीन से ही निकल रहा था। आप जमीन से पानी को बाल्टी से निकालते हो। कोई हेडपम्प लगाता है, कोई ट्यूबवेल लगाता है। लेकिन वह जो पानी निकल रहा था, वहाँ के नागरिकों ने बताया कि महाराज जी! अहर्निश बारह मास इसी प्रकार से धार निकलती रहती है। यह पानी की धार बन्द ही नहीं होती है। पूरे देश में सूखा पड़ जाये, पर ये पानी की धार

बन्द नहीं होती। ज्ञानी! जैसे वह पानी की धार अनवरत चल रही है, ऐसे ही प्राणी के भीतर क्षमा की अखण्ड धार चलती है। देश-विदेश के पशु-पक्षी भी उस पानी की धार का ज्ञान किये हैं। कहीं पानी मिले या न मिले, वहाँ तो पानी मिलेगा। सभी तिर्यंच वहाँ पानी पी रहे हैं। बोले, किसी के यहाँ जाय तो वह डण्डा मारकर भगा देगा, लेकिन यहाँ तो पानी सहज प्राप्त हो रहा है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! प्राण जाने के पहले अपने हृदय को इतना पानी कर लेना कि सारे जगत् के लोग सारी दुनियाँ से भयभीत हो जायें, पर तेरे पास आने में हर व्यक्ति का मन करे। उसी का हृदय तो पानी है। कहीं शरण न मिलेगी, पर वहाँ तो शरण मिलेगी।

ज्ञानियो! जैसे एक वटवृक्ष या आम्रवृक्ष पर पक्षी निर्भय होकर बैठता है, क्योंकि वे जानते हैं कि यहाँ पर सबको स्थान मिलता है। एक पेड़ वनस्पति भी इतना महान् है कि उसके आश्रय से मनुष्य ही नहीं तिर्यंच कीड़े-मकोड़े सभी आश्रय को प्राप्त होते हैं, क्योंकि उनको मालूम है कि यह छाया किसी को कष्ट नहीं देगी। ऐसे ही तेरा जीवन इतना पवित्र हो जाना चाहिये कि प्राणिमात्र को मालूम चले कि ये वृक्ष की भाँति ऐसा जीव है कि इसके आश्रय में आने से कष्ट नहीं होगा, विकल्प नहीं होगा। यही कारण है कि तीर्थंकर के पादमूल में हर प्रकार के जीव पहुँचते हैं। उनकी सभा का नाम समवसरण सभा है, क्यों? वहाँ किसी जीव को भय नहीं है, विकल्प नहीं है, डर नहीं है। हर व्यक्ति निडर होकर पहुँचता है। बस, जब भीतर पानी था जमीन में, उस नगर की बात कर रहा हूँ। अपने आप पानी बाहर निकल रहा था। कितना पानी उस भूमि में होगा? बिना किसी दबाब के पानी निकल रहा है कि नहीं निकल रहा है? ऐसे ही जिस किसी के भीतर में साम्य भाव लबालब भरा होगा, उसकी वाणी भी क्षमामय होगी। इसलिये ज्ञानियो! उसका नाम क्षमावाणी पर्व है। उसी का पर्व क्षमावाणी पर्व होगा जिसकी वाणी प्रतिपल, प्रतिसमय, जीवन के जन्म से लेकर अन्तिम श्वास तक एक-सी बह रही है।

मेरे मित्र! जीवन में बनना है तो वटवृक्ष की छाया बनो। चींटी से लेकर सिंह तक सब उसकी छाया में बैठ लेते हैं। सभी प्रपंच छोड़कर यही प्रयास करो। साधना इसी का नाम है कि तुम भी वटवृक्ष की भाँति अपने परिणामों को शीतल करने का प्रयास करना प्रारम्भ कर दो। जीवन की सर्वोत्कृष्ट साधना यही है।

धन्य हैं वे योगीश्वर। पशु-पक्षी भी खूँखार प्राणी को देखकर भाग जाते हैं, लेकिन निर्ग्रन्थ तपोधन को देखकर पशु-पक्षी भी उनके बगल में आकर बैठ जाते है। उन्हें भी पता है कि यह डरानेवाला जीव नहीं है, यह तो साधुपुरुष है। मनुष्य की आँखें साधुभेष को पहचाने तो क्या बड़ी बात है? तिर्यंचों की आँखें भी साधुभेष को पहचान ले, उसी का नाम साधु है। नहीं पहचानती होती, तो जटायू गिद्ध कैसे आहार देख सका? नहीं पहचानती होती तो सिंह, नकुल, शूकर, बन्दर यह जानवर कैसे मुनिराज के आहार देखते रहे? और भरत, बाहुबली, वृषभसेन आदि वे ही जीव बने। तिर्यंच भी समझता है। इसलिये विश्वास रखना ज्ञानियो! क्षमावाणी केवल मनुष्यों से ही नहीं मनाना है, जगत् के प्राणिमात्र के प्रति क्षमाभाव रखना है। इसका नाम क्षमावाणी पर्व है।

माँ! आज घर जाकर बहू के पैर पड़ लोगे क्या? यदि पड़ने की सामर्थ्य नहीं तो समझ लो कि कोई क्षमा नहीं। वो जीवद्रव्य है कि नहीं? भगवान्-आत्मा है कि नहीं? क्षमाभाव यदि तेरे भीतर जग रहा है तो—

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥ प्र.पा.॥

यह सूत्र जो गूँज रहा है। पर सम्बन्ध किस बात का? इसलिये ध्रुव सत्य है कि सम्बन्ध जब तक दिखेगा, पन्थ दिखेगा, जाति दिखेगी, नगर दिखेगा, प्रांत दिखेगा, तीर्थ विशेष दिखेगा, तब तक कोई क्षमाभाव नहीं है। नर्मदा मध्यप्रदेश से निकलती है और अनेक प्रांतों से गुजरते हुये बंगाल की खाड़ी में जाकर मिल जाती है। उसने कभी किसी से यह नहीं कहा कि मैं मध्य प्रदेश से निकली

हूँ, इसलिये वहाँ के लोगों को ही पानी दूँगी। वह तो जहाँ-जहाँ से निकलती जा रही है, वहाँ सभी को सुख-शान्ति देती जा रही है । गंगा हिमालय से निकलकर समुद्र में मिल जाती है, पर जहाँ-जहाँ से निकल रही है, सभी को आनन्द देकर जाती है कि नहीं? जो नदी जहाँ से निकल रही है, उसके अलावा जिस-जिस प्रांत से गुजर रही है, सभी भूमि को हरा-भरा करके जाती है। इसलिये मेरा सोच तो यही है कि **साधुस्वभाव/साधुभाव/साधुमुद्रा उस गंगा और नर्मदा के समान होना चाहिये जो भले ही किसी भी प्रांत से निकले, पर हर प्रांत के खेतों को हरा-भरा करके जा रही है। ऐसे ही जो साधुस्वभावी पुरुष होते हैं, वो न किसी आम्नाय के हों, न किसी पंथ के हों। वे तो प्राणिमात्र के हों। हर हृदय की खेती को हरा-भरा करना, इसका नाम साधुस्वभाव है।**

मेरे मित्र! देह से धुँआ निकले, इसके पहले कषाय का धुँआ निकाल देना। आज हृदय मिलाकर सबसे कह देना कि पूर्व में हमने पुण्य किये थे, इसलिये एकसाथ बैठकर जिनवाणी सुन रहे हैं। ऐसे ही भाव बनाओ कि अगली पर्याय मिले तो भगवान् सीमंधर स्वामी के समवसरण में हम सब साक्षात् जिनवाणी सुनें। बस, ऐसे परिणाम बनाओ। ऐसे भाव बनाकर जब जीओगे, तब कहीं आगे का मार्ग खुल सकेगा। ज्ञान से ज्ञान को निहारो। ज्ञान से ज्ञान को नहीं देख रहा है, इसलिये तू कषाय में डूब रहा है। पानी में पानी रहता है, तब तक ठण्डा ही रहता है। पानी जब अग्नि के संयोग में पहुँच जाता है, तब वह भी उष्ण हो जाता है। ज्ञान जब ज्ञान में ही रहता है, तो शीतलभूत होता है, समरसीभूत होता है। लेकिन ज्ञान जब परज्ञेयों में चला जाता है, तो वही ज्ञान तेरा कषायभाव में बदल जाता है।

आपने सुना है कि राजगृही में एक गरम और एक ठण्डा, दो कुण्ड हैं। अहिक्षेत्र गये कभी? वहाँ के कुये के बारे में सुना है कि चार घाटों का पानी चार प्रकार का है। मेरे मित्र! तू चिन्ता क्यों करता है? तेरे घर के लोटे में ही हम चार प्रकार का पानी दिखा सकते हैं। लोटे के एक-एक कोने पर चार सामग्री को

डालो एक जगह शक्कर, एक जगह नमक, एक कोने पर छोड़ देना गंधक। वास्तव में पानी तो पानी है। जहाँ गरम और शीतल कुण्ड तुझे दिख रहे हैं, वहाँ नीचे कुछ गंधक आदि रासायनिक तत्त्व हैं, जिनसे स्पर्शित होकर पानी आ रहा है तो गरम हो रहा है। जो सहज मिट्टी से आ रहा है, वह शीतल हो रहा है। वह पानी तो पानी था। जैसी भूमि से निकल रहा था, पानी वैसा दिखाई देता है।

मुमुक्षुओ! भाव तो भाव होता है। ज्ञान तो ज्ञान होता है। ज्ञान जब कषाय को ज्ञेय बना लेता है और कषाइयों को ज्ञेय बना लेता है, तो ज्ञान भी कषाय में बदल जाता है। पानी जब पानी मात्र में रहता है तो ठण्डा रहता है। ज्ञान जब ज्ञान मात्र में रहता है, तो वह ज्ञान शीतलधर्मी होता है। अब यह मत पूछना कि यह कहाँ से बोल रहे हो? यह तो आप निहार कर देखो कि वस्तुस्वभाव ऐसा ही है। जैसी भूमि से पानी निकलता है, रंग उसका वैसा ही हो जाता है। जैसे मिट्टी का स्वरूप होता है, वैसा पानी बन जाता है। जैसा वस्तु का स्वाद होता है, पानी में स्वाद घुल जाता है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! वे योगी अपने ज्ञान को ज्ञान में रमण कराते हैं, इसलिये ध्यान में लीन हो जाते हैं और रागी अपने ज्ञान को विषयों की मिट्टी में ले जाता है, इसलिये उसका ज्ञान कषाय में बदल जाता है। और-कुछ नहीं है।

भैया! आज क्षमावाणी का पर्व है। सभी से हाथ जोड़ कर क्षमा माँग लेना। क्षमा माँगने के लिये भी ताकत चाहिये, श्वास चाहिये। श्वास ही निकल गयी तो क्षमा कब माँग पाओगे? तुम तो ऐसे क्षमा माँगना जैसे आज ही मेरी अन्तिम श्वास जा रही हो। मैंने आँखों से वो दृश्य भी देखा है जब आचार्य और मुनिगण एक जीव से कह रहे हैं कि क्षमा माँग ले, लेकिन वह जीव कह रहा है कि मैं मर थोड़े-ही रहा हूँ। तुम माँग लो क्षमा। प्रातः जब हुआ, आहार होने के पहले विदा हो गयी। इसलिये भैया! प्रतिक्षण अपनी आयु के अवसान को देखो। मेरे मित्रो! जाने के पहले शत्रु बनाकर मत जाना।

"न मे मृत्युः कुतो भीतिः" यह तो बहुत सुन लिया आपने। वे ही पूज्यपाद

स्वामी 'समाधितन्त्र' में लिख रहे हैं—**न मे शत्रुः न च प्रियः।** यह सब मैं आज के लिये नहीं बता रहा हूँ। जिस दिन अन्तिम श्वास निकल रही हो, यह दुनियाँ कहे कि 'पहचान लिया?' उस दिन कहना "न मे शत्रुः न च प्रियः।" यह पर की पर्याय मेरी शत्रु नहीं है। यह पर की पर्याय मेरी प्रिय नहीं है। मेरा निज का विभाव-भाव ही शत्रु है और मेरा निज का स्वभाव-भाव ही मेरा मित्र है। यदि मेरा निज का स्वभाव शान्त है, तो सारा विश्व मेरा मैत्रीभाव से युक्त है। मेरा भाव विभावभाव में डूब रहा है, तो सारा विश्व मुझे शत्रु दिखता है।

मेरे मित्रो! यहाँ से जाना भगवान् पारसनाथ के चरणों में और कह देना हे नाथ! इन लोगों से तो बाद में मिल लूँगा, पर मैं आपके पादमूल में स्वयं से मिलना चाहता हूँ। मेरी अन्तिम श्वास तक मेरी साधना ऐसी फलित हो जाये कि अन्तिम श्वास के समय मैं बस इतना समझ जाऊँ "न मे शत्रुः न च मे प्रियः।" पर क्या तुझे मालूम है कि तेरी अन्तिम श्वास किस दिन निकलेगी? भैया! यदि मालूम नहीं है, तो प्रतिदिन अन्तिम दिन मानकरके इसी सूत्र को सोचो।

आज घर जाना, अपने जनक-जननी और देवी से बोल देना—"न मे शत्रुः न च प्रियः।" यह सूत्र इस भवन में ही नहीं, जब तक देह-भवन में हो, तब तक याद रखना।

जब एक दूसरे से गले मिलो तो इतना याद रखना "न मे शत्रुः न च प्रियः।" बस, ज्ञानी! यही क्षमावाणी पर्व है। जिनालय में जाना, वहाँ करना और यहाँ से जब निकलो तो एक दूसरे से गले मिलकर बोलना—**"न मे शत्रुः न च प्रियः।"** भूल नहीं जाना।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"उत्तमपात्र साधु के गुण"

सङ्गादिरहिताः धीराः, रागादिमलवर्जिताः।
शान्ता दान्तास्तपोभूषाः, मुक्तिकांक्षणतत्पराः॥ 196॥
मनोवाक्काययोगेषु, प्रणिधानपरायणाः।
वृत्ताढ्याः ध्यानसम्पन्नास्ते, पात्रं करुणापराः॥ 197॥
धृतिभावनया युक्ताः, शुभभावनयान्विताः।
तत्त्वार्थाहितचेतस्कास्ते, पात्रं दातुरुत्तमाः॥ 198॥

अन्वयार्थ-सङ्गादिरहिताः = जो परिग्रह और आरम्भ से रहित हैं, **धीराः** = परीषहों के सहने में धीर हैं, **रागादिमलवर्जिताः** = राग-द्वेषादि विभावभावरूपी मल से रहित हैं, **शान्ताः** = शान्तस्वरूप हैं, **दान्ताः** = इन्द्रियों को दमन करनेवाले हैं, **तपोभूषाः** = तप ही जिनका आभूषण है, **मुक्तिकांक्षणतत्पराः** = मोक्ष प्राप्ति की भावना में लीन हैं, **मनोवाक्काय-योगेषु प्रणिधान परायणाः** = मन-वचन-कायरूप योगों के जीतने में उद्यमशील हैं, **वृत्ताढ्या** = चारित्र के धारी हैं, **ध्यानसम्पन्नाः** = आत्मध्यान के करनेवाले हैं, **करुणापराः** = परम दयालु हैं, **ते पात्रं** = ऐसे साधु ही उत्तम पात्र हैं, **धृतिभावना युक्ता** = जो धैर्य व क्षमा की भावना से युक्त हैं, **शुभभावनयान्विताः** = तपादि शुभकार्यों की भावना में तत्पर हैं, **तत्त्वार्था हितचेतस्काः** = जिनका मन तत्त्वार्थ के मनन में लग रहता है, **ते दातुः उत्तमाः पात्रं** = वे साधु दातार के लिए उत्तम पात्र हैं।

भावार्थ-हे भव्यात्मन्! जो आरम्भ और परिग्रह से रहित हैं, परीषहों को सहन करने में समर्थ हैं, राग-द्वेषादि मलों से रहित हैं, शान्तस्वरूप हैं, इन्द्रियों का दमन करनेवाले हैं, तप-रूपी आभूषणों के धारक हैं, मोक्ष प्राप्ति की भावना में लीन हैं, मन-वचन और काय रूप योगों को जीतने में उद्यमशील हैं, अहिंसादिव्रतों

के धारी हैं, आत्मध्यान में लीन रहते हैं, परम दयालु हैं, धैर्य की भावना से युक्त हैं, शुभभावों से संयुक्त हैं और जिनका चित्त तत्त्वार्थ के चिन्तन में मग्न है, ऐसे ही साधु (श्रमण) दाता के लिए उत्तम पात्र हैं।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में ध्रुव ज्ञायकस्वभावी भगवान्-आत्मा के भूतार्थ स्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं। सत्य को समझ पाना बहुत कठिन है। जिस दिन सत्य समझ में आ जायेगा, उस दिन सारे जगत् की समझ जीव के अन्दर स्वतः प्रवेश कर जायेगी। कितना सारा जीवन असत्य का जीवन है। जिनसे तुम्हारा सम्बन्ध नहीं, जिनसे तुम्हारा मेल-मिलाप नहीं, ऐसे द्रव्यों से जीव अपने आपको मूर्छित किये है, ऐसे द्रव्यों से अपने आपको उलझाये हुये है। एक श्वास प्रमाण काल भी निज की स्वतन्त्र सत्ता का बोध हो जाये, तो सत्य जीवन प्रारम्भ हो जाये। मैं और मेरे का भाव तो असत्य का जीवन है। जिसमें 'मैं' शब्द रखा है, वह काषायिक भाव है। जिनमें 'मैं' आ रहा है, अहंबुद्धि है। 'मेरे' आ रहा है, वह सब ममत्व भाव है। अहं बुद्धि और ममत्व बुद्धि, ये दो बुद्धियाँ ही जीव को पंचमकाल तक लेकर आयी हैं। आपको तो इनका अभिवादन करना चाहिये। क्यों? क्योंकि इनके नियोग से ही आपको पंचमकाल में आने का सौभाग्य मिला है।

अहमेदं, ममेदं। अहंबुद्धि और ममत्व बुद्धि ये दो बुद्धि ही जीव को भ्रमित किये हैं। मद्य का नशा उतरने में समय नहीं लगता, वह तो एक या दो घण्टे में उतर जाता है, लेकिन अहमेदं व ममेदं भाव का नशा अनादिकाल से लगा हुआ है। मोक्षमार्ग पर चलनेवाला जीव जब घर छोड़कर चला था, तब उसके

मन में यह भाव था कि परिवार में कल्याण नहीं हो सकता है। अरे! परिवार कल्याण को थोड़े-ही रोक रहा था। परिवार में ममत्वबुद्धि नहीं छूट पा रही थी, इसलिये तू परिवार छोड़कर आया था। लेकिन परिवार छोड़ने के बाद भी, बाहर आकर के भी, वही अहंबुद्धि नष्ट नहीं हुई, वही चलती रही, तो स्थानान्तरण तो हुआ है कषाय का, लेकिन अभाव नहीं हुआ है। स्थानान्तरण मोक्षमार्ग नहीं है। कषाय का उपशमन मोक्षमार्ग है। क्या किया आपने?

ज्ञानी! जिसका जिसमें राग जा रहा है, वह द्रव्य से बन्धस्थान बन रहा है। अरहन्त की प्रतिमा भी बन्धस्थान है। एक जीव चन्द्रप्रभु जिनालय में आया और चन्द्रप्रभ स्वामी के बिम्ब को देख करके कहता है—'हे प्रभु! आपकी वीतराग दशा को देख करके, आपके द्रव्य-गुण-पर्याय को देखकरके मुझे आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय का भान होता है।' ऐसे भाव से वन्दना कर रहा है, सो विशुद्धिस्थान को प्राप्त हो रहा है। एक जीव कह रहा है—महाराज! ये हमारे दादा जी ने निर्माण करवाये हैं। यह हमारे वंशपरम्परा का मन्दिर है। इसको मैं ही चलाता हूँ।

हे ज्ञानी! तुझे वीतरागता किञ्चित् भी नहीं झलकी। तुझे तो अपनी परम्परा दिख रही है। परम्परा की रक्षा के लिये तूने भगवान् विराजमान किये हैं, आत्मरक्षा के लिये नहीं किये। वस्तु एक है, दृष्टि दो हैं। एक चन्द्रप्रभु भगवान् की वन्दना करके विशुद्धिस्थान को प्राप्त हो रहा है और दूसरा चन्द्रप्रभु स्वामी के मन्दिर में आ करके संक्लेशस्थान को प्राप्त हो रहा है। अहमेदं ममेदं दृष्टि तो बन्धदृष्टि है। जो सर्वज्ञ की वीतरागता पर दृष्टि है, वह निर्ममत्व दृष्टि है। विशुद्धि स्थान बनाना चाहिये। कोई अपना नगर छोड़ कर चला गया और भीतर से नहीं छूटा, तो क्या छूटा? यदि मन में ईर्ष्याभाव आ रहा है कि चलो, मन्दिर जा रहे हैं, घर के क्लेश से तो बचूँगा। घर के क्लेश से बचूँगा? ऐसा सोचा, तो तूने क्या किया? भगवान् को निहारने के साथ क्लेश शब्द को सामने लाया है यानि क्लेश तेरे ज्ञान में आ चुका है। यह जैनदर्शन का रासायनिक विवेचन है, इसे ध्यान से सुनिये। घर के क्लेश से बचूँगा तो सबसे पहले घर झलका, फिर क्लेश झलका,

इसके बाद भगवान् दिखे कि नहीं दिखे? पहले ज्ञान में घर आया, फिर क्लेश आया। जैसे घर ज्ञेय बना, क्लेश ज्ञेय बना, तुरन्त भाव ही तो थे।

ओ हो! मैं कैसे घर में जन्मा, कैसे कुल में जन्मा जहाँ एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिलती है? हे भगवान्! क्या करूँ? मेरी पर्याय ऐसे ही निकल जायेगी क्या? ज्ञानी! अब तू मन्दिर तो आ चुका, भगवान् भी तेरे सामने हैं, तू भगवान् के सामने है, फिर भी तू भक्त नहीं है, संक्लेशी जीव है। प्रभु के पादमूल में रुदन कर रहा है और असाता का बन्ध कर रहा है। कहाँ कर रहा है? अरहन्त के पादमूल में, निर्ग्रन्थ के पादमूल में, जिनवाणी के पादमूल में; क्योंकि तेरे ज्ञान का ज्ञेय है कि हे भगवान्! मेरे घर में क्लेश होता है। हे ज्ञानी! तेरे ज्ञान में जो ज्ञेय बनकर बार-बार आ रहा है, वह कौन-सी वस्तु आ रही है? 'भगवान् मेरे घर में क्लेश होता है।'

जिस विषय के तुम ज्ञाता हो, उस विषय की अनुभूति भी दिखाई देनी चाहिये। तेरे मुख में गुटका भरा हुआ था और पिता कह रहा था कि मिश्री का स्वाद चखो। वह कहता है—'हाँ। पिताजी! अवश्य चखूँगा।' वह मुख में मिश्री दे देता है। अब बताओ दोनों का स्वाद एकत्वभूत होगा कि द्वैत्वभूत होगा? न तू शुद्ध मिश्री चख पा रहा है, न उसका जो मुख में रखा था। ऐसे ही तू अरहन्त के पादमूल में भक्ति करने आया था, लेकिन घर के दु:ख को रोने लग गया। न अरहन्त का आनन्द ले पा रहा है, न अच्छे से घर का दु:ख ही रो पा रहा है। तेरा आनन्द नष्ट हो रहा है। 'हे भगवान्! मेरे घर में बहुत क्लेश है।' परन्तु हे ज्ञानी! तूने अरहन्त को नहीं देखा। तेरे ज्ञान में घर ही ज्ञेय बनकर आया हुआ है, घर का क्लेश आया है। बताओ, मन्दिर में तुम्हें क्या झलक रहा है?

ज्ञानी! क्लेश जो तेरा ज्ञेय बन रहा है, वही तेरा ध्येय बन रहा है। जो ध्येय बन रहा है, वही तेरी धारणा चल रही है। जो धारणा चल रही है, वही तेरी कर्म-आस्रव की धारा चल रही है। लोक कहेगा कि धर्मात्मा मन्दिर में बैठा है। स्वयं भी सोच रहा है कि कम-से-कम मैं मन्दिर में बैठा हूँ। ध्रुव सत्य है कि आप

मन्दिर में अवश्य हो, स्वयं की आँख में मन्दिर में हो, पर की आँख से मन्दिर में हो, परन्तु वीतराग अरहन्त की कैवल्य की आँख में मन्दिर में नहीं हो। चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों ने आपको सात आँखें दी हैं। 'लघीयस्त्रयी' ग्रन्थ में आचार्य अकलंक स्वामी ने यही लिखा है—हे वर्द्धमान! आपने सारे विश्व को सात आँखें दी हैं। स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अस्ति नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद्नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। ये सप्त नेत्र हैं इन सप्त नेत्रों से जो अनेकान्त को समझ लेता है, उसके मन में न कभी अहमेदं भाव आयेगा, न ममेदं भाव आयेगा। फिर वह नहीं कहेगा कि हे भगवान्! मेरे घर में बहुत क्लेश है।

जो क्लेश है, वह कौन कर रहा है? पत्नि कर रही है, कि पुत्र कर रहा है, कि माँ कर रही है, कि पिता कर रहा है? हे ज्ञानी! जब तू जिनालय में आ ही चुका था, तो उनको वहीं छोड़ आता। तीर्थंकर के पादमूल में उनको छोड़कर आना और भगवान् से मत कहना 'प्रभो! मेरे घर में बहुत क्लेश है।' वहाँ तो यह कहना 'हे क्लेशातीत! आप अरहन्त जिनदेव हो। आपके पास जो शान्ति है, उस शान्ति का मैं वेदन कर रहा हूँ।' क्लेश शब्द को हटा देना। वही-वही स्मरण करोगे तो आनन्द नहीं आयेगा। भैया! यदि तू कक्ष में अँधेरे में बैठा हुआ है और कहीं तुझे श्मशान की याद आ जाये तो भूत नहीं लगेंगे, परन्तु भूत लग जायेंगे। भय का भूत तो लग ही जायेगा। श्मशान घाट में अर्थी जल रही थी, कितने सारे लोग जल गये, कँपकपी छूट रही थी। जब घर के कक्ष में श्मशान की याद करने पर कँपकपी छूट रही है, कहीं मन्दिर में आकरके घर की याद करेगा, तो विषय-कषाय की कँपकपी छूटेगी, अरहन्त के आनन्द की अनुभूति नहीं आयेगी। क्या करें? बहुत परिश्रम चाहिये, बहुत पुरुषार्थ चाहिये। घर भी छोड़ कर आ जाते हैं, लेकिन घर नहीं छोड़ पाते। अहमेदं-ममेदं, यही संसार है।

भैया! तू स्वतन्त्र है, मैं स्वतन्त्र हूँ; परन्तु सात कदम जिसके साथ चल लेता है, उसमें राग हो जाता है। जिनके साथ वर्षों-वर्षों से रह रहा है, उनमें तो गाढ़

राग बन चुका है। वस्तु आँखों के सामने नहीं होती है, तब भी वस्तु सता रही है। पूछो इन युवाओं से और अपनी युवावस्था से पृच्छना करो। जिसके चेहरे को देखकर राग हो गया और वह चेहरा सामने नहीं है, परन्तु रात्रि में नींद आ रही है, करवट बदल रहा है, धिक्कार हो। वस्तु सामने नहीं है, व्यक्ति सामने नहीं है, परन्तु राग भीतर प्रवेश कर गया है। कितने लोग अन्धे हो गये हैं। जिसको देख रहा था, वह देखने को नहीं मिला, तो नेत्रों की ज्योति चली गई। जिसे तूने देख लिया था, वह दिखने को नहीं मिला, न कोई बुखार है, न मलेरिया है, कोई रोग नहीं है, तब भी शरीर झुलस रहा है। हे अज्ञानी! तुझे किसने आग लगा दी? कोई काड़ी लेकर जलाने आता तो कोई बुझाने भी आ जाता, परन्तु तेरे द्वार जो तेरे में राग की आग लगाई गई है, उससे कोई बचाने भी नहीं जायेगा। जितने लोगों के शरीर सूख चुके हैं, जितने विकार खड़े हो चुके हैं, बुद्धियाँ भ्रष्ट हो रही हैं, यह किस बात पर हो रही हैं? वह भीतर जाकर देख चुका है। अब देखने को नहीं मिल रहा है, इसलिये वह पागल हो रहा है। राग प्रवेश कर जाये, तब भी परेशान है और द्वेष प्रवेश कर जाये, तब भी परेशान है। कालिया नाग हजारों कि. मी. चलकर डँसने आ जाते हैं। आगम ग्रन्थों में उल्लेख आया है। मन्त्रवादी ने मन्त्र किया, कढ़ाही में उबलता तेल है, साँपों से कहा कि इससे निकल जाओ। जिन साँपों ने उस पुरुष को नहीं काटा था, वह निकल गये, एक भी नहीं झुलसा। जिसने डस लिया था, वह सामने आ गया। मन्त्र के प्रभाव से साँप दौड़कर चले आते हैं। मन्त्रवादी ने उससे कहा कि इसके जहर को खींच लो, अन्यथा कढ़ाही में प्रवेश करो। नाग को मालूम था कि मैंने डँसा है। मन्त्रवादी को मालूम था कि इसने डँसा है। फण फैलाकर बैठ गया। मरना पसन्द कर रहा है, लेकिन जहर नहीं खींचा।

ऐसे ही अहमेदं-ममेदं, दृष्टि में जब राग-द्वेष खड़ा हो जाता है, तब जीव अपने प्राण देने को तैयार हो जाता है, शुभ परिणामों की आहुति दे देता है, परन्तु कषाय भाव के जहर को नहीं फेंक सकता। लोग एक भैया की बहुत सारी सम्पत्ति

हड़पे हुये थे। एक दिन कहता है—महाराज! जब समयसार सुना ही है, तो सार क्या निकला? मैं माँगने जाता हूँ तो परिणाम खराब होते हैं, देने वाले के परिणाम खराब होते हैं। दोनों अशुभ में जी रहे हैं। पिता जी एक दिन कहते हैं कि मेरी स्वयं की जो सम्पत्ति जिसके पास पड़ी हुई है, आज मैं उन सबका प्रत्याख्यान करता हूँ और प्रसन्न हो गया। 'महाराज! आज से सुख मिल गया।' दु:ख किसमें था? जब तक मैं भूमि पर ममेदं भाव रखे हुये था और देनेवाला दे नहीं रहा था, कब्जा कर चुका था, वह हिलनेवाला नहीं था, मात्र कष्ट जरूर चल रहा था। जिस दिन से प्रत्याख्यान कर दिया, आनन्द प्रारम्भ हो गया। पर में ममत्व ही दु:ख है, पर से निर्ममत्व ही सुख है। दु:ख का कारण है अहं बुद्धि, ममत्व बुद्धि। जगत् में कोई दु:ख नहीं होता है। मात्र आपका निज अहं ही दु:खी किये हुये है। पत्नि सोचती है कि मैं अभागे को अपना नौकर बना कर रखूँगी, तो फिर घर में क्लेश-ही-क्लेश है।

जब दो अहंकार टकराते हैं तो क्या होता है? आपको मालूम होना चाहिये कि चकमक की एक बटैया से कभी आग नहीं लग सकती। जब दो टकराते हैं, तब आग लग जाती है। ऐसे ही दो अहंकार टकराते हैं, घर में झगड़ो की आग लग जाती है। चाहे समाज हो, देश हो, आप किसी भी संस्था में जाना, किसी भी क्षेत्र में जाना, यहाँ तब कि त्यागियों के बीच में भी जाओगे तो जहाँ दो अहंकार टकरायेंगे, वहीं द्वेष की आग लग जायेगी। चकमक में तिलंगे फूटते हैं, परन्तु जलना तो बीच में पड़ी रुई को पड़ता है। कषाय में दो अहंकारी झगड़ते हैं, सामान्य लोगों को पिसना पड़ता है। विश्वास रखना, इस भवन में किसी ने आग लगा दी हो तो लोग दौड़-दौड़कर भाग जायेंगे, सुरक्षित हो जायेंगे, परन्तु यदि आपने अपने घर में विकारों की और कषाय भावों की आग लगाकर रखी है तो पूरा परिवार घुट-घुट कर मरेगा। उन माता-पिता से बड़ा कोई हिंसक नहीं होगा जो आपस में लड़ते रहते हैं और बेचारी सन्तान को घुट-घुट कर मारते हैं। आज बच्चों की बुद्धियाँ नष्ट क्यों हो रही हैं? उनके माता-पिता आपस में

झगड़ते हैं, उनकी अशुभ वर्गणायें बच्चों के पास आती हैं, हीन भावनायें आती हैं। धिक्कार हो मेरे पुण्य के लिये। मैंने कैसे पापियों के घर में जन्म लिया कि एक मिनिट शान्ति से नहीं रहते हैं। कम-से-कम इतना नियम ले लो कि छोटे-छोटे बच्चों के सामने मत लड़ा करो। माता-पिता कोई भी अशुभ चेष्टा करते हैं तो उनका संस्कार बच्चों पर जाता है।

जब निर्ग्रन्थों से कहा जाता है कि हे मुनीश्वर! एकान्त मैं बैठ करके अपनी साधना में लीन होना। कोई पशु-पक्षी बैठा हुआ है, तुम्हारी कोई अशुभ चेष्टा न हो जाये। पशु-पक्षी को भी तुम्हारे संस्कार समझ में आते हैं। दिगम्बर मुनिराज के आहार देखते हुये जटायु पक्षी को सम्यक्त्व हो गया था। बन्दर, नेवला, शेर ने महाराज के आहार देखे और उन्होंने सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। कोई आहार देख रहा हो तो किसी को भगाना मत। एक सुअर को सम्यक्त्व हो गया, बन्दर को सम्यक्त्व हो गया। जीव क्या सोच रहे थे? ओ हो! मैंने मायाचारी की होगी, इसलिये तिर्यंच पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ; परन्तु धर्म के क्षेत्र में मायाचारी की थी, इसलिये धर्म के संस्कार भी पड़े रहे। पुण्य के लिये मायाचारी करेगा तो सुन्दर-सुन्दर पुण्य फलित होगा। कुछ श्वान घूरों पर घूमते हैं, कुछ श्वान गाड़ियों पर घूमते हैं। जो गाड़ियों में घूम रहे हैं, जो सुबह से रस्सियों में बँधे घूमते मिलते हैं, वे कौन हैं? जीवित पिता को पानी नहीं पिला सकता, लेकिन पूर्व के पिताओं को डोरी से बाँधकर घूम रहा है।

जैनकुल में जन्म लेकर जो हिंसक प्राणियों को पालता है, वह अरहन्त की पूजा और निर्ग्रन्थ को दान देने का पात्र नहीं बचता। इसलिये जीवन में ध्यान रखना, जिनके घरों में रस्सी में बँधे हुये श्वान हों, आज ही उनको अलग कर देना। तुम्हारे घर में पिंजड़े में पक्षी हों तो आज ही खोल देना। बिल्ली-कुत्तों को पालनेवाला उत्तम कुलीन नहीं होता। जैसे आठ वर्ष तब का बच्चा पाप करे तो उसके माता-पिता को दोष लगता है, ऐसे ही जिनके घर में कुत्ते-बिल्ली पल रहे हों, उनने किसी पक्षी को पकड़ लिया तो उस पालनेवाले को ही पाप लगेगा।

आप कहो कि मैं चोरों आदि से सुरक्षा रखने को पाले हूँ। ज्ञानी! तू जितना समझदार है, चोर भी उतने समझदार हैं। जब वह चुराने आयेगा, तो वह कुत्ते की भी व्यवस्था करके आयेगा। पहरेदार भी लगा दो तो कहो पहले उसे ही ले जाये, फिर सबकुछ ले जाये। बाकी आप समझदार हो। भैया! कितना अविश्वास, घोर अविश्वास कि घर में छोटी-छोटी पेटियों में ताले पड़े हुये हैं, बैगों में ताले पड़े हुये हैं, कमरों में ताले पड़े हुये हैं। कितना अविश्वास? किसके प्रति? अपने परिवार के प्रति। क्योंकि चोर को ताले से क्या? वह तो पूरी पेटी ही लेकर जायेगा और फिर आराम से तोड़ेगा। घर में पड़े छोटे-छोटे ताले परिवार के लोगों के अविश्वास के प्रतीक हैं। धिक्कार हो उन पत्नियों को जो अपने पति की जेब से भी पैसे निकाल रही हों।

माताओ! अपनी सासू के बेटे पर करुणा किया करो। बिना पूछे निकाल तो लिये, अब बेचारा तड़प रहा है कि कहाँ गये? धिक्कार हो जो अपने पति की तड़पन को भी नहीं समझ रही है। तेरे से बड़ा पापी कौन होगा? बुरा तो नहीं लग रहा है? कर लो कायोत्सर्ग कि बिना पूछे पैसे नहीं निकालेंगे। भैया! इनको चोरी मत सिखाना, पहले ही दे देना। बच्चों को माता-पिता ने ही बिगाड़ा है। इनकी आवश्यकता की पूर्ति पहले कर दो तो ये तुम्हारी जेब क्यों टटोलें? जब उनको नहीं मिलता है तो पड़ौस की चोरी करना सीखते हैं। धीरे-धीरे विशाल डाकू बन जाते हैं। माता-पिता को ऐसा काम करना चाहिये कि उनकी आदत भी न बिगड़े और चोर भी न बने। वर्तमान की सन्तान को पापी मत बनाओ, डाकू मत बनाओ। इनको देखकर मुस्कुराओ। सनातन धर्म को यही तो लेकर चलनेवाले हैं। इनको अच्छा बनाकर रखो। पूर्व के पुण्य का नियोग समझना कि भरी सभा में तुझे आगे बैठने का सौभाग्य मिला है। प्रवचन हाल में बैठे हो, विश्वास रखना, इस भवन में आने के बाद जब बाहर जाते हो तो रोड पर खड़ा पुरुष आपको सम्मान के साथ देखता है। हे मित्र! इस सभा का दुरुपयोग मत कर लेना। बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। भिण्ड में प्रवचन के पहले मुझे मंगलाचरण के लिये खड़ा किया गया। मंगलाचरण के बाद पूरी समाज मुझे बड़ी आदर की

दृष्टि से देख रही थी और लोग कह रहे थे भैया! मेरे घर भोजन को चलो एक महाराज की सभा में मंगलाचरण कर दिया तो बुजुर्ग लोग हाथ जोड़े खड़े रहते थे 'भैया! चलो।' मुझे शर्म लगती थी। आज भी वृद्ध लोग पैर दबाने आयें, तो विशुद्धसागर! मुस्कुराओ मत। ये तुम्हारे पैर नहीं दब रहे हैं, ये रत्नत्रय की विनय है और रत्नत्रय को प्राप्त करके तुमने निर्दोष पालन नहीं किया तो पैर दबवा करके तुम मायाचारी कर रहे हो।' सफेद धोती-दुपट्टा पहने बैठे हैं, भैया जी! इन कपड़ों को पहनते ही लोग तुमको यति-संघ का सदस्य मानते हैं और सम्मान के साथ रखते हैं इन वस्त्रों के साथ कोई ऐसा काम मत कर लेना जिससे पूरे जिनशासन पर आँच आये। इनका दुरुपयोग नहीं करना।

पंचतन्त्र में एक कथा आती है। एक सम्राट था। उसका एक अनुचर अच्छा काम करता था। सम्राट ने कहा कि मैं आपके काम से प्रसन्न हूँ, इसलिये मैं आपको पुरस्कृत करना चाहता हूँ। वह कहता है कि आपने मेरे बारे में इतना सोच लिया, इससे बड़ा सम्मान मेरे लिये क्या हो सकता है, कि सम्राट के हृदय में मेरा निवास हो? यदि आप मुझे सम्मान देना ही चाहते हो, तो मैं आपसे न भूमि चाहता हूँ, न भवन चाहता हूँ। मात्र दिन में एक बार राजसभा में मैं आपके पास आना चाहता हूँ। बस, इतना सम्मान चाहता हूँ। जब आप सिंहासन पर विराजेंगे, तब मैं आपके कान में प्रतिदिन एक बात कहूँगा। सिर्फ इतना सम्मान आप कर दो। राजा ने तथास्तु कह दिया।

अब तो कौन रोक सकता है? राजसभा में प्रतिदिन सामने से आता और राजा के कान में कुछ कहता और चला जाता। लोग तो उसको देखकर काँपने लग गये कि राजा के कान का खास आदमी है, इससे बचकर रहिये। अब राजा का राज्य चलता है, इससे कुछ मत कहना, यह राजा के कान का आदमी है। एक दिन मन्त्रीमण्डल ने मन्त्रणा की कि क्या बात है अपन लोग ठण्डे पड़ गये। पूरे देश में तो इसी का नाम चल रहा है। एक दिन राजा से पूछो तो कि यह आपसे कौन-सी बात करता है?

दुर्ग के चातुर्मास में एक दिन एक ज्ञानी आये और कमरे के अन्दर आकर स्वयं साँकल बन्द कर ली और मेरे पास बैठ गये। समाज में हलचल, कि ऐसा कौन-सा काम आ गया कि वे स्वयं साँकल बन्द करके बैठे हैं। जो लेकर आये थे, उनको भी बाहर कर दिया। बोले, 'महाराज! राजसमाज महाअघ कारण बैर बढ़ावन हारा। मैं सम्पत्ति से, राज से, वैभव से, सबसे सुखी हूँ, लेकिन क्या करूँ? आपके दर्शन भी शान्ति से नहीं होते। लोग परिचय-ही-परिचय देते हैं। महाराज! सबकुछ मिला है, लेकिन शान्ति नहीं मिली। मैं शान्ति से आपके पास बैठना चाहता हूँ। और-कोई काम नहीं है।' वे जब वापस चले गये, तब समाज के नेता आ गये, 'महाराज! क्या बोल गये?' जो बोले, सो सुन—'महाराज! संसार में सुख तो मिला है, शान्ति नहीं है।

मन्त्रीमण्डल ने मिलकरके राजा से पूछा, 'हे राजन्! भरी सभा में यह पुरुष आकरके आपके कान में बोलता क्या है? पूरे राज्य में जितना नाम आपका नहीं लिया जाता, उतना उसका लिया जा रहा है। ऐसा क्या है? आखिर वह कान में बोलता क्या है? राजा ने कहा—वह मात्र इतना बोलता है 'हे राजन्! जयजिनेन्द्र।' बस, जयजिनेन्द्र का यह प्रभाव है। जब राजा ने इतना स्थान दे दिया था, तो आपको राजा के पास आने का इतना दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। इस गाँव में महाराज आये हों, तुम चार दिन महाराज के साथ चर्या को चले जाना, तो पूरे नगर के श्रावक तुझे जानने लगते हैं—आओ, भैया! हमारे चौके में खड़े हो जाओ, महाराज आ जायेंगे।' ऐसे भाव बनते हैं श्रावकों के। समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है—

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो, दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु॥ 115 र.क.श्रा.॥

भक्ति करने से सुन्दर रूप की प्राप्ति होती है। तपस्वियों का स्तवन करने से यश फैल जाता है।

मुमुक्षुओ! शास्त्रसभा में प्रवेश करते ही भाव बदलते हैं। जब तुम्हारे भाव यहाँ बदलते हैं, तो वह तीर्थ कितना पवित्र होगा। सम्मेद शिखर की वन्दना करके जब कोई श्रावक वापस लौटता है, तो समाज के लोग उसके पैर धोया करते हैं। वे दिन कहाँ गये जब सिद्धभूमि की वन्दना करके तुम्हारे दादा परदादा लौटते थे तो घर में ज्योंनार होती थी? किस बात पर हो रही है? दादा-दादी तीर्थवन्दना करके आ रहे हैं, इसलिये जयोंनार हो रही है, भण्डार चल रहे हैं, निमन्त्रण चल रहे हैं और लोग आकरके भेंट दे रहे हैं, पैर पड़ रह हैं। जब तीर्थ की वदना करने से एक गृहस्थ के पाँव पूजे जाते हैं, तो तीर्थभूत वे निर्ग्रन्थ योगी कितने पूज्य होंगे जिनके चरणों से तीर्थ बने हैं?

"जे गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय।"

जिनशासन में तीर्थ बनाये नहीं जाते। जहाँ निर्ग्रन्थों के चरण पड़ जाते हैं, वहीं पर तीर्थ बन जाते हैं। निर्ग्रन्थों के चरण ही तीर्थभूमि हैं। **'रयणत्तय तित्थं'** ऐसे तीर्थ में आकरके भी तिरने की कला नहीं सीख पाये, राग-द्वेष के परिणाम रख पाये, तो अब पंचमकाल में कल्याण का कोई मार्ग नहीं है। देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में भी रागादिक के परिणाम रखे, तो पंचमकाल में तिरने का अब कोई मार्ग नहीं है। अब आपको महावीर स्वामी तो समझाने नहीं आयेंगे। और महावीर स्वामी आ गये तो वे महावीर स्वामी नहीं रहे । सँभल जाओ, भैया! सँभल जाओ। अहमेदं ममेदं के राग में ही भीतर की शान्ति नष्ट हो रही है, कषाय की ज्वालायें भड़क रही हैं। आज से जब-जब भगवान् की वंदना करने जाना, कुछ भी नहीं माँगना। स्व में इतनी बात करना कि अपनी स्वतन्त्रता को जान लो, बस। जगत् का मिलना, नष्ट होना, यह सब पुण्य-पाप का परिणमन है। पूछो इन वृद्धों से, इनने कोटि-कोटि गिन लिये और कोटि-कोटि चले गये। दादाजी! करोड़ों कमाये और करोड़ों गये, इस पर कोई विकल्प मत करो। अपनी स्वतन्त्रता का भान हो जाये इस पर्याय में। बस इतना ही करके चले जाओ। अपनी स्वतन्त्रता को पहचान लो।

उपेक्षा भाव को सीखना पड़ेगा। आप लोग सुखी होना चाहते हो, आनन्दित होना चाहते हो, तो स्वतन्त्रता को पहचान लो। तेरे सगे भाई के भाव तेरे से मिलते नहीं हैं। जिस माता-पिता ने तुझे जन्म दिया, उनके भाव भी तेरे से नहीं मिलते। यदि मिल गये होते, तो ये सब कपड़े उतारकर मुनिराज कैसे बन गये? इनके माता-पिता से भाव मिल गये होते तो ये भी घर में बैठे होते। इससे आपको मालुम होना चाहिये कि प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है। ज्ञानी! प्रत्येक जीव का परिणमन स्वतन्त्र है। जो निर्ग्रन्थों को देखकर सोचता है कि कैसे पागल लोग हैं जो इतने बढ़िया सुख को छोड़ कर चले गये? ज्ञानी! आप ही पक्के पागल लोग हैं। क्या आपको बुरा नहीं लगता, मैं ऐसी-ऐसी सुना देता हूँ? अब क्या करूँ महाराज! 'जो है, सो है।' क्या सोच रहे हो कोई काम में नहीं आता। वस्तु-स्वभाव स्वतन्त्र है। वस्तुस्वभाव पर दृष्टि चली गई तो आपको सत्य समझ में आ जायेगा।

आज घर जाकर 'मैं और मेरा' करोगे क्या? न मैं-मैं करना, न मेरा-मेरा करना। **जो मैं-मैं करता है, उसे पत्ती खानेवाला बनना पड़ेगा और जो अहं-अहं करते हैं, उन्हें गलियों में लम्बी नाक लटका कर घूमना पड़ता है। जिनको अहं बुद्धि का भाव अधिक रहता है, उनको लम्बी नाक भी मिलेगी, तिलक भी लेगेंगे और घण्टियाँ भी बजेंगी और गलियों में घूमना पड़ेगा, हाथी बनना पड़ेगा।** आज से न अहं-अहं करना और न मैं-मैं करना यदि बचना है तो।

घना आनन्द है, इसमें कोई शंका नहीं। हे सर्वज्ञ! आपकी वाणी की अद्भुत महिमा है। अपने को तो कभी भरत चक्रवर्ती, राजा श्रेणिक की याद आती है कि साक्षात् महावीर स्वामी के समवसरण में बैठ करके, तीर्थंकर के श्रीमुख से साक्षात् श्रुत को सुना होगा। अपन तो मुनि आचार्यों से सुनते हैं, वह साक्षात् तीर्थंकर भगवान् से सुन रहा होगा, अद्भुत आनन्द आता होगा। सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि आगरा के मुमुक्षु साक्षात् तीर्थंकर के नहीं

होने पर भी भगवान् की वाणी सुन रहे हैं। यह पर्याय भी भगवान् के ज्ञान में झलक रही होगी।

ज्ञानियो! आत्मा की शक्ति का प्रकटीकरण कैसे हो? इस की व्याख्या कर रहे हैं। अशुद्ध में शुद्ध विराजता है। **अशुद्ध से शुद्ध कैसे प्रकट किया जाये, यह विद्या चारित्र है। त्रैकालिक ध्रुव आत्मा की भगवत्ता को उद्घाटित करने की विद्या का नाम संयमाचरण है।** संयमाचरण भावभूत है, द्रव्यभूत है, क्रियाभूत है काययोगजन्य है, मनोयोगजन्य है, वचनयोगजन्य है। काययोग को सँभालकर बैठ पाना ही कठिन है, फिर मनयोग को सँभालना अत्यन्त दुष्कर है। काययोग को सँभालने के उपरान्त वचनयोग को सँभालना। आचार्य उमास्वामी महाराज ने पहले मन की चर्चा नहीं की। जो जीव मन को वश करना चाहते हैं, वे तो बन्ध्या के बेटे को दूध पिलाना चाहते हैं गाय के सींग से निकालकर।

ज्ञानियो! पहले मन को वश नहीं किया जाता, पहले तन को वश किया जाता है। जिनका तन वश हो गया, उनको वचन वश करना चाहिये। जिनका तन और वचन वश हो गया है, उनके मन को कोई विचलित नहीं कर सकता। तुम स्थिर बैठना ही नहीं सीखते हो और मन वश करने की बात कर रहे हो। मन से जो भाव विकृत हुये हैं, वह अतिक्रम हुआ है; लेकिन वचन और काय से कर बैठा तो अतिचार के साथ अनाचार हो जायेगा। बहुत सारे लोग संयम से इसलिये विचलित हो रहे हैं, कि उनके मन चलायमान हो गये।

भैया! मेडिकल की औषधि से रोग ठीक होते हैं, तो वैद्य की क्या आवश्यकता? औषधि तो मेडिकल से लानी पड़ेगी; लेकिन किसको कितना सेवन करना है, यह वैद्य से पूछना पड़ेगा। ये सारा भ्रम क्यों फैल गया? गुरु के अभाव में ज्ञानी बनने का जो विपर्यास हो गया। गुरु के अभाव में ज्ञानी बनने की जो भावना दौड़ रही है वह तुम्हारे लिये तत्त्व में विपर्यास खड़ा कर रही है। माँ! पाकशास्त्र पढ़कर भोजन बना सकती हो क्या? पाकशास्त्र पढ़कर ज्ञान तो किया जाता है, लेकिन भोजन नहीं बनाया जा सकता। जब तक तू किताब का पन्ना पलटेगी,

तब तक अग्नि शान्त नहीं रहेगी, वह अपना काम करेगी। किस समय नमक डालना, किस समय मिर्च डालना, कब छौंक लगाना, जब तक तू पढ़ने बैठेगी, तब तक समय निकल जायेगा और तुम्हारा भोजन विकृत हो जायेगा। पाकशास्त्र से तो भोजन बनाना जानना; लेकिन जब भोजन बनाने बैठना, तो शास्त्र रखकर मत बैठना अपनी बुद्धि लगाकर बैठना।

ज्ञानी! जो व्यक्ति शास्त्र पढ़करके ज्ञानी बनना चाहता है, वह उसी रसोइये के समान है जो पाकशास्त्र पढ़कर भोजन पका रहा है। वैद्य के पास तीन गुण होना चाहिये। दर्शन, पृच्छना, भोजन। इन तीन का उपयोग जो नहीं करता, वह वैद्य कभी सफल नहीं हो सकता। दर्शन का जैनदर्शन में इतना विशद् वर्णन है कि जगत् में इसकी कहीं उपमा नहीं है। सवा महिने के बालक को जैनपरम्परा में सबसे पहले जिन प्रतिमा के दर्शन कराये जाते हैं। माँ! इस व्यवस्था को भंग मत कर देना। 45 दिन के बाद बच्चे को सबसे पहले श्री जिनालय लेकर जाओ, बेटे! निहारो इनको। मेरे लाल! मैंने भोगों की शय्या पर लेटकरके तुझे जन्म तो दिया है, मैं भोग ही सिखा सकूँगा, सोना ही सिखा सकूँगा, मेरे लाल! इनको देखो। जिन बनना है तो जिन को देखो और संसार में रुलना है तो मुझे देखो।' जो सुनी हुई बात अन्दर नहीं जाती है, देखी हुई अन्दर चली जाती है। पढ़करके कितना सीख पाओगे? जितना तुम सीखे हो, वह पढ़कर नहीं सीखे हो, सुनकर नहीं सीखे हो, देखकर सीखे हो। जिनके घरों में एक्टर आदि के चित्र लगे हों, आज ही अलग कर देना। जो देखने पर प्रभाव पड़ता है, वह सुनने का नहीं पड़ता। यदि कहीं पर टेप बज रहा हो तो उतना आनन्द नहीं आता। प्रवचन हो रहे हों, कोई बगल में बैठा हो तो उतना आनन्द नहीं आता। जब तक वक्ता का चेहरा दिखाई न दे, तब तक श्रोता को आनन्द नहीं आता। जो चेहरा देखे बिना सुन रहा है, वह ध्वनि सुन रहा है। जो वक्ता के चेहरे के सामने बैठा हुआ है, वह प्रवचन सुन रहा है। शब्द सुन रहा है, वाणी सुन रहा है। ध्वनि जड़भूत है, शब्द चेतन मिश्रित है। सुनना कर्ण-इन्द्रिय का विषय है। माँ! बेटे से कह रही है, 'हे बेटा! आज तू पैंतालीस दिन का हो गया। प्रभु के चरणों में भाव बना

रहे हैं। आँख खुले तो जिनदेव दिखें, आँख बन्द हो तो निजदेव दिखे। जगत् का कोई तीसरा देव न दिखे। तारने वाला कोई है, तो व्यवहार से जिनदेव हैं और निश्चय से निजदेव हैं। जिननाथ के द्वार पर जिननाथ को देखने मत जाना। निजनाथ का बोध न हो, तो जिननाथ के द्वार पर जाने की क्या आवश्यकता है?

भैया! तू दर्पण को देखने जाता है कि दर्पण में देखने जाता है? दर्पण में स्वयं को देखने जाता है। चर्म के पिण्ड को देखने जाता है। ऐसे ही अरिहन्तदेव के चरणों में अरिहन्तदेव को देखने मत जाओ, अरिहन्त में निजदेव को देखने जाओ। उनके द्रव्य, गुण, पर्याय को जानकरके निज के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानने के लिये जाओ। ये संस्कार आज से पड़ जायें तो विश्वास रखना, जो संस्कार आज से पड़ चुके हैं, मध्य काल में जीव कितना ही बिगड़ जाये, लेकिन अन्तिम श्वास के काल में वह मुड़कर अवश्य आयेगा। बेटा! तुम जीवन में कितने ही बिगड़ चुके हो, लेकिन भगवान् के चरणों की वन्दना करना मत छोड़ना। मन्दिर आता रहेगा तो एक दिन ऐसा आयेगा जब **सूखे बाँस का घर्षण एक दूसरे में होता रहे तो बाँस में अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। जब बाँस से बाँस की रगड़ होने से ज्योति प्रकट हो सकती है, तो जो वीतरागी के चरणों में झुकता रहेगा, तो उसके वैराग्य की ज्योति क्यों नहीं प्रकट होगी? अवश्य होगी। इसलिये अरहन्त की पूजन और निर्ग्रन्थ को दान और जिनवाणी का श्रवण जीवन के अन्तिम श्वास तक मत छोड़ना।** पैंतालीस दिन का बालक भगवान् के चरणों में है। माँ! ऐसा कभी मत करना कि बच्चे को मन्दिर न लाओ। परन्तु ध्यान रखना, यदि मन्दिर में बेटे ने आसादना की तो उसका फल भी तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

जो भगवान् के दर्शन नहीं करता और अपने घर का द्रव्य नहीं चढ़ाता, वह घोर हिंसक पापीजीव है। भूख लगे तो दूसरे का भोजन तो कर लेना, परन्तु भगवान् के दर्शन के लिये दूसरे की द्रव्य कभी मत चढ़ाना। मुफ्त का चन्दन घिस मेरे

नन्दन। तेरा क्या गया? द्रव्य क्यों नहीं ला रहा है? लोभ कषाय। भगवान् को खिलाने के लिये द्रव्य नहीं चढ़ाते हैं, लोभकषाय को छोड़ने के लिये द्रव्य चढ़ाते हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि इतने श्रीफल चढ़ा दूँगा तो माली के घर में जायेंगे। हे अभागे! तुझे भगवान् दिख रहे हैं कि माली दिख रहा है? यदि माली दिख रहा है, तो तूने निश्चित ही माली को ही चढ़ाया है, भगवान् को नहीं चढ़ाया। अरे! द्रव्य तो ऐसे चढ़ाना चाहिये जैसे तुम सुबह छोड़कर आते हो। किसमिश, मालपूए, रबड़ी, मलाई खाई है और सुबह छोड़कर आ जाता है, फिर देखने जाता है क्या? जैसे तू प्रातः छोड़ कर आता है जिस द्रव्य को, उसको फिर मुड़कर नहीं देखता है, ऐसे ही आपके हाथ में उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट द्रव्य हो और श्री जी के चरणों में चढ़ाने के बाद उनको मुड़कर नहीं देखना चाहिये। मेरा काम पूरा हो गया, मेरा द्रव्य निर्माल्य हो गया। ऐसे भाव से भक्ति करना। उत्कृष्ट द्रव्य चढ़ाना।

हे मुमुक्षु! ये अरहन्त की प्रतिमायें पूजन-अभिषेक के लिये स्थापित की गई हैं, आराधना के लिये की गई हैं, भावों की विशुद्धि के लिये की गई हैं, परिणामों की अशुद्धि को समाप्त करने के लिये की गई हैं। धन्य हों हमारे श्रेष्ठी श्रावक, वे बुजुर्ग, जो मूँग की दाल का पानी पीकर तो जी लिये, लेकिन श्री जिनालय को शिखरबन्द बना कर गये तो आज पीढ़ी-पीढ़ी हर्षित हो रही है। मूर्तियों में अद्भुत वीतरागता झलक रही है। आप लोग मन्दिर पर मन्दिर तो विशाल बना रहे हो, लेकिन पूजन करने नहीं जा रहे हो, तो इन प्रतिमाओं की स्थापना क्यों की गई है? चेतन प्रतिमाओं को स्थापित करने के लिये अचेतन प्रतिमाओं की स्थापना है। जो कह रहा है, 'महाराज! मैं मन्दिर तो बनवाऊँगा, लेकिन पुजारी लगा दूँगा। (झेलना जो मैं कह रहा हूँ।) कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा ग्रन्थ में लिखा है कि हे श्रावको! अरहन्त की पूजा तू अनुचरों के द्वारा करा रहा है। समय बदल चुका है। नगर में मुनिराज पधार गये, ऐसे भी लोग मिलते हैं कि द्रव्य हमारा होगा, नौकरों को लगा दिया है, चार महीने महाराज को आहार देते रहेंगे, मेरे पास समय नहीं है। अरहन्त की पूजा नौकरों से, गुरुओं को दान नौकरों से,

'कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा' के टीकाकार कह रह हैं कि कहीं तू सन्तान को जन्म भी नौकरों से मत कराने लग जाना। ध्यान देना, तीन कर्म नौकरों से नहीं कराये जाते हैं। गुरुओं को दान, अरहन्त की पूजा और सन्तान का जन्म नौकरों से नहीं कराया जाता है, स्वयं से किया जाता है। वह सन्तान नौकर की होगी कि तेरी होगी? ऐसे ही वह पुण्य नौकर का होगा कि तेरा होगा? इन बातों का ध्यान रखना। कहीं मन में विकल्प आ भी गया हो कि मन्दिर में पुजारी लगाना है, भइया! मन्दिर में पुजारी नहीं होना चाहिये। मन्दिर में पुजारी होना चाहिये, एवंभूत नय के पुजारी होना चाहिये। जिस समय श्रावक पूजा करता है, वही पुजारी है। वे पुजारी तो होना चाहिये, पैसे वाले (नौकरीवाले)पुजारी मन्दिरों में नहीं होने चाहिये। घर की नाली साफ कर सकता है। यहाँ तक कहता है कि बेटे की माँ की पूजा करने से कोई छोटा हो जायेगा क्या? बुरा तो नहीं लग रहा? धन्य हो बेचारों को बुरा भी नहीं लग रहा है। मन्दिर की पूजा के लिये नौकर, इससे अभागा कौन होगा? भइया!स्वयं जाकर अभिषेक-पूजन करना चाहिये।

जो युवा मुनियों के प्रवचन के लिये मंच बना रहे हैं, मालूम क्या कर रहे हो? जो आज मंच बना रहे हैं, वे भविष्य के कुबेर हैं, जो तीर्थंकर का समवसरण बनानेवाले हैं। कुछ अज्ञानी बोलते हैं, 'अरे! महाराज के पीछे कमण्डलु लिये घूम रहा है, इनके घर में कोई काम नहीं होगा।' हाँ, बिल्कुल सही है, मेरे घर में कोई काम नहीं है। तो क्या कर रहे? सबसे बड़ा काम यही है कि कल मैं मुनि बन कर घूमूँगा। भइया! वस्तुस्वभाव समझो। दर्शन गहरा विषय है। आँख पड़ते ही आँख बदल जाती है, आँख फड़कते ही आँख बदल जाती है, जैसे नीबू की बूँद दूध में गिरते ही दूध बदल जाता है। अम्ल तत्त्व के पड़ते ही मधुर तत्त्व का स्वाद बदल जाता है, ऐसे-ही वीतरागी जिनेन्द्रदेव पर मेरी आँख पड़ने पर मेरे भावों का रंग बदल जाता है। अशुद्ध परिणाम विशुद्ध हो जाते हैं। इसे दर्शन कहते हैं। कोटि-कोटि काम छोड़ देना, लेकिन दर्शन करना मत छोड़ना। देह को देख करके देही बदल जाता है। **नारी की देह को देखके, नर के और नर की देह को देखके नारी के भाव बदल जाते हैं और भगवान् की देह**

को देखकर भव बदल जाता है। देह देखने से भाव बदलते हैं और भाव बदलने से भव बदलता है। देखना सीखो। देखने से पापबन्ध नहीं होता, ताकने से पापबन्ध होता है। देखना-जानना आत्मा का धर्म है। देखने से पापबन्ध नहीं होता। देखने से पुण्यबन्ध भी नहीं होता। प्रभु दर्शन से पुण्यबन्ध होता है। परपुरुष परनारियों को 'ताकते' हैं और जब भगवान् के दर्शन करते हैं तो सामान्य रूप से 'देखते' हैं। ये कठिन नहीं है। कठिन वह है जो तुम कर रहे हो।

ज्ञानी! काययोग सँभालिये। मन अशुभ हो भी जाये, तब भी तन अशुभ नहीं होने देना, तब तुम अपराध से बच जाओगे। पाप से न भी बच पाये, लेकिन अपराध से बच जाओगे। जो आप समझ कर रखे हो, बहुत स्थूल समझा है, इसलिये तू आज तक पाप से नहीं बचा। पाप से बचनेवाले तो अंगुलियों पर गिनने लायक हैं; बिरले हैं। लोक में जो तिलक लग रहे हैं, अपराध से बचने वालों को लग रहे हैं, पापियों के सम्मान चल रहे हैं। आप अपराधियों के सम्मान नहीं कर रहे हैं, पापियों के कर रहे हैं। बुरा तो नहीं लग रहा है? लग भी जाये तो मुझे कौन यहाँ कोठियाँ बना कर रहना है, मुझे तो चले जाना है। डर उन्हें लगे जिन्हें कोठियाँ बनाकर रहना है। अपराधियों की संख्या कम है, पापियों की संख्या प्रचुर है। विश्व के शासन पापी को दण्ड नहीं देते। उनके पास पापी को पकड़ने की ताकत ही नहीं है। वे मात्र अपराधी को पकड़ पाते हैं, वह भी कुछ-कुछ। पुण्यात्मा अपराधी पकड़े ही नहीं जाते हैं। जो पूर्व के पुण्यात्मा हैं वे पापी और अपराधी दोनों ही पकड़े ही नहीं जाते हैं। जिनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं ऐसे अपराधियों को पकड़ा जाता है। पापियों को तो कोई पकड़ ही नहीं पाता। एकमात्र जिनशासन ऐसा है जो पापी और अपराधी दोनों को पकड़ता है।

जो क्रिया में किसी को दिख गया, सो अपराधी है। कोई चोरी करते मिल गया सो अपराधी है। कोई अब्रह्म सेवन करते मिल गया, सो अपराधी है। पाँच पाप करते मिल गया, सो अपराधी है; परन्तु क्रिया करने के पहले तू कितनी

बार सोच चुका है? एक रावण को तुम कितने समय से जलाते आ रहे हो, जिसने मात्र सीता के बारे में चिन्तन किया था, उसने शील हरण नहीं किया था। लेकिन तूने कितनी सीताओं को झाँक-झाँक कर देखा है? अब बताओ, पापी कौन है? हृदय को टटोल लो। जब से तेरे में समझ आयी है, अपने हृदय से पूछो कि किस-किसके बारे में कितना-कितना नहीं सोच डाला? चाहे तू योगी हो, चाहे तू भोगी हो, भोग करने से तो बन्ध होता ही है, लेकिन भोगभावना से भी बन्ध होता है। पाप करने से तो बन्ध होता ही है, पापभावना से भी बन्ध होता है।

मुमुक्षुओ! रसना इन्द्रिय से तो बहुत कम आम खाये हैं, लेकिन जब सागमण्डी गया था तो आँखों से कितने आम देखे और नाक से सूँघ-सूँघ के रख रहा था। उनका स्वाद तूने आँख और नाक से भोगा, चखा, उसके पैसे कितने दिये?

हे ज्ञानी! तेरे बेटे की माँ के पिता ने तुझे एक बेटी दी है, उसके लिये तू बड़ा सज्जन बन कर बैठा हुआ है। जिसको किसी ने दिया नहीं है, उसको कितनी बार देखा है? अनन्त नारियों को देखने का पाप का बन्ध तू कहाँ चुकाने जायेगा? लोक में अपराध का दण्ड है, पाप का दण्ड नहीं है। लेकिन कर्मसिद्धान्त कहता है कि अपराध करने के पहले मैं तुझ पापी को पकड़ चुका हूँ और अपराध करने जा रहा है सो दो बार पकड़ा जायेगा। काय को सँभालो, काययोग को सँभालो। चित्त के जाने पर भी तन को लेकर मत जाओ। चित्त चला गया सो भीतर का परिणमन था, तू ही जान रहा था; लेकिन यदि शरीर को लेकर चला जायेगा तो लोक जानेगा। जिसका मन विचलित हुआ है, उसको तो मात्र आत्मनिन्दा मिलेगी, लेकिन जिसका शरीर विचलित हुआ है, उसको लोकनिन्दा भी मिलेगी। हे श्रमणो! आत्मनिन्दा से ही बचो तो लोकनिन्दा क्यों होगी?

ज्ञानी! चरणानुयोग की व्याख्या सुनने पर भी तुम्हें ऐसा लगेगा जैसे द्रव्यानुयोग चल रहा हो। यदि चरणानुयोग को तुमने व्यवस्थित नहीं समझा, तो गड़बड़ कर दोगे, क्योंकि हर व्यक्ति का चरण चरणानुयोग नहीं होता है। आपकी चर्या (क्रिया) श्रावकाचार नहीं है, श्रावकाचार के अनुसार आपकी चर्या (क्रिया) होनी चाहिये।

विशुद्धसागर की चर्या मूलाचार नहीं है, मूलाचार के अनुसार उनकी चर्या होनी चाहिये। नहीं तो हर श्रमण का अपना मूलाचार हो जायेगा। इसलिये न मूलाचार लिखो, न श्रावकाचार लिखो। आचार्यों ने जो मूलाचार लिखा है, उसे पहले समझो।

इन्दौर में श्री जी की शोभायात्रा नहीं निकलती, खाली लोग घूमते हैं। मैंने प्रश्न किया कि आपने ऐसा क्यों किया? 'महाराज! पचास वर्ष पहले तो निकलता था, अब नहीं निकलता।' क्यों? सोलापुर में भगवान् का जुलूस नहीं निकलता। कुछ ऐसी चर्यायें हैं, ऐसी क्रियायें हैं जिन्हें विवेक के साथ करना, क्योंकि पंचमकाल है, हर एक नया व्यक्ति खड़ा हो जाता है जो अपने मन के चिन्तन देने लगता है और समाज नियम बाँध लेती है। इसलिये कोई भी नियम बनाने के पहले आगम खोजना। इन्दौर और सोलापुर दोनों जगह प्रश्न किया 'इतना सुन्दर विमान है, आप श्रीजी को विराजमान करके क्यों नहीं चलते? बोले, श्रीजी को कैसे निकालें? मूल बात ऐसी थी कि इन्दौर में बहुत समय पूर्व कोई एक मुनिराज पधारे थे। उन्होंने चातुर्मास किया। वे जुलूस में नहीं आये और बोल भी दिया कि मैं नहीं जाऊँगा, चातुर्मास है।

ज्ञानी! नगर में आहार को जा सकते हो और तीनलोक के नाथ की यात्रा में चले जाते तो कौन-सा पाप हो जाता? शौच को जा सकते हो, आहार को जा सकते हो, जो कि संज्ञा की क्रियायें हैं उनमें जा सकते हो, लेकिन तीनलोक के नाथ की यात्रा में नहीं जा सकते हो। तो लोगों ने क्या अर्थ लगा लिया? अरे! जब महाराज नहीं जा सकते, तो भगवान् तो और बड़े हैं। तो भगवान् को क्यों निकालो? अब ऐसी रुढ़ि बन गई कि वो भगवान् को नहीं निकालते। ज्ञानी! तुमको मालुम होना चाहिये कि श्रीजी की व्यवस्था में और महाराज की व्यवस्था में बहुत अन्तर है। मुनिराज का अभिषेक नहीं होता, लेकिन श्रीजी का तो होता है। फिर तुम कल से अभिषेक बन्द कर दोगे। एक मुमुक्षु ज्ञानी ऐसे हुये उन्होंने सब बन्द ही करा दिया। जब मुनिराज विमान पर नहीं बैठ सकते, तो भगवान् तो और बड़े हैं।

अरे ज्ञानियो! अरहन्त की व्यवस्था भिन्न है, निर्ग्रन्थों की व्यवस्था भिन्न है श्रीजी को रथ में (विमान में) निकाला जाता है। एक श्रावक मिला, बोला—महाराज! जब भगवान् रथ में बैठ सकते हैं, तो आप भगवान् से बड़े हो गये क्या? आप भी बैठ जाओ। ज्ञानी! वह अरहन्त प्रतिमा है, यह निर्ग्रन्थ मुद्रा है। इन दोनों में बहुत अन्तर है। इसलिये हे श्रावको! कल कोई नया चिन्तन देने वाला मिल जाये तो इन बातों में मत आ जाना। कह देना कि आगम दिखाओ, फिर मानूँगा, क्योंकि पंचमकाल में कोई व्यक्ति प्रामाणिक बचा नहीं है। आगमप्रमाण ही प्रमाण है। आगम के अनुसार जो कह रहा है, उसे प्रमाण मान लेना; लेकिन व्यक्तिगत प्रमाण कोई प्रमाण नहीं है। हर व्यक्ति अपना चिन्तन दौड़ा रहा है। हर व्यक्ति का लक्ष्य है कि आर्जव-मार्दव धर्म तो खूँटी पर टाँग दिये जायें, मेरा पंथ कैसे चले? मेरी परम्परा कैसे चले? हे ज्ञानी! तुझे मालुम होना चाहिये कि अनन्तानन्त चौबीसियाँ हो चुकी हैं, जब उनके नाम लेनेवाले कोई नहीं मिल रहे हैं, तो तुम्हारा क्या नाम चलेगा? तुम्हें तो मात्र वर्तमान की चौबीसी के ही नाम मालुम होंगे, भूत व भविष्य के ही किसी को मालुम न हों। जब तीर्थंकर जैसे पुण्यात्मा जीव को एक चौबीसी के बाद दूसरी चौबीसी में भूल जाते हैं तो आपको कौन याद रखेगा।

ज्ञानी! दिन में बेटे का नाम कितनी बार लेते हो और पिता का नाम कितनी बार लेते हो? बता दो, चोर-चोर मौसेरे भाई बैठे हैं, चिन्ता मत करो। महाराज जी! पिता का नाम तो नहीं लेता हूँ। बेटा अपने पिता को भूल सकता है तो तू चिन्ता मत कर तेरा बेटा भी तुझे भूल जायेगा। जब तू जन्म देने वाले पिता को भूल सकता है, तो फिर दुनियाँ तेरा क्या नाम लेगी? इस ध्रुव सत्य को कौन टाल सकेगा? जब तू अपने पिता का नाम नहीं ले पा रहा है, तो आज ही सोच लेना कि जो तू बेटा के लिये कमा-कमा कर रख रहा है, विश्वास रखना, वह भी अपने बेटे का नाम लेगा, तुम्हारा नहीं ले पायेगा। देखो बेचारों के चेहरे फीके पड़ गये। उन्हें तो पता ही नहीं था कि ऐसा भी होता है। ऐसा 'भी' नहीं, ऐसा 'ही' होता है। ज्ञानी! पिता जी हैं कि गये? 'गये।' क्यों जाने दिया? तू रोक

लेता। 'महाराज! देखो, जानो, जाने दो। कौन रोक पायेगा?' जब रोक ही नहीं पाओगे, तो व्यर्थ में रोकरके ये तमाशा क्यों दिखाते हो? आज से त्याग कर दो रोने का। ये ढोंग मत किया करो। तीसरा दिन होते ही सब काम शुरू हो जाते हैं। जाने वाला गया, तुम मस्ती में जी रहे हो। इस जगत् का स्वभाव ही ऐसा है। 'बात तो सही है महाराज! लेकिन क्या करूँ? रोता नहीं हूँ। छूटता नहीं है।' जबकि सबको मालूम है। आज और खुल ही गई हैं सब बातें। पिता का नाम कम लेता है, बेटा का नाम ज्यादा लेता है।

स्वाधीनता का विचार करो। इसलिये काययोग को सँभालो। अपने शरीर को अशुभ की ओर मत ले जाओ। मन चला गया, उसे तो मोड़ लोगे; लेकिन तन चला गया तो भ्रष्ट ही कहलाओगे। इसलिये ज्ञानियो! यदि किसी का मन विचलित हो गया हो, तो उसको तुरन्त भ्रष्ट मत कह दिया करो। कुछ लोगों की अज्ञान दशा चल रही है। रात में बेटे ने कहा 'माँ! भूख लग रही है।' माँ अज्ञानी ऐसी मिल गई तुझे कि वो कह रही है 'अब मन तो हो ही गया, खा-ले।' नहीं, माँ! मन ही हुआ है, खिला मत देना। तू कहना 'बेटा! अनन्त बार खाया है। रात्रि में जो खायेगा, वो माँस का पिण्ड होगा और पानी खून के तुल्य होगा मत खाओ, मत खाओ। भगवान् का नाम लेकर सो जाओ।' वही तेरी सच्ची माँ होगी। लेकिन जिसने कह दिया कि अब मन हो ही गया तो खा-ले, वह माँ 'माँ' ही नहीं है जो रात्रि में बेटे को खाना खिलाये। सच्ची माँ तो वह है जो शाम को बेटे को जिनवाणी पिलाकर सुला देती है 'बेटा! तू सो जा। जगत् को देखने के लिये मत जागना।' इसका नाम है सच्ची माँ। माताओ! रात में दूध मत पिलाया करो, शाम को जिनवाणी पिलाकर सुला दिया करो। जिनवाणी पीकर सोओगे तो नींद की गोली कभी नहीं खानी पड़ेगी। जिनको पागलपन से बचना है, वे जीवन में नींद की गोली कभी न खायें।

जिनको नींद न आये, वे सौभाग्यशाली हैं। योगियों का तो जित्-निद्रा गुण होता है। सोने में प्रमाद में खोटे-खोटे स्वप्न आ गये तो पाप हो गया। जागता

रहेगा तो स्वाध्याय करना, जाप करना और विश्वास रखना, जो जाप करके बैठेगा और स्वाध्याय करेगा, तो अपने आप नींद आ जायेगी। दिन भर स्वाध्याय किया करो, बड़ी जल्दी नींद आती है। पर बेचारे गप्पें करते रहेंगे, लेकिन स्वाध्याय नहीं करेंगे। जिन जीवों को दुर्गति का बन्ध हो चुका है, वे गप्पें करके रात्रि तो गुजार लेंगे, लेकिन स्वाध्याय नहीं करेंगे। भोगों के लिये रात्रियाँ दे दीं, विषयों के लिये रात्रियाँ दे डाली, लेकिन अरहन्त की वाणी के लिये एक घण्टा नहीं दे सकता है।

जब काययोग सँभाल लेगा, तब वचनयोग पर दृष्टि डालना। उनके चित्त चंचल होते हैं, जो ज्यादा बातें करते हैं। सीमा से भी अधिक वाचाल होते हैं।

एक विद्या सीखो। जब दौड़ता है तो हाथ फैला कर दौड़ता है। ऐसा क्यों? गहरी रहस्य की बातें सीखो। रहस्य क्या है? 'मन वश करो, मन वश करो', पागलपन छा गया है। यदि हाथ बाँध दिये तो दौड़ने की गति मन्द हो जाती है, ऐसे ही जीभ को बाँध कर रखा जाये तो मन की गति मन्द हो जाती है। तुम जीभ नहीं बाँध पाते हो, इसलिये तुम्हारा मन दौड़ता है। जीभ और ओंठ हिलाये बिना णमोकार पढ़ो तो अपने आप मन वश होता है। जैसे दौड़ में गति बढ़ानेवाला हाथों का हलन-चलन होता है, ऐसे ही मन की गति को बढ़ाने वाली जिह्वा होती है। जितनी जीभ हिलेगी, उतना मन हिलेगा। जीभ को शान्त कर लो तो श्वासें शान्त हो जाती हैं। फिर श्वासोच्छवास को वश नहीं करना पड़ता है। जीभ को स्थिर कर लो, योगा अपने आप प्रारम्भ हो जायेगा। उपांशु जाप। जिह्वा को स्थिर करो। जिनकी जीभें स्थिर नहीं हैं, उनके न मन स्थिर हैं, न तन स्थिर हैं। इसलिये वचन पर नियंत्रण करो। जितना ज्यादा बोलोगे, उतना असत्य बोलोगे। उतना सोचना पड़ेगा। यहाँ-वहाँ का बोलेंगे तो यहाँ वहाँ का सोचेंगे। अपना सम्मान बढ़ाना है लोक में पूजा चाहिये, तो एक बात समझो। जो बहू घूँघट डाल कर आती है, उसका चेहरा दुनियाँ देखना चाहती है। जो पहले से ही चेहरा खोल कर आ गई, उसका चेहरा कौन देखने आयेगा? ऐसे ही जो मौन रहते हैं, उनको

दुनियाँ सुनना चाहती है। जो पहले से ही बड़बड़ाने लगते हैं, दुनियाँ समझ जाती है कि कौन क्या है? सम्मान चाहते हो तो मौन रहना सीखो। सम्मान चाहते हो तो पर की निन्दा करना छोड़ो।

अहो! आश्चर्य! आगम पढ़ लिये, पुराण पढ़ लिये, 'तत्त्वार्थ सूत्र' पढ़ लिया। ज्ञानी! पर का अहित हो जाये, इसकी आपको चिन्ता नहीं है, ठीक है, मैं मान लेता हूँ। परन्तु स्वयं का अहित न हो जाये, इसकी तो आपको चिन्ता होनी चाहिये। भारत की भूमि पर विचरण करनेवाले कई योगियों पर मेरी तीव्र करुणा झलकती है। ऐसा भाव नहीं आता कि ये ऐसा क्यों कर रहे हैं? तीव्र करुणा आती है। उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में लिख दिया कि हे ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये, कि आत्म-प्रसंशा और परनिन्दा करने से कौन-से गोत्र का आस्रव होता है? नीच गोत्र का।

परात्मनिन्दा-प्रशंसे सदसद्-गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥ त.सू. ॥

हे मुमुक्षु! पर की निन्दा, स्वयं की प्रशंसा, पर के सद्गुणों को दबाना और असद्गुणों को प्रकट करना, इससे नीच गोत्र का आस्रव होता है।

हे मुमुक्षु! जो आरम्भ और परिग्रह से रहित हैं, परीषहों को सहन करने में समर्थ हैं, राग-द्वेषादि मलों से रहित हैं, शान्तस्वरूप हैं, इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, तप रूपी आभूषणों के धारक हैं, मोक्षप्राप्ति की भावना में लीन हैं, मन-वचन-काय रूप योगों को जीतने में उद्यमशील हैं, अहिंसादि व्रतों के धारी हैं, आत्मध्यान में लीन रहते हैं, परम दयालु हैं, धैर्य की भावना से युक्त हैं, शुभ भावों से संयुक्त हैं और जिनका चित्त तत्त्वों के चिन्तन में, श्रुत के पारायण में संलग्न है, वे ही साधु दाता के लिए उत्तम पात्र हैं।

ज्ञानियो! निर्ग्रन्थ वीतरागी तपोधन ही नमोस्तु शासन में उत्तम पात्र हैं। निर्ग्रन्थ वीतराग अवस्था ही पूज्य है। वीतरागी तपोधन ही धरती के देवता हैं, जिन्होंने गृह-परिवार को तो छोड़ा ही है, अपितु उनके राग का भी परित्याग कर दिया है।

'हे मुमुक्षु! इन्द्रियों के विषयों का शमन जिसने कर लिया है और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर ली है, ऐसे जीव की आत्मा को भली प्रकार से ध्यान लगाना चाहिये। क्यों? संसार की सन्तति का छेद करना है, संसारभ्रमण का नाश करना है, तो सबसे पहले इन्द्रियों को शान्त करो, उपशमन करो और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करो, तभी संसार का नाश सम्भव है। जो राग-द्वेष नहीं छोड़ पा रहा है, जिसके अन्तस् में राग की ज्वाला भड़क रही है, द्वेष की ज्वाला भड़क रही है, वहाँ संसार का नाश बहुत दूर है। अग्नि से महाअग्नि है राग। अग्नि तो ईंधन के सद्भाव में जलाती है, लेकिन राग और मोह की ऐसी अग्नि है जो वस्तु हो, तब भी जलाती है और वस्तु न हो, तब भी जलाती है।

मोह अग्नि उत्कट/विकट है, जो वस्तु के सद्भाव में भी जलाती है और वस्तु के अभाव में भी जलाती है। कितने जल चुके, फिर भी नहीं जले। जलने के पहले जलना छोड़ो। इस देह के जलने के पहले कषाय भाव और ईर्ष्या में जलना छोड़ो। माताओ! जलने के पहले जलना छोड़ो अब समझ लो कि सबसे ज्यादा कौन जलता है जलने के पहले जलना छोड़ दिया, तो कभी जलना नहीं पड़ेगा, कर्पूर की भाँति उड़ जायेगा। वे ही जलते हैं, वे ही जलाये जाते हैं जो जलते हैं। जो जलना छोड़ देते हैं, वे जलाये नहीं जाते हैं, वे परम औदारिक शरीर को प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त करते हैं। उनका शरीर कर्पूर की भाँति उड़ जाता है। इसलिये जलने के पहले जलना छोड़ो।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में तत्त्व की गवेषणा करते हुये वस्तुस्वभाव का व्याख्यान कर रहे हैं। वह वीतराग जिनशासन, जिनमुद्रा कर्म-कलंक को धोनेवाली है। भगवती जिनदेशना जगत् के प्राणियों को अनन्य सुख प्रदान करानेवाली है। वे वीतरागी श्रमण, जिनके अन्तस् में वैराग्य की निश्तरंग तरंगें उत्पन्न हो रही हों, ऐसे पात्र की व्याख्या करते हुये यहाँ आचार्य समझा रहे हैं कि हे सुधी श्रावको! जीवन में सम्पत्ति, धन-धरती आपने जगत् को अनन्त बार दी है और जगत् से अनन्त बार ली है, परन्तु श्रद्धा-आस्था-विश्वास श्रद्धेय को देखकर ही देना। श्रद्धा श्रद्धेय को देखकर ही देना। सबकुछ दिया जा सकता है, लेकिन आस्था सभी को प्रदान नहीं की जा सकती है।

मोक्षमार्ग का प्रारम्भ सम्यक्त्व से होता है, श्रद्धा से होता है, दर्शन से होता है। हम जगत् को देख तो सकते हैं, परन्तु जगत् के दर्शन नहीं कर सकते। प्रदर्शनी के रूप में जगत् को देखते हैं, संसार की लीलामात्र को देखते हैं। मित्र! देखना भिन्न विषय है, दर्शन भिन्न विषय हैं। श्रद्धा की आँख से देखा जाता है, उसका नाम 'दर्शन' है और मनोरंजन की दृष्टि से देखा जाता है उसका नाम 'प्रदर्शन' है। नाटक देखने जा रहे हो और राग की दृष्टि से देखा जा रहा है उसका नाम 'विलास' है। विलास की दृष्टि से प्रदर्शिनी को देखा जाता है और प्रदर्शिनी को नुमाइस के रूप में देखा जाता है, परन्तु जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु को देखने नहीं जाया जाता है उनके दर्शन करने जाया जाता है। रिश्तेदारों से मिलने जाते हो, सम्बन्धियों से मिलने जाते हो, मिलने उनसे जाया जाता है जिनसे मिलने पर उपहार में कर्म मिलते हैं, क्योंकि बिना राग के मिलन नहीं होता रागी से मिलने जाया जाता है 'रत्तो बन्धदि कम्मं' जहाँ राग होगा वहाँ कर्मबन्ध होगा। रागी से मिलने जाया जाता है उपहार में कर्म बन्ध मिलता है। वीतरागियों के दर्शन करने जाया जाता है दर्शन करने से स्वात्म दर्शन होता है। स्वात्म दर्शन चाहिये तो वैरागियों से मिलने मत जाना, वीतरागियों के दर्शन करने जाना। वीतरागियों से

मिलो रागियों से मिलो, वैरागियों के तो दर्शन करो। दर्शन में आस्था है, विश्वास है, प्रतीति है, अनुभूति है, संवेदन है, स्वात्मनुभवन है; परन्तु मिलने में रागानुभूति है, विषयानुभूति है। मिले न होते तो आज कर्मों से मिले न होते। ऐसा मिला ऐसा मिला कि आज मिलकर ही बैठना पड़ रहा है। बेटे की माँ से न मिलता तो आज दुनियाँ तेरे दर्शन करने आती, अब तो कोई मिलने ही आता देखने भी नहीं आता, जब तक किसी से नहीं मिला था, तबतक दिखऊआ तो आते हैं। समझो गहरी बात, कुँवारों को देखने तो आते हैं, परन्तु जो बेचारे मिल चुके होते हैं, उनसे मात्र मिलने ही आते हैं। जो कुमार ब्रह्मचारी हो जाते हैं, उनसे न कोई मिलने आता है, उन्हें न कोई देखने आता है। दुनियाँ दर्शन करने आती है 'भो स्वामिन्! नमोऽस्तु। धन्य हो उन जीवों को जिन्होंने अपनी कुमार दशा का पालन किया है। कोटि-कोटि नमस्कार उन योगियों को हो जिन्होंने अपने कुमार धर्म का नाश नहीं होने दिया। कोटि-कोटि नमस्कार हो उन मुनियों को। सारा विश्व जिनको सिर टेकता है। क्या चक्रवर्ती, क्या नारायण, क्या बलभद्र, क्या प्रतिनारायण, क्या सौधर्म इन्द्र। सर्वार्थसिद्धि का देव भी अपने विमान से ही उस कुमार ब्रह्मचारी को नमस्कार करता है। मेरे मित्र! विश्वास रखना, कोई किसी से प्रभावित नहीं होता। यदि कुमार धर्म की रक्षा कर लेता है तो उस व्यक्ति के चरणों में सौधर्म इन्द्र भी सिर टेकता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र, स्वर्ग का स्वामी भी सिर टेकता है। तुम ब्रह्मचारी बन सकते हो, मुनिराज बन सकते हो, केवली बन सकते हो, लेकिन कुमार-ब्रह्मचारी-व्रत-पूर्वक जो जीवन व्यतीत कर रहा है, जिस दबंगी से आनन्द के साथ अपने जीवन की अनुभूतियों को कह सकता है, वह कुमार व्रत को भंग करने वाला कभी नहीं कह सकता।

आचार्य योगीन्द्रदेव 'परमात्मप्रकाश' ग्रन्थ में जब कुमार ब्रह्मचारी की व्याख्या करते हैं तो कहते हैं कि अहो! हे कुमार योगीश्वर! आपके चरणों में हमारी कोटि-कोटि बलिहारियाँ हैं। कुछ लगता है व्रती को देखकरके। संयमी को देखकरके श्रद्धा अपने आप उमड़ती है। आम्रमंजरी की सुगन्ध कोयल को बलात् प्रेरित कर

देती है वह कूकना प्रारम्भ कर देती है। मेघों की गड़गड़ाहट कभी मयूरों को नाचने के लिये नहीं कहती है, वह तो स्वयं ही नाचने लगता है। ऐसे ही हमारी यह दिगम्बर जैनसमाज साधु को देखने नहीं जाती है, निर्ग्रन्थों को देखकरके इनका मन-मयूर नाच उठता है। जब योगियों के संयम को निहारते हैं, उनके चारित्र को देखते हैं, हे मुनीश्वरो! तुम समाज को कुछ भी नहीं देते हो, तो भी समाज तुम्हें देखकर मुस्कराती है। समाज तुम्हारे शील संयम ज्ञान और चारित्र को देखती है। जबकि आप अपना कल्याण करने चले हो, तब भी समाज को गर्व होता है। समाज ही नहीं, श्रेष्ठ साधक के नाम पर पूरा देश मुस्कराता है।

क्या तीर्थंकर महावीर स्वामी के जन्ममहोत्सव को भारत सरकार ने नहीं मनाया? क्या उनके पच्चीसवें निर्वाण महोत्सव को भारत सरकार ने नहीं मनाया? एक बालक मुझसे कह रहा था कि आज मोबाइल पर एक मैसेज आया है, कि विश्व में महापुरुषों में दूसरे स्थान पर तीर्थंकर महावीर स्वामी का स्थान है। यह मैसेज विदेश से आया है। आपको मालूम नहीं है। विश्व अरहन्तों, निर्ग्रन्थों, तीर्थंकरों के अध्यात्म-सिद्धान्त और चर्या की खोज अभी भी कर रहा है। कौन-सी शक्ति थी वर्द्धमान के पास, जो ढाई हजार वर्ष निकलने के बाद आज भी अपने सामने दिखाई दे रहे हैं। जिसे आप ऊर्जा कह रहे हो, अध्यात्म की भाषा में, सिद्धान्त की भाषा में उसे वर्गणा कह रहे हैं। वर्गों का समूह वर्गणा है। जो वर्गणायें हैं, आभामण्डल है, तेज है, ऊर्जा है, वर्तमान के लोग बोलते हैं। चाहे आशीर्वाद हो, चाहे उपचार हो, आज भावनाओं का भी तो उपचार हो रहा है। हजार कि. मी. दूर बैठ करके तुम दूसरे का उपचार कर सकते हो, इससे किस दर्शन की सिद्धि हो रही है? तुम घर में बैठे कहते हो कि आज गद्दी खुजला रही है कोई याद कर रहा है। इस रहस्य को तो समझो। इसको रुढ़ि कह कर, मिथ्यात्व कह करके आपने वहीं-के-वहीं छोड़ दिया। जैनदर्शन के उस तत्त्व की सिद्धि की ओर क्यों नहीं ध्यान दे रहे हो? गद्दी खुजला रही है, गुदगुदी हो रही है, कोई याद कर रहा है, मेरे मित्र! तुम्हें मालूम होना चाहिये जब तीर्थंकर भगवान् का

जन्म होता है तो ऐसी खुजलाहट होती है कि नरक के नारकी को भी शान्ति मिलती है। ये क्या था? ये महापुरुष की पुण्यवर्गणाओं का प्रभाव था कि इन पुण्यवर्गणाओं के प्रभाव से नरक के नारकी को भी शान्ति की अनुभूति हो रही है। एक अगरबत्ती जलती है तो लोगों की नासिका को अपनी ओर खींच लेती है, तो फिर तीनलोक के नाथ का जन्म हो और तीनलोक के जीव शान्ति का वेदन न करें, तो तीन लोक के नाथ का तीनलोक का नाथपना कैसा? विषय गहरा है। जैनदर्शन के क्रिया पक्ष को भी आप रासायनिक तात्त्विक दृष्टि से समझिये। प्रभावना करना बन्द कर देना चाहिये। 'महाराज! क्या बोल रहे हो? सम्यक्त्व का अंग है, इसीलिये बोल रहा हूँ। भारत की भूमि पर जिनलिङ्ग को धारण करके जो मुनि प्रभावना नहीं करता, वह भारभूत है। ऐसा आचार्य वीरनंदि स्वामी ने 'आचारसार' ग्रन्थ में लिखा है। आप कह रहे हैं कि प्रभावना बन्द कर देना चाहिये, तो आप आचार्य की वाणी में कलंक लगा रहे हो। आप पूरी बात तो सुन लो, फिर कुछ कहना। लोग अधूरी बात सुनते हैं और कहते हैं कि विशुद्धसागर महाराज ने क्या कह दिया? जरा बैठो, सुनो, समझो, तब समझ में आयेगा कि क्या कह दिया। जब तक न कहो, तबतक तुम सतर्क होते भी तो नहीं हो। मैं कह रहा था—ये प्रभावना बन्द कर देना चाहिये हाँ, बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ, प्रभावना बन्द करोगे तभी प्रभावना कर सकोगे। चर्म की प्रभावना में लगे हैं, चर्म की प्रभावना बन्द कर देना चाहिये, तब धर्म की प्रभावना प्रारम्भ होगी अब तो समझ में आ गया? प्रभावना बन्द कर देना चाहिये। माँ! यदि तू आम के फल को अग्नि में पकाना चाहती है, भरता बना रही है, लोंजी बना रही हो कि पना बना रही हो? स्वादिष्ट पना बनाने के लिये यदि पानी में उबालोगे तो वह स्वाद नहीं आयेगा, लेकिन अग्नि के भीतर ढक दोगे तो उससे जो पना बनेगा वह स्वादिष्ट होगा। प्रभावना बन्द करो, बात समझो गहरी। इस आम के फल को स्वादिष्ट, सुवासित, सुगन्धितपना बनाना है तो आप चारों ओर से अग्नि के भीतर इसको ढक दो, तो अन्दर-ही-अन्दर पकेगा। फिर तुम निकालोगे तो स्वादिष्ट पना बनेगा। कितनी भी लू लगी हो, इससे सब लू निकल जायेगी।

समझ गये? अभी और है। पना बनाना है तो अन्दर डालना पड़ेगा। प्रभावना बन्द कर दो, ढक दो, फिर आम के भीतर से आवाज आती है कि अब मुझे निकाल लो। भाषात्मक नहीं, अभाषात्मक होती है। ध्वनि निकलती है, आप समझ जाते हो कि आम पक चुका है। उसके सर्वाङ्ग से ध्वनि निकल रही है, आम पक चुका है। जैनदर्शन में योगियों ने प्रभावना नहीं की है। प्रभावना को बन्द करके, वे अग्नि के भीतर बैठ गये थे। अग्नि के भीतर बैठ मत जाना, नहीं-तो चूल्हे पर बैठ जाओ। परन्तु समझो, बैठ गये थे अग्नि के भीतर—ध्यान की अग्नि पर।

जंगलों में पर्वतों की चोटियों पर जाकर छुपकरके बैठ गये थे। कहीं प्रभावना करने नहीं गये थे, किसी को प्रभावित करने नहीं गये थे, किसी से प्रभावित होकर भी नहीं गये थे। जो जीव प्रभावना करने के लिये त्यागी बनता है, वह स्व-पर कल्याण नहीं कर पाता। जो प्रभावित होकर मुनि बनता है, वह स्व-पर कल्याण नहीं कर पाता है। न किसी से प्रभावित होकर त्यागी बनना, न किसी को प्रभावित करने के लिये त्यागी बनना। निज में प्रभावित हो करके, निज को प्रभावित करने के लिये जो त्यागी बनता है, वह जगत् में जिनशासन की प्रभावना कर लेता है। प्रभावना करने के लिये जाओगे तो बहिर्भाव रहेगा और प्रभावित होकर आओगे तो बहिर्भाव रहेगा। पक कर नहीं आये हो, डाल का पका आम अलग स्वाद देता है, पाल का पका अलग स्वाद देता है। प्रभावना बन्द कर दो।

इस समय भारत की भूमि में लगभग चौदह सौ पिच्छीधारी विचरण कर रहे हैं। तेरह सौ इकहत्तर की तो सूचि आयी है एक श्वेताम्बर पत्रिका में तीनों पंथों की—स्थानकवासी, मूर्तिपूजक, दिगम्बर। उसमें लगभग 1371 की सूची है, परन्तु चौदह सौ लगभग पिच्छीधारी हैं। ये चौदह सौ पिच्छीधारी प्रभावना बन्द कर दें। जो मैं अभी कह रहा हूँ, यदि यह रहस्य प्रत्येक निर्ग्रन्थ के हृदय में पहुँच गया तो उनको सोचना पड़ जायेगा कि विशुद्धसागर बिल्कुल सत्य बोल रहे थे और जो आधी बात सुनेगा वह मुझे ही मिथ्यादृष्टि कह देगा। क्यों? प्रभावना तो धर्म

का अंग है, सम्यक्त्व का अंग है और आप इसको मान रहे हो। मैं मना नहीं कर रहा हूँ। धर्म की प्रभावना अलग होती है और चर्म की प्रभावना अलग होती है। जब धर्म की प्रभावना दिखेगी, तब चाहे विशुद्धसागर के माध्यम से हो रही हो, चाहे क्षमासागर के माध्यम से हो रही हो, चाहे सुधासागर के माध्यम से हो रही हो, चाहे विरागसागर के माध्यम से हो रही हो, चाहे विद्यासागर के माध्यम से हो रही हो, जब धर्म को देखेगा ज्यादा प्रभावना हो रही होगी तो वह मुस्कारायेगा। चर्म-प्रभावना होगी तो चेहरा उदास करेगा। एक विशुद्धसागर कहाँ-कहाँ जायेंगे? जितने पिच्छीधारी दिगम्बर तपोधन हैं, जहाँ-जहाँ जिनशासन की प्रभावना कर रहे हैं, सब श्रमणसंस्कृति की प्रभावना कर रहे हैं। चर्म-प्रभावना होगी तो विशुद्धसागर को मात्र विशुद्धसागर का नाम दिखाई देगा। इस चर्म-प्रभावना को बन्द करना पड़ेगा, तब कहीं धर्मप्रभावना प्रारम्भ होगी। समाज में अखण्डता चर्म प्रभावना से नहीं होगी। चर्म-प्रभावना से तो समाज टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी। यदि अखण्डता चाहिये तो जिनशासन की अखण्ड धर्मप्रभावना चाहिये। कोई भी सागर हों, मुझे कोई सागर को नहीं देखना है, मुझे तो वीतराग जिनशासन को देखना है। अभी इस समय तुम व्यवहार की बात कर रहे हो। परम तत्त्व की व्याख्या पर लक्ष्य ले जाइये। धर्म-प्रभावना और चर्म-प्रभावना दोनों से शून्य हो जाओ। तीर्थंकर जिनेन्द्र कभी धर्मप्रभावना करने नहीं निकलते। उन्होंने क्या? किया संग्रह करो। कुये में पानी की झिर पाइप लाइन जैसी नहीं निकलती, न फौब्बारे छूटते हैं। वह एक-एक बूँद टपकती है, परन्तु चौबीस घण्टे में इतना संग्रह होता है कि लाखों जीवों के कण्ठ को गीला करती है। कुयें का पानी शीतल क्यों होता है? इस मौसम में और ग्रीष्म काल में, आयुर्वेद की दृष्टि से, कुयें का पानी ही पीना चाहिये। कुवाँर का महीना, दूसरा ग्रीष्मकाल चल रहा है। ग्रीष्म काल में स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये कुयें का पानी ही पीना चाहिये। समझदार लोग पानी को कपड़े से बाँध करके उल्टा टाँग देते हैं, वह पानी शीतल हो जाता है, क्योंकि उसे चारों ओर से वायु मिल रही है। जैसे कुयें का शीतल पानी एक-एक बूँद झरता है, ऐसे ही योगियों के मुख से जो तत्त्व हम सुनते हैं, निर्ग्रन्थों के स्वरूप

को देखते हैं, ये क्यों आनन्द देते हैं? विद्वान् को हम विद्वत्ता की दृष्टि से सुनते हैं और योगी को हम श्रद्धा की दृष्टि से सुनते हैं, आस्था से सुनते हैं, क्यों? ये विद्वान् जो सुना रहे हैं, वह काली टंकी का पानी है, ये भरा गया है। जो निर्ग्रन्थ सुना रहे हैं, ये कुयें का पानी है, ये भीतर से निकल रहा है रिस-रिस कर इसलिये ये शीतलधर्मी है।

प्रभावना बन्द कर देना चाहिये। भारत की भूमि पर विचरण करनेवाली चौदह सौ पिच्छी यदि ये सुन लें तो मेरा विश्वास है कि उनको भी सोचना पड़ेगा कि कुछ तो है; परन्तु सुनने के लिये भी शक्ति चाहिये। आर्जव-मार्दव धर्म होगा, तब ही सुन पायेंगे। यदि ये धर्म नहीं है, तो सुनने के भाव भी नहीं आयेंगे।

मयूर बादलों की गड़गड़ाहट से नाच रहा था, कोयल आम्रमंजरी में कूक रही थी, फिर हमारे तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने आपको छुपा करके अपने आप में गुप्त करके साधना की है। जो मैं बोल रहा हूँ, वह मुख मेरा है लेकिन सिद्धान्त मेरा नहीं है। धर्म शाश्वत तीर्थंकर का चल रहा है। अन्तर इतना है कि आप उसको मिलाना नहीं जानते हो। किसी के हाथ का अच्छा भोजन बनता है, किसी के हाथ का नहीं बनता है जबकि सामग्री तो वही होती है। आप जितने अच्छे से मिलाना जानोगे, उतना बढ़िया भोजन बनेगा। त्रिगुप्तियों में निज को गुप्त कर लो। हे योगीश्वर! आप तीन गुप्तियों में गुप्त हो जायें। कुयें को गहरा खोदने पर ही स्रोत फूटते हैं। जितना गहरा कुआ खुदा होगा, उतना शीतल पानी निकलता है। गर्मियों में मटका का नहीं, फ्रिज का नहीं, कुयें का पानी पियो, कोई गर्मी नहीं चढ़ेगी। आप तो स्वादिष्ट पानी पीते हो बहुत पुण्यात्मा जीव हो। जो पीता है वह नालियों में जाता है उसमें स्वाद पाइपलाइन का मिल जाता है। आपके घर के बच्चे नालियों में गन्दगी फैलाते हैं, वह भी पाइपलाइन में ही गिरती है। कोई ग्लास में दे दे तो फेंक देगा। तुझे आँखों से दिख नहीं रहा है क्या? पुण्यात्मा जीव है। धन्य हो। जिनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, वे नालियों के पानी पीते हैं। पुण्यात्मा जीव अंजुली लगाकर कुयें का पानी पीते हैं। जब शक्ति को वाष्पित

किया। 'आत्माप्रभावनीयो'। कहीं भी जाकर सिर मत पटक देना और कहीं भी जाकर द्रव्य मत दे देना। खोज करो। 'आत्माप्रभावनीयो रत्नत्रय तेजसा।' यही कारण है कि योगियों ने नदी तालाबों के किनारे साधना नहीं की, पर्वतों पर बैठ कर की है। तीर्थ भी पर्वत की चोटी पर मिलेंगे। यहाँ न ढारना है, न पीना है; सुखाना है। पानी की आवश्यकता नहीं है, इसलिए पर्वतों पर बैठे हैं, चोटी पर हैं। रत्नत्रय के तेज से भीतर की आर्द्रता को सुखाया जा रहा है, बाहर की धूप से इस शरीर को सुखाया जा रहा है।

आक के फूल में रुई भरी होती है, लेकिन जब फल हरा होता है, तब रुई उड़ती दिखाई नहीं देती है। जैसे ही फल सूख जाता है, तो वह रुई गगन की ओर गमन करती है। ऐसे ही तेरी आत्मा में जब कर्मों की हरियाई सूख जायेगी और राग की हरियाई सूख जायेगी, तो तेरी आत्मा गगन में गमन करेगी और एक समय में सात राजू गमन कर सिद्धालय में विराजमान हो जायेगी। शुद्धात्मा एक समय में सात राजू गमन करती है। सुगन्ध आने के पहले की भूमिका को नहीं देखा? पुष्प की सुगन्ध को सबने सूँघा, लेकिन जिस दिन डाली पर बौड़ी आ रही थी, उसी दिन खिल गई होती तो सुगन्ध नहीं आती। ज्ञानी! तू भी बौड़ी बन कर माँ के पेट में रहा। जिस दिन गर्भाधान हुआ, उसी दिन जन्म हो जाये तो क्या आज ये पुष्प दिखाई देते? समझो ध्यान से, ये सिद्धान्तशास्त्र की व्याख्या है। कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ हो, वह भी पाक का समय चाहता है। विरह काल पड़ता है, अन्तराय पड़ता है। आबाधाकाल है, पकने का काल है। कम-से-कम अन्तर्मुहूर्त चाहिये। तब पक कर कर्म उदय में बाहर आयेगा। शुभ हो चाहे अशुभ हो। ऐसे ही **जो साधक दीक्षा लेते ही प्रभावना की ओर दौड़ते हैं, वे सुगन्धहीन पुष्प के समान हैं।** बौड़ी शीघ्र उसी दिन नहीं खुलती। गुलाब, कनेर, गेंदे के फूल भी क्यों न हों, उसकी बौड़ी भी बन्द रहती है। बन्द बौड़ी में पाक चल रहा है। मंजरियाँ भी बन रही हैं, सुगन्ध भी संग्रहीत हो रही है। ऐसे ही जिनशासन में दीक्षा लेते ही गुप्त हो जाना चाहिये। तीर्थंकर भगवान् भी दीक्षा लेते ही गुप्त हो जाते हैं। गुप्तियों में गुप्त हो जाते

हैं, मौन ले लेते हैं। आप ये मत सोचना कि ये क्या करते रहते हैं? ये बड़े रासायनिकशास्त्री हैं। जितने तीर्थंकर हैं, वीतरागी मुनि हैं, ये बहुत बड़े वैज्ञानिक लोग थे। विज्ञान क्या खोजेगा? जड़ से जड़ का प्रयोग कर रहा है वे परम वैज्ञानिक चैतन्य से चैतन्य का प्रयोग कर रहे थे। इसलिये तेरा विज्ञान जड़-विज्ञान होकर रह गया, मेरा विज्ञान वीतरागविज्ञान हो गया। जो जड़ का जड़ में प्रयोग कर रहा है, चेतन का चेतन में प्रयोग कर रहा है, उसका नाम है वीतराग विज्ञान। दौलतराम जी ने नमस्कार भी किसको किया—

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिव स्वरूप शिवकार नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।छ.ढा.।।

यह तो यहीं आगरा में छिपीटोला में लिखा गया था। आज सारे विश्व में जहाँ जैनत्व की बात चलेगी, समयसार, प्रवचनसार, षट्खण्डागम की बात चलेगी। धन्य हो उस जीव को, एक छहढालाकार को, जिसने हिन्दी में पद्य लिखे हों।

प्रभावना करूँ, ये सब व्यर्थ की बातें हैं। जब तू निज में बैठ जायेगा और अपनी शक्ति को वाष्पित कर लेगा, जब पूर्ण सुगन्ध भर जायेगी, तो-फिर ऐसी प्रभावना होती है कि कैवल्य ज्योति प्रकट होगी। विश्व में चराचर जीवों को शांति का वेदन होगा। फिर तो सौधर्म इन्द्र भी आकर सामने बैठ जायेगा। फिर आपके मुख से नहीं सुनेगा, सर्वाङ्ग से सुनेगा। यह है धर्मप्रभावना। कर्म-प्रभावना छोड़ो, वाष्पित करना सीखो। यदि तुम किञ्चित् भी गुरुओं के भक्त हो, तो एकान्त में जाकर कहना कि सामायिक करो, ध्यान करो। ये सामाजिकता, ये राजनैतिकता, येअभिनेतापन, ये नेतापन ये मोक्षमार्ग के नेता का स्वरूप नहीं है। मोक्षमार्ग का नेता बनना है तो हे योगीश्वर! रत्नत्रय धर्म का तिरंगा तुम्हारे पास है। वही मोक्षमार्ग का नेता है। जो दुनियाँ के झंडों में लिप्त है उसके पास कोई मोक्षमार्ग का तिरंगा नहीं है। मैं सोचता हूँ कि अब तो विषय पूरा हो जायेगा, लेकिन जिनवाणी कभी पूरी होती नहीं है। तैतीस सागर तक चर्चा होती रहती है। आगम अगाध है। आज भी मेरे पास इतना साहित्य है कि पूरी पर्याय निकल जाय, उसे पूरा नहीं कर

पाओगे। जब गहरी बात आती है तो आँखें डबडबा जाती हैं, कण्ठ भर आता है। आप लोग हँसोगे, सो हम सामान्य हो जाते हैं। ये आँसू नहीं हैं, ये अरहन्त देशना के आनन्द की अनुभूति है।

हे तपोधन! रत्नत्रय के तेज से आत्मा की प्रभावना करो। जब आत्मा की प्रभावना हो जायेगी, तो दुनियाँ आपसे प्रभावित हो ही जायेगी, आपको प्रभावना करनी नहीं पड़ेगी। कर्नाटक में विहार चल रहा था। तमिल, तैलगू, मद्रास, नाना जगह की बसें रास्ते में मिलती थीं। अपन तो उनकी भाषा भी नहीं जानते हैं ये हिन्दी भाषी। वे तुरन्त बस रोकते थे और मुस्करा करके, उनकी निजी भाषा कुछ भी हो, लेकिन उनके मुख से नमोऽस्तु शब्द एक-सा निकलता है। सारे विश्व में कहीं का भी जैन होगा, यदि अंग्रेज भी हो गये, देश के प्रत्येक प्रांत में 'नमोऽस्तु' गुनगुनाते मिल जायेंगे।

'छहढाला' में जड़ विज्ञान की वन्दना नहीं है। जैनदर्शन में जड़ विज्ञान की वन्दना नहीं है, यहाँ वीतरागविज्ञान की वन्दना है। आश्चर्य तब होता है जब हमारा कोई विद्वान्, योगी, दिगम्बर मुनि जड़विज्ञान का दृष्टान्त दे। तब ऐसा लगता है जैसे किसी ने शरीर में सुई चुभो दी हो। जड़ विज्ञान का दृष्टान्त देने की क्या आवश्यकता? इससे मुझे क्या सिद्धि चाहिये? दृष्टान्त देना है तो वीतराग वैज्ञानिक का दो। क्या अरस्तु, क्या आइन्सटीन। इनने जो कुछ किया है उसे तो हमारे वीतराग कह गये हैं। अन्त में उस जीव को कहना पड़ गया कि अब तुम क्या खोज करोगे? अभी तक जो मैंने खोजा है, वह सब खोज लिया, अब जैनकुल में जन्म लेकरके उसे खोजूँगा। जिसने कठिनाई से खोज कराई है, ऐसा आइन्सटीन को कहना पड़ गया।

तुम इसलिये खुश मत होना कि मैं धनपति हूँ। यह सब व्यर्थ की बातें हैं। ये तो सारे विश्व में मिल जायेंगी। प्रसन्न होओ इस बात पर कि मैं उस कुल में जन्मा हूँ जिस कुल में वीतराग वैज्ञानिक हुये हैं। छोटी-सी साइकिल जिसने बनाई है, उसका भी इतिहास में नाम आ गया। वहाँ के लोग मुस्कराते हैं कि

हमारे देश में साइकिल बनी है। तुम क्या मुस्कराते हो? मैं उस देश का हूँ जिस देश में भगवान् बने हैं। उस प्रान्त में बैठे हो जिसमें चौबीस-चौबीस भगवान् बने हैं। वह तो इस काल का दोष है कि कुछ तीर्थंकर अन्य जगह जन्म ले लिये। उत्तरप्रदेश में तीर्थंकरों का जन्म हुआ, लेकिन दिया-तले अंधेरा नहीं होना चाहिये। प्रभावना नहीं करना चाहिये। इस वाक्य का उद्देश्य समझो। माँ! भोजन बनाने बैठ जाती है, तो 'भोजन बनाऊँ' यह चिन्तन करती हो कि मस्तिष्क लगाती हो कि भोजन कैसे बनेगा? उस समय तो मस्तिष्क यह चलता है कि कहाँ किसमें क्या डालना है। ऐसे ही 'प्रभावना करूँ' बोलता होगा, परन्तु नमोऽस्तु बोलेगा, नमोऽस्तु शासन जयवन्त होगा। बसें रोककर, मुस्कराकर, नमोऽस्तु-नमोऽस्तु करते थे, तब मैं सोचता था 'विशुद्धसागर! तुम मुस्करा मत जाना। ये तुमसे परिचित नहीं हैं। ये तुम्हारी वन्दना नहीं है। तुम तो उनको जानते ही नहीं हो। ये मेरे शरीर से परिचित नहीं हैं, ये मेरी आत्मा से परिचित नहीं हैं, ये जिनेन्द्र की मुद्रा से सनातन काल से परिचित हैं और जिनलिंग को नमोऽस्तु कर रहे हैं।' जड़ पर्याय में क्या रखा है? जो ऐसा अपने आपसे भी विरक्त होकर जियेगा, वही जिनशासन की प्रभावना कर सकेगा। जो वर्तमान की चमड़ी में लिप्त होगा, वह मात्र नाम के लिये दौड़ेगा, प्रभावना से शून्य हो जायेगा। प्रभावित होकर प्रभावना करो। यहाँ कह रहे हैं 'हे श्रावको! यदि किसी योगी के हाथ पर ग्रास रखने जाओ तो शर्त लगा दी।' उत्तम पात्र कौन है? जो योगी संग से रहित है। महाराज! आपने बहुत अच्छी कही—यह नहीं समझ पा रहा कि संग रहित, कि संघ रहित कह रहा हूँ? यही तो किया तुम लोगों ने। संघ रहित अकेले भी तो रह सकते हैं, यही तो लिखा है शास्त्र में। ये संग रहित शब्द है संघ रहित नहीं है। ग और घ में अन्तर है। पंचमकाल में संघ रहित नहीं रहना चाहिये, पर संग रहित हर काल में होना चाहिये। संग का अर्थ है परिग्रह और संघ का अर्थ है चतुर्विध संघ। पंचमकाल में मेरा शत्रु भी क्यों न हो, अकेला (एकल) विहार न करे। मुनि कैसे हों? अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग, परिग्रह से रहित, धैर्यवान। जब भी मुनि बनने के भाव आयें, इस बात को ध्यान रखना। अधीर मत हो जाना।

प्रसन्नता को झेल लेना भी, एक कला है। पूजा को सहन करना भी एक विद्या है। नहीं-तो पूजा में भी हृदयघात हो जाता है। अधिक खुशी मिल जाय तो भी हृदयघात हो जाता है। मित्र! कितनी भी तेरी पूजा हो रही हो, तब भी धीर होकर जीना। कितनी भी निन्दा हो, रही हो यह पंचमकाल है, हमारी समाज प्रशंसापत्र भी छपवायेगी आपके नाम पर और जो तुमसे जलेगा वह निन्दापत्र भी छपवायेगा। अब कौन-सा पत्र सत्य है? प्रशंसापत्र सत्य है कि निन्दापत्र सत्य है? सत्य तो सत्य है। जो है, सो है। श्रावको! आपके बीच में ऐसा ही है। खोटे समाचार, जिनसे जिनशासन व निर्ग्रन्थ धर्म पर आँच आये, अप्रभावना हो, ऐसे पत्र-पत्रिकायें छापे ऐसे पापियों के घर में खोटा द्रव्य रखा है, सो पाप में ही तो लगेगा। जिनके घर में सम्पत्ति है, पुण्य का द्रव्य है, उनके मन में भाव आयेंगे कि हम जिनवाणी का प्रकाशन करायेंगे। एक व्यक्ति फिरोजाबाद में पण्डित नरेन्द्र प्रकाश जी से कहता है कि मैं 'पुरुषार्थ देशना' ग्रन्थ को घर-घर में रखना चाहता हूँ, आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप फिरोजाबाद में सामूहिक स्वाध्याय कराओ। पण्डित जी बोले, आप ग्रन्थ मँगाओ, मैं स्वाध्याय कराऊँगा। उसने सोलापुर समाचार भेज दिया कि एक हजार प्रतियाँ भेज दो। भगवान् जिनेन्द्र की सत्यार्थ वाणी का मार्ग तो चले। एक वह जीव है जो घर-घर में जिनवाणी भेजना चाहता है, एक वे अभागे जीव हैं जो निन्दापत्र भेजना चाहते हैं। तुम चिन्ता नहीं करना, किसी की निन्दा से तुम निन्दनीय नहीं होओगे और कोई की प्रशंसा से प्रशंसनीय नहीं होगे। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। बस प्रमाण-पत्र ये है। ये देश प्राचीन काल का शौरसेनी देश है। ये प्राचीन काल का ब्रज है। अहीर देश कहलाता है। इसमें बहुत दूध होता है। इसमें बहुत भैंसें होती हैं। यहाँ की भैंसे तो पूरे देश में जाती हैं। विशिष्ट भैंस का दूध बाल्टी में निकाला जाता है और वहाँ ऊपर मक्खन दिखाई देता है। ऐसी भैंसें इस देश की हैं। जैसे अहीर देश की भैंसों का दूध बाल्टी में आते ही मक्खन दिखने लगता है, ऐसे ही वीतरागी तपोधन के नजदीक में पहुँचते ही वीतरागता का मक्खन रागियों को दिखता है। वे खिंचे चले आते हैं। कम-से-कम अहीर देश की भैंस का ही चिन्तन कर लो।

साधु बन कर दो बातों का त्याग अवश्य कर देना। एक हटधर्मिता और दूसरा शीघ्र क्रोध। गुस्सा अच्छी बात नहीं है। हठधर्मी यानि मैं आहार को नहीं उठूँगा जबतक ये काम नहीं हो जायेगा। क्या भूख पड़ताल कर रहे हो? निर्ग्रन्थ योगी धैर्य से युक्त होते हैं, रागादि मल से रहित हैं, शान्तस्वरूप हैं। अपन प्राचीन योगियों के चित्र देखते हैं कि शियालनी भख रही है, सिगड़ी सिर पर रखी है। फिर भी शान्त। चाहे तुम आरती उतारो, चाहे तुम गाली दो, शान्त। जो है, सो है। इन्द्रियों का दमन करनेवाले ये मदन्त है। ये सुगन्धित तेल वगैरह, कुछ नहीं। ये कमरा चमकना चाहिये, कुछ नहीं। तो क्या होना चाहिये? जिनके तप ही आभूषण हैं, ऐसे निर्ग्रन्थों की वन्दना करो।

जो भव्य श्रमण आरम्भ और परिग्रह से रहित हैं, परीषहों को सहन करने में समर्थ हैं, राग-द्वेषादि विकारों से रहित हैं, शान्तस्वरूप हैं, इन्द्रियों का दमन करनेवाले हैं, तपरूपी आभूषणों के धारक हैं, मोक्ष प्राप्ति की भावना में लीन हैं, मन-वचन और काय रूप योगों को जीतने में उद्यमशील हैं, अहिंसादि व्रतों के धारी हैं, आत्मध्यान में लीन रहते हैं, परम दयालु हैं, धैर्य की भावना से युक्त हैं, शुभ भावों से संयुक्त हैं, और जिनका चित्त तत्त्वार्थ के चिन्तन में मग्न हैं, ऐसे दिगम्बर, वीतरागी साधु दाता के लिए उत्तम पात्र हैं।

ज्ञानियो! आगम में पात्र के तीन भेद किये हैं, उत्तम, मध्यम और जघन्य। जघन्य पात्र सम्यग्दृष्टि है। मध्यम-पात्र पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक, आर्यिकादि हैं। उत्तम-पात्र दिगम्बर मुनि हैं। ऐसे आत्मज्ञानी महाश्रमणों को दान देना धर्मनिष्ठ श्रावकों का दैनिक कर्तव्य है। उत्तम-पात्र के साथ जघन्य और मध्यम-पात्र को भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"ज्ञानभावना से कर्मक्षय"

धृतिभावनया दुःखं, सत्यभावनया भवम्।
ज्ञानभावनया कर्म, नाशयन्ति न संशयः॥199॥

अन्वयार्थ-ज्ञानी सम्यग्दृष्टि महात्मा **(दुःखं)** दुःख को **(धृतिभावनया)** धैर्य एवं सहनशीलता की भावना से **(भवम्)** इस जन्म-मरण को **(सत्यभावनया)** सत्य तत्त्व ज्ञान की भावना से और **(कर्म)** कर्मों को **(ज्ञानभावनया)** आत्मज्ञान के मनन से **(नाशयन्ति)** नाश कर डालते हैं **(न संशयः)** इसमें कोई शंका नहीं है।

भावार्थ-ज्ञानी सम्यग्दृष्टि श्रमण दुःख को धृतिभावना से, जन्म-मरण रूप संसार को सत्य तत्त्वज्ञान की भावना से और कर्मों को ज्ञानभावना से नष्ट करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

"उत्तम-पात्र की पात्रता"

आग्रहो हि शमे येषां, विग्रहं कर्मशत्रुभिः।
विषयेषु निरासङ्गास्ते, पात्रं यतिसत्तमाः॥200॥

अन्वयार्था-**(येषां)** जिनका **(आग्रहः शमे हि)** यह आग्रह है, प्रतिज्ञा है कि हम शान्त भाव में रहेंगे **(कर्मशत्रुभिः विग्रहे)** वे कर्मरूपी शत्रुओं से युद्ध करते हैं और **(विषयेषु निरासङ्गाः)** जो इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं हैं, उनसे विरक्त हैं **(ते यति सत्तमाः पात्रे)** वे यतियों में मुख्य उत्तम-पात्र हैं।

भावार्थ-शमभाव में रहना ही जिनकी प्रतिज्ञा है, कर्मशत्रुओं के साथ जिनका युद्ध है और पंचेन्द्रिय-विषयों में जिनकी निरासक्ति है, वे यतिजनों में मुख्य उत्तम-पात्र हैं।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में उत्तम-पात्र की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। हे सुधी श्रावको! श्रद्धा के नीर को उत्तम-पात्र में ही भरना। यदि पात्र छिद्र से युक्त है, कचड़े से युक्त है, तो आपका शीतल

पानी भी विकृत हो जायेगा अथवा मिट्टी में बह जायेगा। पवित्र आस्था है, पवित्र विश्वास है, पवित्र श्रद्धा है, तो श्रद्धा का नीर वहीं उड़ेलना जहाँ पात्र की पवित्रता भी निर्मल हो। जो धैर्य से युक्त हैं, वे श्रेष्ठ-पात्र हैं। धैर्यता जीवन का महान् गुण है। धैर्य के बिना लक्ष्मी की प्राप्ति कहाँ ? एक व्यापारी से पूछना, तेरे धैर्य को धन्य हो, ग्राहक कितना सारा सामान जमीन पर पटकवा लेते हैं। वस्त्रालय में थान-के-थान पटकवाते हैं और कुछ भी नहीं खरीदते हैं, तब भी वह व्यापारी उन्हें धीरे से लपेट कर रख देता है, यहाँ कुपित नहीं होता। इतना पुरुषार्थ कराया, इतनी मेहनत की है, आप कुछ भी लेकर नहीं जा रहे हो, तो गिरवाया क्यों? जैसे वस्त्रालय के वस्त्र के थानों को जमीन पर गिरवाने के बाद भी लपेटकर शान्ति से रख देता है, ऐसे हे ज्ञानियो! अपनी कषाय को लपेटकर रखने लग जाओ तो व्यर्थ में जगत् में भण्डाफोड़ क्यों हो? जैसे वस्त्र लपेटना जानते हो, जैसे वस्त्र व्यवस्थित करना जानते हो, ऐसे काषायिक भावों को लपेटना सीखो, व्यवस्थित करना सीखो। क्या भावों की कीमत इतनी भी नहीं है? परिणाम अनर्घवान् हैं। इन परिणामों को सँभालने की आवश्यकता है। यदि भविष्य की पर्याय को पवित्र करने के भाव हैं, भविष्य की पर्याय को सुधारने का कोई मार्ग है तो वह वर्तमान के परिणाम हैं। मेरी भविष्य की पर्याय को सुधारने के लिये परमात्मा नहीं आयेंगे। वे अज्ञानी लोग हैं जो परमात्मा को उतारते हैं। परमात्मा उतर कर नहीं आयेंगे। तुम उतार सको तो अपने परिणामों की विशुद्धि को परिणामों में उतार लो। जैनदर्शन कभी परमात्मा को उतारता नहीं है, अवतरित नहीं करता। पर्याय को निर्मल करना चाहते हो तो परिणामों को निर्मल करो। उत्कृष्ट साधना, उत्कृष्ट आराधना है धैर्य। **साधना करने के लिये भी धैर्य चाहिये। जिसको साधना में धैर्य नहीं है, उतावलापन है, वह साधना में असफल हो जाता है।** दीर्घ समय तक साधना करना श्रेष्ठ है। जितनी लम्बे समय तक साधना करोगे, उतने दीर्घकाल के अर्जित कर्मों का क्षय कर सकोगे। आप शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गये तो जन्म-मरण की ही तो सन्तति चलेगी, आप साधना करके कर्मों की निर्जरा कहाँ कर सके? दीर्घ साधना करोगे तो दीर्घकाल से अर्जित कर्मों के

अभाव के लिये दीर्घ साधना चाहिये। दो धारायें हैं आपके पास या तो मन्द अग्नि में तपाना है तो समय अधिक लगेगा। शीघ्र तपाना है तो अग्नि का तापमान बढ़ेगा, परन्तु अग्नि का तापमान बढ़ाने के पूर्व आपको ध्यान रखना पड़ेगा। जिसमें दूध तप रह हो, उस बर्तन में ताकत कितनी है? साधकों को यह विवेक नहीं रहता और साधना को खींच कर बैठ जाते हैं। योगियों को और रागियों को इस विषय को समझने की आवश्यकता है। आप अग्नि का तापमान तो बढ़ा रहे हो, लेकिन वर्तमान के बर्तन की शक्ति तो निहारो। अधिक अग्नि बढ़ा दूँगा तो शीघ्र तप जायेगा, लेकिन बर्तन भी फूट सकता है। जब अग्नि का तापमान तीव्र होता है तो बर्तन भी मजबूत होता है। चतुर्थकाल में बर्तन था वज्र वृषभ नाराज संहनन। तब तापमान था, सूर्य के सामने खड़े होकर सामायिक होती थी, बर्तन मजबूत था। बर्तन मजबूत होना चाहिये, देह का बर्तन मजबूत होना चाहिये और भावों का बर्तन दृढ़ होना चाहिये, तब उत्कृष्ट साधना कर सकोगे। बर्तन कमजोर है, दूध तपाना उसी बर्तन में है, तो धीमी-धीमी आँच में गर्म कर लो, भोजन तप जायेगा। वर्तमान में हमारे शरीर के संहनन कमजोर हैं। तुम शीघ्र मोक्ष नहीं जा पाओगे, बर्तन फोड़ करके ऊपर चले जाओगे। बर्तन कमजोर है। साधना का जीवन जीना श्रेष्ठ है असंयमी बनकर स्वर्ग में बैठने की अपेक्षा। मनुष्यपर्याय में संयमीजीवन जीना श्रेष्ठ है। जिओ। यहाँ तुम जी रहे हो, रोज भगवान् की पूजा कर रहे हो। कोई कहे कि मैं स्वर्ग जाकर अकृत्रिम जिनबिम्ब की पूजा तो कर लूँगा, इसलिये जल्दी जाना चाहता हूँ। मेरे मित्र! ध्यान से सुन, तू कह रहा है कि स्वर्ग जाकर अकृत्रिम जिनबिम्ब की वन्दना करूँगा। विदेह जाकर साक्षात् तीर्थंकर की वन्दना करूँगा। इसलिये जल्दी स्वर्ग पहुँचना चाहता हूँ।

हे ज्ञानी! जरा विवेक से निहार, तू पूजा करके वही पुण्य कमा पायेगा जो सुख के लिये, वैभव के लिये मिल सकता है। पूजा का पुण्य वैभव का साधन तो बन सकता है, लेकिन बे-भव का साधन नहीं बन सकता है। पूजा का पुण्य वैभव तो दिला देगा, लेकिन बे-भव चाहिये तो मित्रो! स्वर्ग पहुँच करके अकृत्रिम जिन बिम्बों की वन्दना कर सकते हो, विदेह पहुँच कर साक्षात् तीर्थंकर की वन्दना

तो कर सकते हो, परन्तु स्वर्ग पहुँच करके तुम मुनि नहीं बन सकते हो। स्वर्ग पहुँच करके मुनि के हाथ में ग्रास नहीं रख सकते हो। मुनि बनना है तो मनुष्यपर्याय ही चाहिये और मुनि के हाथ में ग्रास रखना है तो मनुष्यपर्याय ही चाहिये। यदि तुम स्वर्ग में देव बनके भगवान् की भक्ति करोगे तो विभूति तो प्राप्त कर सकोगे, लेकिन निर्ग्रन्थों की भक्ति करोगे, निर्ग्रन्थों को दान दोगे, तो चारित्रमोहनीय कर्म का नाश करके, निर्ग्रन्थ बनकर बे-भव को प्राप्त करोगे। अरहन्तों की भक्ति से वह पुण्य प्रगट होता है जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। निर्ग्रन्थों की भक्ति से वह पुण्य प्रगट होता है कि स्वयं निर्ग्रन्थ हो जाओगे। देवेन्द्र बनकर मोक्ष मिलेगा कि मुनीन्द्र बनके मोक्ष मिलेगा? भारत की भूमि पर जितने श्रमण विचरण कर रहे हैं, उनके चरणों में नमोऽस्तु निवेदित करना, कहना, हे स्वामी! पात्र आपके पास है, सामग्री आपके पास है, विधि-और सीख लो तो भगवत्ता तुम्हारे साथ है। दिगम्बर भेष पात्र चारित्र सामग्री है। विधि और सीख लो तो मोक्ष तुम्हारे साथ है। विधि क्या सीखें? घास की अग्नि से, घास के ईंधन से दूध तपाओगे तो दूध का स्वाद कैसा होगा? चाहे वह गाय का हो या भैंस का हो? घास की अग्नि से दूध का स्वाद बिगड़ जाता है, जबकि दूध मधुर है। अग्नि के तापमान के प्रभाव से दूध का स्वाद बिगड़ता है। वही मन्द अग्नि में दहकते कोयलों में दूध तपायेगा तो दूध का स्वाद बढ़ जायेगा। जिसने गुरसी पर, बरोसी में दूध तपाया है, मिट्टी की मटकी में दूध तपाया है, उसके दूध का स्वाद, दूध की मलाई, दूध का मक्खन और उस दूध का घी सब स्वादिष्ट होता है। ऐसे ही जो मोक्षमार्ग है। वह घास की अग्नि का तापमान नहीं है। एक काढ़ी लगाई, तुरन्त भभक जाती है, बाद में कच्चा ही रहता है। ऐसे ही जो साधक धैर्य को छोड़ करके उतावलेपन में साधना के मार्ग में बढ़ता है, निर्वाण को प्राप्त नहीं कर पाता और शीघ्र मोक्ष की रट जिसके अन्दर लगी हुई है वह मोक्ष तो नहीं जा पायेगा, लेकिन उत्कृष्ट स्वर्ग भी नहीं जा पायेगा। धैर्य चाहिये। जब धैर्य के बिना संसार की लक्ष्मी नहीं मिलती, तो धैर्य के अभाव में मोक्ष-लक्ष्मी कैसे मिलेगी? मोक्ष-लक्ष्मी चाहिये तो धैर्य चाहिये।

हे श्रमण! लोक में जितने दु:खी पुरुष हैं, होंगे, हो रहे हैं, हो चुके हैं, इन सबके पास दु:ख का केन्द्रबिन्दु था धैर्य का अभाव। शीघ्र अधीर हो गये कि मुझे अमुख सामग्री चाहिये यानि चाहिये। थोड़ा धैर्य रखो। आपने कहा—इसका उत्तर चाहिये। थोड़ा धैर्य रखो—समय दो, समाधान होगा। बहुत सारी शंकाओं का समाधान समय कर देता है। प्रकृति कर देती है। बेटा जब तुझे अपने पिता से असंतुष्टि हो तो थोड़ा धैर्य रखना। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ। अभी तू बेटा है, पिता नहीं है। जिस दिन तू पिता बन जायेगा, बहुत सारी जो पिता के प्रति शंकायें थीं वे स्वत: समाप्त हो जायेंगी। जब तू युवा था, विद्यार्थी था, तब पिता से कहता है कि आज मुझे पचास का नोट चाहिये। दूसरे दिन कहता है कि आज मुझे पाँच सौ का नोट चाहिये। पिता के दो पुत्र हैं, उनको दोनों दिख रहे हैं। तू अकेला है, उनको सोचना पड़ रहा है, जबकि उनकी जेब में हजार-हजार की गड्डियाँ रखी हुई थी, फिर भी पाँच सौ देने में उनका मन विचार कर रहा था। उस समय तू कहता है कि कैसा पिता है? मेरी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर रहा है। बेटा! थोड़ा धैर्य रखो, ये उत्तर तुमको समय दे देगा, पिता से पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, तुमको समय उत्तर दे देगा। जो नेता नहीं बने हैं, सामान्य लोग हैं, वे अधिकांश नेताओं को गाली देते रहते हैं। उनको यह मालूम नहीं है कि तुम चाहे किसी को गाली दो, तुमको अशुभ का बंध नियम से हो रहा है, तुम दुर्ध्यान कर रहे हो। नेता जिस समाज का काम नहीं करता है, पूरी समाज नेता को गाली देती है जिस दिन तुम स्वयं उस पद पर पहुँच जाओगे, तब समझ में आयेगा कि देश में कितनी समाजें हैं, सब मेरे से कुछ चाहती हैं और मुझे सबका ध्यान रखना है। किसके साथ कितना विलम्ब हो सकता है, जब मालूम चलता है। पद्मपुराण पढ़ा? याद करो। दशरथ जी ने तो सभी के लिये बराबर गंधोदक भेजा था, पर एक महारानी के पास वृद्ध कंचुकी लेकर पहुँचा। कौशल्या के महल में खड़ी दासियों ने जा करके रानी सुप्रभा से कह दिया कि सबके यहाँ गंधोदक पहुँचा है, आपके यहाँ गंधोदक नहीं आया। दशरथ जी पहुँचते हैं, देवी कषाय से युक्त हो करके कोप-भवन में जाकर पड़ गयी। क्या हो गया?

कुछ नहीं, स्वामी! सब बड़े लोगों का काम है, छोटों को कौन पूछता है? हीनभावना-दीन भावना आज से नहीं है, सनातन से चली आ रही है। धैर्य और भावों को सँभाल पाना बहुत बड़ी साधना है। दशरथ जी समझा रहे थे 'नहीं, मैंने तो गंधोदक भेजा है। आप ऐसा क्यों सोचते हो?'

जो-जो दु:खी हैं, सब अज्ञानता के कारण। बेटा! तेरी जेब से पचास का नोट पड़ौसी ने निकाल लिया, यदि तू देख लेता है तो कष्ट होगा, लेकिन उतना नहीं होगा जितना अपरिचित के निकालने पर होता। खोजने नहीं जायेगा, क्योंकि मालूम है कि इसने निकाल लिया है। उससे ले लेगा। यदि पैसा गिर गया और मालूम नहीं है कि कहाँ गिरा, तो पता नहीं कहाँ-कहाँ खोजता है। ये खोज किसके लिये चल रही है? पैसा तो वहीं है जहाँ है। पैसे के कारण तुमको दु:ख नहीं है। पैसे का ज्ञान नहीं हो रहा, तुमको इसलिये दु:ख है। आज ही पिता जी की मृत्यु हो जाये और केवली भगवान् बता दें कि आपके पिता ने आपके पड़ौस में जन्म ले लिया है, तो विश्वास रखना, आपके घर में रोना-धोना बन्द हो जायेगा। रोते इसलिये हो कि पता नहीं चलता कहाँ गये। अज्ञानता में रोना है अज्ञान ही दु:ख का कारण है। केवली भगवान् क्या करते हैं? जितना बड़ा अज्ञान होगा, उतना बड़ा आडम्बर होगा। मूसल कौन पूजे, उखली कौन पूजे, सिलबट्टा कौन पूजे, कुँआ कौन पूजे, देहरी कौन पूजे? कितना बड़ा अज्ञान है? यदि नहीं पूजूँगा तो घर में कुछ हो न जाये। जिसको डर निकल चुका है वह कहता है कि होता स्वयं जगत् परिणाम। अज्ञानी पूरे शरीर को टटोलता है कि क्या हो गया और डाक्टर अपने ज्ञान से देख लेता है कि अमुख नस में ये गड़बड़ी है। ज्ञानियो! विश्वास रखना, दुनियाँ में जितने क्रियाकाण्ड फैले हैं, सब अज्ञान के कारण फैले हैं। इन क्रियाओं में लोग धर्म खोज रहे थे कि कहीं मिल जाये। जब ज्ञान की धारा में धर्म मिल ही जाता है, तो आडम्बर अपने आप समाप्त हो जाते हैं। माँ! आपने कभी मट्ठे से घी निकाला? प्रकृति बड़ी पवित्र है। जहाँ विषमता होती है, वहाँ प्रतिकूलता को मिटाने के लिये कोई अनुकूलता भी होती है। इस क्षेत्र में गर्मी अधिक पड़ती है तो भैंस भी अधिक होती हैं। गर्मी में लोग जियेंगे कैसे?

सो खूब दूध मट्ठा होता है। गर्मी बढ़े सो मट्ठा पियो। देखा प्रकृति का नियम? महाराष्ट्र में गर्मी अधिक पड़ती है? सो वहाँ फल भी अधिक होते हैं। जितने रसवान् फल हैं, चाहे अनार हो चाहे अंगूर हो, चाहे मौसम्बी हो, चाहे संतरा हो सबसे अधिक महाराष्ट्र में होते हैं। नागपुर क्षेत्र में गर्मी अधिक पड़ती है तो वहाँ रसवन्त फल भी होते हैं। राजस्थान में गर्मी अधिक होती है तो लोग घी भी अधिक पीते हैं। प्रकृति अपना सन्तुलन बनाये हुये है। एक मटकी मट्ठा होगा, उसमें तुम क्या खोजती हो? मक्खन हाथ में लेकर, फिर मट्ठे की मटकी छोड़ देती हो। ऐसे ही ज्ञानीजीव की जितनी क्रिया चल रहीं थीं, वह मट्ठे के लिये नहीं चल रही थी, मक्खन के लिये चल रहीं थीं। कोई ज्ञानीजीव चारित्र का भी पालन कर रहे हैं, क्रिया को भी करते हैं। वे क्रिया में क्रिया को नहीं खोजते हैं। क्रिया में ज्ञान के उस रस को खोजते हैं, उसका नाम मक्खन है। उस मक्खन को भी तपा करके घृत निकाल लेते हैं। बस, काम बन गया। दीर्घ समय जब मक्खन का पिण्ड दिखने लगता है तो कोई भी ग्वालिन मट्ठे में अपना दिमाग नहीं लगाती। ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीव जैसे-जैसे चारित्र की उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायेंगे, भेदविज्ञान के उस मक्खन पर दृष्टि डालते हैं। जब भेदविज्ञान के ज्ञान में लवलीन हो जाते हैं, तब क्रियापक्ष से मध्यस्थ हो कर, ज्ञानपक्ष में लीन हो करके, कैवल्य की ओर गमन करते हैं और शुद्ध घृत बनाते हैं। दु:ख का कारण अज्ञान है। यदि भ्रम भी होते हैं तो अज्ञान, शंका भी होती है तो अज्ञान। जगत् के नाना दु:खों को नाना नामों से पुकारने की अपेक्षा से एक नाम से बोलो उसका नाम है अज्ञान जगत् में नाना सुखों को अनेक नामों से पुकारने की अपेक्षा एक नाम से पुकारो, उसका नाम है ज्ञान। ज्ञान से सुख होता है। अज्ञान का दु:ख मुझे मालूम है और ज्ञान का सुख भी मुझे मालुम है। आठ वर्ष का बालक भी अस्सी वर्ष के वृद्ध का अनादर कर देता है। जिसकी बुद्धि मंद होती है, बच्चे भी उससे खेलते हैं। अस्सी साल का वृद्ध भी पच्चीस साल के बच्चे के सामने हाथ जोड़कर साहब बोलते हैं। ये क्या हैं? अज्ञान ज्ञान को झुक रहा है। इसलिये हम अभेद दृष्टि से व्याख्या करते हैं तो दर्शन-चारित्र-ज्ञान। मात्र एक ज्ञायकभाव। सुख

का जीवन जीना चाहते हो तो अज्ञान को हटा दो। यदि घर में झगड़ा भी होता है, तो अज्ञान से। कषाय ही अज्ञान है, अश्रद्धा ही अज्ञान है, असंयम ही अज्ञान है। जब कषाय आती है, तब उस अज्ञान में तुम विवेक खो देते हो। अश्रद्धान बढ़ता है, उस समय आप ज्ञान खो देते हो। अचारित्र बढ़ता है, उस समय आप ज्ञान खो देते हो आप लोगों के बीच के बहुत सारे झगड़े भ्रम से हुये हैं। जब सामने विषय दिख गया, तब सिर पटकते हो कि ये क्या कर डाला? बना हुआ घर उजाड़ कर रख दिया। ऐसा कई बार हुआ है। पति ने पत्नि को डाँट दिया, पीट दिया, जबकि उसकी कोई गल्ती नहीं थी। जब स्वयं ठण्डा होता है उसका अज्ञान का भार उतरता है, तब समझ में आता है कि हाय मैंने क्या किया? मदिरा का नशा और मान का नशा। मदिरा का नशा न माँ को माँ कहने देता है, न पत्नि को पत्नि कहने देता है। पता नहीं किसे क्या कह दे? ऐसे ही मान का नशा पिता को पिता नहीं बोलने देता, माँ का माँ नहीं बोलने देता। मान के नशे में पिता को छोड़ दिया, माँ को धक्का दे दिया। मान के नशे में बहू ने सासू को पटक दिया, बहू ने ससुर को पटक दिया। जब मान का पारा ठण्डा होता है, तब पता चलता है कि मैंने मान के नशे में क्या कर लिया। ये धन-धरती तो फिर मिल जायेंगी, परन्तु इस धन-धरती के क्लेश में किये अनाचार के कलंक को नहीं मिटा पाओगे। बेटो! भीख माँग कर खा लेना, लेकिन पिता को धक्का मत देना। पिता बड़े-छोटे भाई के बहकावे में आ भी जाये, तुमको घर से भी निकाल दे, तो निकल जाना, कम-से-कम यह कहने को तो मिलेगा कि पिता ने निकाल दिया है, लेकिन यह इतिहास तो नहीं मिलेगा कि धिक्कार हो पापी हत्यारे को, इसने पिता पर हाथ उठा दिया है। तेरी पर्याय पूरी हो जायेगी, लेकिन ये कुंठा नहीं निकाल पायेगा कि मैंने पिता पर हाथ उठाया था। नियम ले लो आज से कि कभी माता-पिता पर हाथ नहीं उठायेंगे। गुस्सा आ जाये तो घर से बाहर निकल जाना। मित्रो! यही प्रवचन है, यही कल्याणकारी है। घर से निकल जाना। बुद्धसेन नाम के छोटे भाई को भाई-भाभियों ने मिलकर घर से बाहर निकलवा दिया था। वह सेठपुत्र निकल गया। वही भविष्य में जाकर राजा बना। वही मनोवती

जिसने दर्शन की प्रतिज्ञा में सात दिन तक उपवास कर लिये, जब पुण्य फलित हुआ, जिन्होंने बेटे को निकाला था, वे ठोकर खाकर दरिद्री हो गये और बेटा बुद्धसेन सम्राट बन गया। श्री जिनबिम्ब की स्थापना करने के लिये वह मन्दिर बनवा रहा था। नींव भरने के समय वही माता-पिता भाई-भावज मजदूरी करने आये थे। सबके दिन एक-से नहीं होते। कोई अपने साथ बुरा भी करे, उसका स्वभाव बुरा करना है, तू तो समझदार है, सज्जन है, उसके साथ तो तुझे अच्छा ही करना चाहिये। बेटे ने दूध से भरा कटोरा पैर मारकर फैला दिया, तब भी माँ सिर पर हाथ फेर रही है। बेटा! लग तो नहीं गया? लो, दूसरा दूध ले लो। पत्नि दूध भर कर लायी, पति अहं में डूब गये, गिरा दिया। आज वो दिन है कि बूँद-बूँद को तरस रहे हैं। वे दिन कहाँ गये जब दूध गिराया था? धैर्य रखो। ये श्रावक की दृष्टि से कथन किया। यहाँ प्रधानता मुनि की दृष्टि से चल रही है। अब योगी से पूछो—हे स्वामी! गुरु ने समझाया है, सहज स्वीकार कर लेना। आप शिष्य बन कर आये हो। गुरु बनोगे तबतक समझ में आ जायेगा। **जो गुरु बनने के पहले ही गुरु पर ही गुरु बन जाते हैं, वे दर-दर में लघुता को प्राप्त हो जाते हैं।**

ज्ञानियो! ध्यान रखना, जीवन में गुरुता को हासिल करना है। क्या पौधे को नहीं देखा? विशाल वृक्ष बनने से पूर्व किसी दूसरी बल्ली का सहारा लेता है। खेतों में बड़े-बड़े वृक्ष लगे हुये हैं, फलों से लदे हुये हैं, टेके के लिये बल्लियाँ लगी हुई हैं जो वृक्ष को सहारा दे रही हैं। पौधों को सीधा रखने के लिये किसान दूसरी लकड़ी का सहारा दे देता है, पर जब तुम विशाल हो जाते हो तो सहारे की आवश्यकता नहीं होती है। यदि तुम पहले ही सहारा छोड़ दोगे, तो जमीन पर धराशायी हो जाओगे। ऐसे ही हे शिष्यो! तुमको गुरु की बल्ली की आवश्यकता है। उनकी टेक रहेगी तो तुम ऊपर चढ़ते चले जाओगे और तुम बिना टेक के चलना शुरू कर दोगे तो पहले ही गिर जाओगे, तुमको कुछ नहीं मिलने वाला। धैर्य चाहिये। किसी भी नगर में प्रवेश करो, धैर्य चाहिये। **आँखों में सरसता,**

चेहरे पर सहजता, अधरों पर प्रसन्नता और सारे बदन के अन्दर शीतलता यदि है, तो तू जहाँ भी जायेगा, सभी जगह तेरी जय होगी। भृकुटियाँ खिंची हुई हैं, साधुभाव नहीं है। इस जीव ने अनन्त बार साधुभेष बनाया, लेकिन साधुभाव नहीं बना पाया, सो कलिकाल में घूम रहा है। यदि एक बार भी साधुभाव बन जाता, तो इस खोटे काल में नहीं आना पड़ता। सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा महायोगी महात्मा, धैर्य भावना से अपने दु:ख को दूर कर लेता है। भैया! दु:खों के पर्वत क्यों न टूट रहे हों, परन्तु धैर्य से ही सहन होते हैं। क्या आपके घर में किसी की मृत्यु नहीं हुई? क्या आपके घर में कभी इष्ट का वियोग नहीं हुआ? क्या दु:ख के पर्वत नहीं टूटे? किसी के पिता चले गये, किसी का पति मर गया, किसी के नौजवान बेटे चले गये, उनने सहन कैसे किया? व्यर्थ की बातें हैं। उन्होंने समझा दिया सो समझ में आ गया। कोई के समझाने से समझ में नहीं आता। स्वयं का धैर्य जब आता है तभी समझ में आता है। पहाड़ टूट गये। इससे बड़े क्या पहाड़ टूटेंगे? आखिरी में समझाया किसने? हमारे धैर्य ने समझाया। क्या कर सकते हैं? व्याकुलित होकर असाता का ही संचय कर पायेंगे। धैर्य कहता है कि अब जानेवाला जा चुका है। अब तुम जीना चाहते हो। अधीर होकर जिओगे तो क्लेश में जिओगे, धैर्य सहित जिओगे तो सन्तोष में जिओगे। जीवन बड़े मोड़ का है। जो तुमको पूजते थे, वे तुमको पूछेंगे नहीं। जो तुमको पूछते नहीं थे, वे तुमको पूजने लग जायेंगे। समय एक-सा नहीं होता है। चेहरा दु:खमय नहीं करना है। ये धैर्य का विषय चल रहा है। जो पूजते थे, वे पूछते नहीं हैं। ससुर चरण पूजता है, अपनी कन्या को देता है। जब शादी होती है, अपनी बेटी देता है, वही ससुर सिर पर सिगड़ी रख रहा था जिसने कन्या दी है, जिसने चरण पूजे हैं, वही जब भाव बिगड़ गये, तो गजकुमार मुनिराज के ऊपर सिगड़ी किसने रखी? ससुर ने ही तो रखी। लोक में भानजे सम्माननीय होते हैं। मामा भानजे को सम्मान देता है। पाण्डु-पत्रों से पूछो, तुम्हारे शरीर पर गरम आभूषण किसने पहनाये? मामा ने ही तो पहनाये हैं। माँ पेट नहीं फाड़ती, वह तो पेट में पालती है, सुकुमाल, सुकौशल मुनिराज से पूछो, पेट किसने फाड़ा?

माँ ने फाड़ा, माँ का ही जीव था। भैया! आप मानो या न मानो, मेरा तो पक्का निर्णय है कि सबके साथ रहना, सबसे मिल कर रहना, लेकिन किसी से मिलके नहीं रहना। ध्रुव निर्णय है, सबसे मिल कर रहना। किसी भी संघ के साधु हों, मैं सबसे मिल लेता हूँ; परन्तु किसी से मिल कर नहीं रहता। पंचमकाल है, कोई विश्वास का पात्र नहीं है। किसका मस्तिष्क कब मचल जाये, कब कौन छल जाये, कौन दगा दे जाये?

ज्ञानी से मेरा प्रश्न है, तू मुनि क्यों नहीं बना? महाराज! सहनन नहीं है। महाराज! शक्ति नहीं है। महाराज! राग है। सीधा-सीधा बोलो न राग, न शक्ति की हीनता। स्पष्ट बोलिये, महाराज क्यों नहीं बने? तुमको विश्वास नहीं है, किसके ऊपर? स्वयं के ऊपर क्या मालूम मैं अपनी कामनाओं को, वासनाओं को सँभाल सकूँगा या नहीं। जब तुझे स्वयं पर ही विश्वास नहीं है, तो दुनियाँ पर क्या विश्वास करेगा? तुम प्रवचन के समय केवल ये दो आँखें देख रहे हो, मुझे हजारों आँखें दिखाई दे रही हैं। इस सभा में कितने लोग रुमाल निकाल कर आँखें पौंछ लेते हैं। जब गद्गद् भाव आता है तो आँखें पौंछ लेते हैं, क्योंकि इनके भीतर भाव जगता है कि सत्य यही है, लेकिन क्या करें? महाराज! विश्वास नहीं है। जिस दिन स्वयं पर विश्वास हो जायेगा, उस दिन तू हाथ बाँधे नहीं मिलेगा, हाथ पर हाथ रखे मिलेगा। स्वयं पर विश्वास नहीं है स्वयं के भावों पर विश्वास नहीं है कि कब मचल जाये? फिर दूसरे के भावों पर विश्वास कर कैसे लेते हो? जब तेरे भाव मचल सकते हैं, तो तेरे प्रति दूसरे के भाव भी मचल सकते हैं। इसलिये अपने भावों को सँभाल कर रखो। बेटा! कोई तेरा नहीं है, विश्वास मानो, कोई तेरा नहीं है। आज समझ में न आये तो किसी दिन समझ में आयेगा। कोई तेरा नहीं है। मैं हर व्यक्ति के साथ कितने वात्सल्य के साथ रहता हूँ। अपना माननेभूत मेरा किसी पर विश्वास नहीं है। कब जीव का भव किसके प्रति कैसा हो जाये? आप कहो कि मैं कल से आपके पास नहीं आऊँगा, क्योंकि आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं है। आप समझो मैं क्यों कह रहा हूँ? यदि तुम एक-दूसरे

पर विश्वास रखोगे, तो तुम्हारे संयम में कमजोरी आ जायेगी। अरे! ये तो हमारे विश्वास के पात्र हैं, इनके सामने कुछ भी करते रहो। नहीं, साधुओं को किसी के ऊपर विश्वास नहीं रहना चाहिये। कब तुम्हारी कौन-सी गल्ती कौन देख लेगा और तुम्हारे नाम को बदनाम कर देगा। इसलिये किसी पर विश्वास की आवश्यकता नहीं है। अपने में दृढ़ रहिये। कब कौन बदल जायेगा? ये नियत नहीं है। भेष देह का है, भावों का नहीं है। इस परम सत्य को न किसी की कहने की ताकत है, न सुनने की ताकत है। भेष का मुनि यह जीव अनन्त बार बन चुका है। भावों का मुनि बन कर दिखाओ। देह के भेष को धर्म मान लेना अज्ञानता है। जितना भावों का परिणमन है, उतना ही धर्म है; लेकिन भावों में धर्म होगा तो देह में नियम से होगा। जिसके देह में ही धर्म उतरते नहीं दिख रहा है उसके भावों में धर्म है ही नहीं है। यही निश्चय-व्यवहार है।

ज्ञानी! तू दुनियाँ में कहीं भी रह, लेकिन विश्वास किसी पर नहीं रखना। पर ध्यान रखना, विश्वास नहीं होगा तो पेट नहीं भरेगा। विश्वास तो रखना ही पड़ेगा। क्या है कि आप ऐसा भी बोलते हो, ऐसा भी बोलते हो। तुझे किसी ने रोटी परोसी, तुझे भ्रम हो गया कि इसमें जहर तो नहीं है? जहर से नहीं मरेगा तो भूखे मर जायेगा। विश्वास तो करना ही पड़ेगा। मुझसे भी लोग बोलते हैं मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है। अब पता नहीं काहे कि शुद्धि है कि नहीं? लेकिन विश्वास है मुझे तो, चाहे सूतक पातक में आहार देने पहुँच जाओ, चाहे तुम बल्ब जलाकर भोजन बना लो, चाहे तुम नल का पानी भर कर लाओ, मुझे तो विश्वास है कि तुम कुयें के जल से भोजन तैयार कर रहे हो, क्योंकि मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है, अपन तो विश्वास कर रहे हैं, लेकिन ये विश्वास तो करना ही पड़ेगा, परन्तु विश्वास कर मत बैठना। विश्वास कर लोगे तो यहीं विश्व में वास करते रहोगे, सिद्धालय में वास नहीं हो पायेगा। इसलिये जितना लायक है उतना विश्वास करना, लेकिन जो श्रद्धाभूत विश्वास है, वह मात्र जिनेश्वर देव पर करना, जिनवाणी पर करना

और-निर्ग्रन्थ गुरु पर करना और किसी पर नहीं करना। **सबसे गहरा विश्वास तुमको शुद्ध परमात्मा बनानेवाला स्वयं का स्वयं के प्रति विश्वास है। जिस दिन स्वयं का स्वयं के प्रति विश्वास हो जायेगा, उसी दिन तुम शिवमार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दोगे।** धैर्य भावना से दु:ख को दूर करते हैं। तू जन्म-मरण रूप संसार को दूर करना चाहता है, तो सत्य भावना से भव का नाश कर लो और कर्म का नाश चाहता है, तो वह ज्ञान भावना से होगा। बिना ज्ञान भावना से कर्म का नाश सम्भव नहीं है। ज्ञान का अर्थ शास्त्र पढ़ना मात्र नहीं है। ज्ञान भाव का तात्पर्य है मैं ज्ञान-दर्शन से युक्त आत्मा। उस आत्मज्ञान को आत्मज्ञान में लीन कर लेना, इसका नाम है ज्ञान भावना। चलते-फिरते उठते-बैठते, खाते-पीते कभी भी अपने ज्ञान से निज को भिन्न मत कर लेना। जीते-जीते जिओ। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग। यथार्थ मानो, जो संयम से विचलित हो रहे हैं, हुये हैं और होंगे, वे ज्ञान-भावना शून्य होंगे।

बन्दर कितने समझदार हैं, पतले से बिजली के वायर को पकड़ कर एक छत से दूसरे छत पर पहुँच जाते हैं, लेकिन जब निकलते हैं तो आगे-पीछे चारों ओर झाँकता रहता है, परन्तु पकड़े किसको है? वायर को पकड़े रहता है। हे मुमुक्षु! इस मन-बन्दर से बोल, यह ज्ञान का वायर पकड़े रहेगा तो तू टपकेगा नहीं। कहीं वायर छोड़ दिया, तो तू भी नीचे टपक जायेगा। अपने को ज्ञान-भावना से भावित रखो। सबके बीच में रहो, सबके साथ में रहो, किसी से दुश्मनी मत करना, लेकिन दृष्टि स्वयं पर रखना। पनघट से कितनी मातायें पानी लेकर आती हैं, रास्ते में कितनी बातें करती हैं, मटके से हाथ भी हटा देती हैं, लक्ष्य मटकी पर है, गर्दन नहीं हिल रही है, हाथ हिल रहे हैं। ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीव सारे जगत् में हाथ हिलाये, पैर हिलाये, सबकुछ करे, लेकिन आत्म-कलश से कभी दृष्टि नहीं हटाता। यदि आत्म-कलश से दृष्टि हट गई, तो मटकी नीचे गिर जायेगी। ज्ञान-भावना से कर्म का नाश होता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

हे श्रावको! आपको पात्र को देखना है। हे श्रमणो! आपको पात्रता देखना है। दो शब्द ध्यान में रखना। साधु अपनी पात्रता देखने में लग जाये तो जगत् में कौन कहाँ क्या कर रहा है कोई प्रयोजन नहीं है। अनन्त भावों में दुर्लभ ये मुनिमुद्रा मिली है। वर्तमान के यशः कीर्ति के लक्ष्य में पड़ करके मैंने सम्यक्त्व की विराधना कर दी, ज्ञान का विपर्यास कर दिया, तो इस दुर्लभ मुनिमुद्रा की कोई कीमत नहीं। जब मुनियों का ऐसा सोच प्रति क्षण प्रतिपल चलेगा, तभी ये मुनि लोकेषणा लोकपूजा से अपनी रक्षा कर सकेंगे।

श्रावक के लिये मात्र उपदेश। उनके विधि विधान/क्रियाकलाप के मात्र उपदेश। इनके साथ साधु को चलने की कोई आवश्यकता नहीं। चौराहे पर ट्राफिक मैन खड़ा हुआ है, यहाँ हाथ कर दिया, वहाँ हाथ कर दिया। चौराहे पर खड़ा हो गया, सबको रास्ता दिखा दिया। लेकिन चलता किसी के साथ नहीं है। चला जायेगा तो फिर चला ही जायेगा। जाता किसी के साथ नहीं है, मात्र मार्ग दिखाता है। ऐसे ही श्रमणों का धर्म है श्रावकों को मात्र मार्ग दिखा दो कि ये स्वर्ग का मार्ग है, यह नरक का मार्ग है, ये सिद्धत्त्व का मार्ग, ये मनुष्यत्व का मार्ग है। इनके साथ अपन को जाना नहीं है। श्रावक धर्म ये है, यति धर्म ये है, दोनों धर्मों की व्याख्या कर दो; परन्तु विवेक से आप काम करो। हेय-उपादेय का ध्यान रखो, ग्राह्य-अग्राह्य का ध्यान रखो, उपास्य-उपासक का ध्यान रखो। ध्यान आपको रखना है। विधि के साथ काम करो। जैसे प्रासुक द्रव्य का प्रयोग करते हो, वैसे ही प्रासुक परिणामों का भी प्रयोग करो। आज घर जाकर परिणामों को प्रासुक करना, कड़ाही में मत छोंक देना। प्रासुक कई प्रकार से होता है। भावों को प्रासुक करो। जितने विकारी भावों की गंदगी पड़ी है, उसको हटा देना। भावों को प्रासुक करो।

धन्य हो मुनियों को। प्रासुक खाते भी हैं, प्रासुक बोलते भी हैं, प्रासुक सुनते भी हैं और प्रासुक मार्ग में चलते हैं। आगम में वर्णन है कि जबतक मार्ग प्रासुक न हो जाये, तबतक विहार नहीं करना। गीली भूमि पर पैर नहीं रखते, वनस्पति

को स्पर्श नहीं करते, जीव-जन्तु देखकर चलते हैं, प्रासुक भूमि पर गमन करते हैं, जब सूर्य की किरणें स्फुटित हो गई तब गमन करते हैं। जब प्रासुक गमन करें, प्रासुक भोजन करें, जब सब प्रासुक है तो योगीश्वरो! प्रासुक भाव भी करो, जिससे भवातीत हो जाओ।

"**आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"योगियों के आभूषण"

निःसंगिनोऽपि वृत्ताढ्या निस्नेहाः सुश्रुतिप्रियाः।
अभूषाऽपि तपोभूषास्ते पात्रं योगिनः सदा॥ 201॥
यैर्ममत्वं सदा त्यक्तं स्वकायेऽपि मनीषिभिः।
ते पात्रं संयतात्मानः सर्वसत्त्वहिते रताः॥ 202॥

अन्वयार्थ-(निःसंगिनः अपि) जो परिग्रह रहित होने पर भी **(वृत्ताढ्याः)** चारित्र के धारी हैं **(निःस्नेहाः)** जगत् के पदार्थों से स्नेह रहित हैं तो भी **(सुश्रुतिप्रियाः)** जिनवाणी के प्रेमी हैं **(अभूषाऽपि)** आभूषण रहित हैं तो भी **(तपोभूषाः)** तपरूपी आभूषण के धारी हैं **(ते योगिनः)** ऐसे योगी **(सदा पात्रं)** सदा धर्म के पात्र हैं **(येः मनीषिभिः)** जिन साधुओं ने **(स्वकाये अपि)** अपने शरीर पर से भी **(ममत्वं)** ममता **(सदात्यक्तं)** सदा के लिये छोड़ दी है **(संयतात्मानः)** ऐसे संयमी पात्र **(सर्वसत्त्वहिते रताः)** जो सर्व प्राणीमात्र के हित में लवलीन हैं। **(ते पात्रं)** वे ही पात्र हैं।

भावार्थ-जो परिग्रह से रहित और चारित्र से सहित हैं, संसार के पदार्थों के स्नेह रहित, परन्तु जिनवाणी के प्रेमी हैं, स्वर्णादि आभूषणों से रहित हैं, परन्तु तपरूपी आभूषण धारी हैं, ममता रहित हैं, फिर भी प्राणिमात्र के हित में लीन रहते हैं, वे ही श्रमण दिगम्बर योगी उत्तम-पात्र हैं।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में उस परम भूतार्थ धर्म की व्याख्या कर रहे हैं जिस धर्म के धारण से आत्मा का धर्म प्रकट होता है। वस्तु का स्वभाव धर्म है। वस्तु का विभाव भी धर्म है। स्वभाव स्वभावभूत धर्म है, विभाव विभावभूत धर्म है। विभाव धर्म का अभाव ही स्वभाव धर्म का प्रकटीकरण है। यदि विभाव धर्म नहीं स्वीकारेंगे, तो स्वभाव के लिये पुरुषार्थ किस बात का? जो आप देख रहे हो, वह विभाव का जीवन है। विभाव का

जीवन द्वैत्वभूत है। शुभ-उपयोग भूत है, अशुभ-उपयोगभूत है और निहारोगे तो विभाव का जीवन शुद्धोपयोगभूत भी है। शुभोपयोग भी विभाव धर्म है, अशुभोपयोग भी विभाव धर्म है। विभाव धर्म में द्वैत्व धारा है। एक विभाव हेयभूत ही है, एक विभाव हेय-उपादेयभूत है, एक विभाव उपादेयभूत है। जो विषयकषाय में रुचि है, दुष्टों की गोष्ठी में बैठने के भाव हैं, पाप प्रवृत्ति है, असंयमियों के बीच में राग उमड़ रहा है, संयमियों से दूर होने के परिणाम हो रहे हैं, काषायिक भाव हैं, विषयिक भाव हैं, एक जीव जो रण में धन देने को तैयार है कि मेरा नाम होना चाहिये। अशुभ स्थानों में भी धन देने को तैयार है। एक जीव अपनी पर्याय की आहुति देने को तैयार है कि कुछ भी हो, मेरा नाम होना चाहिये, जीवन दे सकता हूँ। ये अशुभ उपयोग की धारा है। एक वह जीव है जो चाहता है कि धर्म-धर्मात्मा की रक्षा हो, तीर्थों की रक्षा हो, सिद्ध व अतिशय भूमियों की रक्षा हो, चेतन अचेतन तीर्थों की रक्षा हो जिसके ऐसे परिणाम चल रहे हैं, उसका नाम शुभोपयोग हैं। जिसके उपवास करने के परिणाम चल रहे हैं। शुभ-उपयोग भूत विभाव-भाव है। यह भी आत्मा का स्वभाव नहीं है। लेकिन स्वभाव-भाव की प्राप्ति का उपाय है। वे जीव धन्य हैं जिनने अशुभ से बचने के लिये अपने परिणामों को शुभ में रख लिया। पापों से कमाये द्रव्य को पुण्य में लगाने के परिणाम पापी जीव के हो ही नहीं सकते। पुण्यात्मा जीव के ही होंगे। एक वह जीव है जो अपने से ऊपर छत पर जाने की सीढ़ी बना रहा है, जिसमें विलासता का जीवन जियेगा। एक वह जीव है जो तीर्थ पर जाने की सीढ़ी बना रहा है, वहाँ जाकर सिद्धों की आराधना करेगा। अन्तर समझना। जिसने णमोकार पढ़ते-पढ़ते काम-पुरुषार्थ किया है, उसके घर में सन्तान भी जन्म लेती है तो वह मुनिराज बन कर जिनशासन की प्रभावना करेगी। जिसने काम-वासना की पूर्ति के लिये काम किया है, उसके रावण-जैसी सन्तान होगी। जिसने धन भी स्वयं के लिये ही नहीं, सनातन धर्म की रक्षा के लिये कमाया है, णमोकार पढ़ते-पढ़ते व्यापार कर रहा है, उसका द्रव्य भी सम्मेदशिखर की सीढ़ी पर लगेगा। अन्तर इतना ही है।

माँ! बड़े ध्यान से सुनना। यहाँ पर पात्र की व्याख्या चल रही है। आपके क्षेत्र की जननी थी, उसके उदर में बेटा आया तो माँ को दोहला हो रहा है कि मैं सोनागिर जी की वन्दना करूँ। एक वह अभागिन माँ होगी जिसके पेट में बच्चा आने पर मिट्टी खाने का मन कर रही है। मिट्टी खाऊँ मिर्च खाऊँ, खटाई खाऊँ। जिसके गर्भ में खोटी सन्तान हो रही है, उसके माँ को दोहले भी खोटे ही होते हैं। जब रावण उदर में आया तो माँ को दोहला हुआ कि मैं नंगी तलवार में चेहरा देखूँ। देखो सन्तान का उदर में होना और माँ के भावों को बदलना। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कैसे प्रभावित करता है। जब तीर्थंकर माँ के उदर में आते हैं तो माँ की प्रज्ञा महान् हो जाती है। देवाङ्गनायें गूढ़-गूढ़ प्रश्न करती हैं, माँ उत्तर देती है। माँ तो जा रही थी सोनागिर की वन्दना के लिये। दुनियाँ के बच्चे तो हॉस्पिटल में जन्म ले रहे, घरों में जन्म ले रहे हैं, एक ऐसा बालक था जिसने सोनागिर में जन्म लिया हो। वे थे आचार्य विमलसागर महाराज। उस जीव के परिणामों को देखो। निर्ग्रन्थों की श्वास-श्वास स्वानुभुति के लिये होती है। नि:श्वास निकले तो पर कल्याण के लिये। यही दृष्टि रही आचार्य विमलसागर जी की जब श्रावकों/मुनियों के शरीर काँप रहे हों, आचार्य श्री ने संघ को अन्दर कमरे में बिठाल दिया और स्वयं बाहर आकर बैठ गये। अब वात्सल्य शब्द प्रवचनों में ही दिखाई पड़ेगा, क्योंकि दिनोंदिन वात्सल्य क्षीण होता जा रहा है। एक वे विष्णु कुमार मुनिराज थे जो सात सौ मुनियों की रक्षा में खड़े हो गये। एक वे बालि मुनिराज थे जब रावण कैलास पर्वत हिलाने पहुँच गया, तब यहाँ के मन्दिर नष्ट न हो जायें, सो उन्होंने अँगूठा दबा दिया। अब बालि का ही नाम लेते रहना, आपने मन्दिरों की रक्षा की है। उन्होंने किसी मन्दिर को तोड़ा नहीं था। ओ हो! इस युग का पहला इतिहास लिखा जायेगा कि दिगम्बरों के द्वारा मन्दिर तोड़े गये हैं।

मेरे मित्र! दानदातारों से कह देना, तुम्हारे घर में सम्पत्ति बढ़े तो नया तीर्थ खड़ा कर दो, हम वन्दना करने आयेंगे, लेकिन वन्दनीय तीर्थों का नाश करके मिट्टी में मत मिलाओ। सम्मेद शिखर तीर्थक्षेत्र के लिये आज जो कमेटी लगी

हुई है, उनमें एक-एक में इतनी ताकत है कि एक पहाड़ खरीद करके नया सम्मेद शिखर बना सकते हैं। नया सम्मेद शिखर तो बना लेंगे, लेकिन बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि नहीं बना पायेंगे। सम्मेद शिखर की रचना तो कितने मन्दिरों में है, रचना तो कर सकते हो, लेकिन सम्मेद शिखर शाश्वत् की रचना नहीं कर सकते हो। वो तो सम्मेद शिखर में ही मिलेंगे जब-जब प्रलय होता है, तब भी दो स्थान शाश्वत् रहते हैं। सम्मेद शिखर, अयोध्या। यहाँ स्वस्तिक का चिह्न रहता है ।पुनः जब प्रलय का काल समाप्त होता है, तो उसी स्थान पर तीर्थों की रचना होती है। शाश्वत् भूमियाँ दो हैं। ये नियम है कि तीर्थंकर का जन्म अयोध्या में ही होता है और निर्वाण सम्मेद शिखर से ही होता है। ये हुण्डावसर्पिणी काल का दोष है कि तीर्थंकरों के जन्म भी अन्यत्र हो गये और निर्वाण भी अन्यत्र हो गये हैं। जीवन में यह मत सोचना कि हम तीर्थ की रक्षा करने जा रहे हैं। ये सम्मेद शिखर की ही रक्षा नहीं, पूरे श्रमणत्व की रक्षा है, नमोऽस्तु शासन की रक्षा है, जिसशासन की रक्षा है। आचार्य श्री ने सोनागिर और सम्मेद शिखर में विराजमान हो करके कितना संरक्षण किया। आज आचार्य विमलसागर होते तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि गिरनार आज जैनियों के हाथ में होता। गिरनार जी की टोंक में दूसरी मूर्ति नहीं हो सकती थी यदि आचार्य महाराज होते। **विद्या प्रचार भिन्न विषय है और विद्या का ज्ञान भिन्न विषय है। जिस विद्या का गूढ़ ज्ञान न हो, उस विद्या में मौन रहना ही श्रेष्ठ है। ज्ञान के अभाव में उछल तो जाओगे, लेकिन निकल नहीं पाओगे।** एक विद्या आचार्य महाराज के साथ चली गई। उन्हें निमित्त ज्ञान था। भारत की भूमि पर किसी भी संघ में किसी भी मुनिराज को कोई आवश्यकता पड़ती, कोई विकल्प होता था, तो जाओ, आचार्य विमलसागर के पास जाओ। मेरे मित्र! संसार में दो पर विश्वास रखना, तीसरे सब धोका देकर जायेंगे। दो पर विश्वास रखना—भाग्य और भगवान् और-कुछ नहीं चाहिये। परमेष्ठी की भक्ति का प्रभाव देखो। एक जीव को मैंने पन्ना में फलों की टोकिनी ढोते देखा। वहाँ से संघ निकल पड़ा। एक ने बोल दिया कि आप ये क्या कर रहे हो? बोले, बेटा जन्म लेता है तो उसके मल

की टोकनी को उठाने में शर्म नहीं मानते हो, मैं अपने गुरुओं की चर्या की व्यवस्था कर रहा हूँ, इसमें शर्माने की क्या आवश्यकता है? जब अन्दर की भक्ति होगी, तो विषमतायें सामने नहीं आयेंगी। भक्ति नहीं होगी, तो पग-पग में विषमता दिखेगी। विश्वास रखना, **कहीं भगवान् नहीं हैं। कहीं जिनवाणी नहीं है, कहीं गुरु नहीं है। यदि आस्था नहीं है, तो गुरु में मनुष्यपना है, जिनवाणी कागज है और प्रतिमा पत्थर है। यदि आस्था है, तो मनुष्य ही गुरु है, पाषाण में परमात्मा है और कागज में जिनवाणी दिखाई देती है।**

कोई किसी की सेवा नहीं करता। जीव का अपना-अपना नियोग होता है। जिसका जिससे नियोग होता है, वह वहाँ पहुँच जाता है। मुमुक्षु! अपना अहोभाग्य मानना—भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि भारत की भूमि पर आज भी ऐसा धर्म है कि धर्म का फल दिखाई नहीं देता है तब भी धर्मात्मा दिखाई देते हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने समयसार की आत्मख्याति टीका में उल्लेख किया है कि यदि आप व्यवहार को नहीं स्वीकारोगे तो व्यवहार-तीर्थ का लोप हो जायेगा और निश्चय को नहीं स्वीकारोगे तो परमार्थ तीर्थ का लोप हो जायेगा। इसलिये आप एक की सिद्धि के लिये दूसरे का नाश मत कर देना। एक-दूसरे को पूरक स्वीकारना। तत्त्व की दृष्टि तत्त्व पर हो, व्यवहार तीर्थ की रक्षा व्यवहार तीर्थ में हो। यति आपके पास व्यवहार तीर्थ नहीं होंगे, तो निश्चय तीर्थ की पहचान किससे करोगे? तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी के मस्तक में फणावली लगी हुई है। शिल्पकार से कहा गया कि आपको एक अक्षर भी नहीं लिखना है, लेकिन तीर्थंकर स्वामी का इतिहास होना चाहिये। जिनको इतिहास का बोध नहीं है, रहस्य का ज्ञान नहीं है, वे ही प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं।

घट के घात होने पर घट में रखे दीपक का घात नहीं होता। घट फूट जाये, तब भी घट में रखे दीपक का घात नहीं होता। कोई निर्ग्रन्थ तपोधन ध्यानस्थ बैठे हुये थे, अचानक ज्ञानी ने जाकर कपड़ा फेंक दिया, देखनेवाली आँखें देखेंगी कि मुनिराज के ऊपर तो कपड़ा पड़ा हुआ था, वे मुनि नहीं बचे। अरे अज्ञानी!

वस्त्र के पड़ने से मुनि वस्त्रधारी नहीं हो गये। घट के घात होने पर दीपक का घात नहीं होता है। उपसर्ग आने पर यदि मुनि का मुनिपना चला गया, तो वे मुनि ही नहीं बचेंगे। क्या मुनिराज पर कपड़ा डालने से उनके दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात हो गया? नहीं हो गया। उन्होंने कपड़ा स्वीकार ही नहीं किया है, किसी ने फेंक कर डाल दिया है। गुरुदत्त स्वामी के ऊपर द्रोणगिरि में किसी ने रुई लपेट दी थी और आग लगा दी। उनको तो कैवल्यज्ञान हो गया। जैसे घट के घात से घट में रखा दीपक नष्ट नहीं होता, ऐसे ही बहिरंग उपसर्ग के आने पर अन्तरंग आत्मगुणों का घात नहीं होता। पहले तत्त्व को समझना बाद में तत्त्व समझाने जाना। यदि स्वयं ही तत्त्व समझ में नहीं आया है और समझाने बैठ जाओगे, तो तत्त्व का विपर्यास हो जायेगा। जैसे घट के नाश होने पर घट में रखे दीपक का नाश नहीं होता, वैसे ही तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी पर उपसर्ग होने पर धरणेन्द्र आदि ने फण फैला दिया, फण के फैलने से तीर्थंकर भगवान् की वीतरागता पर प्रश्न खड़ा मत करना। उनकी वीतरागता का घात नहीं हो गया। ये अज्ञानियों का सोच है, ये मिथ्यादृष्टियों का सोच है जिनको तत्त्व का बोध नहीं है और रूढ़ि में मिथ्यात्व में जकड़े हुये हैं। जो पारसनाथ के फण से उनकी वीतरागता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहे हैं, वे तीर्थंकर अरहन्त का अवर्णवाद कर रहे हैं। फण क्या तीर्थंकर पारसनाथ की वीतरागता के हनन के लिये है? फिर तो यशोधर महाराज की वीतरागता भी हनन हो जायेगी क्योंकि श्रेणिक ने सर्प डाल दिया था, आचार्य शान्तिसागर जी के ऊपर भी कालिया नाग घूम रहा था। सारे ज्ञानियों को एक ही बात बताना—**प्रवचन करना भिन्न विषय है और प्रवचन जानना भिन्न विषय है। प्रवचन जाने बिना प्रवचन करने मत बैठ जाना। पहले वक्ता नहीं होना चाहिये, ज्ञाता होना चाहिये। जो ज्ञाता बने बिना वक्ता हो जाता है, वह 'बकता' है 'वक्ता' नहीं होता। तीर्थंकर भगवान् पहले वक्ता नहीं बनते। जब ज्ञाता हो जाते हैं, कैवल्य प्राप्त हो जाता है, तब वक्ता होते हैं।** 'लघीयस्त्रयी' ग्रन्थ न्याय का ग्रन्थ है भट्ट अकलंक स्वामी का। वहाँ 'प्रवचन प्रवेश' नाम का अधिकार है। उसमें लिखा है कि जो ज्ञाता

होता है, वही सम्यक् वक्ता होता है। जो लोक में दिख रहा है, उसे सत्य मत समझिये। जो आत्मलोक में दिख रहा है, उसे जानिये। क्या करें, पारसनाथ के फणे को देख करके, बाहुबली की लताओं को देख करके, उनकी वीतरागता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहे हो, भगवान् तो वीतरागी होते हैं। उन पर ये बैलें कहाँ से आ गईं? फण कहाँ से आ गया? ज्ञानी! वीतरागता के अभाव के लिये फण नहीं है, वीतरागता के नाश के लिये बेलें नहीं हैं। सदासुख दास जी ने 'रत्नकरण्डक' की टीका में लिखा है। वे विद्वान् अपने चिन्तन से लिख रहे थे, कि समन्तभद्र स्वामी के चिन्तन से लिख रहे थे? दो ज्ञानियों के उपनेत्रों के नम्बर भिन्न-भिन्न हैं, दोनों अपने-अपने नम्बर से देख रहे हो। छद्मस्थों की बात प्रमाणिक क्यों नहीं है? क्योंकि वे अपनी सोच से सोचते हैं। मैं उनको प्रमाण मानता हूँ जिनके पास सोच नहीं होता है, मात्र शौच-शौच ही होता है। ऐसी केवली की बात प्रमाण है, छद्मस्थों की बात प्रमाण होती नहीं है। छद्मस्थों की बात उतनी ही प्रमाण है, जितना वे केवलियों के चिन्तन से बोले। केवलियों की वाणी से कथन कर रहे हैं, उतनी छद्मस्थों की बात प्रमाण है; लेकिन जो अपने चिन्तन को दौड़ा रहे हैं, उनकी बात मानने खड़े मत हो जाना। आप अपने-अपने नेत्रों के चश्में से निहार रहे हो, इसका तात्पर्य है कि आप सही नहीं बता पा रहे हो। जो वस्तु है, वह तो जो है, सो है। आप अपनी आँखों से बता रहे हो, अपनी आत्मा से नहीं बता रहे हो।

शिल्पकार से कहा गया कि इस प्रतिमा में पूरा इतिहास आना चाहिये और एक अक्षर लिखना नहीं चाहिये। पारसनाथ भगवान् के सिर पर फण है कि मस्तिष्क में फण है? कभी-कभी क्या होता है कि आचार्य भगवन्त आपके यहाँ से निकले, सिर पर धूप पड़ रही थी, उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया, एक ज्ञानी ने पीछे से जाकर छतरी लगा दी, तो क्या उन मुनिराज की वीतरागता नष्ट हो गई? नहीं। घट के घात होने पर घट-प्रदीप का घात नहीं होता है,इन उपसर्ग/परीषहों के आने पर वीतरागता का घात नहीं होता है। यदि वीतरागता का घात हो गया, तो फिर वीतरागी ही नहीं बचेंगे। लोगों ने जिनवाणी के साथ कितना छल किया है। रहस्य

समझना, बात क्या थी? हर बच्चा पुराण पढ़ने नहीं बैठता, हर व्यक्ति के पास इतना समय नहीं होता कि वह पूरा पुराण पढ़ सके। बालक पूरी चौबीसी के दर्शन करके आयेगा और पूछेगा, 'माँ! इन भगवान् पर फण क्यों है?' प्रश्न करेगा। तो माँ को बताना पड़ेगा 'पारसनाथ, सुपार्श्वनाथ स्वामी ऐसे महायोगी थे, इन पर इतना घोर उपसर्ग हुआ। अहिक्षेत्र में। 'पार्श्वाभ्युदय' ग्रन्थ की रचना सात दिन के अन्दर जिनसेन स्वामी ने की थी। इसमें कालिदास कृत 'मेघदूत' भरा हुआ है। यह आचार्य महाराज की अलौकिक विद्या थी कि दूसरे का ग्रन्थ भी आ गया और निर्ग्रन्थ का ग्रन्थ है। भगवान् पारसनाथ स्वामी अहिक्षेत्र में विराजमान हैं, वहाँ कमठ ने उपसर्ग किया, इस बात के लिये यह महाकाव्य लिख दिया। जिनको प्रवचन करना सीखना हो, उनको तो इन ग्रन्थों को पढ़ना ही चाहिये। आप जबतक साहित्यिक अलंकारिक विद्या को नहीं जानते हो, तबतक प्रवचन नहीं कर पाओगे। भाषण करोगे और कहीं झगड़ा कराओगे। जब वस्तु-स्वभाव समझोगे, तो आपकी वाणी में जिनवाणी होगी। माँ उस बच्चे को समझाती है—महायोगीश्वर तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी ध्यान में लीन हुये, पूर्व भव के बैरी कमठ ने उपसर्ग किया, लेकिन प्रभु हिले भी नहीं। तब धरणेन्द्र ने उनके उपसर्ग को दूर करने के लिये फणा बना दिया था। उनकी वीतरागता के नाश के लिये फणा नहीं है। वे अज्ञानी हैं जो फणे की पूजा कर रहे हैं, फणे का अभिषेक कर रहे हैं। आपको अभिषेक भगवान् का करना चाहिये। पूजन भगवान् की जिनप्रतिमा की है। बाहुबली स्वामी की प्रतिमा में लगी बेलें उनकी वीतरागता की नाश के लिये नहीं हैं, वे तो मुनिमुद्रा में ध्यान में इतने लीन हो गये कि उनके सर्वाङ्ग में लतायें चढ़ गईं और उनके कानों में पक्षियों ने घोसले बना लिये। विद्याधर देवियाँ उनके मुखमण्डल को खोलकरके, पत्तों को हटा करके, दर्शन किया करती थीं, ऐसा 'भरतेश वैभव' में वर्णन किया गया है। अब आप अपने इतिहास को नाश करने का उपक्रम मत करो। तुम वस्तुस्वभाव को हटा दोगे तो आपके पास रहस्य क्या बचेगा? एक वर्ष तक ध्यान में लीन रहे उसी मुद्रा में खड़े रहे। भगवान् बाहुबली स्वामी ने उत्कृष्ट कायोत्सर्ग किया, उसके प्रतीक

के रूप में ये लतायें हैं। उनके वैराग्य को और दर्शन-ज्ञान-चारित्र को नष्ट करने के लिये मानवीय लतायें नहीं हैं। टीकाकार ने अपने मस्तिष्क से सोचकर लिख दिया पूर्वाचार्यों की दृष्टि पर दृष्टिपात नहीं किया।

जब 'रयणसार' की दृष्टि से कथन करेंगे तो कह रहे हैं–

दाणं भोयणमेत्तं दिण्णइ धण्णो हवेइ समारो।
पत्तापत्त विसेसं सदंसणे किं वियारेण।।15।।

हे श्रावक! भोजन मात्र देने में क्या तपस्वी की परीक्षा कर रहा है? तू तो ग्रास मात्र रखने से धन्य हो जायेगा। जैसे वट में डाला गया पानी विशाल छाया को देता है, ऐसे ही निर्ग्रन्थ के हाथ में रखा गया रोटी का ग्रास विशाल सम्यक्त्व और मोक्ष को प्रदान करता है। वट का दाना विशाल हो जाता है भूमि उर्वरा है तो। उत्तमपात्र दिगम्बर योगी, मध्यम पात्र देशव्रती, जघन्य पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि। कुपात्र मिथ्यालिङ्गधारी। कोई श्वान को खिला रहा है, अन्य पशुओं को खिला रहा है, वे अपात्र हैं। ऐसा आगम में कथन किया गया है। जब भी कथन करो, जहाँ जो व्याख्यान मिले वैसा कथन करो। कुन्दकुन्द स्वामी 'वारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में लिखते हैं–सम्यग्दर्शन सहित दिगम्बर योगी उत्तम पात्र हैं, सम्यग्दर्शन सहित देशव्रती मध्यम पात्र हैं, अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं। सम्यग्दर्शन रहित ये तीनों अपात्र हैं।

प्रश्न है, हम इसकी पहचान कैसे करें? हे मित्र! तुम जो भी पहचान कर रहे हो पर्याय से ही कर पाओगे, परिणामों से नहीं कर पाओगे। परिणामों से पहचानने के लिये मन:पर्यय ज्ञान चाहिये, वह श्रावकों को नहीं होता, उसके लिये आपको मुनि बनना पड़ेगा। वह भी पंचमकाल के मुनि को नहीं होता, चतुर्थकाल का मुनि बनना पड़ेगा। चतुर्थकाल का मुनि पंचमकाल में आ नहीं सकता। ज्ञानियों को प्रज्ञा का अजीर्ण हो गया है। वस्तुतत्त्व को समझिये। सम्यग्दर्शन से सहित जीव ही पात्र है, शेष अपात्र हैं इसमें कोई शंका नहीं करना, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने 'वारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में लिखा है। आप तो वीतरागी पूर्व दिगम्बराचार्य के

द्वारा लिखित संस्कृत/प्राकृत ग्रन्थ की गाथा/श्लोक बोलिये। वर्तमान में कोई श्लोक बनाकर बैठ जायें, वो नहीं मानेंगे। मुझे प्राचीन ग्रन्थ चाहिये। आज दो सौ, तीन सौ वर्ष के पण्डितों की बुद्धि को लगा करके वर्तमान के विद्वानों अनेक आचार्यों का नाम लेने में पाप पड़ता है, विद्वानों का नाम लेने में सम्यग्दर्शन प्रकट कर रहे, जबकि गुरु के नियोग से आपने गलत निर्णय भी कर लिया तो-भी सम्यक्त्व है जबतक सूत्र सामने नहीं है। यदि सूत्र दिखाने के बाद नहीं मानते हो, तो मिथ्यादृष्टि। नहीं, नहीं, हमारी जो परम्परा है, हम तो वही मानते हैं। एक परम्परा में जाओ, संसार की परम्परा बढ़ाओ। संसार की परम्परा मिटाना चाहते हो तो वीतरागी आचार्यों की बात स्वीकार करना पड़ेगी। पंचमकाल में कुछ न कर सको तो कम-से-कम सम्यक्त्व की रक्षा करके जाना, व्यवहार सम्यक्त्व तो बचा कर रखना। जिनका व्यवहार सम्यक्त्व ही नहीं बच रहा है, उनका निश्चय सम्यक्त्व तो केवली जाने? आपका प्रश्न है कि मैं कैसे जानूँ? हाँ, स्थूल रूप से तुम इतना जान सकते हो कि कुदेव-कुशास्त्र की आराधना तो नहीं कर रहा है, देव-शास्त्र-गुरु की निन्दा तो नहीं कर रहा है। कुदेव कुशास्त्र की आराधना में लगा है, सराग की पूजा में लिप्त हो रहा है, **देवशास्त्रगुरु को भूल रहा है, उसे हम सम्यक्दृष्टि कैसे कहें? जिसका परिपूर्ण व्यवहार देवशास्त्रगुरु की भक्ति में लगा हुआ है, सम्यक्त्व के आठ अंगों का पालन कर रहा है, पच्चीस दोषों से रहित जीवन जी रहा है, वह व्यवहार से सम्यग्दृष्टि है।** इतना तो आप जान सकते हो, परन्तु निश्चय से है कि नहीं? यह तुम्हारे ज्ञान का विषय नहीं है। आप केवली से पूछिये और कर्मप्रकृतियों की दृष्टि से कथन करोगे तो अवधिज्ञानी से पूछिये। परिणामों से पूछोगे तो मनःपर्यय ज्ञानी से पूछिये, मन की बात वो बतायेंगे; लेकिन पंचमकाल में जो आपको रूप दिख रहा है, उसमें चरणानुयोग की दृष्टि से निर्दोषता झलक रही है, आप उसे उत्तम पात्र स्वीकारिये। मध्यम पात्र स्वीकारिये, जघन्य पात्र स्वीकारिये। यदि आप कहो कि कोई है ही नहीं, तो विश्वास रखना, पहला मिथ्यादृष्टि तू ही है। ज्ञानी! यदि तू ये कहे कि पंचमकाल में कोई पात्र है ही नहीं, तो पहला अपात्र तो मुझे मिल गया, बाकी

बाद में बात करूँगा। क्यों? जिनवाणी में लिखा हुआ है कि पंचमकाल की अन्तिम श्वास तक सच्चा वीतरागी चतुर्विध संघ होगा, सच्चे मुनिराज होंगे, अन्तिम वीरांगज नाम के मुनिराज होंगे, सर्वश्री नाम की सच्ची आर्यिका होगी, ये सब होंगे तो साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष तक नमोऽस्तु शासन भारत की भूमि पर ऐसे ही जयवन्त रहेगा जैसे आज है। सीधा-सीधा कहना, मैं अपने मस्तिष्क को दुर्गन्धमय करना नहीं चाहता हूँ। मस्तिष्क को भ्रमित करना नहीं चाहता हूँ। मैं तो इतना जानता हूँ। तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ, त्रिलोकसार ग्रन्थ दिगम्बर जैन आम्नाय के महान् ग्रन्थ हैं। परन्तु ऐसे भी विद्वान् हैं जो अपने मन का ही स्वीकारते हैं, बाकी हटाना जानते हैं। तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में निहार लेना, भारत की भूमि पर अग्नि का वास जब तक है, जबतक तुमको सिकी-सिकाई रोटियाँ खाने को मिलती रहें, तबतक तुम नमोऽस्तु करते रहना। जिस दिन सिकी रोटियाँ खाने को न मिलें, उस दिन नमोऽस्तु करना बन्द कर देना। इससे बड़ा कोई प्रमाण-पत्र नहीं होगा। जब तक भारत की भूमि पर दिगम्बर धर्म रहेगा, जैनमुनि रहेंगे, तबतक ही अग्नि का वास है। जब जैन मुनि नष्ट हो जायेंगे, उस दिन से भारत की भूमि से अग्नि का लोप हो जायेगा। अब आप देखो, तुम्हारे घर में अग्नि है कि नहीं? यदि है, तो दिगम्बर साधु हैं। मैंने जगत् की सुनी सुनाई को मानना बन्द कर दिया है। मेरा विश्वास जिनवाणी पर है। बालक जब से गोटियाँ खेलना सीखता है, तब से मैंने जिनवाणी पढ़ना सीखा है। जब बच्चे खेलते हैं, तो कोई कहता है मैं वकील बनूँगा, मैं इंजीनियर बनूँगा, तब मैं तो यही कहता था कि मुझे तो मुनिराज बनना है, दूसरा कुछ बनना ही नहीं है। खेलने नहीं गया मैं, क्योंकि आठ वर्ष की उम्र में एक शास्त्र मेरे हाथ लग गया, उसमें मैंने पढ़ लिया कि हाथ-पैर टूट जायें, आँख फूट जाये, तो मुनि नहीं बन सकता। मैंने पढ़ा कि खण्डित प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं होती, तो मैंने कहा कि मुझे खेलने नहीं जाना, कहीं हाथ-पैर टूट गये तो मैं मुनि नहीं बन पाऊँगा। मुझे तो मुनि बनना है। जब अपन ने इस सत्य को समझ लिया है, तो जगत् की रूढ़ियाँ अपन को स्वीकार नहीं हैं। आचार्य विमलसागर जी का पक्का आशीर्वाद है। जब उनका गुरु-शिष्य का मिलन

हो रहा था, बड़े-बड़े योगी खड़े हुये थे, हजारों की भीड़ थी, मैं तो दूर जाकर खड़ा हो गया था, परन्तु धन्य हो उस वात्सल्य रत्नाकर के लिये, वे विरागसागर जी से कहते हैं तुम्हारा छोटा साधु कहाँ है? उसे बुलाओ। अपने वक्षस्थल से लगा लिया, तब लगता है कि धर्म का स्वरूप ये है। **जिसमें पंथ न हो, आम्नाय न हो, गण न हो, गच्छ न हो, मात्र रत्नत्रय धर्म हो उसका नाम जैनधर्म है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि अभी भी इन बातों से जो दूर नहीं हो पाया है, उसको अभी-और भव लेना पड़ेंगे। जब इनको दूर कर पायेगा तब कर्मों को दूर कर पायेगा।**

प्रभुता/प्रभुत्व मोक्षमार्ग नहीं है। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।** इसलिये प्रभुता से प्रभावित मत हो जाना, व्यक्तित्व से प्रभावित मत हो जाना। यदि प्रभावित हो सको तो मात्र रत्नत्रय धर्म की मृदुलता से होना। ऐसे पात्रों को देखकरके जब-जब तुम्हारे घर में मुनिराज आयें, तो दुनियाँ देखे धर्म से लिपटे मुनिराज को, लेकिन तुम देखना अचर्म शरीरी सिद्ध परमात्मा को। देह के भीतर विराजा भगवान् मेरे द्वार पर आया है, अभी रख लो ग्रास, फिर हाथ ही जोड़ पाओगे। कहीं हाथ में ग्रास नहीं रख पाये, फिर वे सिद्धालय में होंगे, तब तुम कहाँ ग्रास रख पाओगे?

श्रावको! जबतक शरीर में श्वासें चल रही हैं, एक बार दिगम्बर मुनि के हाथ में ग्रास अवश्य रख लेना। इनमें तुम मुनिराज मत देखना, इनमें तुम भविष्य के सिद्ध परमात्मा देखना। कुन्दकुन्द स्वामी को निगोदिया में भगवान् दिखते हैं और ज्ञानी को मुनिराज में भगवान् नहीं दिखते हैं। जबकि शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से सारे जीव सिद्ध-समान हैं।

धन्य है उन योगियों को, जो ममत्व छोड़ चुके हैं, जिनकी देह को श्यालनी भख रही है, तब भी देह में राग नहीं है। आचार्य विमलसागर जी की पीठ में एक फोड़ा हो गया था। वैद्य कहते थे कि आपको इंजेक्शन लगाना पड़ेगा, तब इसकी शल्यक्रिया होगी। वे बोले—महाव्रती इंजेक्शन नहीं लगवाते, व्यर्थ की

औषधि का सेवन नहीं करते—"प्रिय धम्मो, दृढ़ धम्मो।" आचार्य श्री बोले—जब मैं सामायिक में बैठ जाऊँ, तब तुम अपना काम कर लेना, मैं अपना काम करूँगा। महाराज सामायिक में बैठ गये, वैद्य ने सब निकाल लिया। वह कहता है 'महात्मा जी! अब तो आँखें खोल लो।' जहाँ देहदृष्टि है, वहाँ आत्मदृष्टि कहाँ? जहाँ आत्मदृष्टि है, वहाँ देहदृष्टि कहाँ? शरीर-घट में ही तो फोड़ा हुआ था। घट को ही चीरा जा रहा था, लेकिन घट के भीतर जो चैतन्य दीप था, वह कहाँ बुझ रहा था? वे दीप के प्रकाश में लवलीन थे। जब ऐसी दृष्टि तुम्हारे भीतर होगी, तभी कर्मनिर्जरा होगी। जबतक ऐसे दृढ़ भाव न बन पायें, तबतक घट का घात होने पर घट दीपक का घात नहीं होता है। देह का नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है। पुद्गल का नाश होने से ज्ञान-दर्शन का नाश नहीं होता है। अपने शरीर के प्रति भी जिसने ममत्व छोड़ दिया हो, वे ही उत्तम पात्र संयत हैं, ऐसे संयमी उत्तम पात्र हैं।

सत्यार्थ साधुपुरुष वही हैं जो प्राणिमात्र के हित में रत हों, जो स्वरूप में लीन हों, आत्महित में लीन हों। जब व्यवहार सराग दशा में लीन हो, तब प्राणिमात्र के हित का चिंतन करें, किसी के अहित के बारे में चिन्तन न करें। यही निर्ग्रन्थ धर्म है।

ज्ञानियो! जो परिग्रह रहित होने पर भी चारित्र के धनी हैं, जगत् के पदार्थों से मोह रहित होकर भी सुश्रुत जिनवाणी के प्रेमी हैं, आभूषण रहित होते हुए भी तपरूपी आभूषणों से भूषित हैं, वही दिगम्बर योगी उत्तम पात्र हैं।

ज्ञानियो! धन्य हैं धरती के देवता दिगम्बर श्रमण, जिन्होंने शरीर से भी मोह छोड़ दिया है, निरन्तर स्व-पर कल्याण में लवलीन हैं। वही श्रमण दाता के लिए उत्तमपात्र हैं। ऐसे योगियों को दान देना श्रावकों का अहोभाग्य है।

"**आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"साधुओं के गुण और श्रावक का कर्तव्य"

परीषहजये शक्तं शक्तं कर्म परिक्षये।
ज्ञानध्यानतपोभूषं शुद्धाचरण परायणं॥ 203॥
प्रशान्त मानसं सौख्यं प्रशान्तकरणं शुभं।
प्रशान्तारिमहामोहं कामक्रोध निसूदनम्॥ 204॥
निन्दास्तुतिसमं धीरं शरीरेऽपि च निस्पृहं।
जितेन्द्रियं जितक्रोधं जितलोभमहाभटम्॥ 205॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तं सिद्धिसङ्गमनोत्सुकम्।
ज्ञानाभ्यासरतं नित्यं, नित्यं च प्रशमे स्थितम्॥ 206॥
एवं विधं हि यो दृष्ट्वा स्वगृहाङ्गणमागतम्।
मात्सर्यं कुरुते मोहात् क्रिया तस्य न विद्यते॥ 207॥

अन्वयार्थ-(परिषहजये शक्त) जो परिषहों के जीतने में समर्थ हों, **(कर्म परिक्षये शक्त)** तथा कर्मों के क्षय करने के लिए उद्यमशील हों **(ज्ञानध्यानतपोभूष)** जिनका आभूषण ज्ञान-ध्यान-तप हो **(शुद्धाचरण परायण)** जो शुद्ध चारित्र के पालने में लवलीन हों **(प्रशान्तमानस)** जिनका मन शान्त हो **(सौख्य)** जो आनन्दमय हों, **(प्रशान्तकरण)** जिनकी पाँचों इन्द्रियों की इच्छाएँ शान्त हों, **(शुभ)** जो शुभ आचरणों के कर्त्ता हों, **(प्रशांतारिमहामोहं कामक्रोधनिसूदनम्)** जो मोहरूपी शत्रु को शांत कर चुके हों तथा कामक्रोधादि के नाशक हों **(निन्दास्तुतिसम)** जो अपनी निन्दा और स्तुति में एक समान भाव के धारक हों **(धीर)** धैर्यवान् हों **(शरीरेऽपि च निस्पृह)** जो शरीर से भी विरागी हों **(जितेन्द्रिय)** जो इन्द्रियों के विजयी हों **(जितक्रोध)** जो क्रोध को जीतने वाले हों **(जितलोभमहाभट)** जिन्होंने लोभरूपी महायोद्धा को जीत लिया हो **(रागद्वेष विनिर्मुक्त)** राग-द्वेष से रहित हों **(सिद्धिसङ्गमनोत्सुकम्)** सिद्धगति की संगति के पाने के लिए मन में उत्सुक हों

(नित्यं ज्ञानाभ्यासरतं) नित्य शास्त्रज्ञान के अभ्यास में रत हों, **(नित्यं च प्रशमे स्थितम्)** नित्य ही शान्ति में रमते हों **(एवं विधं स्वगृहाङ्गणमागतं दृष्टवा)** ऐसे महान् योगी को अपने घर के आँगन तक आये हुए देखकर **(यः मोहात् मात्सर्यं कुरुते)** जो कोई मोह के वशीभूत होकर उनसे ईर्षा करे, उनका सत्कार न करे, उनको दान न दे **(तस्य क्रिया न विद्यते)** वह श्रावक की क्रिया से रहित है।

भावार्थ-जो गुणों के धारक निर्ग्रन्थ मुनियों का सम्मान नहीं करता है, वह स्वयं मिथ्यादृष्टि है, धर्म क्रियाओं से शून्य है, वह दान का मार्ग नहीं जानता है।

सद्-देशना

ज्ञानियो! आत्मा की स्वाभाविक दशा के प्रगटीकरण के लिये आचार्य भगवन् कुलभद्र स्वामी परम सत्ता की व्याख्या कर रहे हैं। तत्त्व की गवेषणा, धर्म की क्रियायें इन सब में रासायनिक तत्त्व निहित हैं। उस परम सत्ता को न समझने के कारण व्यक्ति धर्म के सत्य को सुनकर ही यों समझता है, कोई रूढ़ि प्रारम्भ हो रही है। रूढ़ि को अज्ञानता में बदल दिया। रूढ़ि परम्परा नहीं है, रूढ़ि अज्ञानता नहीं है, रूढ़ि ही धर्म है। सँभलकर सुनना। रूढ़ि ही धर्म है। रूढ़ि पर नहीं चल पायेगा, वह धर्म में टिक नहीं पायेगा। समभिरूढ़ नय है। बड़े-बड़े विद्वानों ने रूढ़ि का ऐसे उपयोग कर लिया जैसे व्यसन शब्द का प्रयोग हो गया। व्यसन शब्द खोटी आदत में प्रयोग हो गया तो हम जब-जब व्यसन शब्द का प्रयोग करते हैं तो वह सप्त व्यसन में चला जाता है। व्यसन शब्द बदनाम हो गया। एक शब्द नैवेद्य था, नैवेद्य के स्थान पर लोक में जीवों के पिण्डों को जीवों ने नष्ट कर दिया। जीवों के समुदाय को धर्म के नाम पर हवन कर दिया बलि के नाम पर, तो बलि शब्द इतने अशुभ अर्थ में अवरूढ़ हो गया कि आज कोई बलि शब्द का प्रयोग करना उचित नहीं समझता, जबकि समवसरण भूमि में बलिपीठ होते हैं। वे बलि पीठ से तात्पर्य किसी जीव का घात करने का स्थान नहीं है। जहाँ प्रभु के चरणों में नैवेद्य द्रव्य चढ़ाया जाता है, अधर्य उतारा जाता है, उस

पीठ का नाम है बलि पीठ। इसलिये पापी जीवों को पुण्यभूत शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जब लोगों ने अरहन्त शब्द का दुरुपयोग करना प्रारम्भ किया, तब लोक में अनेक प्रकार के लोग होते हैं उनको लगता है मेरे शब्द का प्रचार हो जायेगा। परन्तु ध्यान दो, एक मिसाइल बनी, विमान यान बना, उसका अरहन्त नाम रखा गया, उसका विरोध हुआ। अभी जो जीवों का घात होने वाला था, उस यन्त्र का नाम अरहन्त रख दिया, उसका विरोध हुआ। विरोध करना क्यों अनिवार्य था? बलि शब्द हमारे हाथ से चला गया। लोगों ने हिंसाकर्म करना प्रारम्भ कर दिया। पाखण्डि शब्द को भूल गये हम। आगम में मूल आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार जी ग्रन्थ में प्रयोग किया है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने पाखण्डि मूढता शब्द का प्रयोग किया है। पाखण्डि का अर्थ था गुरु। पाखण्डि लिङ्ग और गृही लिंग, इन दो लिङ्गों की व्याख्या समयसार जी में है। पाखण्डि से तात्पर्य जो पापों का खण्डन कर रहा है। ऐसा पाखण्डियों का संघ बैठा हुआ है यहाँ। पाखण्डि शब्द इतना पवित्र था **जो पापों को खण्डन कर रहा है, जो कर्मों का खण्डन कर रहा है, पवित्र भावों से युक्त है, उसका नाम पाखण्डि है;** परन्तु इस पवित्र नाम को ले करके लोगों ने अपने लिये प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया, उस पाखण्डि शब्द को लेकर के गुरु भेष में आ करके क्रूर काम करना प्रारम्भ कर दिये, तो हमारे यहाँ पाखण्डि मूढ़ता कह दिया। पाखण्डि मूढ़ता से तात्पर्य पाखण्डि को मूढ़ता नहीं कहा है गुरुपने को न प्राप्त हो कर अपने आप को गुरु कहना, उसका नाम गुरुमूढ़ता है, पाखण्डि मूढ़ता है। तो वस्तु जैसी नहीं है, उसको वैसा कहना, यही तो आभास है। **"ततोऽन्यत् तदाभासम्"** जो जैसा नहीं है, उसको वैसा कहना आभास है। मनुष्य में मनुष्यता होना चाहिये और मनुष्यता से शून्य है, जिसके अन्दर क्रूरता बैठी हुई है, जीवों की हिंसा कर रहा है, हिंसा-झूठचोरीकुशीलपरिग्रह में लिप्त है, क्या वह मानव है? मानवताभास क्या मनुष्य है? मनुष्याभास। **साधु होकर भी जो संयम में न जीता हो, साधु होकर भी शील शून्य हो, तो साधुताभास। जो जैसा नहीं हो, वैसा लेबल लगा लेना, उसका नाम आभास है।** ये न्याय का सूत्र है। बलि शब्द गया,

मुमुक्षु ऐसे तुम शब्दों को छोड़ते चले गये। भैया! आपके बीच का परमागम शब्द, मुमुक्षु शब्द, ये शब्द त्रैकालिक हैं। ये शब्द सनातन हैं। आगम, परमागम, मुमुक्षु, श्रमण। आपने क्या किया? धीरे-धीरे किसी गुट विशेष ने प्रचार करना प्रारम्भ किया तो आपने छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे आप सब छोड़ते चले जाओगे तो आप अपने हाथ से जिनवाणी ही छोड़ दोगे, तो दूसरा जिनवाणी को हाथ में ले लेगा। समयसार की सामूहिक वाचना क्यों रखी? एक समय बुंदेलखण्ड में ऐसा दिखने लगा था कि समयसार जी ग्रन्थ का नाम लेते ही लोगों की दृष्टि पड़ जाती थी कि ओ हो। समाज को इतना भर दिया गया था कि समयसार को अपना ग्रन्थ मानना ही बन्द कर दिया। निर्ग्रन्थों की प्रवचनसभाओं में समयसार ग्रन्थ का नाम आते ही, उसको कह दिया जाता हो कि दूसरे का है, अपने आगम को अपने हाथ से छोड़ना प्रारम्भ कर दिया, तो मुझे लगा कि यह तो अनर्थ हो जायेगा कि महान् आत्मप्रवाद पूर्व का अंश मात्र अपने पास है, उस अंश में भी निर्ग्रन्थों की वास्तविक अनुभूति का जो ग्रन्थ है, उस ग्रन्थ को भी सौंप दो और आगम, परमागम, मुमुक्षु शब्द के नाम पर अपने आप में शून्य हो जाओ तो वही होगा जो आपके पाखण्डि शब्द के साथ हुआ है। रूढ़। धर्म रूढ़ होता है। साहित्य में तीन प्रकार के शब्द होते हैं रूढ़, संयोगज, संयोगरूढ़। आप मनुष्य हैं इसका अर्थ क्या है? गेहूँ चावल क्या है? ये रूढ़ है। मनुष्य रूढ़ नहीं है, मनुष्य अन्वयार्थक शब्द है, मनुष्य शब्द के अन्दर मनुष्य ने मनुष्य की परिभाषा को समझ लिया तो विश्वास रखना कभी आपके चेहरे पर लालिमा कालिमा आ ही नहीं सकती है। जिस दिन मनुष्य ने मनुष्य शब्द का अर्थ समझ लिया, वह मानव अपनी मानवता से दूर नहीं हो सकता है। बड़े-बड़े ग्रन्थों को समझने के पूर्व मनुष्य को मनुष्य शब्द का अर्थ समझना चाहिये। **जो मननशील है, चिन्तनशील है, उसका नाम मनुष्य है। जो मनु की सन्तान हैं, उसका नाम मनुष्य है। मनु यानि कुलकर। हम कुलकर परम्परा के हैं। जिसका चिन्तन नहीं चल रहा है, जिसकी प्रज्ञा काम नहीं कर रही है, जिसकी बुद्धि काम नहीं कर रही है, श्रेष्ठ चिन्तन में जिसका मस्तिष्क न चलता हो, निकृष्ट कार्य करने में**

जिसकी बुद्धि चलती हो, वह आकार में मनुष्य है लेकिन भावों से तिर्यञ्च है। किसी से पूछना नहीं। मायाचारी करने के परिणाम जिस दिन हों, अशुभ से अशुभ कार्य करने के परिणाम जिस दिन हों, अच्छा ज्यादा खाने के भाव हों, किसी से छुपकर भोजन करने के भाव हों। बालको! अपने टिफिन में तो रखा ही हुआ है, दूसरे के टिफिन से चुराने के भाव आ जायें, बस, समझ लेना कि इस समय मैं आकार में मनुष्य हूँ, परन्तु भीतर से मैं पक्का पशु हूँ। दूसरे के सामने का घास कौन खाता है? बकरी को कितना ही खिला-पिला कर लेकर जाना, आप उसकी रस्सी भी पकड़ लोगे, परन्तु वह कहीं-न-कहीं मुख मारेगी-ही-मारेगी। माता-पिता ने अच्छे से तुमको भोजन करा कर भेजा, तब भी तू चाट के ठेले पर खड़ा दिखाई दे रहा है, किसी होटल की ओर झाँक रहा है, उस समय कहना—कि मैं किस पर्याय में हूँ? मनुष्य कभी चलते-फिरते खड़े-खड़े भोजन नहीं करता। जो श्रावक होगा, वह एक स्थान में बैठ कर भोजन करेगा। खड़े होकर भोजन करने का शौक है तो निर्ग्रन्थ बन कर दोनों हाथों से खाओ, आहार करो। इधर मुख में ग्रास रख रहा है, उधर बाजार में देख रहा है, चल रहा है, खा रहा है, पी रहा है, बस, समझ लेना मेरी इस समय तिर्यञ्च पर्याय की दशा चल रही है। आप पशुपर्याय को कब तक अपने में रखोगे? कोई बाजार में खड़े-खड़े खाते मिल जाये तो कहना -हे मित्र! तुम पशुपर्याय को कब से प्राप्त हो गये हो? मनुष्याकार तिर्यंच तू बड़ा सुन्दर दिख रहा है। बन्दरों के पास दो ही काम होते हैं या तो किसी का काम बिगाड़े या भोजन करें। जिसके अन्दर अज्ञान बैठा हुआ हो और कुटिलता का बाहुल्य हो, जितनी गृद्धता स्वयं के घर में थाली में बैठने पर नहीं होती है, उतनी बाजार में खड़े होकर खानेवाले की होती है। घर में शान्ति से बैठेगा, बाजार में कहीं इधर देख रहा, कहीं उधर देख रहा है। गाय-बैल का भोजन बड़ा प्रशस्त होता है। और ऊँट को देखो? आप जीवन जी कैसे रहे हो? जगत् के विषयों को ज्ञेय तो बनाइये। मैं तो अपने आप को एक क्षण को खाली नहीं छोड़ता हूँ, क्षण-क्षण में मुझे ज्ञेय दिखाई देते हैं। ऊँट नीचे सिर करके जल्दी-जल्दी मुख में रखता है, फिर जब चबाता है तो

सिर ऊपर करके इधर देखता है उधर देखता है। ऐसे ही जो नीचे मुख करके तो खाये और ऊपर यहाँ-वहाँ देखकर चबाये, ये ऊँट की पर्याय का जीवन चल रहा है। बुरा तो नहीं लग रहा? अब लगे तो लग ही जाये। जो है, सो है। जो सत् पुरुष, सज्जन पुरुष, साधु पुरुष होते हैं, महापुरुष होते हैं। साधु की साधुता को लोग मात्र आँख बन्द करके हाथ पर हाथ रखे ही देखने नहीं आते, इनकी आहारचर्या को भी लोग देखने आते हैं। एक वे लोग होते हैं जो जंगलों में खेतों में चरा करते हैं, उनको कोई डण्डा मार कर भगाया करते हैं कि मेरे खेत में घुस आया। एक वे महापुरुष होते हैं जिनको भोजन दे करके लोग अहोभाग्य मानते हैं। देव भी देखने आकरके रत्नों की वर्षा करने लग जाते हैं। वे महापुरुष होते हैं। धरती के देवता, महामुनिराज। भारत की भूमि पर चौदह सौ पिच्छिधारी विचरण कर रहे हैं। उनसे मेरा कहना है कि आप अपने से प्रयोजन रखो या न रखो, लेकिन अरहन्त मुद्रा से तो प्रयोजन रखो। ये वह मुद्रा है जिसके आहार होने के बाद पंचाश्चर्य होते हैं। भिखमँगे की मुद्रा न हो, श्वान और उष्ट्र की मुद्रा न हो। कल एक जीव सामने पड़ा हुआ था, श्वान ने उसका एक टुकड़ा उठाया और दूर जाकर एक गड्ढा कर दबा दिया। क्या रहस्य था? जिसको आप नाक बन्द कर रहे थे, उसको वो सेवन कर रहा था। आधा पिण्ड लेकरके जमीन में गाढ़ दिया, क्यों? जब नहीं मिलेगा, तो पुनः उखाड़ कर खायेगा। ऐसा भी करते हैं जीव। **जो सामने आये किसी अतिथि का सत्कार करना न जानते हो, जिन्होंने कभी निर्ग्रन्थों को दान देना न जाना हो, जिन्होंने अतिथि सत्कार करना न सीखा हो, मात्र धन को ही जोड़ने में जिनका जीवन निकल रहा हो तो कह देना कि तेरी वही श्वान की पर्याय चल रही है जो माँस के टुकड़े को खाने के बाद बचा हुआ जमीन में गाढ़ देता है** अगले समय के लिये। ऐसे ही ज्ञानियो! जो तुम धन को छुपा-छुपा कर रख रहे हो, धर्मस्थान में उपयोग नहीं कर पा रहे हो, तीर्थ और जिनशासन के लिये उपयोग नहीं कर पा रहे हो, उनकी जो पर्याय चल रही, यह श्वान के समान पर्याय है। जो जमीन में गाढ़ कर रख रहा है। धर्म रूढ़ है। लोग रूढ़ि के नाम पर भ्रमित हैं। रूढ़ि के नाम

पर अनाचार हो रहा है, रूढ़ि के नाम पर लोग धर्म छोड़ रहे हैं और बड़े-बड़े ज्ञानी लोग रूढ़ि कह कर विषयों में लिप्त हो रहे हैं।

कोई विषय को याद करने का सोचे, निर्णय करने का सोचे और निर्णय न हो विपरीत निर्णय हो, प्रज्ञा अधोगामी हो, तो किसी से मत पूछना, न भगवान् के पास जाना, न साधु के पास जाना। एकान्त में बैठ करके सोचना शुरू कर देना कि बात क्या है, इतने दिन हो गये, मैं तत्त्व का सम्यक् चिन्तन नहीं कर पा रहा हूँ। महीने-महीने बीत गये, भोग भुक्ति इतना ही मान चल रहा है। **तीर्थ वन्दना के परिणाम नहीं हो रहे हैं, स्वाध्याय के परिणाम नहीं हो रहे हैं। गुरुओं के पास आने के परिणाम नहीं हो रहे हैं।** समझ लेना मनुष्य के आकार में तिर्यंचपर्याय-जैसे परिणाम चल रहे हैं। ऐसा ही है। भाव तिर्यंच। तिर्यंचों की चेष्टायें तो देखो। बाजार में खड़े होकर खाने वाले मनुष्यों को तो देखो। बुरा तो नहीं लग रहा है? ज्यादा बुरा लगे तो आज से नियम ले लो कि नहीं खाना। मैं पशु क्यों कहलाऊँ? मैं तो आगम से बिल्कुल सत्य बोल रहा हूँ। आप कहोगे कि मैंने तो पढ़ा नहीं है। मेरे मित्र! एक दो ग्रन्थों को पढ़ लेना आगम नहीं है। आगम अगाध है। जितना आपने पढ़ लिया, उतना आगम क्यों मान रहे हो? द्वादशाङ्ग है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि श्रुतकेवली भगवन्त भी पन्ने पलट-पलट कर नहीं पढ़ पाते हैं। उनको तो विशुद्धि से प्रकट होता है। जीव के पास इतना समय नहीं है कि सम्पूर्ण द्वादशांग को पढ़ पाये। विशुद्धि से प्रकट होता है। सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में छः भेद क्षयोपशम प्रत्यय अवधिज्ञान के किये हैं। इनकी परिभाषा करते हुये आचार्य महाराज लिखते हैं कि बुद्धि की प्रकर्षता से वर्द्धमान होता है, विशुद्धि की हानि से हीयमान होता है।

बालको! अशुभ आदतें और अशुभ परिणाम छोड़कर बैठ जाओगे तो आपका ज्ञान नियम से बढ़ेगा। जिसकी खोटी आदतें पड़ जायें और क्लेश परिणाम रखे, उसका बढ़ा हुआ ज्ञान भी विलीन होने लगता है। चिन्ता में डूबा पुरुष अपने चिन्तन का नाश कर लेता है। चिन्ताविहीन पुरुष अपने चिन्तन

का उत्कर्ष कर लेता है। साधु लोग इतने जल्दी ज्ञानी क्यों हो जाते हैं? क्योंकि चिन्ता के हेतुओं से दूर हो गये हैं। तो ज्ञान अपने आप बढ़ता है। जहाँ चिन्ता के हेतु विराजे हैं, वहाँ चिन्तन नष्ट हो जाता है। जीव जितनी चिन्ता करेगा, उसका चेहरा बिगड़ जायेगा। उसकी मस्तिष्क की नसें फूल जायेंगी। चिन्तनशील पुरुष के नशा जाल फूलेंगे नहीं, सहज होंगे। चिन्तन करो। खड़े-खड़े खानेवाले को आपने तिर्यंच बोल दिया है, बाजार में खाने वाले को तिर्यंच बोल दिया है। तस्तरी में, प्लेटों में, दोनों में जो खड़े-खड़े खा रहे हैं, वे तिर्यंच ही हैं। जो दोनों हाथों से दिगम्बर होकर खा रहे हैं वे भविष्य के भगवन्त हैं। हमारे आगम में तिर्यंच की परिभाषा आयी है कि जिस जीव की चारों संज्ञायें प्रकट दिखती हों, न लोकलाज है न कोई मर्यादा है, देखो तिर्यंचों को कोई भी संज्ञा होती है उनको कोई शर्म ही नहीं होती है। आप पाप भी करते हो तो मर्यादा में चले जाते हो, परन्तु तिर्यंचों की पाप करने की कोई भी मर्यादा नहीं है। मार्गों पर, रोड़ पर, जहाँ देखो तहाँ, उन बेचारों को कोई विवेक नहीं है कि हेय है कि उपादेय? करणीय है कि अकरणीय? मित्रो! हमारे घरों में चौके होते थे, वे कहाँ गये? मनुष्य की मानवता की पहचान थे ये चौक। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धिपूर्वक आहार संज्ञा की पूर्ति कर रहा है, वह मनुष्य का चौका होता था। बाजार में खड़ा होकर अपनी संज्ञाओं को दिखा रहा है, ये तिर्यंच की पहचान है। आप कहो कि ऐसा कहीं लिखा तो नहीं मिलता। भैया! लिखा तो मिलता है, उसे लगाना सीखो। तिर्यंच की चारों संज्ञायें प्रकट होती हैं ऐसा 'गोम्मटसार (जीवकाण्ड)' में लिखा है आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने। जिन्होंने क्षपणासार, लब्धिसार ग्रन्थ लिखे और गोमटेश बाहुबली को सूरिमन्त्र दिया। ऐसे पुण्यात्मा जीव का नाम लेने से ही कर्म की गुणश्रेणी निर्जरा होती है। बिना तपस्या किये, बिना साधना किये भी गुणश्रेणी निर्जरा होती है, तो उसका एक ही आलम्बन है अरहन्त देव के प्रवचनों का स्वाध्याय करना। 'धवला' पुस्तक नम्बर एक से बोल रहा हूँ। स्वाध्याय करनेवाले की बिना तपस्या किये भी कर्मों की निर्जरा होती है। सबसे पहले पापों में आँख

और मन ही तो जाते हैं। इन बच्चों से पूछो—गुटका खाने की शुरूआत कहाँ से हुई? पेट से ही खाना सीख लिया था क्या? नहीं, पहले खानेवाले को देखा था, फिर मन किया था कि खाकर देखूँ कि कैसा लगता है?

पहले देखता है, फिर उपयोग जाता है, फिर पापों में लीन होता है। बिना देखे कोई पाप कर ही नहीं सकता। पहले दर्शन, फिर उपयोग ले जाता है।

चारुकीर्ति भट्टारक ने 'षट्खण्डागम' को कन्नड़ी भाषा में भाषांतर कराया है। भाषा प्राकृत है, संस्कृत है, हिन्दी है। लिपि कन्नड़ी थी वह। ताड़पत्रों में लिपि कन्नड़ी थी। जैसे कोई अंग्रेजी पढ़ना नहीं जानता तो अंग्रेजी भाषा को हिन्दी लिपि में लिख लेता है। किसी ने 'दिस इज' लिख लिया, यह भाषा आँग्ल है, लिपि हिन्दी है। ऐसे कर्नाटक के ग्रन्थ में लिपि कन्नड़ी थी, भाषा संस्कृत प्राकृत। अब उन्होंने लिपि के साथ भाषा को परिवर्तित किया। जब लब्धिसार, क्षपणासार इन ग्रन्थों को निहारते हैं तो शरीर में रोमाञ्च होता है। लोगों ने तो मात्र बाहर की वस्तु को नापा है, जैनाचार्यों ने भीतर के भावों को नापा है। जिसकी संज्ञायें प्रकट दिख रही हैं, वह भेष में मनुष्य है। आप जरा से भी पानी के हो, बुजुर्गों सुनो, यदि ये बुजुर्ग चाट-चाटते मिल जायें, तो कहनाअहो दादा जी! **जिनका अज्ञान प्रकट दिखाई दे रहा है, जिनकी चारों संज्ञायें प्रकट दिखाई दे रही हैं, उसका नाम पशु है।**

जो श्रेष्ठ भोगों ये युक्त है, श्रेष्ठ काम में जिसका मन लगता है, उसका नाम पुरुष है। जो श्रेष्ठ कामों से हीन है, वे सबके- सब स्त्रियाँ हैं। ये भाववेद की व्याख्या चल रही है। **जो दोषों से आच्छादित हो, जो दोषों से दूसरे को आच्छादित करे, पापों से आच्छादन करना जिसका धर्म हो, उसका नाम स्त्री है। कुछ लोगों की आवाज तो स्त्री जैसी, चाल चेष्टायें स्त्री जैसी, बैठेंगे तो स्त्रियों में, वे भविष्य की स्त्री हैं।** जिनको नारीपर्याय में न जाना हो, वो मायाचारी मत करना और कभी नारियों से झगड़ा मत करना। आगम वचन है कि जो स्त्रियों से लड़ते हैं, उन्हें स्त्री बनना पड़ता है। आप लोग शेर मत हो

जाना कि अब तो मेरी रक्षा हो गई। जब स्त्री से लड़नेवाला स्त्री बन सकता है, तो जो स्त्री बन कर लड़ेगा, वह अब और-कहाँ जायेगा? आप चिन्ता मत करना, क्योंकि आपकी भी मैंने रक्षा कर दी। रूढ़ि पर ध्यान दो। धर्म रूढ़ि ही होता है। गो पशु अवरूढ़ अर्थ है। जो-जो गमन करें, सब पशु होते हैं, फिर रूढ़ि में हम गो का अर्थ गाय लगाते हैं। जलज कमल होता है। रूढ़ि शब्द है। संयोगज रूढ़ि है। संयोग होने पर भी रूढ़ि है। बड़े-बड़े योगीजन की आँखें रूढ़ि शब्द सुनते ही लाल-पीली हो जाती हैं, जबकि धर्म रूढ़ि ही होता है। रूढ़ि छोड़ दोगे तो धर्म का लोप हो जायेगा। हमारी रूढ़ि चली आ रही है तो इनने दो-चार घण्टे भक्ति कर ली, नहीं-तो ये आराम से सोते रहते।

हमारे लिये वह लोकरूढ़ि भी स्वीकार है जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की हानि न होती हो। उस रूढ़ि को भी स्वीकार कर लेना। ये आगम वचन हैं। आचार्य सोमदेव सूरि ने भी कहा है—वह लोकरूढ़ि भी स्वीकार है जिसमें सम्यक्त्व की हानि न होती हो। जिससे सम्यक्त्व की हानि हो रही हो, वह तुम्हारे घर की बात भी स्वीकार नहीं है। धर्म रूढ़ि से चलता है। रूढ़ि को स्वीकार नहीं करोगे तो समभिरूढ़ नय का क्या होगा? अवरूढ़ अर्थ आप ग्रहण कर रहे हो। 'धम्मो वत्थु सहावो' धर्म वस्तु का स्वभाव है, ये रूढ़ है। यदि इस रूढ़ि को नहीं मानोगे, तो तुम किस देश के हो, किस आम्नाय के हो, किस धर्म के हो? कोई कहे—आप आपके जमाने के अनुसार चलो—आप ये पानी कब तक छानते रहोगे? आजकल तो बहुत फिल्टर चलने लगे हैं, आप उनका प्रयोग कर लो। रूढ़ि में क्यों जी रहे हो? ज्ञानी! उनकी बातों में आ मत जाना। वह स्वच्छता की बात कर रहा है। अहिंसा का तभी पालन कर पायेगा जब छन्ने की रूढ़ि को जीवन्त रखेगा। **छन्ना घर-घर में ही नहीं, हाथ-हाथ में होना चाहिये। यही जैनदर्शन की प्रभावना है। जब भी तुम्हारे यहाँ कोई धार्मिक अनुष्ठान होता है, भजन का बुलऊआ होता है, स्टील/लोहे के स्थान पर छन्ना बाँटो जिससे जीवों की रक्षा की शिक्षा मिले। नाक पौंछने को रूमाल देते हो, तो जीवों की रक्षा के लिये छन्ना नहीं दे सकते हो क्या?**

उस रूढ़ि को छोड़ने की बात की गई है जिससे सम्यक्त्व का घात होता है। दर्शन-ज्ञान चारित्र का घात करनेवाली रूढ़ि को कभी स्वीकार मत करना। जिससे मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है, उस रूढ़ि पर तो चलना ही पड़ेगा।

मैं चाहता तो जाने कितने अरब-खरबपति का स्वामी होता ऐसे ही मुनि बनके। कितने प्रकार के लोग आते हैं, कई नेता आते हैं, महाराज! कोई काम हो तो बताओ। मैंने कहा—तुम तो अहिंसापूर्वक जीवन जिओ और मेरे पास कोई काम नहीं है। मेरे पास एकसूत्रीय कार्यक्रम है। वह क्या है? रत्नत्रय का पालन करो और कोई काम नहीं है।

कर्नाटक में विहार चल रहा था। रास्ते में अजैन बन्धु मोटरसाइकिल से जा रहे थे। खड़े हो गये, 'प्रणाम महाराज!' और तुरन्त अपनी जेब से हरे-हरे नोट निकाल कर मेरी तरफ बढ़ाये 'इन्हें स्वीकार करिये।'

हम लोग जैनसाधु हैं, निःसङ्ग हैं। ये किसी की 'श्री' और 'स्त्री' पर आँख उठाकर नहीं देखते हैं, इसलिये दिगम्बर हैं। वे चरणों में लोट गये। आज भी ऐसे साधु हैं। पैसे पर कौन नहीं रीझता। मठाधीसों के जाने के बाद अरबों-खरबों की सम्पत्ति निकल रही है। एक बार एक सज्जन की नोटों की गड्डी चूहे ले गये, खूब खोजबीन हुई। तुरन्त घर के लोगों पर अविश्वास मत कर लिया करो। भाई-भाई पर दोष—तुमने उठाया तुमने उठाया। एक की बुद्धि चली, चूहे के बिल को देखा गया, उसमें बढ़िया नोट बिछे पाये गये। और-आगे खोजा, उसके अन्दर धान्य सोना-चाँदी सारी सामग्री उस बिल के अन्दर निकली। परिग्रह संज्ञा प्रत्येक गति के जीवों में होती है। एकेन्द्रिय जीव के भी परिग्रह संज्ञा होती है। वृक्ष की जड़ें भी उस ओर जाती हैं जहाँ धन गड़ा होता है। वे मालूम कौन जीव हैं? जो यहाँ साधु भी बन गये, फिर भी अपने मठ में रह रहे हैं, वे बेचारे अभागे या साँप बनेंगे या चूहे बनेंगे। ज्ञानी! भगवान् की प्रतिमा में भी इतना राग मत करना। यहीं इतना अभिषेक कर लेना कि देव बन जाना। कई लोग मन्दिर में इतने रागी होते हैं कि मेरे बिना मन्दिर में कुछ नहीं होगा। किसी ने कुछ कर

लिया तो आर्त्त-रौद्र परिणाम कर लिये। इसी काल में आयुबन्ध हो गया तो दुर्गति का होगा। करणानुयोग के अभाव में तो कोई चर्चा हो ही नहीं सकती है। जितना गहरा समयसार का अध्ययन होना चाहिये, उससे कई गुना गहरा करणानुयोग का अध्ययन होना चाहिये। चारों अनुयोग का ज्ञान होना चाहिये। सोनागिर और ग्वालियर के बीच विहार के समय एक ट्रक वाले ने ट्रक खड़ा कर लिया, बोला, 'महाराज साब! आपको कहाँ जाना है?' हम लोग बोले, 'बुंदेलखण्ड जा रहे हैं।' बोला, आप कब तक परेशान होंगे? हमारा आज नया ट्रक आया है। स्वामी! उद्घाटन भी हो जायेगा, आपकी यात्रा भी पूरी हो जायेगी।' एक ज्ञानी कह रहा था कि अब तो बड़े-बड़े वाहन हो गये, अब ये पैदल की रूढ़ि छोड़ो। उस समय उससे कहा—'भैया! मैंने भी अभी रत्नत्रय का नया ट्रक खरीदा है। चलाऊँगा नहीं तो खराब हो जायेगा। ये खराब न होने पाये, इसलिये इसे पैदल चला रहा हूँ।

कोई ये न कहने लग जाये—पानी छानने की रूढ़ि छोड़ो, पैदल चलने की रूढ़ि छोड़ो। अब तो एक ज्ञानी ने बोल दिया, 'चातुर्मास की जरूरत नहीं है। अब तो पक्के रोड़ हो गये हैं।' रोड़ भले ही पक्के हो जायें, लेकिन पंचमकाल में सम्मूर्छन जीवों की उत्पत्ति कम नहीं होगी। इसलिये चातुर्मास करना ही चाहिये।

पंचमकाल में बड़े-बड़े लेख लिखनेवाले बैठे हुये हैं और छापनेवाले छाप भी देते हैं। समाज का पैसा है, पाप का पैसा होगा तो समाज के खोटे लेखों में जायेगा, पुण्य का पैसा होगा तो जिनवाणी छपवाने में जायेगा। देखो, पापियों के पैसे पंखे में लगे होंगे और पुण्यात्मा का पैसा श्रीजी में लगा होगा। इसमें शंका नहीं करना, जैसा द्रव्य होगा, उसका उपयोग वैसा ही होगा। एक जीव तीर्थभूमि में संडास में पैसा देता है और एक जीव मन्दिर के शिखर में पैसा देता है। रूढ़ि को छोड़ना मत और ऐसी रूढ़ि मत स्वीकारना जिससे मिथ्यात्व में डूब जाओ।

यहाँ पर दिगम्बर मुनियों के पवित्र चारित्र और स्वभाव का व्याख्यान किया है। जब जगत् के जीवों के स्वभाव विकृत हो जाते हैं, तब दिगम्बर मुनि का स्वभाव प्रकट होता है।

हे सुधी श्रावक! निर्ग्रन्थों को देख करके अपने अन्तस् में विशुद्धि का संचार कर लेना। ये धरती के देवता साक्षात् भगवत्ता के मार्ग पर चलनेवाले हैं। परमार्थ तत्त्व की सिद्धि का मार्ग (उपाय) जिनलिङ्ग है। जिनलिङ्ग को छोड़कर जिनेन्द्र बना नहीं जा सकता। जगत् में जितने लिंग हैं, वे सब संसार के साधन हैं। एकमात्र अरहन्त लिङ्ग ही ऐसा लिङ्ग है जो कि निर्वाण का कारण है। जिनशासन में तीन लिङ्ग की व्याख्या है। प्रथम मुनिलिङ्ग है, द्वितीय गृही लिङ्ग है, तृतीय आर्यिका लिङ्ग है आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'अष्टपाहुड' में इन तीन लिङ्गों की व्याख्या की है। जैनदर्शन में कोई चौथा लिङ्ग नहीं है। प्रथम लिङ्ग 'जिनलिङ्ग' दिगम्बर मुनि का लिङ्ग है, द्वितीय लिङ्ग उत्कृष्ट श्रावक ऐलक क्षुल्लक है, तृतीय लिङ्ग आर्यिका माता जी का है। ये तीन ही लिङ्ग जिनशासन में आराध्य, पूजनीय, सम्माननीय हैं। अन्य कोई जीव अन्य लिङ्ग को प्राप्त हो करके अपने आप को लोक में पूज्य कराना चाहता है तो वह अरहन्त के शासन से बाहर है। आगमग्रन्थों का आडोलन/स्वाध्याय बहुत अनिवार्य है। स्वाध्याय तो करना, जिनवाणी को सुनना, मित्रो! जिनवाणी सुनानेवाले ज्ञानी की विनय रखना, परन्तु जिनवाणी सुनानेवाले मात्र को ही लिङ्ग मान पर पूजना प्रारम्भ मत कर देना। आज यह हुआ है, एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया है जिसने प्रवचनकार को ही पूज्य बना लिया है, जबकि जिनेन्द्र के शासन में प्रवचन भक्ति है। प्रवचनभक्ति से तात्पर्य—जो प्रवचन है, वह द्वैत्वभूत है। एक प्रवचन जो जिनवाणी का व्याख्यान है, वह प्रवचन है। दूसरा प्रवचन जो जिनलिंग को धारण किये हुये हैं, वह जिनमुद्रा भी प्रवचन है। प्रवचनभक्ति में बहुश्रुत भक्ति में उपाध्याय परमेष्ठी को स्वीकार किया है। उपाध्याय परमेष्ठी ही जिनप्रवचन है, जिनेन्द्र के प्रवचनों को उद्घाटित करने वाले हैं, इसलिये उनके प्रवचन को स्वीकार किया है। वह 'प्रवचनसार' ग्रन्थ जो कुन्दकुन्द स्वामी का है, उस प्रवचन से तात्पर्य क्या है? रत्नत्रय धर्म को धारण करनेवाली आत्मा ही सारभूत है। वह रत्नत्रय युक्त आत्मा ही प्रवचनसार है। जहाँ चारित्र का भी वर्णन किया है, जहाँ द्रव्यदृष्टि का भी व्याख्यान किया है, जहाँ पर्यायदृष्टि का भी व्याख्यान किया है, जहाँ गोत्र का भी व्याख्यान किया है, ऐसे जिनेन्द्र

के जो उपदेश हैं, वह प्रवचन हैं और जिनेन्द्र के उपदेश के अनुसार प्रवृत्ति करनेवाले जो जीव हैं, वे भी प्रवचन हैं। मात्र शास्त्रों का श्रद्धान आपका प्रवचन वात्सलत्व नहीं है। अरहन्त पर भी श्रद्धान करना होगा, निर्ग्रन्थ पर भी श्रद्धान करना होगा, जिनवाणी पर भी श्रद्धान करना होगा। प्रवचन में लिखा क्या है, प्रवचन में कहा क्या है? बस, मैं तो एक घण्टे स्वाध्याय कर लेता हूँ, मेरा तो धर्म हो गया।

मेरे मित्र! बहुत गहरे में जाने की आवश्यकता है। एक घण्टे जो स्वाध्याय तुमने किया है यदि इन्वर्टर ने विद्युत को संग्रहीत तो कर लिया, उस विद्युत को संग्रह करके इन्वर्टर में ही रखे तो उसके संग्रह का उद्देश्य क्या था? जब विद्युत प्रवाह था, तब विद्युत को इन्वर्टर में संग्रहीत कर लिया, उसका उद्देश्य क्या था? हमारे आचार्यों ने उपदेश वो दिये हैं जिन्हें हमारे बालगोपाल भी समझते हों। जब बिजली चली जाती है, तब इन्वर्टर से आप प्रकाश करते हो। ऐसे ही आपने जो एक घण्टे स्वाध्याय किया है, उस स्वाध्याय का जीवन में प्रकाश क्या होगा? स्वाध्याय के बाद आचरण फलित न हो, स्वाध्याय के बाद विनय फलित न हो, स्वाध्याय के बाद साम्य भाव फलित न हो, तो तुम्हारे स्वाध्याय करने का उद्देश्य क्या है? जब वृक्षों में फल आ जाते हैं तो डालियाँ नीचे को झुक जाती हैं। जब तत्त्वज्ञान का फल अन्दर प्रवेश कर जाता है, तो जीव विनय से झुक जाता है। जिसको विनय का अभाव हो रहा है, वह फलवन्त वृक्ष कैसा? उसी प्रकार आज आचार्य भगवन्त यहाँ कह रहे हैं, हे श्रावक! **'मात्सर्यं कुरुते मोहात्'** ये जीव मोह के कारण मात्सर्य करता है। ईर्ष्या जब भी होगी, कहीं-न-कहीं किसी से मोह है। ईर्ष्या जब भी होगी, कहीं-न-कहीं किसी से राग है। जब विशेष रागी का राग तुमको पीड़ित करता है, तो आपको लगता है कि जिसके प्रति मेरा राग है, वह उसी की उन्नति देखना चाहता है। माँ! आपके जीवन की तत्क्षण की घटना है। ज्येष्ठ पुत्र है, लघु पुत्र है। जिसके प्रति तेरा राग अधिक है, उसके दोष भी तुमको दिखाई नहीं देते हैं और जिसके प्रति राग नहीं है, उसके प्रति तुमको ईर्ष्या होती है। यह लोक की व्यवस्था है।

घी वास्तव में कभी नहीं सड़ता, परन्तु घी के बनाते समय उसमें जो मरी रह जाती है, उसे अच्छे से नहीं निकाल पाती है। तपाने के बाद मरी, ऊपरी जो मैल था वह, नहीं हटाया, किञ्चित् भी रह गया, अथवा पानी का कण प्रवेश कर जाये, तो घी शीघ्र ही दुर्गन्ध देना प्रारम्भ कर देगा। धर्म-धर्मात्मा धर्म में कहीं विकार नहीं होता। धर्मात्मा में कहीं विकार नहीं होता। लेकिन धर्म खोजने कहाँ जायेंगे? धर्म तो धर्मात्मा में ही देखा जाता है। धर्म में विकार नहीं होता। धर्मात्मा में विकार नहीं होता। घी की दुर्गन्ध नहीं होती, घी तो गोरस की शुद्ध पर्याय है। धर्मात्मा तो संसार का पवित्र प्राणी है। परन्तु जैसे घृत में मरी रहने पर दुर्गन्ध आ जाती है, ऐसे ही धर्मात्मा बनने के पूर्व, धर्म के भेष में आने के पूर्व यदि कोई जीव अपनी कषाय की मरी को नहीं निकाल पाया और शीघ्र धर्मात्मा के भेष में आकर बैठ गया, वह जीव धर्म में मल पैदा कर देता है, दुर्गन्ध उत्पन्न कर देता है। धर्म के क्षेत्र में आने के पहले, धर्म के क्षेत्र में उतरने के पहले, प्रसिद्धि पाने के पहले आत्म-सिद्धि करना चाहिये। आत्मसिद्धि यानी कर्मातीत दशा, शुद्ध दशा। मैं परमात्मा के चरणों में पहुँच रहा हूँ। इतने मात्र से काम नहीं चलेगा। मन्दिर में आप अकेले नहीं होंगे। मन्दिर में युवा भी होंगे, युवतियाँ भी होंगी, मातायें भी होंगी, अन्य पुरुष भी होंगे। मन्दिर में अनेक प्रकार के गीत-संगीत भी बजते दिखाई देंगे। मन्दिर में दर्पण भी रखे होंगे। मन्दिर में चित्रशालायें भी होंगी, मन्दिरों में बगीचे भी होंगे। प्राचीन काल में मन्दिरों में सब व्यवस्थायें थीं। रहस्य था कि जिनालय को समवसरण बनाया जाता था। जिनालय में प्रवेश करने के पहले खजुराहो के मन्दिरों का रहस्य भी यही है। लोक में सभी राग-रंग के स्थान खजुराहो में मिलेंगे। खजुराहो के मन्दिर के बाहरी परिसर में सारे राग-रंग होंगे। पुत्तलिकायें भी मिलेंगी। लेकिन गर्भालय के भीतर मात्र एक अरहन्त की प्रतिमा मिलेगी। सारे पत्थर/पाषाण समान होंगे। एक भी चित्रकला, एक भी पुत्तलिका, अन्दर परिसर में कुछ भी नहीं है। रहस्य पकड़िये। आपको मन्दिर में प्रवेश बाद में करना है, पहले बाहर घूम कर आइये, मन्दिर की परिक्रमा लगाइये, आपको सबकुछ दिखेगा। हे जीव! लक्ष्य यदि लक्ष्य पर है, तो शेष

अलक्ष्य हैं। यदि आप आगरा आने के उद्देश्य से आये थे कि आगरा आकर महाराज के प्रवचन सुनेंगे। यहाँ आने के पूर्व आपको रास्ते में बहुत सारी सामग्रियाँ मिली थीं, लेकिन आपको एक भी वस्तु नहीं दिखेगी, क्योंकि तुम्हारा लक्ष्य यहाँ आने का था। जब गोमटेश की वन्दना करने जाते हैं तो रास्ते में पूरा महाराष्ट्र पार करना पड़ता है, मध्यप्रदेश पार करना पड़ता है, पूरा कर्नाटक पार करके अन्त में गोमटेश पहुँचते हैं। लेकिन किसी प्रान्त ने आपको प्रभावित नहीं किया, क्योंकि आपकी प्रान्तों के दृश्यों पर दृष्टि नहीं थी, आपकी गोमटेश के चरणों पर दृष्टि थी। ऐसे ही जो खजुराहो में पुत्तलिकायें बनी हैं, वे कह रही हैं कि पहले आप सबकुछ निहारिये। यदि आपकी दृष्टि विकारी है, तो आप उनको देख कर ही समय निकाल दोगे। अविकारी दृष्टि है तो उनको देखने पर भी एक भी पुत्तलिका दृष्टिगोचर नहीं होगी, क्योंकि तुम्हें दृष्टि में भगवान् दिखता है। लक्ष्य न्यून होता है, अलक्ष्य विशाल होते हैं। परन्तु लक्ष्यवान की दृष्टि में अलक्ष्य न्यून हो जाते हैं लक्ष्य विशाल है। आपको अपने बचपन की याद है क्या? सोने-चाँदी के आभूषण रख देना, लेकिन यदि बालक ने गुब्बारा देख लिया तो उसको तुम्हारे सोने-चाँदी के आभूषणों से कोई प्रयोजन नहीं है, उसके लिये वह एक रुपये का गुब्बारा विशाल है। उस मचलते बालक को तो वही गुब्बारा चाहिये। आपकी दृष्टि में दुनियाँ कीमतवान है। उसकी दृष्टि में तो कीमत गुब्बारे की है। ऐसे ही मित्रो! जब रागियों को सारे राज्य में वे कीमतमय दिखते हैं, तब आकाश में उड़ता गुब्बारा बच्चे को महान् दिखता है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन को आकाश में गमन करती हंस-आत्मा ही श्रेष्ठ दिखती है, जगत् का कोई परिग्रह उसको महान् दिखता ही नहीं है। लक्ष्य ही महान् है। जो लक्ष्य पर चलता है, वह बनता भगवान् है, परन्तु लक्ष्य सम्यक् होना चाहिये। जिसने अपने जीवन में लक्ष्य निर्धारित नहीं किया, वह असफल हो जायेगा। चाहे लोक हो, चाहे परमार्थ हो, एक लक्ष्य बनाकर चलना पड़ेगा। मध्य में बहुत सारे लोग मिलते हैं, हर प्रकार के सलाहकार मिलेंगे, लेकिन किसी की सलाह सुनने की आवश्यकता नहीं है। आप यहाँ घर के कितने सारे काम छोड़ कर आये हो। कभी-कभी बेटे की माँ कहने लगती

है कि इतना काम और निपटा लेते, आज न जाते तो क्या होता? रोज तो प्रवचन सुनने जाते हो। यदि मध्य के लोगों की बात सुन लोगे तो आप प्रवचन हाल में नहीं पहुँच पाओगे। फिर जगत् की बातें सुन करके सिद्धालय में पहुँचने की कामना करनेवाले जीव सिद्धालय तक पहुँच नहीं पायेंगे। दुनियाँ की सुनते हुये भी अनसुना करना पड़ता है, यदि उत्कृष्ट करना है तो। यदि आप सारे जगत् की सुनने बैठ जाओगे तो अपने लक्ष्य की सिद्धि नहीं कर सकोगे। सुनानेवालों के पास मुख है, जिह्वा है, समय है। सुनानेवाले मुख बहुत हैं, सुननेवाले कान दो हैं। जगत् में जितने मनुष्य हैं, वे बोलनेवाले हैं। यदि सुनानेवाले को मैं सुनता रहा, तो सुननेवाले को नहीं सुन सकूँगा। मोक्षमार्गी सुनानेवालों को नहीं सुनता, मोक्षमार्गी सुननेवाले को सुनता है और सुननेवाले से निर्णय करके फिर चलता है तो लक्ष्य पर चलता है। दुनियाँ में सलाहकार अनेक हैं। यदि सलाहकार की मानोगे तो जीवन नहीं जी पाओगे। क्यों? हर व्यक्ति के पास एक नई सलाह है। तुम कितना कर सकोगे? तुम्हारी आयु कितनी है? तुम्हारे पास समय कितना है? एक सलाह स्वीकार कर लो मेरी। एकसूत्रीय कार्य है। बड़ी-बड़ी संस्थायें एक रजिस्टर रख देती हैं। सभी लोग अपनी सलाह इसमें लिख दीजिये, मेरे पास सुनने का समय नहीं है। जितना सुनेंगे, मस्तिष्क में जायेंगी, फिर निर्णय करने में तुम विचलित हो जाओगे। ऐसे ही अपने जीवन का एक रजिस्टर बनाओ, उसमें कोई दूसरा सुनाने न भी आये, आपके ही मस्तिष्क में जो अनेक प्रकार के विचार आ रहे हैं उनको नोट करके छोड़ दो। आगे जिस काम को कर रहे हो उस पर जाइये। गहरी बात समझो। मैंने भी अपने जीवन में डायरी बनाई। संघ में आने के पहले ही डायरी बनाई थी। जितने प्रकार के मुनि दिखते थे, जितने प्रकार के विद्वान् दिखते थे, जितने प्रकार के त्यागी दिखते थे, उन सबकी बातें उसमें लिख कर छोड़ देता था। किसी को अपने जीवन में बहुत बड़ा टेंसन भी हो जाये, वह निकल ही नहीं रहा हो, कुछ ऐसी बातें होती हैं जिन्हें आप दूसरे को बताने की ताकत नहीं रखते हो, अथवा ऐसा भी होता है कि आप बताने की ताकत तो रखते हो, पर सुननेवाला पचाने की ताकत नहीं रखता। आप इतने

सहज हैं कि आप अपनी सारी-की-सारी समस्या दूसरे को बताने के लिये तैयार हो गये, मेरे मित्र! आप तो सहज हो गये, लेकिन सुननेवाला सहज है कि क्रूर है? आपको सुनने के बाद दुरुपयोग न करे आपका, तो सबसे सुन्दर उपाय एक ही है। मन में कोई बात गूँजे और निकल न रही हो, तो एक डायरी बनाना, इस बात को वहीं लिखकर छोड़ देना, आगे इसके बारे में सोचूँगा। आप अवश्य तनावमुक्त हो जायेंगे। अशुभ भाव आये हैं तो मेरे में आये हैं। शुभ भाव आयेंगे तो मेरे में आयेंगे। सुननेवाला तो हाँ-हूँ ना-नूँ करके चला जायेगा, लेकिन परिणाम तुझे ही भोगना पड़ेगा। ये जीवन की गहराइयाँ हैं। जितने लोग जी चुके हैं और जितने आध्यात्मिक महापुरुष हुये हैं, ध्यान दो, जितना सुन्दर पुष्प खिलता है, पुष्पों का राजा गुलाब है, जहाँ गुलाब खिल रहा हो, पूरे स्थान को महका देता है; परन्तु गुलाब जितना खुशबूदार होता है, उस गुलाब के साथ उतने ही काँटे होते हैं। तुम्हारा जीवन जितना खुशबूदार महकदार होगा, उतने ही शूल भी होंगे। तीर्थंकर पारसनाथ की प्रतिमायें हर जिनालय में प्राप्त हो जायेंगी। जब भी संकट आता है, हे पारसनाथ स्वामी! आपकी जय हो। जबकि सबको मालूम है कि वे अपने जीवन में कितने संकटों से घिरे रहे हैं, आप क्यों बोलते हो? क्योंकि भगवान्! आपने इतनी समता धारण की है, वह शक्ति मुझे भी प्राप्त हो, इसलिये मैं आपकी जय बोलता हूँ। पारसनाथ स्वामी इतने महान् क्यों हो गये? तीर्थंकर तो सभी महान् ही होते हैं, लेकिन पारसनाथ उनका इतना प्रचार क्यों हो गया? जो जितने उपसर्गों के काँटों में जी लेता है, वह उतना ख्याति को प्राप्त हो जाता है। कभी भी संकटों में घबराना नहीं, समय दे देना। भविष्य में हर समय अपनी सच्चाई की सफाई मत देना। जब लोग ईर्ष्या से भरे होते हैं, जब जीव मात्सर्य से युक्त होता है और किसी दूसरे से मोह लगा होता है, तो आप कितनी ही सफाई दोगे, लेकिन आप अपना समय नष्ट कर रहे हो, शक्ति नष्ट कर रहे हो, अपने धर्म के उपयोग को व्यर्थ की स्मृतियों में नष्ट कर रहे हो। कोई सफाई की आवश्यकता नहीं है, समय दे देना। जब समय आयेगा, तो मात्सर्य वाले जीव का मात्सर्य ढीला हो जायेगा, तो उसको अपने आप में सत्य समझ में आ जायेगा।

कमठ ने पारसनाथ स्वामी पर उपसर्ग किया। भाई था। दस भाव तक करता रहा। लेकिन कमठ ने सम्यक्त्व भी कहाँ प्राप्त किया? हे कमठ! जिन पर तू उपसर्ग करता रहा और जिनके राग में उपसर्ग किया, वे रागी तो तुझे नरक ले गये। जिन पर उपसर्ग किया था, वे तुझे सम्यक्त्व का साधन बन गये। उन्होंने तुझे सम्यक्त्व प्रकट करा दिया। कमठ को सम्यक्त्व पारसनाथ के चरणों में ही हुआ था। जब देख लिया कि सत्य ये है, भूतार्थ ये है, मेरी दृष्टि असत्य थी, मैं राग भाव से युक्त हो करके और मात्सर्य में लिप्त हो करके उपसर्ग करता रहा। राग छटा, मात्सर्य छटा, तो वस्तुस्वरूप झलक गया। मिट्टी में लिप्त सोने को फेंक मत देना, इतना ध्यान रखना। नाली में कोई आभूषण गिर जाये तो भी उसे उठा लेते हैं।

अभी एक घटना घटी। किसी अनाचारी ने एक पुरुष के गले की चैन को खींच लिया और वह चैन बहुत वजनदार थी। जब लोगों ने उसका पीछा किया तो वह चैन निगल गया। कहता है, 'देख लो, मेरे पास कहीं नहीं है।' उसके ऊपर संदेह था, सो उसको पुलिस ने पकड़ लिया। उसे डाक्टर के पास ले गये। डॉक्टर ने उसको एक-साथ पच्चीस केले खिला दिये और पानी पिला दिया। केला पेट को साफ कर देता है। चैन उसके मल में निकल गई। अब तो चैन मल की हो गई, उसे उठाओगे कि नहीं? उठायेंगे। ऐसे ही कभी तेरे परिणाम धर्ममय थे और कदाचित् किसी अशुभ कर्म के उदय से परिणामों को पापरूपी तस्कर ने चुरा लिया, तब भी भेदविज्ञान के केले खिला करके परिणामों को पुनः शुद्ध कर लेना। चैन नहीं फेंकते वैसे ही परिणामों को तुम अशुभ ही मत मान बैठना। निज के भावों की बात करो।

आपको मालूम होना चाहिये, युवक-युवतियाँ और त्यागीगण भी आत्महत्या करने बैठ जायें, उनका उद्देश्य समझो। व्रत लिये थे, उनसे कभी व्रत भंग हो गया, वो यह मान बैठे कि अब तो मैं कुछ ही नहीं हूँ। नहीं मित्र! आगम की व्यवस्था को समझो। इसलिये गहरा पाण्डित्य चाहिये। ऊपरी पाण्डित्य ने कई

लोगों की पिच्छियाँ छुड़ने पर पिच्छियाँ नहीं लेने दिये। क्यों भाई! कितनी बार परिणाम ऊपर-नीचे होते हैं। जो केवली बने, उनसे जाकर पूछ लेना, क्या आप एक बार में केवली बन गये? नहीं। **आत्महत्या करना कोई संयम की शुद्धि नहीं है। आत्महत्या कोई शंका का समाधान नहीं है। तुमसे कोई पाप हो गया, लोक में तुम्हारा कलंक भी फैल गया, तब भी तुम आत्महत्या मत करना। क्योंकि कलंक मिटे या न-मिटे, लेकिन कर्म का कलंक नियम से मिटता है। ये लोक तो लोक है, अज्ञानमयी है। भावुकता का भूत और शब्दज्ञान का व्यन्तर/पिशाच जिसको लग गया हो, वह वस्तुव्यवस्था को नहीं समझता। कभी मत सोचना कि अब मैं जीने लायक नहीं हूँ। जीवन नष्ट कर लेगा तो पाप का प्रक्षालन कब करेगा? जीवन बचा रहेगा तो जो जीवन तूने पाप में नष्ट किया था, बचा हुआ जीवन पाप के प्रक्षालन में प्रयोग करो।** राजा महाराजा चक्रवर्ती ने कितने युद्ध किये हैं, लेकिन अन्त में सन्यास लेकर शुद्ध हो गये। धिक्कार हो मुझे, खून की नदियाँ बहा दीं इस गुरु के राग में। राजा मधु ने हाथी पर बैठे-बैठे केशलोंच कर लिये। जो शत्रुघन धनुष-बाण छोड़ रहे थे, वे हाथ जोड़ रहे थे, 'भो स्वामिन्। नमोऽस्तु।' सेनापति कह रहा था आप ये क्या कर हरे हैं? वो तो आपके शत्रु हैं। बोले शत्रु चला गया है, अब साधु मात्र है। वन्दना शत्रु की नहीं होती है, साधु की होती है। ये दिगम्बर वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनिराज हैं। मुनिलिंग धारण करते ही सारी शत्रुता पलायन कर गई। जो शत्रुघन समरभूमि में धनुषबाण लेकर खड़े थे, वे हाथ जोड़कर खड़े हुये थे। धन्य हो जिनमुद्रा को। शत्रु भी हाथ जोड़ता है, उसका नाम वीतरागी निर्ग्रन्थ मुद्रा है।

उत्कर्ष चाहिये तो लक्ष्य से मत डिग जाना। दो तटों के मध्य में नहर का पानी हजारों किलोमीटर तक दूर ले जाया जाता है। रास्ते में कहीं फूटने भी लग जाये तो तुरन्त जोड़ कर रखते हैं, क्योंकि पानी को दूर तक लेकर जाना है। ऐसे ही मेरे मित्रो! तुम्हारे अन्तरंग में शील की धार चल रही है। चारित्र के तट हिलने न लग जायें, तुरन्त सँभाल लेना, क्योंकि पानी बहुत लम्बे लेकर चलना

है। खेतों में जायेगा तो फसल उगायेगा। ऐसे ही तेरा संयम, तेरा शील स्वानुभूति की खेती में जायेगा तो मोक्ष के फल उगायेगा। मात्सर्य बिना मोह के नहीं होता है। मात्सर्य मोह से ही होता है। जब मोह से मात्सर्य होता है, तब दूसरे सत्य के पक्ष को देखने का मन ही नहीं होता है। जगत् में कितने एकान्तवादी दर्शन हैं, क्या इन मिथ्या दर्शन वालों को पता नहीं है कि सम्यक् क्या है? विश्वास रखिये, जो विपरीतता में जी रहे हैं उन्हें भी मालूम है कि सम्यक् क्या है? विपरीतता ज्ञान के कारण नहीं है, विपरीतता श्रद्धान के कारण होती है। ज्ञान में विपरीतता होती ही नहीं। श्रद्धान विपरीत होता है तो ज्ञान विपरीत हो जाता है। पढ़ो सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोक-वार्तिक, रत्नकरण्डक, पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय। समन्तभद्र स्वामी ने जब सम्यग्दर्शन का वर्णन किया तो इतने सम्यक् रूप से किया है। रेलवे स्टेशन में लाइटें लगी रहती हैं। कभी लाल, कभी पीली, कभी हरी दिखती है। आगम कहीं भी भ्रमित करने के लिये नहीं है। बत्ती कभी पीली, कभी हरी, कभी लाल दिखती है। यथा उद्देश्य तथा निर्देश। जैसा उद्देश्य होता है, वैसा निर्देश होता है। हर समय लाल नहीं जलती, हर समय पीली नहीं जलती और हर समय हरी नहीं जलती। परमार्थ को समझने के लिये भी लौकिक ज्ञान आवश्यक है, लेकिन लौकिक ज्ञान परमार्थ नहीं है। लाइटिंग में तीनों प्रकार के वर्ण आ रहे हैं। मूल विद्युत का रंग कैसा है? बिना समयसार के तो आप संसार में भी नहीं जी सकते हैं। अब तो कहना ही पड़ेगा कि न लाल, न पीला, न हरा। तो कैसा है? जैसा है, वैसा है। जो है, सो है। ऐसे ही ज्ञान न सम्यक् होता है, न मिथ्या होता है। काँचों का रंग जैसा होता है। वैसा प्रकाश दिखने लगता है। ऐसे ही जैसी श्रद्धा होती है ज्ञान वैसा होने लगता है। सम्यग्दर्शन के साथ है तो सम्यग्ज्ञान है, मिथ्यात्व के साथ है तो मिथ्याज्ञान हो गया। गौतम स्वामी को एक अन्तर्मुहूर्त पूर्व चार वेदों का ज्ञान था और अन्तर्मुहूर्त के बाद वह द्वादशांग का ज्ञान सम्यक् रूप में परिवर्तित हो गया। इसलिये किसी को हेय मत देखना, किसी को हीन मत देखना। मारीचि ही महावीर बना है। वर्तमान की पर्याय विपरीत हो तो मध्यस्थ हो जाना, लेकिन उसको भी गाली मत देना,

क्योंकि वह भी तुम्हारी गाली का पात्र नहीं है, वह भी भविष्य का भगवान् है। यह ध्रुव सत्य है कि वक्ता श्रोता को चाहे भावों में ऊपर भेज दे, चाहे नीचे गिरा दे। वक्ताओं को व्याख्यान की भाषा बदलना चाहिये। श्रद्धाओं को बढ़ाने की भाषा बोलो, श्रद्धाओं को तोड़ने की भाषा मत बोलो यदि करुणा है तो। वक्ता तो परम करुणाशील ही होता है। दया वक्ता का पहला लक्षण है। दया, दम, त्याग, समाधि-निष्ठं, ये चार सूत्र नोट कर लो। ये चार होंगे तुम्हारे अन्दर, तब तुम वक्ता कहलाने के पात्र हो। जिसका अष्ट मूलगुण का पालन न हो, अमृतचन्द्र स्वामी उसको प्रवचन सुनने का भी अधिकार नहीं देते हैं, बोलना तो दूर है। **जिसका मद्य माँस मधु का त्याग न हो, पाँच उदम्बर फलों को खाने का त्याग न हो, जो रात्रिभोजन करता हो, बिना छना पानी पीता हो, वह व्यक्ति प्रवचन करना तो दूर है, प्रवचन सुनने का पात्र नहीं है। रात्रि में रसगुल्ले जलेबियाँ न सही, केशरपाग दूध घोंट कर पी रहे हो, वे वक्ता तो दूर हैं, सुनने के अधिकारी नहीं हैं।** वक्ता कैसे बन सकते हैं? ये अरहन्त का उपदेश है, गणधर की गद्दी में बैठने के पहले चार सूत्र याद करके आना चाहिये। मुख में नहीं, जीवन में उतारा हुआ।

वक्ता दयावान होगा तो श्रोताओं पर करुणा करके बोलेगा। आपको कषाय में भड़कायेगा नहीं, मात्सर्य में नहीं ले जायेगा। मात्र तत्त्व की प्ररूपणा करके प्राणिमात्र के प्रति आपको करुणा सिखायेगा।

शेर के बारे में आपका क्या वक्तव्य होगा? शेर आ जाये तो हे ज्ञानी! अपनी रक्षा करना, परन्तु शेर का विघात मत करना क्योंकि वह भी भावी भगवान् है। महावीर स्वामी का भक्त ऐसा बोलेगा। पापियों का भक्त क्या बोलेगा?—हिंसक जानवर को मारने में हिंसा नहीं है। हे अभागे! अहिंसक को मारने में हिंसा है, हिंसक को मारने में महाहिंसा है। छिपकली प्रकाश के कीड़े खा रही है, तो क्या करोगे? अज्ञानी कहेगा कि एक को मार दो तो इतनों की रक्षा होगी। अरे अभागे! तू क्या कर रहा है? तेरा अहिंसा दया धर्म है, आप विद्युत मत जलाओ, लेकिन छिपकली को मत मारो, विवेक सीखो। तुम गद्दी में बैठे हो, प्रवचन में बहुत

ताकत होती है। कोई आदमी पचास वर्ष तक आपको न पहचानता हो और एक दिन आप गद्दी में बैठ गये तो हजारों ने तुमको पहचान लिया है। वाणी में वो ताकत होती है। प्रवचन की प्रीति सबको अपना बना लेती है। आप दमनशील नहीं होंगे तो यहाँ कषाय को उगलोगे। इतने लोगों के ऊपर जहर फेंक दिया। एकान्त बोलोगे तो इतने लोगों पर तुमने जहर फेंक दिया, आप स्व-पर बैरी हो गये। आपके घर में एक नारी है, यहाँ सुनने के लिये हजारों नारियाँ बैठी होंगी। तेरे अन्दर दमन नहीं है तो तू प्रवचन नहीं करेगा, पर की दृष्टि में दृष्टि फेंकेगा। हे पापी! तू वक्ता नहीं है, तू व्यभिचारी है। दूसरा हेतु दम दिया। वक्ता को दमी होना चाहिये, स्वयं की इन्द्रियों पर दमन होना चाहिये। वक्ता बनना कोई हँसी-खेल नहीं है। पर्युषण आया, कितने व्यक्ति प्रवचन करने लग गये। अरे! तुम्हारी इन्द्रियों में दमन नहीं, तुम्हारी युवावस्था में दमन नहीं है, आपका सदाचार पलना चाहिये। आज तुम प्रवचन करने गये हो, कभी तुम स्वयं होटल पर चाट खाते मिल गये, अब तुम्हारा प्रवचन क्या प्रभावी होगा? गद्दी में आने के पहले दमन करना सीखना पड़ेगा। वजन/भारी वस्तु ही दूसरे को रोक पायेगी। मोक्षमार्ग घनत्व का मार्ग है। शिष्य है, भक्त है, ये बिरलन है। इनको आप रोक सकते हो तो प्रज्ञा का घनत्व चाहिये, इन्द्रियशमन का घनत्व चाहिये, और चारित्र का घनत्व चाहिये तब तुम सबको रोक पाओगे। तुम स्वयं घास-फूस बन गये तो तुम्हीं पहले गिर जाओगे। परिवार का मुखिया है, अब तुम वैसे नहीं रह पाओगे जैसे पहले थे। अब बहुत सँभल कर रहना पड़ेगा। कभी आपके घर में कोई मांगलिक कार्य हो और समाज का भोजन हो, उस दिन अपने पिताजी दादाजी को देखना, जब पूरे लोग भोजन कर लेते हैं, उसके बाद भोजन करते हैं। ऐसा ही होना चाहिये। स्वयं भोजन नहीं कर रहे, शुद्ध भोजन बनाकर खा रहे हैं, जबकि सबको मिठाइयाँ खिला रहे थे, स्वयं भोजन नहीं कर रहे हैं, क्यों? किसी प्रकार का विघ्न न हो, किसी प्रकार का विकल्प न आये, स्वयं भगवान् की जाप कर रहे हैं, कितना सम्यक् जीवन जी रहे हैं और घर मुखिया ही असम्यक् हो जाये तो उस घर का बिखराब निश्चित है। वक्ता का दमन होना चाहिये। "दया-दम-त्याग।" ज्ञान के बाद कोई भाव लक्ष्य जाता है तो त्याग वगैरह अच्छा है, तपस्या अच्छी

है, तुरन्त भाव जाता है। आप आहार देखने जाते हो तो दुनियाँ के पकवान देखने नहीं जाते हो, आप तो ये देखने जाते हो कि थालियाँ सजी हुई हैं, तब भी सब हटा करके जो उनकी संयम की साधना के अनुकूल था, उतना शेष है, बाकी सब हटा दिया। मैं उनके त्याग को देखने गया था, लोग तड़पते हैं कि ये मिल जाये, ये मिल जाये, वो मिल जाये। इनके सामने आने के बाद भी ये सब हटा रहे हैं। मैं इससे प्रभावित हूँ। त्याग अब तुम प्रवचन कर रहे हो, आपके जीवन में त्याग क्या है? पूजा त्याग की ही होती है। आप-जैसे विद्वान् जहाँ गोबर पड़ा होता है वहीं बैठ जाते हो। कब महाराज! कब? कोई त्याग करता है उसे तुम लेने जाते हो देखने आते हो। सारे देश में भैंसें क्या कमा कर ला रही हैं? गाय कमा कर ला रही है तो उनको तुम कितने अच्छे से रखते हो। उनको खिलाते-पिलाते हो तो वे सुबह से दूध का त्याग करती हैं। उस समय तुम गोबर के स्थान पर दूध निकालने बैठ जाते हो। जहाँ से त्याग होते दिखता है, तुम उसको कितने प्रीतिपूर्वक देखते हो। त्याग था। गाय त्याग न करे तो लोग न मानें, दाना न खिलायें, घर में बाधें न। ये त्याग की महिमा है। वह दिन में दो बार त्यागती है, तो आप उनको अच्छे से रखती हो। योगियों ने जीवन भर त्याग किया है, इसलिये उनको आप कितने अच्छे से बुलाते हो। कुछ भी कहो, 'जो है, सो है।' त्याग है। जो गाय/भैंस दूध देना बन्द कर देती है, उसके खाने दाने में भी तुम भेद करते हो। बोलो, ऐसा नहीं है क्या? जो जितना त्याग करेगा, उसकी उतनी ही सेवा होगी। तुम वक्ता हो, हजारों तुम्हारा चेहरा देख रहे हैं, तुम्हारे चेहरे पर तो वर्द्धमान की वीतरागता झलकना चाहिये। तुम यहाँ बैठ करके लाल चेहरा बनाओगे। समाधि नहीं है तो साम्यभाव नहीं है। श्वान भी भाग जाते हैं, फिर तो इंसान है। ऐसे ही तू यहाँ तो अच्छी-अच्छी बातें कर रहा है और कमरे में तू गुस्सा करे, अन्य कार्यों में गुस्सा करे, नहीं। साम्यभाव का जीवन जीना बहुत बड़ी साधना है। प्रतिपल प्रतिक्षण चेहरे पर मुस्कराहट कभी नष्ट नहीं होना चाहिये। जैसे गुलाब का फूल कितना ही मुरझा जाये, लेकिन वह अपनी सुगन्ध नहीं छोड़ सकता। चन्दन को घिस दो। अग्नि में डाल दो, तब भी अपनी सुगन्ध समाप्त नहीं होने देता। ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीव अपने चेहरे के प्रमुदित भाव का कभी

अभाव नहीं होने देता। वक्ता के अन्दर ये गुण होना बहुत आवश्यक है। खिन्नता नहीं लाना क्योंकि आप सबको सिखाने वाले हो, बताने वाले हो। ऐसा न हो। रावण ने अच्छा नहीं किया, यह समझ तभी तक है जबतक तेरे भीतर रावण नहीं आया। ऐसी समझ नहीं होना चाहिये। हर व्यक्ति समझदार होता है। दूसरे के घर में कोई की मृत्यु हो जाये तो तुम बैठने जाते हो, समझाने जाते हो। वही घटना आपके घर में घट जाये तो उसी समझ को बुला लिया करो जो तू उसके घर में समझाने गये थे। जो समझ पर के लिये आपने रखी थी, जो पर को समझ दे रहे थे, उसको थोड़ी सुरक्षित रखना। कभी अपने ऊपर कोई बात आ जाये तो उसी समझ से हम अपने आपको समझा सकें।

जो मात्सर्य और मोह से युक्त है, वह कभी किसी निर्ग्रन्थ मुनि को दान की क्रिया कर ही नहीं सकता है। जिसका मोह मात्सर्य कम होगा, वह निर्ग्रन्थों के दोनों हाथों पर विनयपूर्वक ग्रास रखेगा, कहेगा—स्वामी! मेरा यह ग्रास आपके मोक्षमार्ग का पाथेय बनेगा। ये ग्रास उसी रूप में फलित हो जैसे बीज में पड़ा पानी फल के लिये कार्यकारी होता है, ऐसे, मुनि के हाथ में दिया गया ग्रास उनके मोक्षफल के लिये बीज भाँति फलित हो। आहार इसलिये मत देना कि सब लोक समझे कि हमने भी चौका लगाया है, मेरी प्रशंसा होगी, महाराज तन्त्र-मन्त्र दे जायेंगे। इसलिये मत देना—कि मेरा नम्बर है। नहीं, नहीं। आहार इसलिये देना कि मेरा आहार ऐसा फलित हो, मेरे-नो कषाय का त्याग हो और उनके मोक्षरूप में फलित हो, इसलिये आहार दे रहा हूँ। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिं सर्गो दानम्। स्वयं के द्रव्य का त्याग 'दान' है। अपने द्रव्य का त्याग करना अनुग्रह के लिये, उपकार के लिये। मेरा निज का श्रावक का उपकार क्या है? लोभकषाय कम होगी, ये तेरा स्वयं का उपकार हुआ और जो साधु को आहार दिया है, ये आहारदान अभय दान भी है, ये जीवित रहेंगे तो साधना करेंगे। आहारदान, औषधदान भी है। सबसे बड़ा रोग तो क्षुधा है। उस क्षुधारोग का उपशमन होगा। साधु वे हैं जो क्षुधारोग के उपशमन के लिये आहार लेते हैं और रोगी वे हैं जो आहार करने के लिये औषधियाँ खाते हैं, और-भूख लगे, और-खाऊँ। अरे ज्ञानी! महापुरुष कम भोजन करते हैं। पुण्यात्मा जीव का भोजन थोड़ा होता है, पापी लोगों का भोजन अधिक

होता है। साधु एक बार अल्प भोजन करते हैं और चौबीस घण्टे आनन्द से रहते हैं। चतुर्थकाल में लोग एक बार भोजन करते थे। पंचमकाल में तो भैया! एक बार संडास को फुर्सत मिल जाय, श्मसान को फुर्सत मिल जाये, लेकिन मुख को फुर्सत नहीं मिलती। बुरा तो नहीं लग रहा? क्षमा करना। अब जो है, सो है। ऐसे अभागे हैं कि भरपेट खाना भी खा लेंगे, तब भी मुख में इलायची दबायेगा, मुख जूठा कर ही लेगा। पान-गुटका दबा कर जा रहा है, कहीं दुर्घटना घट गई तो खाते-खाते चला जायेगा। आप मेरी बात मान लो, खाने के बाद खाने का त्याग कर दिया करो। भले एक मिनिट का त्याग करना। हो सकता है कि उसी एक मिनिट में कुछ हो गया तो...? बहुत खाऊँगा, मोटा हो जाऊँगा। जितना ज्यादा खाओगे, उतने जल्दी बीमार होके ऊपर चले जाओगे। कम खाओगे तो स्वस्थ रहोगे, उतने समय तक जिनशासन की प्रभावना करोगे। भैया अधिक खाने का विचार मत करना, सामान्य भोजन करना। हमारे यहाँ रस परित्याग का विधान है। किसी की नलियाँ चोक हो रही हैं, किसी को कुछ हो रहा है। हमारे यहाँ कहते हैं कि तुम एक-एक दिन एक-एक रस कम खाओगे तो साम्यता रहेगी। रोग कोई दूसरी बलाय नहीं है, वात-पित्त-कफ इन तीन की विषमता ही रोग है।

यहाँ वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनियों के स्वभाव का वर्णन है। इतना गहरा वर्णन बड़ी सरल भाषा में है। उन धरती के देवताओं को नमोऽस्तु। न नारी में आसक्त हैं, न नर में आसक्त हैं, न धन में आसक्त हैं, आप तो परिग्रहजय में ही आसक्त हैं। मच्छर काटे तो कोई औषधि लगा रहा है, कोई तेल छिड़क रहा है, कोई आल आउट लगा रहा है, कोई कछुआ छाप लगा रहा है; परन्तु वे कह रहे हैं कि ये कर ही क्या रहा है? तुम्हें मालूम है, वैज्ञानिक दृष्टि से देखोगे तो पुण्यात्मा को ही मच्छर ज्यादा काटते हैं। क्यों? क्योंकि जिसके शरीर में मधुर रक्त होगा, सुन्दर पुरुष को मच्छर ज्यादा काटते हैं। अब जिसके शरीर में स्वयं विष भरा हुआ है, वह मच्छर भी मरने क्यों आयेगा? धन्य है उन योगियों को, उनके चिन्तन को, उनके भाव देखो, हे मच्छर! एक जोंक होती है, जल का कीड़ा। फोड़े आदि के अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने के लिये उस जोंक को चिपकाया जाता है। पुराने

वैद्य जोंक से रक्त की शुद्धि करते थे। मच्छर तुम्हारा वैसे ही रक्त निकाले ले रहा है, तुम क्यों टेंशन कर रहे हो? लेकिन तुम ऐसे न जोंक चिपकवाना न मच्छर से कटवाना ऐसा करेगा तो तुझे रक्त के पिलाने का घोर पाप पड़ेगा। फिर तो रक्त दान भी सफल हो जायेगा। वो कहेगा। महाराज! आपने ही तो कहा था। न रक्तदान कोई दान है, न मच्छर से कटवाना कोई धर्म है। परीषह क्यों? अचानक कोई कारण आ जाये, तो मन में दीनता नहीं लाना। ये मुनियों का धर्म है। पंचमकाल है, महाराज! आनन्द आ गया। अब मैं अपना रक्त शुद्ध करने के लिये दान देने आऊँगा। समझो, जिनवाणी है। आगम में लिखा है कि श्रोताओं के सुनते-सुनते उनके मुख में प्रश्न आये उसके पहले वक्ता को उत्तर खोज कर रख लेना चाहिये। श्रोताओं के अधरों की भंगिमा को देख करके वक्ता को समझ जाना चाहिये। ये क्या बोलना चाहता है, उसको उत्तर दे देना चाहिये।

जो परीषहजय में आसक्त है, ऐसे योगियों को कोटि-कोटि नमस्कार करना।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

मोक्षार्थी का लक्षण

मायां निरासिकां कृत्वा तृष्णां च परमौजसः।
रागद्वेषौ समुत्सार्य प्रयाता पदमक्षयम्॥ 208॥

अन्वयार्थ-(परमौजसः) परम तेजस्वी वीर पुरुष **(मायां च तृष्णां निरासिकां कृत्वा)** मायाचार और तृष्णा को दूर करके **(रागद्वेषौ समुत्सार्य)** और रागद्वेष को नाश करके **(अक्षयम् पदम् प्रयाताः)** अविनाशी मोक्षपद तक पहुँच जाते हैं।

भावार्थ-श्रेष्ठ तेजस्वी वीर पुरुष मायाचार और तृष्णा को छोड़कर राग-द्वेष को छोड़कर मोक्ष तक पहुँचे हैं।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मोक्षमार्ग के सम्यक् पथिक की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। भूतार्थ मोक्षमार्गी जीव उन्मार्ग से निज की रक्षा करने के लिये प्रतिक्षण जाग्रत रहता है, एक समय भी प्रमाद नहीं करता। आत्मा का महाशत्रु प्रमाद है। जितने क्लेश को प्राप्त हुये, होंगे, हो रहे हैं, वे सारे-के-सारे जीव प्रमाद के कारण निज की आत्मा का रक्षण नहीं कर सके और दोष दूसरों को दिये हैं। पर में खोज की है, परन्तु सत्यता ये है कि पर क्लेश का कारण नहीं था, प्रमाद क्लेश का कारण था। यदि आपके मन में ऐसा भाव आ रहा है कि महाराज! मैं प्रातः शीघ्र जिनालय आने के भाव रखता था, लेकिन बेटी को स्कूल भेजना था, इसलिये मन्दिर आने में विलम्ब हो गया। क्या सुन्दर बहाना खोजा है। धार्मिक अनुष्ठान में आप समय पर नहीं पहुँच सके, उस समय आपने दोष बेटी को दिया। मेरे मित्र! यह बेटी का दोष था या तेरे स्नेह का दोष था? पन्द्रह प्रमादों में स्नेह एक प्रमाद है। वह बालक तो आपके स्नेह का साधन बन रहा है, विषय बन रहा है, उसे तो आपने विषय बनाकर रखा है, परन्तु वास्तव में स्नेह किसके भीतर था? कोल्हू में तेल है कि तिल में तेल है? स्पेलर से तेल निकल रहा है, मेरे मित्र! वह तो साधन है। व्यवहार की भाषा में यह कहा जा रहा है कि स्पेलर से तेल निकल रहा है। कोल्हू तिल

के तेल को निकालने का साधन है, परन्तु तिल में तेल है, कोल्हू में तेल नहीं है। बेटे में राग नहीं है, रागी में राग है। स्नेह किसमें है? तेरा स्नेह किसमें है? व्यवहार कथन में यही आयेगा कि बेटे में स्नेह है, परन्तु सत्यता यह है कि बेटे के प्रति तेरे में स्नेह है।

बिलम्ब क्यों हुआ? बेटे को स्कूल छोड़ने जाना था। मेरे मित्र! तुम्हें मालूम है कि पुण्य साथ देगा तो अन्तिम श्वास तक भोजन मिलेगा, पुण्य साथ नहीं देगा तो कोई भोजन नहीं करायेगा। भोजन हो सकता है कोई अन्य ही कराये, परन्तु पालन तू अन्य का ही कर रहा है। णमोकार सुनानेवाला कोई दूसरा ही होगा। समाधि दिलानेवाला कोई-और ही होगा, देह का संस्कार करने वाला कोई और ही होगा। ज्ञानियो! लोक में जीने के साथ-साथ परमार्थ में भी जीना सीखो। परिवार को दोष देने के साथ-साथ निज के राग को दोष देना भी सीखो। परिवार के राग में द्वेष में जो दोष दे रहे हो, इससे अपनी रक्षा करो। धर्म से कोई आपको रोकनेवाला नहीं है। सामनेवाले को दिखता है, ये तो दृढ़ है, विश्वास रखना, आपके संयम में साधक बनना प्रारम्भ हो जायेगा। यदि आप तीर्थ-वन्दना को जाना चाहते हो, जिनपूजा को जाना चाहते हो और प्रतिदिन जाना प्रारम्भ करना चाहते हो, तो विश्वास रखना, आपके कुटुम्ब के सदस्य आपका सहयोग करना प्रारम्भ कर देंगे। माँ भी समय पर जगाना प्रारम्भ कर देगी कि बेटा! जाग जाओ, भगवान् की पूजा का समय हो चुका है। लेकिन जब तुम्हारा प्रमाद ही तुमको सताता है, जब जगत् के लोग तुम्हारे राग के साधन बनते हैं, प्रमाद नहीं होते हैं, तुम्हारे प्रमाद के साधन बनते हैं। प्रमाद तुम्हारे भीतर ही है। प्रमाद का जीवन कितना जिया है और निष्प्रमाद का जीवन कितना जिया है? प्रमत्त दशा में कितना जीवन नष्ट किया है, अप्रमत्त का तो स्पर्श ही नहीं किया। जिसे आप अप्रमाद बोलते हो, वही प्रमाद है। कोई घर-गृहस्थी का काम स्फूर्ति में कर लिया तो आप बोलते हो महाराज! मेरे में बिल्कुल प्रमाद नहीं है। मेरे मित्र! तुम जो कर रहे हो, वह प्रमाद ही तो कर रहे हो। **पाँच इन्द्रिय के विषयों के लिये, पाँच इन्द्रियों की पुष्टि के लिये जो कुछ भी तुम करोगे, वह सब प्रमाद हैं। उसे**

तुमने प्रमाद नहीं कहा। धन भी कमा रहे हो तो यह प्रमाद ही है। धन व्यय भी कर रहे हो तो वह भी प्रमाद ही है। आगम कठिन क्यों लगता है? क्योंकि हमने मात्र वही सुना है, वही जाना है, जिससे पाँच-इन्द्रियविषयों की पुष्टि होती हो। उसको शरीर की स्फूर्ति से कर लिया तो उसे आप अप्रमाद कहते हो। **जो-जो आत्मकल्याण के लिये घातक है, वह सारी प्रवृत्ति प्रमाद हैं।** जब गुणस्थान क्रम की व्याख्या करोगे, प्रथम से छटवें गुणस्थान तक प्रमाद है। जब भगवान् की पूजा करना प्रमाद है, भगवान् की स्तुति करना प्रमाद है, अप्रमत्त दशा की व्याख्या करोगे तो पाँच-पापों में लिप्त होना अप्रमाद कैसा? जो अप्रमत्त दशा है, वह सप्तम् गुणस्थान से प्रारम्भ होती है। जहाँ विकथाओं पर दृष्टि है, तत्त्व की बात प्रारम्भ हो जाये तो तुझे निद्रा सता रही है, राष्ट्र कथा में रातों-रात निकाल देते हो, भोजन कथा प्रारम्भ हो जाये तो रातों-रात निकाल देते हो, कर नहीं रहे, मात्र कथा कर रहे हैं। यहाँ तक कि पन्द्रह बीस वर्ष पहले किसी स्थान पर गया था, वहाँ तुम्हें भोजन करने को मिला था, उसकी स्मृति में जो इतनी व्याख्या करने बैठ गया कि उन्होंने ऐसा-ऐसा भोजन कराया था। व्यर्थ के प्रमाद करके जीव कितना आस्रव कर रहा है। उन्होंने मुझे अच्छा भोजन कराया था, उन्होंने तो मुझे पूछा ही नहीं है। पूछनेवाला भी सामने नहीं है, नहीं पूछनेवाला भी सामने नहीं है, परन्तु तुम दोनों को पूछ रहे हो। राष्ट्र कथा, भोजन कथा। इन युवाओं से पूछो, तुम्हारा दिन-रात कैसे निकलता है? भोजन कथा, स्त्री कथा। जितनी स्त्री कथा कर रहा है, उतनी श्रीजी की कथा कर लेता तो तू स्वयं श्री बन जाता। भोजन कथा, स्त्री कथा में पूरी पर्याय विलीन कर दी है। आयुकर्म नष्ट किसमें हो रहा है? व्यापार किसमें चल रहा है? घर न बसाया होता, घर में स्त्री को न लाया होता, तो श्री कमाने में न जाता। बस, पूरा जीवन दो में जा रहा है। स्त्री को घर में लेकर आया है तो श्री कमा रहा है। श्री और स्त्री पर लक्ष्य है। इन दो के लक्ष्य से संसार में भ्रमण कर रखा है। स्वतन्त्रता का जीवन जीने का परिणाम कभी होता है क्या? पेट भरा, सो नारियों की कथा प्रारम्भ हो गई। धन भी कमाने गया, वहाँ भी तेरा लक्ष्य भिन्न था। भोजन कथा और स्त्री कथा,

इन दो कथाओं की पूर्ति के लिये फिर तू राष्ट्र कथा भी करता है और चोर कथा भी करता है। द्रव्य को कैसे कमाना चाहिये? टैक्स कैसे चुराना चाहिये? कैसे व्यापार करना चाहिये? कितना ग्राहकों से अधिक कमा सकते हैं? कितना डाका डाल सकते हैं? सारे-के-सारे विकल्प दूसरे तक से पूछता है। बहुत सारे लोगों की आजीविका भी यही है कि दूसरे के बही-खाते बनाते रहते हैं। दूसरे को सलाह देते रहना। ये डाके की सलाह ही देते रहते हैं। उससे आजीविका चला रहा है। वकालत का व्यापार क्या है? सी.ए. की पढ़ाई क्या है? उद्देश्य क्या है? कूटलेख क्रिया। मित्र! इन सबका मूल बिन्दु है प्रमाद। क्रोध, मान, माया, लोभ चारों कषाय। निद्रा, स्नेह ये सब प्रमाद हैं। विलम्ब इसलिये हो गया, आज घर में मेहमान आ गये। यह व्यवहार की भाषा है, सत्य बोलो कि आज मेरा मेहमानों में राग था, स्नेह। आप पर को निहार रहे हो, लेकिन जिसमें दोष है, जो दोष कर रहा है, उस पर दृष्टि ही नहीं है। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि **हे मित्र! यदि मोक्षमार्ग का पथिक बनना है, अक्षय निधि की प्राप्ति यदि चाहिये, तो प्रमाद से अपनी रक्षा करो। जितना जीव का घात किसी व्याघ्र ने नहीं किया, अजगर ने नहीं किया, अग्नि, विष ने नहीं किया, उतना तेरी अनन्त पर्यायों का नाश तेरे प्रमाद ने किया है।**

कुशलेष्व नादरः प्रमादः।।स. सि.।।

कुशल क्रिया में अनादर भाव रखा है प्रमाद ने। मेरा कुशल क्रिया में अनादर भाव किसके प्रति कैसे हो जाये, कोई नियत नहीं है। सभी को सँभालने की चेष्टा कर रहे हो, सभी को सँभालने का प्रयास जारी है, पुरुषार्थ जारी है। मेरे मित्र! अब समय कम है। भाव सँभाल सको तो उसे सँभाल लो जो सारे जगत् को सँभालने के लिये तुम्हें बोल रहा था। भावों को सँभाल लो। यदि लोक में प्रत्येक जीव अपने भाव सँभाल लेता है, तो न हिंसा भड़क सकती है, न कभी चोरियाँ हो सकती हैं, न कोई असत्य बोल सकता है, न अब्रह्म/बलात्कार की स्थिति हो सकती है, न परिग्रह संचय की वृत्ति हो सकती है। मात्र भाव सँभाल लें। आज वर्तमान में देश के संविधान में, शासन में एक बहुत बड़ी विद्या की

आवश्यकता है भावात्मक दृष्टि से। यदि देश की सेना का सेनापति भी है, उसको भी भावनात्मक दृष्टि से व्याख्या करने की आवश्यकता है। प्रत्येक स्कूल और कॉलेज में भावनात्मक दृष्टि की व्याख्या की आवश्यकता है। मित्र! संवेदनायें नष्ट हो रही हैं, मनुष्य मनुष्य को ऐसे समझ रहा है कि गाजर-मूली जैसे उखाड़ कर फेंक रहा हो। घर-घर में तुम राग के वश नहीं जी रहे हो। वे दिन गये जब लोग एक-दूसरे को राग के वश राखते थे। अब राग के वश नहीं राख रहे हो। संवेदना नष्ट हो गई है, अब एक-दूसरे से स्वार्थवश जुड़े हो। कामना-वासना की पूर्ति के निमित्ति से तुम घर में निवास कर रहे हो, लेकिन पहले के बुजुर्ग लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक चूल्हे पर तीन-तीन, चार-चार पीढ़ियाँ भोजन करती थीं। परिवार की बात नहीं कर रहा हूँ, पीढ़ियाँ भोजन करती थीं। आज बेटे का सम्बन्ध हुआ, तुरन्त माता-पिता से अलग रहना पसन्द करता है। पहले-जैसा राग नहीं बचा। स्वार्थ भरा राग है। अब जितने राग में नहीं जी रहे हो, उतने स्वार्थ में जी रहे हो। लोगों को समाज का अनुराग रहता था, कुटुम्ब का अनुराग रहता था, अपने देश प्रदेश का अनुराग रहता था, ये सब विलीन होते दिख रहा है। व्यक्ति को मात्र स्वार्थ (निजी आजीविका) दिख रही है। भोग और भुक्ति इन दो की इच्छा की पूर्ति जिस निमित्त से हो रही है, उस पर दृष्टिपात कर रहा है। धन्य हो। एक समय था। जिसने आपको अपना शरीर सौंपा है, जीवन दिया है, उसके धर्म-सम्बन्ध के साथ वह पुरुष दृढ़ता रखता था कि उसका जीवननिर्वाह भी मुझे कराना है। आज व्यक्ति इच्छाओं की पूर्ति होने पर हिंसा करने को खड़ा हो रहा है। आप गहरे में जाकर अनुभव करो। भावनात्मक दृष्टि की व्याख्या होनी चाहिये। करुणा और संवेदनाओं की व्याख्या होनी चाहिये। लोग सूख चुके हैं—विचार करो। जब व्यक्ति के पास शक्ति और शील होता है, तब उनका चिन्तन भिन्न होता है और निज के शरीर की शक्ति-शील नष्ट हो जाता है तो उनका चिन्तन भिन्न हो जाता है। स्वयं के अन्दर शील/संयम होगा, उस जीव का चिन्तन धर्मभूत होगा। जिसका शील/संयम नष्ट हो गया है, वह मृतक के समान जीता है, शुष्क जीवन जीता है। उसको लगता है कि कुछ नहीं है धर्म। मेरे से पलता

नहीं है तो सब ऐसे ही होंगे। उसके मस्तिष्क का द्रव्य सूख चुका है। जब मस्तिष्क का द्रव्य सूख चुका होता है, तो सम्यक् निर्णय लेने की क्षमता समाप्त हो गई है। विश्वास के साथ सुनना। णमोकार मन्त्र की माला फेरने में ताकत लगती है। जिसके मस्तिष्क का द्रव्य सूख चुका है, वह मुख से तो णमोकार पढ़ सकता है, परन्तु मन में णमोकार की माला नहीं फेर सकता। निर्णय नहीं कर पा रहा है। पाँच पदों का उच्चारण करने में भी उसको महान् कष्ट हो रहा है। ये स्वाध्याय, ये जिनवाणी तभी तक समझ में आती है, जबतक तुम्हारा प्रमाद तुमसे दूर है, संयम नजदीक है। यदि तुम्हारा प्रमाद नजदीक है, संयम दूर हो गया है तो एक पृष्ठ भी तुम्हारे पास पढ़ने की ताकत नहीं है। क्या करूँ? धर्म की व्याख्यायें क्रियाओं में इतनी बढ़ चुकी हैं। धर्म क्रियाओं में इतना बढ़ चुका है, आप ठण्डा होने को समय नहीं दे रहे हो। आपने चौबीस घण्टे कोई अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया, उस अनुष्ठान में तुम ये समय नहीं दे रहे हो कि मैं कोई जीव हूँ, मैं कोई आत्मा हूँ, मैं कोई मानव हूँ। उस अनुष्ठान में तुम अपने आपको इतना व्यस्त कर चुके हो कि इतना थक चुके हो कि उस अनुष्ठान में कोई विघ्न आ जाये, कोई विपत्ति सामने आ जाये, तो आप दूसरे के ऊपर विपत्ति करने को तैयार हो जायेंगे, जबकि विपत्ति के निवारण के लिये धर्म था। आप धर्म के ऊपर राग करके सामनेवाले पर विपत्ति करने खड़े हो जायेंगे। तुम धर्म को समझ नहीं पा रहे हो। जो व्यक्ति चौबीस घण्टे माला फेरता रहता है, दूसरा काम नहीं करता, वह अर्धविक्षिप्त और चिड़चिड़ा स्वभावी रहता है। उसको गर्मी चढ़ जाती है उसे ठण्डा होने को समय दीजिये। यदि स्वाध्याय भी कर रहे हो तो थोड़ा खाली समय दीजिये। अनुष्ठात्मक जो प्रक्रिया चल रही है, ये तीर्थ, ये मन्दिर, ये भवन, ये पंचकल्याणक, ये पूजन, यदि इसमें अपने आप को सँभाल नहीं पाये, इनका निषेध नहीं कर रहा हूँ, इनको आप करो। यदि इनको आप सँभाल नहीं पाये। अभी यहाँ शिविर चल रहा था, सब साधना कर रहे थे, आप सब व्यवस्था बना रहे थे, इस व्यवस्था में आपको किञ्चित् कमी महसूस हुई तो आप दूसरे व्यक्ति पर गुस्सा करने लग गये।

जो यहाँ साधना कर रहे थे, आप उनके साधन बन रहे हो, परन्तु जो साधना नहीं कर रहा, उन साधना करने वालों के निमित्त आप दूसरों पर गुस्सा कर रहे थे, तुम ये सामने वाले की और स्वयं की विराधना क्यों कर रहे हो? अमुख व्यक्ति को पानी चाहिये? इस भाषा का भी प्रयोग हो सकता है। क्यों तुम ध्यान नहीं रखते हो, वहाँ पानी चाहिये। भाषा में अन्तर आया कि नहीं? जब भाव नहीं सँभल पाते हैं, तब भाषा बिगड़ कर निकल पड़ती है और भाव सँभल जाते हैं तो भाषा मीठी होकर निकलती है। भाव नहीं सँभल पाते हैं तो भाषा बिगड़ी होती है। देश में जितने अधिकारीवर्ग हैं, जितने विद्यालय हैं, सभी के अन्दर एक शिक्षा की आवश्यकता है। करुणा/दया इस शब्द को कहने के लिये भी भाषा के उच्चारण की शैली अलग से लाना पड़ेगी। माँ! तुमने गाय-भैंस की आवाज को सुना? गुस्से में आवाज अलग होती है। अस्सी साल की बूढ़ी माँ जब पोते को गोदी में रखकर खिलाती है, तो उस बूढ़ी माँ की आवाज बच्चों-जैसी निकलती है। ऋजु हृदय को, ऋजु तन को ऋजु भाषा चाहिये, ऋजु चेहरा चाहिये। नव-प्रसूता गाय जब अपने बच्चे को प्यार से दुलारती है, तब उसकी आवाज भी बच्चों-जैसी ही होती है। आटे को कितने प्रकार से सँभाला जाता है? गूँथते समय हाथों को देखना। बालक को सहलाने का समय देखना। इन्हीं हाथों से बालक को थपथपी लगाती है तो बेटा सो जाता है और आप टॉफी-चाकलेट खिलाना, तब भी चुप नहीं होता। माँ मात्र गोदी में रख लेती है तो चुप हो जाता है। क्या मिला? इन्हीं हाथों से माँ बच्चे को सहलाती है तो वह चुप हो जाता है, इन्हीं हाथों से रागी, रागी को स्पर्श करता है, उस समय भावों का प्रभाव देखो। उस समय शरीर के हाथ का स्पर्श एक कामी को काम उत्पन्न करा देता है। इन्हीं हाथों से एक योगी हाथ उठाकर आशीर्वाद दे देता है तो तुम्हारा भाव भक्ति से भर जाता है। मुझे आशीर्वाद मिल गया है। समझो मैं क्या बोल रहा हूँ? इन हाथों में पाप नहीं है, इन हाथों में पुण्य नहीं है। इन हाथों के अन्दर संचार करने की ताकत है। जिसके भीतर कामवासनायें जाग्रत नहीं हुई हैं, उन जीवों में कामवासना भरने के लिये हाथों से व्यक्ति सहलाता है। इस तरीके से भाव

भरकर सहलाता है, शरीर पर उसका हाथ पड़ते ही सामनेवाले के अन्दर काम-विकार खड़े हो जाते हैं। इन हाथों में तरंगें हैं। रैकी वगैरह क्या है? इस रहस्य को समझो। आगम की विद्या को लोगों ने कितनी प्रकार से संग्रहीत किया है? रैकी में तरंगों की शक्ति का प्रभाव मेरे भावों पर टिका हुआ है। एक वीतरागी श्रमण/तपोधन जिस नगर में विराजमान हो जायें, उस नगर का माहौल परिवर्तित हो जाता है। जहाँ बड़ी-बड़ी समाजें हैं, उन्हें चातुर्मास में खाली मत छोड़ना। जहाँ चातुर्मास होते रहेंगे, वहाँ समाज में संस्कार जीवित रहेंगे। जहाँ चातुर्मास नहीं होते हैं, वहाँ शुष्कपना छा जाता है। सुबह से मन्दिर आओगे, पूजन-पाठ करके चले जाओगे तो दिन भर क्या करोगे? प्रभाव देखो, इन हाथों का प्रभाव। कितने लोग हाथ घुमाकर लोगों का रोग ठीक कर देते हैं। पर सत्यता यह है कि भावों में ऐसी वर्गणायें भरते हैं। हाथों से विकसित हो रही है वो आपके मस्तिष्क को प्रभावी कर रही है। जिसके भीतर जैसी तरंगें होंगी, सामनेवाले को वो प्रभावित करती हैं। सात्विक पुरुष के पास बैठने पर उसके-जैसे चारित्र धारण करने के परिणाम आयेंगे और अशुभ वक्र परिणामी जीव के पास बैठने पर तुम्हारे भाव बदल जायेंगे। प्राचीन प्रतिमायें, तीर्थभूमियाँ, निर्ग्रन्थ योगी इनके पास बैठने से हमारे भावों में परिवर्तन होता है। जब भी मन में क्लेश हो, अशान्ति हो, तो तुम तो शान्ति से मन्दिर में जाकर बैठ जाना। प्राचीन वीतरागी प्रतिमा के समक्ष जाकर बैठ जाना। जितना गहरा ग्रन्थ होगा, उतना ही आनन्द देगा। समयसार जी सामने विराजमान करके बैठ जाओ, मस्तिष्क ठण्डा हो जायेगा। इसलिये व्याख्यान की शैली गरम नहीं होनी चाहिये। गरम शैली की आवश्यकता नहीं है। धारा में शान्तिधारा हो, प्रवचन की धारा में शान्तिधारा हो। पंचमकाल में वैसे भी लोगों के अन्दर गर्मी भरी हुई है। उपदेश ठण्डा होने के लिये करना चाहिये, गरम करने के लिये नहीं होना चाहिये। थकाना धर्म नहीं है। आज थका कर धर्म किया जाता है। धर्म के क्षेत्र में इतना शरीरिक श्रम करा दिया, इतना मानसिक श्रम करा दिया, व्यक्ति थक गया, थक करके झुंझलाहट आती है। अति रौद्रध्यान की प्रक्रिया चल रही है। लोगों में बोले-हँसो, नाचो, गाओ, सामने उस वस्तु को देखो थकाने

की अनेक शैलियाँ हैं। उन शैलियों से उनको थका देगा, अब हम थक गये, अब शान्ति से बैठो, विश्राम करो। ध्यान में जो तत्त्व के निर्णय निकलते थे, वे आज के ध्याताओं में क्यों नहीं निकल रहे हैं? क्योंकि तुम थक करके विश्राम कर रहे हो, तो वहाँ निर्णय नहीं निकलते हैं। बिना थके जो ध्यान चल रहा है, उसमें तत्त्व के निर्णय निकल रहे हैं। आज ध्यान की जो शैली चल रही है, वह थकाने की शैली चल रही है। बोले—हँसो। इसी को ध्यान कहा जा रहा है। मुस्कराओ, ध्यान है। जिसको हमारे यहाँ नो-कषाय कहा जा रहा है, उसे आप ध्यान कह रहे हो। नाचो। क्यों? ये ध्यान है। अरे भाई! काययोग को सँभालने पर ध्यान की प्रारम्भिक प्रणाली प्रारम्भ होती है जबकि तुम काययोग को ही नृत्य में लगाये हुये हो। जिसका काययोग ही नहीं सँभल रहा है, उसका वचनयोग और मनोयोग क्या सँभलेगा? विपर्यास। ध्यान के स्वरूप का विपर्यास कर दिया। अब कठिन विषय लोगों को कम समझ में आता है, परन्तु ध्रुव सत्य है, एक बार समझ में आ गया फिर वह ही सत्य समझ में आयेगा। प्रवचन सरल हो गये तो सबको अच्छे लग रहे थे। जिसका जितना क्षयोपशम होगा, उतना समझ में आयेगा, लेकिन समझना पड़ेगा। बच्चे को मन्दिर लाओ तो उसका सिर पकड़ कर जमीन में मत टिकाना। उसके साथ क्या अनाचार कर रहे हो? वो बेचारा रो रहा है। उसको खाली छोड़ दो। आप स्वयं सिर टेक लो। कहना, बेटा! ऐसे नमस्कार करना पड़ता है। विश्वास रखो, वह वैसा ही करेगा। तुमने उसकी मुंडी पकड़ कर पटक दी तो वह सोचेगा कि क्या अनाचारी लोग हैं, मेरे को कितनी पीड़ा हो रही है। आप शायद अपने बचपन की सारी चेष्टायें भूल गये हो। जब माँ जबरजस्ती स्नान के लिये भी खड़ी करती थी तो तुझे रोना आता था। माँ को लगता था कि बेटा साफ हो जाये। बेटा सोचता था कि ये माँ कितनी क्रूर-परिणामी है, इसको बिल्कुल भी विवेक नहीं है। मैं रो रहा हूँ, तब भी छोड़ नहीं रही है। याद करो। तुमने सरलता का काम छोड़ दिया है। बल का प्रयोग नहीं होना चाहिये, भावना का प्रयोग होना चाहिये। बल प्रयोग से बॉल (गेंद) जैसा प्रयोग होता है। जो माता-पिता वृद्धावस्था में परेशान हैं, जिनके बच्चे परेशान कर रहे हैं,

उसका कारण यही है। बल का प्रयोग बॉल जैसा होता है। जितने बल से तुम बॉल पटकोगे, उतने बल से वह ऊपर जायेगी। जिन माता-पिता ने बचपन से बच्चों को जितना दबा कर रखा था, वे उतने ही ऊपर चले गये और आज तुमको दबाया जा रहा है। यही शिष्यों के साथ गुरु का होता है। सरलता का प्रयोग होना चाहिये। बल का प्रयोग नहीं होना चाहिये। आपने देखा, मादा पक्षी अपने अण्डे पर बैठा रहता है, उसके पंजे कहाँ रहते हैं? आपको लगता है कि वह अण्डे पर बैठा है, लेकिन उसके पैर जमीन पर होते हैं। उसमें मात्र ऊष्मा दे रहा है, ओज दे रहा है, वजन नहीं दे रहा है। ऐसे ही विद्यार्थियों के लिये, शिष्यों के लिये गुरु को ओज देना चाहिये, वजन नहीं देना चाहिये। बालकों को ओज देना चाहिये, वजन नहीं देना चाहिये। पक्षी यदि वजन दे देगा तो अण्डा फूट जायेगा, फिर बच्चा नहीं निकल पायेगा। ऐसे ही यदि आपने अनुशासन के नाम पर बल का प्रयोग किया है तो वह श्रद्धा को तोड़ देता है। हमारे यहाँ अद्‌भुत गूढ़ विद्यायें हैं। इसलिये लगता है कि सभी लोगों की क्लासें लगना चाहिये। सभी लोगों को समझ में आना चाहिये। माताओ! आप बल का प्रयोग करना बन्द कर दो, भावना का प्रयोग करो। सिर पकड़ करके सिर पटकवा तो सकते हो, परन्तु श्रद्धायें नहीं झुका सकते हो। आप भावना का प्रयोग करोगे तो सिर भी झुकेगा और श्रद्धा भी झुकेगी।

उपदेश इतने दिन सुना, अब उसका फल चखना है। सब चौका लगाने में लग गये कि हमारा घर पवित्र हो जाये। ये बल नहीं है, भावनायें हैं। कोई ज्ञानी घर-घर जाता है और कहता है कि भैया! महाराज आये हैं व्यवस्था करना है आपको। ये बल है। लोग अपने आप लगायें, ये भावनायें चल रही हैं। भावनाओं में लोगों को द्रव्य खर्च होते नहीं दिखता। भावनाओं में शरीर की मेहनत नहीं दिखती है। बल में सब कुछ उल्टा-उल्टा ही दिखता है। फिर लोग क्या कहते हैं? क्या यहाँ मैं अकेला ही हूँ? क्या कोई-और नहीं है? कितने सारे काम पड़े हैं, तुम भी तो व्यवस्था बना सकते हो, ये बल के माध्यम से बात चल रही थी। जब अस्सी साल का वृद्ध भावना से भरा होता है, तो सम्मेद शिखर की

पैदल यात्रा करके आता है और जब भावनायें नहीं होती हैं, तो थोड़ी दूर के लिये भी गाड़ी चाहिये। संघ को जयपुर से आगरा तक पैदल लेकर आ गये, ये बल नहीं, भावना थी। यदि हिंसा को रोकना चाहते हो तो बल को गौण कर दिया जाये और भावनाओं को भरा जाय। अहिंसा का भाव आ जाये तो जगत् के सारे संविधान प्रताड़ना से दूर हो जायें और साधना में लीन हो जायें। अपने घरों के अनुशासन का परिवर्तन करो। रहस्य पकड़िये। जो जैनदर्शन में अनेकान्त दृष्टि थी, उसका जो सनातन प्रभाव चला आ रहा है, लोग उसका उद्देश्य भूल गये और विषय साम्प्रदायिकता में चला गया। उद्देश्य क्या था? मित्र! जब तू ठण्डा होता है, तब भाव आता है कि मेरी किसी बात से पिता को कष्ट न हो। तुझे तो मात्र पिता के प्रति ऐसा भाव आया है, पिता से ज्यादा माँ के प्रति ऐसा भाव आता है। यदि पिता भी माँ को डाँट रहा हो, तो तेरे भाव बदल जाते हैं कि ये मेरी माँ को क्यों डाँट रहे हैं? ऐसा होता है। धन्य हो जैनदर्शन को।

हर व्यक्ति की बात को समझने की दृष्टि अनेकान्त में है। स्याद्वाद-अनेकान्त की आँख को जो लेकर चलता है उसका लोक में कोई शत्रु नहीं होता है। उससे कोई कष्ट को प्राप्त नहीं हो सकता है। स्याद्वाद अनेकान्त जीवन की शैली में होना चाहिये, न कि मात्र शास्त्रों में। मैं आचार्य हूँ, मैं संघ का नायक हूँ, मैं ही प्रवचन करूँगा, यहाँ तुम सब शांत बैठो। महाराज! जिन्हें तुमने शिष्य बनाया है, यदि तुम इसी गरिमा में रहोगे कि मैं आचार्य हूँ तो संघ विनाश जायेगा। यदि ऐसा आचार्य सोच रहा है, तो भविष्य की परम्परा का नाश कर रहा है। तूने बेटे को जन्म, भविष्य में पराम्परा चले, इसलिये दिया है। तू इतने गूढ़ अहंकार में डूब गया कि मैं अपनी पूरी विद्या बेटे को दे दूँगा तो बेटा मेरी विनय करेगा कि नहीं करेगा? मेरे मित्र! तू भावनात्मक दृष्टि से पूरी विद्या दे देना। यदि नहीं देगा और तू ऊपर चला गया और अपने साथ विद्या ले जायेगा तो विद्या की भारत में कमी हो जायेगी। ऐसा कोई सोचे कि मैं शिष्यों को सब सिखा दूँगा तो मेरा क्या होगा? हे गुरुदेव! तुम्हारे माध्यम से जैनदर्शन की बहुत बड़ी क्षति होगी। भविष्य में और कितने दिन रहोगे? तुम्हारे जाने के बाद भी धर्म शाश्वत्

रहना चाहिये, सिद्धान्त शाश्वत् रहना चाहिये। भारत अहंकारी गूढ़ वादियों के द्वारा खोखला हो गया। जो धनवान थे, हीरे-मोती जवाहरात जिनके पास थे, उनने जमीन में गाड़ दिया, अन्तिम श्वास तक अपने बेटे को भी नहीं बताया, तो वह गड़ा रह गया। स्वयं साँप बन कर आ गये। जिनको विद्यायें प्राप्त थीं, वे गूढ़ विद्यायें अपने शिष्यों को नहीं दे पाये। अपने बेटों तक को नहीं दे पाये। गृहस्थ थे, परिणाम ये हुआ कि उनकी मृत्यु हो गई और विद्या वहीं-के-वहीं समाप्त हो गई। आप योग्य बनाओगे तो योग्यता आगे चलेगी। आज तुम उनको न उपदेश करना सिखाओगे, न उनको अन्य धार्मिक विशेषता सिखाओगे तो परिणाम यह निकलेगा कि तुम अकेले बाँझ-जैसे चले जाओगे। विद्वानो, श्रावको। ध्यान दो, मैं क्या कह रहा हूँ? जीवन में तुम इस पर्याय में आये हो तो बाँझ बनकर मत जाना, बन सको तो भोगभूमियाँ बनकर जाना। बाँझ स्त्री जीवनभर विषय-सुख में लीन रहती है, लेकिन कुछ भी छोड़कर नहीं जाती। धन को विषय-भोगों में खा-पीकर नष्ट कर दिया और सन्तान छोड़कर गई नहीं, मात्र जैसी आई थी वैसी गई। भोगभूमिया युगलिया जब भी मृत्यु को प्राप्त होंगे, नियम से युगलिया को जन्म देकर ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ऐसे ही जिसके पास जो विद्या है, वह भोगभूमियाँ बनकर जायें अपनी विद्या किसी को सिखा कर जायें, नहीं तो बाँझ के समान कुछ भी न देकर चले जाओगे। तुमको जिस विद्या का ज्ञान है और वह मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत है, तो उस विद्या का उपयोग अपनी सन्तान को सिखा कर जाना। ज्ञानी! यदि तू रोज मन्दिर आता है, भगवान् की पूजा करता है, यदि तू अपनी माँ का सच्चा पुत्र है, पिता का सच्चा बेटा है, तो अपने बेटे को मन्दिर लाकर दर्शन करना सिखा देना, नहीं तो तू बाँझ जैसा चला जायेगा। माताओ! ध्यान दो, तुमने सन्तान को जन्म दिया है और यदि तुम उसको मन्दिर दर्शन करना नहीं सिखा पाई हो, मुनि के हाथ में ग्रास देना नहीं सिखा पाई हो तो आप जन्म देने के बाद भी धर्म के स्थान पर बाँझ तुल्य हो। तुमने शरीर को जन्म तो दिया, लेकिन संस्कार को जन्म नहीं दिया। शरीर का जन्म वासनाओं से होता है और संस्कार का जन्म धार्मिक भावनाओं से होता है। जो बेटे दिखाई दे रहे हैं, वह

वासना का फल है। जो धोती-दुपट्टा पहने घूम रहे हैं, वह धार्मिक भावनाओं का फल है। जितने यहाँ बैठे हुये हैं, वे कल से अपने बेटों को लेकर आना। स्कूल जाता है तो, ट्यूसन जाता है तो? तो रविवार को तो छुट्टी रहती है। जिनकी सन्तानें हों, वे सब रविवार को लेकर आना। मुझे विश्वास है कि एक बार भी चींटी को मालूम चल जाये कि वहाँ मीठा है, फिर चींटी को बुलाना नहीं पड़ता, वह अपने आप पहुँचेगी। सत्यता यह है कि तुम अपने चींटी-चीटाओं को पता नहीं चलने दे रहे हो कि वस्तुस्वरूप क्या है। यदि ये एक बार आ गये तो तुम विश्वास रखो जैनत्व के संस्कार आ जायेंगे, इनके अन्दर कुछ तो माता-पिता परेशान हैं। स्कूल नहीं जा रहा, घर का कोई काम नहीं कर रहा। जैसे ही समय मिलता है तो चलो महाराज जी के पास।

आपका धर्म श्रद्धा का है, विश्वास का है, प्रीति का है, बल का नहीं है। भावनायें भरो, संवेदनायें भरो और एक-दूसरे के प्रति वात्सल्य भरो। एक-दूसरे के सहयोग की भावना भरो, किसी के अपमान की भावना मत भरो। इसलिये कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं।

मोक्षमार्ग का पथिक वही है, जो श्रद्धा से जीवन जीता है और श्रद्धा से युक्त जीवन जीने वाले को देख करके अश्रद्धावान् भी श्रद्धा से भर जाते हैं। सेंट बेचने वाला गली से निकले कोई कुछ न भी खरीदे, तब भी गली महक जाती है। ऐसे ही सच्चे वीतरागी श्रमण योगी हैं। तुम उनसे कुछ न भी ले पाओ, तुम्हारी गली से निकल भी जायें, तब भी वास-सुवास से गलियाँ महक ही जाती हैं। नमोऽस्तु शासन जयवन्त होता है।

हजार विद्वान् जितनी प्रभावना करते हैं, उतनी प्रभावना एक मुनि कर लेते हैं। विद्वान् के तो उपदेश में ही बैठेंगे, लेकिन मुनि की तो हर वृत्ति में लोग शामिल होते हैं। आपको पण्डित जी भोजन करने ले जायेंगे, यहाँ तो चार दिन पहले से सोचते हैं कि अब तो अपन को शुद्ध भोजन करना है, पड़गाहन करने चलना है। घर में कैसी तैयारी चलती है। मुनि तभी बनना चाहिये जब गृहस्थी में चौका

लगा लें। बिना चौका लगाये मुनि बनना ही नहीं चाहिये। जिनने कभी चौका नहीं लगाये, आहार नहीं दिये और मुनि बन गये, वे सूखे-सूखे होते हैं। वे ही फिर नाटक करते हैं। क्योंकि उन्हें पता नहीं रहता कि चौके में कितनी मेहनत होती है। जिसको मालूम है कि श्रावक को कितनी परेशानी होती है, बेचारा कितनी श्रद्धा से बनाता है, उनको लगता है, ऋजुता रहती है। जो सूखे-सूखे रहते हैं, वे यहाँ से भग रहे, वहाँ जा रहे। श्रावक के ऊपर साधु की करुणा होनी चाहिये और श्रावक को शुद्धि और विवेक का ध्यान रखना चाहिये।

माँ तो गोदी में बिठाकर एकाध बच्चे को पुचकार पाती है और हे योगी! आपकी छाया में तो कोटि-कोटि जीव आ जायें, कितने ही दु:खी हों, वे शान्त/चुपचाप बैठ जाते हैं। राजा श्रेणिक ने पाँच सौ शिकारी कुत्तों को छोड़ दिया यशोधर महाराज के ऊपर। देखो योगी की पवित्र वर्गणाओं का प्रभाव। पाँच सौ के पाँच सौ शिकारी श्वान मुनिराज के चरणों में शान्त होकर बैठ गये। ये योगी की पवित्र वर्गणाओं का प्रभाव था।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं—परम तेजस्वी वीरपुरुष माया और तृष्णा को दूर कर और राग-द्वेष को नाश करके अविनाशी मुक्तिपद को प्राप्त करते हैं। मुक्ति बल्लभा के कन्त होते हैं।

जब तक तुम्हारे पास राग-द्वेष की बेड़ियाँ हैं और माया तृष्णा की ज्वालायें तुम्हारे पास भड़क रही हैं, तबतक मोक्ष बहुत दूर है।

प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना किया करो कि मेरे किसी भी कार्य में माया साथ न दे, मेरे किसी भी कार्य में तृष्णा साथ न दे। जब धर्म के क्षेत्र में भी माया-तृष्णा आ जाती है, तो धर्म का आनन्द आना बन्द हो जाता है। यदि मेरे मन में भी आ जाये कि पूरे देश में मेरा सबसे बड़ा संघ होना चाहिये, तो जो अभी मुस्कराहट और आनन्द है वह तत्क्षण नष्ट हो जायेगा। फिर मालूम क्या होता है? भैया! दीक्षा ले ले। मालूम चला कि दूसरे की दीक्षा के लिये मनाने के राग में अपनी इच्छायें इतनी विशाल कर चुका, कि आत्मशान्ति भंग ही हो

गई। जिसको आत्मशान्ति चाहिये, मोक्ष चाहिये, वह आकर आपसे निवेदन करे स्वामी! मुझे मोक्षमार्ग में लगा लो। तब तो ठीक है, अन्यथा कभी मनाना नहीं। नहीं तो वह यही कहेगा कि तुम्हीं ने तो बुलाया था। फिर मालूम चला कि शिष्य महाराज के सिर पर बैठे हुये हैं। समझो, मनाने का काम नहीं है, निज के परिणामों का काम है।

आज जो समझा है, वह आज से ही घर में लागू हो जाना चाहिये। अनेकान्त स्याद्वाद दृष्टि से जीना, बलपूर्वक कोई काम नहीं करना। भावना से काम करवाना। यदि बलपूर्वक काम करवाओगे तो महाहिंसक कहलाओगे।

"**आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"धीरों में धीर"

धीराणामपि ते धीरा ये निराकुलचेतसः।
कर्मशत्रुमहासैन्यं ये जयन्ति तपोबलात्॥ 209॥

अन्वयार्थ-ये निराकुल-चेतसः = जो आकुलता रहित चित्त को धारण करने वाले हैं, **ये तपोबलात् कर्मशत्रु-महासैन्यं जयन्ति** = तथा जो तप के बल से कर्मशत्रुओं की महासेना को जीत लेते हैं, **ते धीराणाम् अपि धीराः** = वे धीर पुरुषों में भी बड़े धीर हैं।

भावार्थ-जो निराकुल चित्तवाले हैं तथा जिन्होंने तपोबल से कर्मशत्रुओं की महासेना को जीत लिया है, वे धीर पुरुषों में भी महाधीर हैं।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में धीर महापुरुष की व्याख्या कर रहे हैं। जीवन में कुछ हासिल करना है तो धैर्य को अपने पास रखना होगा। जहाँ धीरता है, वहाँ वीरत्व काम करेगा। वीरता कितनी ही विशाल क्यों न हो, परन्तु जहाँ धीरता का अभाव है वहाँ वीरता असफल हो जाती है। धीरता के अभाव में व्यक्ति अपनी साधना में विफल हो जाता है। जितने लोग महान् हुये हैं और होंगे, वे सब धीरता से होंगे।

विपत्ति के काल में, संकटों के काल में जो धैर्य खो देते हैं, वे मुमुक्षु अपने जीवन में कभी सफलता को प्राप्त नहीं हो पाते। **गिर पड़े तो उठाना सीखो, मटकी के चावल बनना सीखो, बटलोई के चावल बनना सीखो। एक चावल पकने के पूर्व बटलोई में कितनी बार ऊपर जाता है और नीचे आता है। भात बनने के पूर्व उस चावल से पूछना कि आपके जीवन में कितनी**

ऊँचाइयाँ और कितनी नीचाइयाँ होती हैं? पानी में उबलता चावल कितनी बार ऊपर जाता है और कितनी बार नीचे आता है। यही जीव की उत्थान-पतन की धारा है। फिर एक समय ऐसा आता है कि चावल पक जाता है, तब उसकी कीमत बढ़ जाती है। चावल भयभीत हो जाता, बटलोई के बाहर निकल पड़ता, तो चावल 'भात' संज्ञा को प्राप्त नहीं होता, वह 'खीर' संज्ञा को प्राप्त नहीं होता। जीवन में महानता को प्राप्त होना है तो धीरता को स्थान देना होगा। जितने महापुरुष हुये हैं, उनके जीवन में बहुत कष्ट आये हैं। गिरते को गिरते मत देखो, गिरने में भी उठना देखो। जो लोग गिरे को गिरा देखते हैं, वे कभी उठ नहीं पाते हैं। गेंद को जमीन पर पटका जाता है, जितनी तेज पटकी जाती है, उतने ही ऊपर जाती है। सम्यग्दृष्टि जीव जितना उपसर्गों/कष्टों में आता है, उतना भावों से ऊपर चला जाता है। यह परिणामों की दशा है, यह भावों की दशा है। बनती रोटी को यदि माँ दबाये, तो रोटी कच्ची रह जायेगी। फूलती रोटी को भी माँ दबा देती है। पुनः तपाती है, क्योंकि जो शीघ्र फूली है, वह वाष्पित हुई है, वह अभी कच्ची है। ऐसे ही जीवन में आपको शीघ्र फूला-फूला महसूस हो, तो अपने आपको मजबूत करो। **धैर्य रखो, एक चींटी भी दीवाल पर चढ़ती है तो अनेक बार जमीन पर गिरती है, पर एक ऐसा काल आता है जब वह चींटी छत पर पहुँच जाती है। ऐसे ही जीवन में भावों की दशा है। उसको जिनागम में गुणस्थान कहा गया है। वे गुणस्थान जीव के परिणाम हैं।** चतुर्थ काल का मुनि क्यों न हो, कोटि-कोटि बार छटवें-सातवें गुणस्थान में दोलन-गति चलती है, लेकिन चलते-चलते एक ऐसा क्षण आता है कि बारहवें गुण्स्थान में गया जीव वापस लौटकर नहीं आता, नियम से सिद्ध होगा। अभ्यास आज से डालना पड़ेगा।

ज्ञानियो! जब भी शान्ति मिलेगी, धैर्य से मिलेगी। जब भी आनन्द की अनुभूति आयेगी, धैर्य से आयेगी। अधीर हो सकते हो, परन्तु अधीरता का समय दीर्घ नहीं है। आपके घर या देश में झगड़ा क्यों न हो जाये, विसंवाद फैल जाये, लेकिन

निर्णय धैर्य पर ही होगा। बाहर के द्वन्द्व दिखाई देते हैं, पर भीतर के द्वन्द्व दिखाई नहीं देते। बाहर जब भी विसंवाद होता है, वह भीतर से ही प्रारम्भ होता है। यदि कोई पुरुष अपने परिवार पर भी नाराज हो रहा है, तो उसकी भाषा बहुत समय बाद प्रकट हुई है, लेकिन वह भावों में बहुत पहले झुलस चुका है। मैं जो कह रहा हूँ, उसे मात्र सुनना नहीं है, समझना है। जब तुम्हारे अन्तरंग में तीव्र कषाय प्रज्वलित हो चुकी होती है, तब ही शब्द बाहर निकलते हैं। आप बटलोई में खिचड़ी पका रहे हैं। बटलोई पर ढक्कन ढका हुआ है। खिचड़ी के पकने पर जो वाष्प निकल रही है, उस पर तेरी अँगुली लग जाये तो वह ही जला देगी। **जब वाष्प इतनी गर्म है कि उसके स्पर्श से अँगुली जल रही है, तब भीतर कितनी गर्मी संग्रहीत हो चुकी होगी? ऐसे ही किसी व्यक्ति के मुख से अशुभ शब्दों की वाष्प निकलना प्रारम्भ हो जाय, तो समझ लेना कि इसके अन्दर कितनी अशुभ गर्मी छा चुकी होगी। जिसके मुख से अशुभ शब्द निकल रहे हैं, यह अन्दर की गर्मी का अनुमान है।** जिसके मुख से अशुभ भाषा निकलना प्रारम्भ हो चुकी है, इसके अन्दर की गर्मी वाष्पित हो रही थी, वह बाहर निकलना प्रारम्भ हो चुकी है। जब बाहर के पुरुष को जला रही है, तब भीतर कितना जला रही होगी? बाहर के लोग तो भाग जायेंगे, परन्तु जो भीतर खिचड़ी पक रही है, उसको तो उसमें पकना ही पड़ता है। ढक्कन खोला, आपको लगा कि बहुत गर्म है, तो आप अपना हाथ खींच लोगे; लेकिन बेचारी खिचड़ी क्या करे? यदि आपने मेरे ऊपर गुस्सा किया, तो मैं धीरे-से खिसक जाऊँगा, मेरा कुछ बिगड़नेवाला नहीं है; लेकिन तेरे भीतर जो क्षमा-गुण रखा हुआ था, वात्सल्यगुण रखा हुआ था, उसकी तो खिचड़ी पक गई, वह तो जल चुका है। पर का घात हो, या न हो परन्तु स्वयं का घात निश्चित है। इसलिये धैर्य रखना सीखो। उपदेश देना बहुत सरल है, लेकिन उपदेश को स्वीकारना कठिन है। जब पाप का उदय आये, उस समय भी धैर्य रखो।

हे मुमुक्षु! जितने शत्रु बनते हैं, वे पुण्य के उदय पर बनते हैं। झूठे मित्र भी पुण्य के उदय पर बनते हैं। ऐसा क्यों? जब व्यक्ति का पुण्य द्रुत गति से

वृद्धिमान होता है और वैभव दिखने लगता है, तो जिनके घर में खाने को नहीं होता है, वह भी तुम्हारे मित्र बन कर आ जाते हैं, क्योंकि इससे कुछ मिलनेवाला है। भूखा श्वान भी उसी घर में पहुँचता है जहाँ रोटी के टुकड़े मिलते हैं। स्वार्थी मित्र भी उन्हीं के बनते हैं। जेब भरी है तो दुनियाँ तेरे साथ लग जायेगी। रोटी खाकर श्वान भी द्वारे से भाग जाता है।

जब तुम्हारा पुण्य वृद्धिमान हो और वैभव बढ़ रहा हो, तो ईर्ष्यालु बढ़ना प्रारम्भ हो जाते हैं। मेरे मित्र! जब तेरी लोक में निन्दा होना प्रारम्भ हो जाये, ईर्ष्यालुओं की संख्या बढ़ जाये, तो समझ लेना कि तुम्हारा उत्कर्ष प्रारम्भ हो चुका है।

पत्थर उन्हीं को झेलना पड़ते हैं जिनके ऊपर फल आ जाते हैं। उपसर्ग उन्हीं को झेलना पड़ते हैं जिनका उत्कर्ष प्रारम्भ हो जाता है। जिनका उत्कर्ष है, उन पर उपसर्ग है। पर ध्रुव सत्य है कि उपसर्ग करनेवाला उपसर्ग ही कर पायेगा, लेकिन वह उत्कर्ष का विनाश नहीं कर पायेगा। कमठ ने पारसनाथ पर उपसर्ग तो किया, परन्तु उत्कर्ष का नाश कहाँ कर सका? पहले तो सामान्य मुनि खड़े हुये थे, फिर केवलीभगवान् हो लिये। इसलिये धैर्य मत छोड़ना। कैकई ने अपने बेटे को राज्य माँग लिया था। श्री राम जंगल की ओर चल दिये। लोग निहार रहे थे कि अब राम जंगल में कहाँ भटकेंगे? जिसका उत्कर्ष होना होता है, उस पर उपसर्ग प्रारम्भ हो जाते हैं। कैकई को अवश्य लगा कि राम जंगल गये हैं, लेकिन राम का तो उत्कर्ष हो गया। जंगल गये तो कितना विकास हुआ? नगर-नगर में ही नहीं, हर प्राणी की जिह्वा से राम का नाम लिया जाता है। वह राज्य के कारण नहीं लिया जाता है, उनका नाम मर्यादा के नाम पर लिया जाता है।

हे ज्ञानी! सगा छोटा भाई कष्ट देना प्रारम्भ कर दे, तब भी तुम अपनी मर्यादा भङ्ग मत करना। बड़ा भाई छोटे भाई को घर से निकाल दे। बड़ा भाई कहे कि तुम्हारा कुछ नहीं है, घर से बाहर जाओ, तुम छोटे हो। बड़ा भाई पिता के तुल्य है। उसके पैर छूना, कहना, 'भैया! मैं जाता हूँ, आप अच्छे से रहना और सभी का ध्यान रखना, अपना भी ध्यान रखना।' इतनी-सी बात कह कर तुम निकलना।

परन्तु मुझे विश्वास है, कषाय के आवेग में उस समय भैया कुछ कहे या न कहे, लेकिन जब उसकी कषाय ठण्डी होगी, तब बड़े भैया को कहना पड़ेगा 'धिक्कार हो इस धरती को, धिक्कार हो इस धन को, कि मैंने अपने छोटे भैया को अपने घर से निकाल दिया।' मुख बोले या न बोले, आँखें रोयें या न रोयें, परन्तु हृदय अवश्य रोयेगा कि मैंने अपने छोटे भैया को घर से निकाल दिया है। बड़े भैया! ध्यान से सुनना। बेटा घर से निकल जाये, बेटा कहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाये, तो तुम दूसरे बेटे को जन्म दे सकते हो, लेकिन छोटे भैया को जन्म देने की ताकत तुम्हारे अन्दर नहीं है। भैया को जन्म नहीं दे सकते हो।

धन और धरती के राग में कभी धर्मात्मा को मत ठुकरा देना। भाई-भाई में विसंवाद हो जाये तो तुम भैया को मत देखना, तुम यह देखना कि यह जीव जिनधर्म का पालन करता था, एक जिन-धर्मात्मा को हम दूर कर देंगे तो जैनधर्म को हमने दूर किया है।

धर्म पर्वतों में नहीं है, नदी-तालाबों में नहीं है। धर्म तो धर्मात्मा के भीतर है। भैया! जीवन में दरिद्रता के दिन जी लेना, भीख माँग कर खा लेना, परन्तु किसी धर्मात्मा का अनादर करके रसगुल्ले खाने मत बैठना। पर्याय देखना समाप्त करो। जाति, पंथ देखना समाप्त करो। देख सको तो धर्मात्मा के भीतर धर्म देखो। भैया! जब आपको अनार का रस पीने की इच्छा होती है, फिर आप यह नहीं पूछते हो कि यह महाराष्ट्र का फल है कि मध्यप्रदेश का। आप तो अनार का रस निकाल कर पी लेते हो। ऐसे ही जब तुम्हें वीतरागी धर्म की भावना जगे, तब मत पूछना कि यह धर्मात्मा किस प्रदेश का है। उसके भीतर रत्नत्रय धर्म के रस को देखना और सिर टेक लेना। यह नहीं देखना कि कौन-से प्रदेश का है। जैसे तुम फल की पहचान नहीं करते हो, भूख लगने पर रस का सेवन कर लेते हो, ऐसे ही आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने लिखा कि **जैसे कोई प्यासा पुरुष तृषातुर हो करके पानी पीता है, ऐसे ही धर्मात्मा को धर्म का पान (जिनवाणी का पान) तृषातुर होकर करना चाहिये। 'धर्मामृतं सतृष्णः।' जैसे लोभी जीव**

धन को तृषा से इकट्ठा करता है, जैसे प्यासा पुरुष पानी को तृष्णा से पीता है, ऐसे ही धर्म की व्याख्या को तृषातुर होकर सुनना चाहिये। मुख का पानी कण्ठ मात्र को ही गीला कर पायेगा, लेकिन कर्णरन्ध्रों में गई जिनवाणी अन्तःकरण को गीला कर देगी। कुछ सुन रहे हो तो घर में प्रयोग (प्रेक्टीकल) में उतर जाना चाहिये। कदाचित् तुम यह सोचकर आये हो कि चलो, महाराज से आशीर्वाद लेकर भैया से हिस्सा माँगेंगे। अब तुम भैया के घर जाकर भैया के चरण छूना और कहना भैया! मिल गया हिस्सा। यदि पुण्य मेरे हाथ में है, तो दुनियाँ में मेरा हिस्सा है और पुण्य साथ नहीं दे रहा है, तो हिस्सा भी मेरे हाथ में नहीं है।

एक पुरुष ने अपनी जमीन बेंच दी। खरीदनेवाले ने कहा कि मैं बैंक से पैसा दूँगा। पैसा थैले में आ गया। जैसे ही बैंक से नीचे उतरा, पैसा भी गया, शरीर भी टूट गया, जमीन भी गई। क्या करोगे आप? जमीन की रजिस्ट्री आप दूसरे के नाम कर चुके हो। उसने पैसा भी दे दिया और नीचे अपने ही आदमी खड़े करके पैसा छिनवा लिया।

जब अशुभ के दिन आते हैं तब सामने बुद्धिपूर्वक देकर आ जाते हो। जब पुण्य का उदय आता है, तब धन्यकुमार से पूछो, खेत में हल चलाते-चलाते जिस किसान के वर्षों निकल गये हों, उसे एक सिक्का नहीं मिला और धन्यकुमार उस खेत की मेढ़ से निकले। किसान ने देखा कि भूखा बालक है तो उसको चावल देने के लिये वृक्ष से पत्ते निकालने के लिये गया। तबतक के लिये धन्यकुमार ने हल का मुठिया पकड़ लिया। बैल जैसे ही दो कदम चले, हीरा-जवाहरात से भरा हंडा निकल पड़ा। भात खाकरके किसान ने हल पकड़ा तो वह आगे बढ़ ही नहीं रहा था। धन्यकुमार ज्यों ही आगे बढ़े, उसमें हंडा दिखा। देखो नियोग। जैसे ही पैर लगाया, उसमें हीरे-जवाहरात दिखे। अब किसान धन्यकुमार के पीछे दौड़ता है 'भाई! ठहर-ठहर।' धन्यकुमार कहते हैं कि नहीं चाहिये, नहीं चाहिये। 'ठहरो तो। जो आपका धन है, वह तो ले जाओ। यदि आप होते तो ऐसे दौड़ते

क्या? उसके ऊपर मिट्टी और डाल देते। परन्तु धन्य हो उस किसान के परिणामों को। किसान सोचता है कि यदि मेरा होता, मैं तो रोज हल चलाता था, तब क्यों नहीं निकला? यह तो पुण्यात्मा का ही द्रव्य है, उसके हाथ लगने से ही निकला है। एक वह पुरुष है जिसके हाथ लगने से सोना मिट्टी हो जाती है और एक वह पुरुष है जिसके मिट्टी में हाथ लगाने पर सोना निकलता है। यही तो पुण्य-पाप का खेल है। इसलिये आज से किञ्चित् भी घर में, समाज में, देश में विकल्प मत करना कि इसके पास इतना क्यों, मेरे पास इतना क्यों नहीं? तुम द्रव्य (पैसा) देखते हो, द्रव्य (पुण्य) नहीं देखते हो? भाई-भाई में दुश्मनी क्यों हो रही है? अपने भैया के बढ़े हुये द्रव्य को तो देखा, लेकिन उसके बढ़े हुये पुण्य को नहीं देखा। यदि पुण्य को देख लेता, तो धन को बढ़ा हुआ देखकर तुझे दुश्मनी न होती। द्रव्य (धन) देखा, द्रव्य (पुण्य) नहीं देखा। द्रव्य से द्रव्य आया कि द्रव्य से द्रव्य आया?

हे मुमुक्षु! सारे जगत् में लोगों की जो दृष्टि है, चाहे वह श्रमण हो चाहे वह श्रावक हो, हर व्यक्ति चाहता है कि मेरा यश फैल जाये, मेरी कीर्ति फैल जाये, मेरा वैभव फैल जाये। रूखा-सूखा आदमी भी चाहता कि मेरा यश फैल जाये। ज्ञानी! जलेबी का नाम है रसवन्ती। सूखी जलेबी अलग दिखती है और जिसमें रस भरा हुआ हो, वह दूर से समझ में आती है। ऐसे बहुत सारे लोग हैं जिनके पुण्य के रस सूख चुके हैं, उनके चेहरे भी सूखे दिखते हैं। जिनके पुण्य के रस भरे हुये हैं, उनके चेहरे भी सरस दिखते हैं। ऐसा ही है। जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तो सेर भर भी तेल डाल लेना, फिर भी खड़े हो जायेंगे। जैसे कुछ होता है तो अपन कहते हैं कि हाथ खड़े कर दिये। ऐसे ही खड़े बाल कह रहे हैं कि तेरा पुण्य क्षीण हो चुका है। हाथ के नाखून, सिर के बाल, मुख के गाल, सब सूख जायें तो समझ लेना कि हमारा पुण्य क्षीण हो चुका है।

मेरे मित्र! भैया के धन को देखकर ईर्ष्या मत करो। सगे भैया के धन को तुम पचासों बार चुरा सकते हो, उसको छीन सकते हो, छुड़ा सकते हो, लेकिन

तुम वैसे-के-वैसे ही रहोगे और वह पुनः हरा-भरा हो जायेगा। जिसकी जड़ जमीन में है, ऐसे धवेले का वृक्ष तुम कितनी ही बार निकाल कर ले जाना, डालें निकाल लेना, फिर भी वह ग्रीष्मकाल में भी हरा-भरा हो जायेगा। ऐसे ही जिसकी पुण्य की जड़ जमीन में जमी हुई है, उसको तुम कितना ही छील देना, फिर भी उसका पुण्य तो पुनः प्रकट हो जायेगा। कोटि-कोटि बार तुम उनका धन हरण कर लेना, लेकिन उसके पास तो ज्यों-का-त्यों मिलेगा। पुण्य तुम्हारा केटली का पानी नहीं होना चाहिये। केटली का पानी कितनी दूर ले जाओगे? एक दो बार पिओगे, फिर खाली। जो पर की सम्पत्ति हरण करके धनपति बनना चाहते हैं, वे केटली के पानी के समान सूखे-के-सूखे रह जाते हैं। पुण्य तो कुए के पानी जैसा चाहिये। कितना ही खींच लेना, फिर स्रोत से भर जाता है।

ज्ञानी! तुम्हारी सब सम्पत्ति कोई छीन ले, तब भी मुस्कराते रहना। 'भर ले जाओ केटली। मेरा तो पाताल-तोड़ पानी है। इसे तू कितना खर्च कर पायेगा? कितना चुरा कर ले जायेगा?' बस, मुमुक्षु! उत्कर्ष का काल आये, लोग तुम्हारे पानी को केटली में भर-भर कर ले जायें, तो तुम खुश होकर देना कि ले जाओ, ले जाओ। क्यों? क्योंकि मुझे मालूम है, कि मेरे घर में कुआ है। जब-जब कोई विपत्ति देने आये, बस, इस बात का ध्यान रखना। ज्ञानी! धीर पुरुष क्या करते हैं? जो लोक में विख्यात हो गये, वे कौन थे? ज्ञानी लोग श्वानवृत्ति का जीवन नहीं जीते। किसी व्यक्ति ने श्वान को लाठी मारी तो वह लाठी को पकड़ता है। लाठी में क्या ताकत? ताकत तो मारने वाले में थी। वह खींचकर पुनः मार देता है। यह श्वानवृत्ति है। श्वान कभी मारनेवाले को नहीं पकड़ता, वह लाठी को पकड़ता है। और कोई सिंह को लाठी मारने पहुँचे तो वह लाठी को नहीं पकड़ता, लाठीवान् को पकड़ता है। जब तुम्हारे ऊपर कोई संकट की घड़ियाँ खड़ी कर दे, तो आप उस व्यक्ति को सताने मत जाना, न निवारण करने जाना। आप तो भूत को देखना। कष्ट तो अभी आया है। इसके पहले क्या था? सुख था। सुख क्यों था? तेरे सुकृत से था। ज्ञानी लोग अशुभ के काल में भी शुभ

को नहीं छोड़ते हैं। हे राम! आपने सीता को अग्नि में डाला, लेकिन सीता ने णमोकार कहाँ छोड़ा? वहाँ भी णमोकार जारी था। अग्निकुण्ड सरोवर हो गया। यह किसका प्रभाव था?

ऐसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

दुनियाँ में कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। विपत्ति के काल में भी महामन्त्र को मत छोड़ देना। जब हमें सब छोड़कर चले जायें, तब तुम जिनराज को पकड़ कर रखना, वे न छूट पायें। क्योंकि जिनको हम अपने/हमारे कहते हैं, वे अपने साथ कितने रहेंगे? आयु क्षीण हो जायेगी तो वे तो छोड़ेंगे-ही-छोड़ेंगे इस भव तक ही वे तुम्हारा साथ दे पायेंगे। वो भी तभी देंगे यदि पुण्य है तो। लेकिन परमात्मा का नाम तेरे भव-भव में साथ देगा।

जगत् की लीला सुनो। सारा लोक पुण्य के फल को चाहता है, लेकिन पुण्य करना नहीं चाहता। ऐसे लोग भी आयेंगे कि यदि किसी साधु ने श्रीफल में मन्त्र पढ़ दिया फिर देखो कि प्रवचन सुननेवाले कितने आते हैं और श्रीफल फुकवाने वाले कितने आते हैं? उनको इतना बोध होना चाहिये। यदि कोई महाराज कह दें कि णमोकार की माला फेरना, तो कहेंगे 'महाराज! समय नहीं मिलता। आप तो श्रीफल पर पिच्छी लगा दो, बस। उसको मैं घर में रख दूँगा। वह अपने आप मेरी पेटी भरता रहेगा।' मेरे मित्रो! इस ढोंग से दूर रहो। ऐसे पेटियाँ भरने लग गईं, तो फूँकनेवाले से कहना 'महाराज! तुम लाखों के दान क्यों माँग रहे हो? तुम भी एक श्रीफल फूँक कर रख लो, तुम्हारा भवन बन जाये, तुम्हारा तीर्थ बन जाये।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि। जिसको चार की शरण मिल चुकी है, उसे जगत् के पंचों से, भूतों से, प्रेतों से कोई से डर लगता ही नहीं है।

आज लोगों से कहो कि णमोकार की माला फेरो, एकाध उपवास कर लो, तो कहेगा 'महाराज! वैसे ही तो कमजोर हूँ। पंचम काल के शरीर हैं। आप और

उपवास करवा रहे हो तो सूख जा ऊँगा। उपवास नहीं कर सकता।' तो णमोकार की माला फेरो। 'महाराज! रात्रि के बारह बजे दुकान से लौटता हूँ थक जाता हूँ तो माला में मन नहीं लगता। आप तो ऐसा कोई उपाय बता दो जिससे काम बन जाये।' अब देखना, वह पुण्य का फल चाह रहा है, परन्तु पुण्य करना नहीं चाहता। धन्य हो। ऐसे भी धन के लोभी हैं कि भोजन न करना पड़े, निहार न करना पड़े, तब भी मस्त रहेंगे, लेकिन पैसा मिल जाये। उस दिन आपको भूख नहीं लगती। अहो आश्चर्य! प्रश्न यह है कि धन कमा किसलिये रहे हो? किसके लिये कमा रहे हो?

कोई कहे कि अपनी सम्पत्ति मुझे दे दो, तो मुस्करा कर दे देना कि पकड़। क्यों? तू जिसे माँग रहा है, वह मेरी नहीं है और जो मेरी है, उसे तू माँग सकता नहीं और मैं दे भी नहीं सकता।

सारा विश्व पुण्य के फल की आकांक्षा कर रहा है, लेकिन पुण्य करना नहीं चाहता है। पाप का फल बिल्कुल नहीं चाहता, लेकिन सुबह से उठकर क्या करता है? हड्डी भी घिसने जाता है।

धन्य हैं वे योगीश्वर जिनका अदन्त धावन नाम का मूलगुण होता है। वे दिगम्बर मुनि कभी मुख में अँगुली भी नहीं डालते। यह है निर्ग्रन्थों की चर्या। कभी अपने दाँत नहीं धोते। हम सुबह से ही पुण्य क्षीण करते हैं। देखो, पुण्य क्षीण कहाँ से होता है? आप सुबह से पुण्य क्षीण करना प्रारम्भ करते हो। जैसे ही सुबह होती है, सबसे पहले हड्डी का चूर्ण हड्डी पर घिसने जाते हो। श्वान तो हड्डी पेट के लिये चबा रहा है, लेकिन तुम तो हड्डी चमकाने के लिये घिस रहे हो। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि उसके अन्दर क्या होता है। ऐसा तो होता ही नहीं कि मुख में रखी वस्तु का स्वाद कण्ठ तक न पहुँचे। अब इन अभागों से पूछो कि सुबह से मुख में हड्डी रखते हो और भगवान् पर कलशा करने पहुँच जाते हो। अब तुमको हम कौन-सी पर्याय का जीव कहें? मेरे मित्रो! इस हड्डी

को साफ करने के बहुत सारे साधन हैं। कम-से-कम ऐसे साधन का उपयोग मत करो जिसमें पिसी हुई हड्डी मिली है।

अब समझ में आता है कि धर्म कितना है। मेरे मित्र! महावीर स्वामी कहेंगे कि तुम किसी को मत सताओ, मैं भोग कर आया हूँ। अब महावीर स्वामी की व्यथा सुनो। इन दाँतों को साफ करने के राग में मेरी डाली को मत तोड़ो। मैं भी जब वृक्ष की पर्याय में था, तब मुझे मालूम था कि कितना कष्ट होता है। तुम सुबह से डण्डा लेकर पहुँचे, ये मारा बबूल में, ये मारा नीम में और एक डाली तोड़ कर लाये दाँतों के घिसने के लिये। भावी भगवान् को तू कैसे सता रहा है?

नेत्रों की ज्योति को बढ़ाने के राग में तू सुबह से घास के ऊपर दौड़ता है, बोलता है कि नेत्रों की ज्योति बढ़ जायेगी। पर अभागे! तुझे पता होना चाहिये कि कितनों की जीवनज्योति नष्ट हो रही है। तुझे आँखों की ज्योति दिखाई दे रही है। नेत्रों की ज्योति बढ़े या न बढ़े, लेकिन तेरी पुण्य की ज्योति नियम से नष्ट हो रही है।

इसलिये आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि धीर हो जाओ। चाहे कष्ट आये चाहे रोग हो जाये, चाहे धनहरण कर ले जाये, लेकिन धैर्य को मत छोड़ना। पुण्य के उदय में भी धैर्य को सँभाल कर रखना, पाप के उदय में भी धैर्य को सँभाल कर रखना। जब पुण्य का तीव्र उदय आये, तो पुण्य के भोग के काल में गरीबों को भी देखते रहना।

एक शेर गुफा के अन्दर बैठा हुआ है। चूहा प्रवेश कर गया। चूहा शेर की पीठ पर घूमने लगा तो शेर ने चूहे को पंजे में पकड़ लिया। वह बेचारा चींचीं करने लगा, बोला, 'हे वनराज! हे सम्राट! मुझे छोड़ दो। सबके दिन एक-से नहीं होते। मैं भी कभी आपके काम में आऊँगा। शेर अट्टहास करके हँसता है 'तू क्या मेरे काम में आयेगा?' सम्राट! यह तो समय ही बतायेगा।

सत्य तो यह है कि पुण्य के काल में व्यक्ति को समझ में नहीं आता है कि जब कोई काम में नहीं आता है, तब चूहा ही काम में आता है। इसलिये हे धनपतियो! तुम चूहा को चूहा ही मान कर न बैठना। वे भी तुम्हारे काम आयेंगे। छोटा भैया न होता तो तुम्हें बड़ा भैया कौन कहता?

शेर को भी दया आ गई। उसने पंजे से चूहे को छोड़ दिया। परन्तु ये ऐसे अभागे हैं, कहते हैं कि मैं धर्मात्मा, मैं धर्मात्मा और पिंजड़े में चूहे को बन्द करते हैं और रोड़ पर छोड़ देते हैं। गाड़ी आती है, बेचारे दब जाते हैं। ये रोड़ पर जो चूहे दिख रहे हैं, ये आप लोगों के द्वारा छोड़े हुये होते हैं। कर लो अशुभ कर्म। चूहे का पुण्योदय न होता तो तेरे-जैसे घर में क्यों उत्पन्न होता? आज से नियम ले लो, पिंजड़े मत रखना। ठीक है? पिंजड़े में रख-रख कर उनको छोड़नेवाले उनकी कभी गोदी नहीं भरती। उनके बच्चे बिल के अन्दर तड़फ रह होंगे, उनकी माँ बिछुड़ गई, अब वे बेचारे लाल-लाल बच्चे खत्म हो गये, उनकी आहें तुम्हें सतायेंगी। तुम्हारी गोदी भी खाली होती है, विश्वास मानो। चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, किसी के साथ अत्याचार मत करो। जितने कत्लखाने आदि की चर्चा चल रही है, यह पुण्य का दुरुपयोग चल रहा है। जब पाप उदय में आयेगा, तब समझ में आयेगा। मस्कुराओ। हँसते-हँसते पाप का बन्ध करता है, लेकिन जब उदय में आयेंगे तो गंगा-जमुना जैसी धारायें बहायेगा। फिर कहना, 'महाराज! क्या करूँ?' उस दिन पूछने आये थे क्या जिस दिन पिंजड़ा रखा था और चूहों को पकड़ कर रोड़ पर छोड़ा था? आज ही पिंजड़ा तोड़ कर फेंक देना। प्रश्न 'दुकान में कपड़े बिगाड़ेंगे, फिर?' तुम तो उनके लिये और सुन्दर खाने की व्यवस्था करो।

उस चूहे को शेर ने मुस्कराकर छोड़ दिया—'जा, भाग जा, अब नहीं आना।' परन्तु धन्य हो, वह चूहा महान् था। यदि तू उपकारी का उपकार नहीं मानता तो तुझे चूहे की भी उपमा नहीं दी जा सकती है। क्यों? चूहा अपने अन्दर एक बात लेकर गया कि कम-से-कम मेरे सम्राट ने मुझे छोड़ दिया। उसके मस्तिष्क

में बात रखी रही और बोल कर गया था। सबके दिन एक-से नहीं होते। भूल मत जाना।

एक दिन एक शिकारी आया। उसने जाल फैला दिया और वन का राजा शेर उस जाल में फँस गया। अब बेचारा दहाड़ता है। वे पैने नाखून, वे बड़ी मोटी दाढ़ें कोई काम में नहीं आ रही थीं। उस जाल के अन्दर वह दहाड़ता है, चीखता है, रोता है। सोच रहा था कि अब मेरा जीवन समाप्त हो जायेगा। उस आवाज को चूहे ने सुन लिया और चिन्तन करता है कि मेरा सम्राट संकट में है। धीरे-से चूहा जाल में प्रवेश कर गया। जिनके लिये पंजे काम नहीं कर रहे थे, चूहे के छोटे-छोटे दाँतों ने जाल काट दिया और अपने वनराज को बाहर निकाल लिया। फिर कहता है, 'स्वामी! प्रणाम। 'अब वनराज लज्जा के कारण नीचे दृष्टि किये था। बोला 'क्या बोलते हो भाई?' 'महाराज! जहाँ तलवार काम नहीं आती है, वहाँ सुई काम में आती है। तलवार काट ही सकती है, सुई सिलने का काम करती है। महाराज! छोटे भी काम में आते हैं। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं।' ध्यान दो, मैं क्यों कह रहा हूँ। जितने यहाँ शेर बने बैठे हों, वे अपने गरीब भाइयों को चूहे मान कर ही सही, लेकिन उनके साथ अनाचार मत करना। जब तुम संकट में फँसोगे, तब ये ही तुम्हारे काम में आयेंगे। शेर के पंजे काम में नहीं आयेंगे। इसलिये किसी को छोटा मत मानो, किसी को हीन मत मानो। सबको लेकर चलो, मिल कर चलो। पुण्य को भी धैर्य के साथ भोगो। जो व्यक्ति पुण्य में धैर्य नहीं रखता है, वह शीघ्र विफल हो जाता है। इसलिये यहाँ आचार्य महाराज निर्ग्रन्थों से कह रहे हैं, हे मुनीश्वर! ये यश:कीर्ति, ये वैभववृद्धि आदि तपस्या की साधना, यह भी कर्म ही है। तप से प्रसिद्धि मिल रही है, ज्ञान से प्रसिद्धि मिल रही है। ये कर्मोदय है। यश:कीर्ति कर्म है। यह शाश्वत् नहीं है, ध्रुव नहीं है। ध्रुवधाम तो आत्मद्रव्य है। उस पर लक्ष्य बनाओ। इसमें उलझ करके अपनी आत्मा का पतन मत कर लेना।

भाई! ऊँचा-नीचा सर्वत्र होता है। जीवन की अनेक-अनेक अनुभूतियाँ होंगी। आपकी ही सन्तानों में पुण्य का एकत्व नहीं होता। एक बेटा एक दिन में हजार कमाता है, दूसरा बेटा एक दिन में लाख कमाता है और तीसरा बेटा हजार दो तो पाँच भी लेकर नहीं आता है। आप क्या करोगे? एक पिता की सन्तानों में भी पुण्य का एकत्व नहीं है, तो सारे जगत् के जीवों के पुण्य में एकत्व क्यों देखते हो? इसलिये किसी से ईर्ष्या मत करो, डाह मत करो। पुण्य का फल चाहते हो तो पुण्य करो और परमात्मा बनना चाहते हो तो पुण्य-पाप दोनों से भिन्न होकर रत्नत्रय की आराधना करो। यही सत्य है।

धीराणामपि ते धीरा ये निराकुलचेतसः।
कर्मशत्रुमहासैन्यं ये जयन्ति तपोबलात्॥ सा. स. 209॥

ज्ञानी! संसार के सुख के लिये कितना धैर्य रखते हो? दुकान पर बैठकर तुम कितनी समता रखते हो? ग्राहक तुम्हारी दुकान पर पहुँच कर तुम्हें कितना परेशान करते हैं? कितने थान नीचे गिरवा लेते हैं, धन्य हो तेरी समता को। महिलायें तो पूरी अलमारी नीचे पटकवा लेती हैं और कहो कुछ भी लेकर न जायें। बेचारा कुटिल मुस्कुराहट के साथ फिर लपेट कर रख लेता है। इतनी समता मुनि बनकर रख लेता तो मोक्ष हो जाता, जितनी समता तू घर में रख लेता है। व्यापारी को कितनी समता होती है। उसे मालूम है कि यदि धैर्य खो दिया, तो फिर वह दुबारा नहीं आयेगा। धैर्य के बिना लक्ष्मी नहीं मिलती, तो बिना धैर्य के मोक्षलक्ष्मी कैसे मिलेगी? इसलिये मुनि को धैर्य रखना ही चाहिये। ऐसा नहीं कि मैं आगरा आया, तुमने ऐसा नहीं किया, तुमने वैसा नहीं किया। हे महाराज! मुझे पता है। मैं दुकानदार हूँ। दुकान में पैसा कमाने के लिये कितना धैर्य रखना पड़ता है। तुम्हें कर्म की निर्जरा रखना है, पुण्य का द्रव्य कमाना है, तो कितना धैर्य रखना पड़ेगा। आप साता से शान्ति से विराजो, सब हो जायेगा। होता स्वयं जगत् परिणाम। धैर्य रखने के लिये भी पुण्य चाहिये।

वे योगी धीरों में धीर हैं। सबसे दीर्घ साधना है **'निराकुल चेतसः।'** जीवन जी रहा हूँ, **निराकुल चेतसः।** चित्त में निराकुलता रहना चाहिये।

"आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।

प्रश्न-आत्मा का सुख क्या है?

अब देखो, पण्डित दौलतराम जी का 'छहढाला' क्यों प्रसिद्ध हो गया? उस जीव ने एक भी शब्द अपने मन का नहीं लिखा। 'निराकुल चेतसः' का पद्यानुवाद कर दिया।

आत्मा का सुख तो आकुलता के बिना है। आकुलता मोक्ष में नहीं है, इसलिये आपको मोक्षमार्ग में लग जाना चाहिये। ज्ञानियों! मोक्षमार्ग में लग कर भी आकुलता से दूर ही रहना चाहिये। मोक्ष की भी आकांक्षा नहीं होना चाहिये। मोक्ष मिल जायेगा। जब मोक्ष की भी इच्छा करने से मोक्ष नहीं मिलता, तो संसार की इच्छा करने से मोक्ष कहाँ मिल सकता है? निराकुल चेतसः। जो निराकुल चित्त वाला है, वह कर्मरूपी शत्रु की महान् सेना को जीत लेता है। दिगम्बर योगी तपोधन अपने तप के बल से कर्मरूपी महासेना के बल को क्षणमात्र में जीत लेते हैं।

ज्ञानियो! धीर की भी मृत्यु होती है, अधीर की भी मृत्यु होती है। जब दोनों की मृत्यु होती है, तो क्यों न हम धीरता के साथ मरें? और वीरमरण करेंगे तो पण्डित-पण्डित मरण करके भगवान् बनेंगे।

ध्यान रखना, धैर्य को मत भूल जाना। निराकुल चेतसः। चित्त को निराकुल रखो। जो है, सो है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"शूरवीर कौन है?"

परीषहजये शूराः शूराश्चेन्द्रियनिग्रहे।
कषायविजये शूरास्ते शूरा गदिता बुधैः॥210॥

अन्वयार्थ-परीषहजये शूराः = जो क्षुधा, तृषा आदि बाईस परीषहों के जीतने में वीर हैं, **च इन्द्रियनिग्रहे शूराः** = और पाँचों इन्द्रियों को वश रखने में धीर हैं, **कषायविजये शूराः** = और जो क्रोधादि कषायों के जीतने में योद्धा है, **ते शूराः** = वे ही सच्चे वीर, **बुधैः गदिताः** = बुद्धिमानों के द्वारा कहे गये हैं।

भावार्थ-जो क्षुधा-तृषा आदि बाइस परीषहों को सहन करने में समर्थ हैं, जो पाँचों इन्द्रियों को वश में रखने में वीर हैं और जो क्रोधादि कषायों को जीतने में योद्धा हैं, ज्ञानियों ने उन्हीं को सच्चा शूरवीर योद्धा कहा है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञशासन, जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में एक शूर पुरुष की व्याख्या कर रहे हैं। धीर और शूर अपने परिणामों के वैसम्यपने को साम्य में ढालने की सामर्थ्य रखता है। वह धैर्यवान् है, विषमताओं के आने पर भी परिणामों में कालुष्यपन नहीं होने दे रहा है। विकारों के आने के उपरान्त भी विकारी नहीं हो रहा है, वही शूर पुरुष है। अशुभकर्म के विपाक के काल में चारों ओर से विषमताओं ने अधिकार जमा लिया हो, उस समयकाल में अपने भावों को सम्हाल पाना, यही बड़ी शूरता है। समझाने की क्षमता तो सामान्य पुरुष में भी होती है, परन्तु स्वयं को समझाने की क्षमता महापुरुष मात्र में होती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि-जैसे जीव कर्म के विपाक में भयभीत हो गये। आप कह सकते हैं कि भय संज्ञा नहीं थी तो भयभीत कैसे? भय संज्ञा आठवें गुणस्थान में भी होती

है। सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी कषाय के सहचरभूत जिस गुणस्थान में जो कषाय है तद्जन्य भय तो होगा।

भरत-जैसा जीव बाहुबली पर चक्र चला बैठा। खो गये धैर्य को, खो गये शूरता को। मानकषाय ने भरत की शूरता को जीत लिया। मानकषाय ने बाहुबली की वीरता को जीत लिया। **बाहुबल से दूसरे की भुजाओं को तोड़ देना न शूरता है, न वीरता है, अपितु हिंसा है। दूसरे के प्रति अशुभ भाव आ रहे हों, उसे साम्यभाव से शान्त कर लेना, इसी का नाम शूरता है, इसी का नाम वीरता है।** नरक जानेवाला भुजबली बाहुबल से पर की बाहों को तोड़ता है। निगोद में जानेवाला भुजबली मायाप्रकृति से आर्जवधर्म की कमर तोड़ता है, परन्तु जिसको सिद्धशिला का सेहरा बनना है, वह क्षमा आदि धर्मों का आलम्बन लेकर कषायभावों को दूर से ही दूर कर देता है। उस वीर की व्याख्या चल रही है। यह मान कर चलना कि यह प्रवचनभवन ही हमारी सल्लेखना का संस्तर है, संथारा है, सल्लेखनास्थल है। जहाँ देह छोड़ी जा रही है, वो भूमि ही संस्तर नहीं है। निज की देह को ही संस्तर बना लो। जहाँ बैठे हो, वहीं अपना समाधिस्थल बना लो। जहाँ मेरे प्राण निकले, जहाँ मेरे शरीर के संस्कार हों, ऐसी भूमि को निषधिका भूमि मान करके लोक पूजने आयें, यह बहुत बड़ी बात नहीं है। मेरे मित्रो। अपनी देह को ही समाधिभूमि बना करके सम्मान कर लो। इससे बड़ा सम्मान क्या हो सकता है?

जीते-जीते मैं अपनी समाधिभूमि को देखना चाहता हूँ। मेरी समाधिभूमि मेरी साम्य-भूमिका है। मेरी साम्य-भूमिका का विच्छेद हो गया तो भूमि का समीकरण करके शरीर तो जला दिया जायेगा, पर भावों का समीकरण होकर समाधि नहीं हो सकेगी। भगवती आराधना, मरणकण्डिका ये जैनदर्शन में सल्लेखना का कथन करने वाले अलौकिक ग्रन्थ हैं। जब हमारा अन्तिम समय नजदीक आये, तब अध्ययन की क्षमता बची या न बची, कोई निश्चत नहीं है, परन्तु जैसे विशुद्ध मती ने विशुद्ध भावों से अन्तिम दिन कह दिया, आज से मेरा गर्म पानी का

भी त्याग है, जयवन्त हों वे शान्तिसागर, जयवन्त हों वे आदिसागर, जिन्होंने दृढ़ता के साथ त्याग किया। लोग जीने के लिये खा रहे हैं। विश्व में सबसे बड़ा राग जीने का राग है। **जो जन्म-मरण के नाश के लिये भोजन भी छोड़ रहे हैं, उनका नाम साधु है।**

जो उत्कृष्ट भोग-सुख से युक्त है, जो उत्कृष्ट कार्य में लीन है, स्पर्श-रस-गंध वर्ण से शून्य जो निज भगवान्-आत्मा है, उसकी सिद्धि का जिसका पुरुषार्थ चल रहा है, वह वेद से चाहे नारी हो या नपुंसक हो, पर भावों से जिसका पुरुष प्राप्ति का लक्ष्य है, वह पुरुष है। **जिसने सल्लेखना व्रत का पालन कर लिया है, वह शास्त्रों के पढ़े बिना पण्डित है। जिसने सल्लेखनापूर्वक अन्तिम श्वास को पूर्ण किया है, वह शास्त्र पढ़े बिना भी पण्डित है।** शास्त्र पढ़नेवाला विद्वान् इसलिये बनाया जाता है कि मेरी अन्तिम श्वास शास्ता पर हो और मोक्षमार्ग के रास्ते पर हो। बड़ी सहजता से सुनना और सहजता में समझना। मेरी सल्लेखना का समय चल रहा है। जगत् के शुभ वचनों को सुनने की क्षमता लाइये, इसमें हर्ष उत्पन्न न हो पाये।

जगत् में अपनी प्रशंसा सुनने की क्षमता लाइये। निन्दा करनेवालों की संख्या कम है, प्रशंसा करनेवालों की संख्या अधिक है। निन्दा करनेवाला तो सावधान करता है, प्रशंसा करनेवाला उन्मत्त कर देता है। आज समझ में न आये, तो अन्तिम श्वास के समय समझ में आ जाये। अन्तिम श्वास के समय भी समझ में न आये तो अगली पर्याय में समझ लेना, लेकिन समझ लेना। यह मत सोचना कि महाराज! यह आप मुझे ही सुना रहे हो कि सुनानेवाले को भी सुना रहे हो? मित्र! विश्वास रखना, मैं सुनानेवाले को भी सुना रहा हूँ। प्रशंसा को पचा पाना साधुजीवन की बहुत बड़ी साधना है। जो प्रशंसा कर रहा है, वह मित्र ही है। जो मेरे में हो रहा है, वह स्वाधीन है। मेरे बारे में जो कह रहा है, वह मैं हूँ यह नियत हो, यह नियत नहीं है और पर के द्वारा की गई निन्दा सत्य हो, यह भी नियत नहीं है। पर मेरा भाव मेरे मैं है। अन्तिम काल में प्रशंसा सुनने को

समय मत देना, निन्दा सुनने को समय मत देना। अन्तिम समय में भावों की भवावलि को समझने के लिये समय देना। यदि मैंने प्रशंसा सुनने में समय दे दिया और कहीं मानकषाय विराजमान हो गई और मेरी अन्तिम श्वास निकल गई, तो मेरी दुर्गति हो जायेगी। मैंने निन्दा सुनने को समय दे दिया और उस समयकाल में अन्तिम श्वास निकल गई, तो अशुभ क्लेश परिणाम हो जायेंगे और दुर्गति हो जायेगी।

दुनियाँ को बाहर में कितना ही समय देते रहना। भोजन को समय तो निकालते ही हो। कितनी ही बड़ी यात्रा को गये हो, कितना ही महत्वपूर्ण कार्य चल रहा हो, लेकिन भोजन का समय तो निकालते हो। मुनियों के अट्ठाइस कृतिकर्म हैं। उन अहोरात्रि क्रियाओं के मध्य में भी आहारचर्या का समय रखा गया है। जैसे देह को चलाने के लिये भोजन का अनिवार्य समय रखा गया है, ऐसे ही भावों की विशुद्धि को बढ़ाने के लिये अपने जीवन का अलग से समय निकालना, कि मैं इस समय अपने बारे में सोच सकूँ। वह समय भी हमारे पास है, आपको मालूम होना चाहिये। तीन बार जो सामायिक का समय है, वह इसी के लिये है। जैसे **योगियों को भोजन का काल नियत रख दिया है, ऐसे ही निज के बारे में सोचने का काल भी नियत किया गया है। यदि श्रमण अथवा श्रावक सामायिक के काल को अन्य कार्यों में लगाता है, तो वह तस्कर है, आपने बहुत बड़ा डाका डाल दिया है। जो जिनदेव की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता, वह अन्य की आज्ञा का पालन क्या करेगा?** वृद्ध होने पर सल्लेखना धारण करना जिनदेव की आज्ञा है। वृद्ध-अवस्था आते-आते सन्यास ले लेना, यह जिनदेव की आज्ञा है। वृद्धावस्था आने पर सल्लेखना के परिणाम कर ही नहीं रहे हो, तो आप जिनदेव की आज्ञा को भङ्ग कर रहे हो। इसका मतलब क्या हुआ? जिन-आज्ञा पालन करनेवाला ही सम्यक्त्व से युक्त है। जिनदेव की आज्ञा है कि जीव की अन्तिम श्वास को नाक में नलियों के साथ पूर्ण मत करना। जीवन की अन्तिम श्वास को गाड़ियों में मत निकालना। जीवन की अन्तिम श्वास को निर्ग्रन्थों के चरणों में निकालने का विचार करना। यदि इतना भी अपने

लिये नहीं कर सका, तो तूने जीवन में किया ही क्या है? आज की चर्चा घट-घट में होनी चाहिये। अन्तिम श्वास 'भज अरिहन्तं' के साथ होना चाहिये। शरीर ठण्डा होने के पहले भावों को ठण्डा कर लो, शरीर दुर्गति से ठण्डा हो जायेगा। शरीर तो प्रकृति से ठण्डा हो जायेगा, लेकिन भावों को ठण्डा पुरुषार्थ से करना होगा। हंस निकलते ही शरीर ठण्डा हो जायेगा, परन्तु भावों की शीतलता तो पुरुषार्थसाध्य है। देह ठण्डी होने के पहले भावों को ठण्डा कर लेना।

वर्णी जी ने अपने जीवन का निर्णय किया। अपने पूरे नियम लिखकर 'समयसार' में रख लिये। ज्ञान का मद कितना विराट होता है कि अभी मैं जीऊँगा तो और-कुछ करूँगा। धन्य हो उस निर्णय को। मैं जीने के लिये नहीं जी रहा था, संयम के लिये जी रहा था। जीने से संयम नष्ट होता हो तो उस जीवन से क्या प्रयोजन? जीने से संयम में दोष लग रहा हो तो जीवन का लोभ छोड़ देते हैं, लेकिन संयम को नहीं छोड़ते हैं। साधु लोग बड़े लोभी होते हैं कि जीवन छोड़ सकते हैं, लेकिन संयम नहीं छोड़ सकते। ऐसा लोभ स्वीकार है। प्रशस्त लोभ है। अज्ञानी कहता है कि और जीते तो और प्रभावना होती। किसकी?

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रय तेजसा।।पु.सि.।।

जब तक आत्मा की प्रभावना रत्नत्रय के तेज से हो रही है, तभी तक जीना चाहिये और रत्नत्रय के तेज में कभी आने लग जाये, तो समाधि की ओर चले जाना चाहिये। गम्भीर निर्णय है। मैं तो उन साधुओं की चरम सीमा का ध्यान करता हूँ। एक कह रहा है कि मुख में पानी डाल दो, कहीं प्राण न निकल जायें। और दूसरा कह रहा है कि मेरे प्राण निकलने का समय हो चुका हो तो निकल जाने दो, अब मैं पानी भी नहीं पिऊँगा। बिना पिये कैसे रहोगे? हाँ! पिऊँगा। मुख से नहीं पीऊँगा, अब कानों से पीऊँगा। पीना तो धर्म है। मुख से पीने का त्याग किया है। कानों से पीने का त्याग मत करना। सतृष्णातुर होकरके पीना। पद्मप्रभमलधारि देव की भाषा में कहो तो कर्णाञ्जुलि बना करके भगवान् जिनेन्द्र की इस परम अमृतभूत जिनवाणी का रसपान करना।

जन्म के समय शरीर को बढ़ानेवाली माँ ममता का आँचल का पान किया। बिना पान के तो कल्याण हो ही नहीं सकता। जन्म के समय माँ के आँचल का पान किया है, तो मृत्यु के समय माँ जिनवाणी के आँचल का पान करना। जिसने जन्म दिया था, उसने बाद में भले ही उठा लिया हो, पर प्रथम अवस्था पर जमीन में पटका था। याद करो। भूल गये? मत समझो कि प्रवचन सुन रहे हो। यही समझो कि सामायिक कर रहे हो। हे माँ जिनवाणी! जन्म देनेवाली तो पहले जमीन पर पटकती है, पर तू मुझे जमीन से सिद्धशिला की ओर ले जाती है। इसलिये हे भगवती माँ जिनवाणी! मेरी अन्तिम श्वास में मैं जन्म देनेवाली माँ को याद न करूँ, चर्म के आँचल को मुख में देने वाली माँ को याद न करूँ, अन्तिम समय में जन्म-मरण से रहित करनेवाली माँ जिनवाणी तेरी याद करूँ, और-किसी की याद न करूँ। ये संस्कार आप आज से डालिये। जिन्होंने जीवन में कभी स्वाध्याय करने का मन न किया हो, वो आज नियम ले लो। यदि आप मुझे अपना मानते हो तो मेरी इतनी-सी बात मान लेना, आज से स्वाध्याय शुरू कर देना। सरल-से-सरल ग्रन्थ विस्तार लेना। भले ही एक साल में एक ग्रन्थ पूरा कर पाओ, लेकिन आज से स्वाध्याय शुरू कर देना। ज्ञानियों! जो बीच के लोग हैं, वे अन्तिम समय काम में आनेवाले नहीं हैं। यदि आचार्य, निर्यापकाचार्य भी मिल गये, तो वे भी तभी तक समझा पायेंगे जब तक तुम्हारा साथ समता की माँ दे रही होगी। अन्तिम श्वास में गुरु भी सुनायेंगे, कोई दूसरा भी सुनायेगा।

जिणवयण मोसहमिणम्।। मूला.।।

जिनवचन ही परम औषधि हैं। कुछ लोगों को लगता है कि मैं जिनवाणी पर बहुत जोर देता हूँ। मेरे मित्र! निपिल का दूध, चम्मच का दूध मुख में जरूर डाल दो, पर उतना आनन्द नहीं देता जितना स्वयं माँ के आँचल से निकालने पर आता है। यह बाहर का दूध है। ऐसे ही सल्लेखना के काल में दूसरे ने सुनाकर शान्त रखा, वह तो चम्मच से डाल कर शान्त रखा गया है। हे प्रभो! अड़तालीस

महाराज मेरी सल्लेखना के समय हों तो बहुत अच्छा है, लेकिन मैं तो अपनी माँ के आँचल का पान अपने ही द्वारा करूँ, उसमें गहरा आनन्द आयेगा। मैं ही निर्यापकाचार्य बनूँ, मैं ही क्षपक बनूँ, मैं ही परिचारक बनूँ। जिनवाणी होगी। मस्तिष्क सुरक्षित है, इन्द्रियाँ सुरक्षित हैं, अब अन्य कामों में लगना बन्द कर दो। अन्यथा तेरी मृत्यु तो हो जायेगी, लेकिन समाधि नहीं होगी। अब तो अपना मस्तिष्क सुरक्षित कीजिये। व्यर्थ के विचारों में नष्ट मत करो। खाली छोड़ना प्रारम्भ करो।

हे श्रावको! जैसे तुम घर में मेहमान के लिये चौक पूर लेते हो, दीपक रखते हो, ऐसे ही अपने हृदयांगन में आप सफाई करलो, भेदविज्ञान का दीप जला लो, क्योंकि मृत्युमहोत्सव मेहमान पधार रहा है, इसकी अच्छी अगवानी करो, अगवानी में कोई चूक मत करना। दीप जला लो हृदयांगन में, मृत्युमहोत्सव आ रहा है। आज ही निर्णय करना पड़ेगा। जब-जब तुमको नींद न आये, कभी गोलियाँ मत खाना, पागल होना हो तो खा लेना। जब उपवास किया हो, नींद नहीं आ रही है, शरीर थक गया है, तो अज्ञानी कहेगा कि भूख लगी, भूख लगी। अकाम निर्जरा कर रहा है, पापबन्ध कर रहा है। ऐसे समयकाल में क्या करना? बिल्कुल शान्त। शवासन में पड़े रहना, मुर्दा जैसे। अब मेरी समाधि हो रही है, पेट में भूख लग रही है, सिर दर्द कर रहा है, सब घेरे बैठे हैं। वे हाथ-पैर तो दबा देंगे, लेकिन कर्म नहीं दबा पायेंगे। वैद्य आकर औषधि तो दे देंगे, लेकिन कर्म नहीं दबा सकते हैं। बस, पड़े रहो। जब कभी आवश्यकता न हो तो हजारों लोग घेरे बैठे रहेंगे—'दबा दूँ, वैय्यावृत्ति कर दूँ?' हो सकता है कि कभी आवश्यकता हो, उस दिन तुम्हारे पास कोई नहीं आ रहा, अब क्या करोगे? आज है आनन्द। पड़े रहो। शरीर में बुखार है, पीड़ा है, क्षुधा सता रही है, अब तुम क्लेश नहीं करना, आनन्द लूटना। बस। अब मैं क्या देख रहा हूँ? जब मेरी समाधि होगी, तब मैं ऐसे ही होऊँगा। उस समय सब देखते रहेंगे। मैं अपने भावों को कैसे सँभालूँगा? यह मेरी आज समाधि चल रही है। समता में पड़े रहना, नेत्र बन्द

कर लेना, शवासन से पड़े रहना और देखना कि मैं ही निर्यापकाचार्य हूँ, मैं ही क्षपक हूँ। मैं तो मर ही गया, अब देखो, अनुभव कर रहा हूँ। मेरी श्वास भी निकल गई। अब लोग शरीर की सेवा में लगे हैं। मेरे बारे में कोई कुछ भी नहीं पूछ रहा है कि जीव का क्या हुआ? ये मिट्टी को निहारनेवाले मिट्टी के संस्कारों की बात करते हैं कि अब क्या करना चाहिये? पर ये जीव को कोई नहीं पूछता है कि बेचारा जीव कहाँ गया होगा?

सत्य यह है कि तेरे बारे में किसी को कोई चिन्ता नहीं है। रागियों को, जिससे राग की पूर्ति हो रही थी, उसी शरीर की चिन्ता है। मैंने तो संस्कार कर दिये, शान्ति विधान करवा दिया। तेरे भाव विचलित हो रहे थे सो माहौल ठण्डा करने के लिये, अपने अशान्त मन को शान्त करने के लिये, शान्तिविधान किया है, उनके लिये नहीं किया। वे तो जैसे उनके भाव थे, वहाँ चले गये होंगे। अब अपन शान्तिविधान करके अपना व्यापार करो। वे गये सो गये। शान्तिविधान होने का मतलब है कि अब अशान्ति में लग जाओ। मेरी बात मान लो, भैया! जीते-जीते जीओ। चारपाई पर नींद न आये तो अपनी अन्तिम श्वास की याद किया करो। पूरी रात अपने लिये पड़ी हुई है। जिनको नींद न आये, वे तो बड़े पुण्यात्मा जीव हैं। योगी तो जित्निद्रा होने के लिये तपस्या करते हैं। तुम्हारे अहोभाग्य हैं। तुम करवट मत बदलना, तुम तो लेटे-लेटे चिन्तन करना। लेटे-लेटे थक जाओ तो बैठ कर जाप करना। जाप से थक जाओ तो ध्यान करना। ध्यान से थक जाओ तो स्वाध्याय करना, स्वाध्याय से थक जाओ तो कुछ भी नहीं करना। चलेगा? जिसने कुछ भी नहीं करने की साधना कर ली, वह जैनधर्म की अन्तिम साधना है। कुछ भी नहीं करना, यही पुरुषार्थ करो।

हे धीर! हे वीर! कहीं यह डर तो नहीं लग रहा कि महाराज चातुर्मास के अंत-अन्त तक सबको ऊपर भेज देंगे। नहीं, मित्रो! कोई किसी को भेजता नहीं है। कहीं जाने का समय आ जाये तो ऐसे चले जाना। जाना तो पड़ेगा ही। अच्छा, यह बताओ, कितने लोगों को नहीं जाना पड़ेगा? सबको जाना पड़ेगा। जब जाना

ही पड़ेगा, तो ये हाय-हाय छोड़ो। जो नये आयेंगे, वे अपना जीवन जीना सीख लेंगे। उनके जीवन के राग में अपनी मृत्यु की बिडम्बना मत करो।

ध्रुव सत्य है कि जब माँ की गोद में घण्टों निकल जायें, कोई बड़ी बात नहीं है। सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीस सागर तक तत्त्वचर्चा करते हैं, पुनः दोहराते नहीं हैं। इतना आगम है। जिसने एक बार जिनवाणी का आनन्द चख लिया, वह मान नहीं सकता है, उसको तो जिनवाणी चाहिये। अमित्रों का मित्र जिनवाणी है।

जब सभी अपने को छोड़ दें तो रोना नहीं और मुस्कराना, कि बहुत अच्छा हुआ। यदि इन मित्रों के साथ रहता तो इनसे बातें करनी पड़तीं तो इतना स्वाध्याय का समय नष्ट होता। बहुत अच्छा हुआ जो ये लोग हमें छोड़ रहे हैं। अब तो मुझे और आनन्द आयेगा कि मैं जिनवाणी के साथ और-लम्बे समय तक रहूँगा। रिश्तेदार भी न बुलायें, बेटे भी छोड़ दें, बेटे की माँ भी छोड़ दे, धक्का मार कर भगा दे, तो रोना मत, मुस्कराना, कि अब तो और-अच्छा हुआ, अब राग भी नहीं समायेगा। मन कहेगा कि धक्का मार कर भगा दिया तो अब कहाँ-कहाँ जाऊँ? बहुत अच्छा ये होता कि बिना धक्का के पहले चला जाता, लेकिन कोई बात नहीं, धक्के के साथ गया, गया तो।

परीषहजये शूराः, शूराश्चेन्द्रिय-निग्रहे।
कषायविजये शूरास्ते शूराःगदिताःबुधैः॥ सा. स.210॥

क्षुधा आदि परीषह सता रहे हैं, तब भी नहीं सोच रहे हैं। मैं घर में होता तो ऐसे बैठकर थाली में षट्रस भोजन करता, पर यहाँ गये तो प्रथम ग्रास पर ही बाल आ गया, मुस्करा कर आ गये। चलो, एक कर्म तो गया। श्रावक अपने ही विवेक से तो देगा, परन्तु नियत नहीं है कि उसका विवेक तुम्हारे शरीर के अनुकूल हो।

माँ! आप अपने बच्चे को अपने विवेक के अनुसार पाल रही हो, लेकिन आपके पालने के काल में कभी-कभी उसको घोर पीड़ा होती है। लेकिन उसके

पास ज्यादा विवेक नहीं जगा, इसलिये वह सब भूल जाता है। यदि पूरे याद रखे, तो बड़ा होकर सबसे पहले आपसे ही बदला लेगा। वह तो बहुत अच्छा है कि छोटे में बच्चे के अन्दर ज्यादा जानने-सोचने की क्षमता नहीं रहती। लेकिन कई बार माता-पिता की ना-समझी के कारण बच्चे बीमार भी हो जाते हैं और जीवनभर बीमार रहते हैं। कोई की नाक टेड़ी हो गई, कोई के शरीर विकृत हो गये, माता-पिता की गल्ती है। अब तुम कह रहे हो कि मेरा बच्चा तोतला है। सत्य तो यह है कि बालकों का तोतलापन उनके कर्म के उदय के साथ-साथ माता-पिता की करतूती है। आपको बुरा न लगे तो स्पष्ट बता सकता हूँ। लगे तो लग ही जाने दो। भैया! आयुर्वेद शास्त्र व धर्मग्रन्थों में लिखा है, जो माता-पिता बनने के शौकीन थे, लेकिन विवेकविहीन थे, जो पाँच दिन की अशुद्धि में भी शील का पालन नहीं कर पाते, उनके घर में तोतली सन्तान होती है। सूर्पनखा और रावण जैसी सन्तान उन्हीं के घर में होती हैं जो पाँच दिन भी संयम का पालन नहीं कर पाते हैं। इसलिये इस बात का भी ध्यान दो। यह बातें देश के विद्वानों को बताना चाहिये। समाज किस ओर जा रही है? आज कॉलेज और ज्ञान के राग के कारण हमारे कितने घर बिगड़ रहे हैं। समाज बिगड़ रही है, समाज को नीचा देखना पड़ रहा है। पढ़ाओ, पढ़ाओ और एक डिबिया पकड़ा दी, पढ़ाई हो रही है कि नाश हो रहा है? पढ़ाने के राग में समाज की हँसी हो रही है।

जन्म देना सीख गये, लेकिन पालना नहीं सीख पाये। दृष्टि तो रखना चाहिये कि बेटे-बेटियाँ कहाँ घूम रहे हैं? कहाँ खड़े हैं? निगरानी होना चाहिये। सब समझ रहे हैं मेरी भाषा को। जब मैं कहीं भी जाता हूँ तो इतिहास पता करता हूँ। एक छोटी-सी बात को लेकरके ये हमारी समाज जो इस क्षेत्र में निवास कर रही है, अपनी मातृभूमि को छोड़कर भाग आयी। जब किसी ने हमारे जैनबन्धु से कन्या माँगी, तो वह बोला कि मैं भूमि छोड़ सकता हूँ, सम्पत्ति छोड़ सकता हूँ, पर अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता हूँ।

ये जैसवाल आदि समाज यहाँ इसी बात पर आयी है कि विधर्मी को अपनी कन्या नहीं दी, नगर छोड़ दिया। राजस्थान, जो इनकी मातृभूमि थी, उसको छोड़कर

चले आये, लेकिन अपनी बेटी विधर्मी के हाथ में नहीं सौंपी। यह इतिहास हर युवा को सुनाना चाहिये। छत्तीसगढ़ में बहुत बड़ी जैनसमाज थी। वहाँ प्राचीन मन्दिर हैं, वहाँ का भी यही इतिहास है। किसी आदिवासी राजा ने जैन कन्या से विवाह की बात की तो जैन ने एक पत्र छोड़ दिया था कि मैं कन्या को कुए में डालना पसन्द करता हूँ, पर जिस कुल में नमोस्तु-नमोस्तु नहीं बुलता है, उस कुल में मैं अपनी कन्या नहीं देता हूँ। उस राजा ने इतनी क्रूरता की कि समाज रातों-रात सब छोड़ कर चली आयी। वर्तमान में छत्तीसगढ़ में जो समाज है, वह बाद में गई हुई समाज है। आरंग रायपुर जिले में है। वहाँ खजुराहो की शैली में मन्दिर बने हुये हैं। लोगों ने प्रतिमायें भग्न कर दीं। मात्र देखने का भाव था। वहाँ जब मैं मन्दिर में बैठकर सामायिक कर रहा था, वहाँ के ग्रामीण छत्तीसगढ़ी लोग बोल रहे थे, कि यहाँ पर दो सौ वर्ष पूर्व के जैनियों के ग्रन्थ अमुख पुरोहित जी के घर में रखे हुये हैं। जितनी समाज थी, सब चली गई। इसलिये ध्यान रखो, इतना ही संकेत बहुत है कि इस जिनवाणी, जिनधर्म, निर्ग्रन्थ गुरु की रक्षा के भाव तुम्हारे अन्दर हैं तो समाज में बेटा-बेटियों की रक्षा करो। एक-एक सन्तान को तुम जैनधर्म मानो। आज महावीर स्वामी के पिता जी महावीर की रक्षा न करते, विरागसागर, विद्यासागर, आदिसागर, महावीरकीर्ति, विमलसागर, शान्तिसागर इनके माता-पिता अपने बच्चों को नहीं सँभालते, तो आज इस भूमि पर बैठ करके तुमको 'सारसमुच्चय' सुनने को नहीं मिलता।

आचार्यश्री ने दिगम्बर मुनि को 'शूर' कहा है। जो परीषह सहन करने में शूर हैं, जो इन्द्रियों को वश में रखने में वीर हैं, क्रोधकषाय को जीतने में जो योद्धा हैं, ऐसे उन्हें बुद्धिमानों ने सच्चा शूरवीर योद्धा कहा है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"विशुद्ध ध्यान"

नादत्तेऽभिनवं कर्म सच्चारित्रनिविष्टधीः।
पुराणं निर्जयेबाढं विशुद्धध्यानसङ्गतः॥211॥

अन्वयार्थ-सच्चारित्रनिविष्टधीः = सम्यक्चारित्र के पालने में जिसकी बुद्धि लवलीन है वह ज्ञानी, **विशुद्धध्यानसङ्गतः** = निर्मल वीतराग ध्यान की संगति से, **अभिनवं कर्मं न आदत्ते** = नवीन कर्मों का आस्रव नहीं करता है, **पुराणं बाढं निर्जयेत्** = व पुराने कर्मों की अत्यधिक निर्जरा करता है।

भावार्थ-सम्यक्चारित्र के पालन करने में तत्पर बुद्धि वाला ज्ञानी विशुद्ध ध्यान की संगति से नवीन कर्मों का आस्रव नहीं करता है और पुराने कर्मों की अत्यधि ाक निर्जरा करता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञशासन। जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी सकलचारित्र की अलौकिक व्याख्या करते हुये संसारातीत होने की कला का निरूपण कर रहे हैं।

ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में शूर पुरुष की व्याख्या कर रहे हैं। आज तक हमारी दृष्टि यही रही कि जो समरभूमि में जाकर प्राणियों की भुजाओं को विगलित कर दे, पर के शरीर से रक्त को बहा दे, उसको हमने शूर समझ लिया था; परन्तु विश्वास रखना, उससे बड़ा दीन-हीन जगत् में कोई नहीं है। शरीर के रक्त को अन्दर से बाहर निकलवा देना शूरता नहीं है। **अपने भीतर की कषाय को निकाल कर फेंक दे, उसका नाम शूर है, वही वीर है।**

जीवन में क्रूरता की शूरता तिर्यंचों के भीतर भी है। क्रूरता की शूरता नारकियों के भीतर भी है। एक दूसरे के शरीर को नष्ट कर पाने की शूरता

अजगर के अन्दर भी है, सिंह के अन्दर भी है। परन्तु प्राणिमात्र के प्रति करुणा करके अपनी कषाय पर नियन्त्रण कर पाना, यह शूरता निर्ग्रन्थ तपोधनों मात्र के अन्दर है। तबतक ही श्रमणत्व है, तब तक ही साधकत्व है, जब तक समत्व है।

वीतरागी दिगम्बर मुनि के अन्दर में जबतक समता की विद्युत है, तब तक मुनित्व धर्म है। यदि समता विलीन हो जाती है तो मात्र ढाँचा अवशेष है, मुनित्व-पना नष्ट हो चुका है। इस बात को यहाँ आचार्यमहाराज कह रहे हैं। हे वीतरागी तपोधन! जंगल में बादल छा जायें तो चरने वाली गायें भी आकाश को देख करके नगर की ओर दौड़ने लगती हैं। हे योगीश्वर! उपसर्ग-परीषह की काली घटाओं के आने पर भी आप अपने निज उद्यान से बाहर नहीं निकलते, इसलिये आप शूर हो। धन्य है मुनिदशा। जब विषयों की ज्वालायें भड़कने की उम्र हो, अर्थ कमाने की दृष्टि हो, ऐसे काल में आप आत्म-अर्थ की प्राप्ति में लवलीन हो, धन्य है मुनिदशा। वे वीतरागी तपोधन आकाश में बिजली के तड़कने पर भयभीत नहीं हो रहे हैं। मेघों की गर्जना से भयभीत नहीं हो रहे हैं। निर्ग्रन्थों को विभाव भावों में प्रवेश करने में डर लगता है, बाकी उनके पास डर नाम की कोई वस्तु नहीं होती। उन्हें जन्म-मरण से कोई डर नहीं है।

बाईस परीषहों को सहन करने में जो शूर हैं, वे ही शूर हैं। आप देखो, भोजन न मिले तो चेहरा कैसा होता है? पानी न मिले तो आपका परिणमन कैसा होता है? पर धन्य हो उन योगियों को, मास-मास के उपवास हो गये, तब भी जीवन की अन्तिम श्वास लेना पसन्द करते हैं, परन्तु असमय में पानी-पानी चिल्लाना पसन्द नहीं करते। प्यास लगती है तो कानों से जिनवाणी पीते हैं, मुख से पानी नहीं पीते हैं, दिगम्बर मुनिराज ऐसे होते हैं।

पंचम काल में यह चमत्कार मत खोजना कि कोई गण्डा पहना दे, ताबीज दे दे, कोई नारियल फूँक जाये। ये सब व्यर्थ की बातें हैं। पंचमकाल में कोई चमत्कार देखना चाहते हो तो—

इस युग में देह अन्न का कीड़ा है, चित्त चलायमान है, ऐसे खोटे काल में भी यही चमत्कार है कि जिनरूप को धारण करने वाले नर दिखाई दे रहे हैं। यही पंचमकाल का चमत्कार है, चारित्र का चमत्कार है। और शूर कौन है? इन्द्रिय निग्रहो। किसी का हाथ पकड़ कर मरोड़ देना सरल है, लेकिन पापों में जाते मन को मरोड़ पाना कठिन है। हाथ मरोड़ना कठिन नहीं है। यह तो आपने काय बल का दुरुपयोग किया है। लेकिन आपके अन्दर वीरता तब है जब आपका मन मचल रहा हो कि आज तो मुझे ठेले पर जाकर फुलकी खाना है, चाट खाना है, उस समय ज्ञेय बनाना कि देखो मेरे परिणाम, मैं प्रौढ़ हो करके, आज भाव कहाँ जा रहे हैं? जहाँ परिणाम हो रहे हों, उसी स्थान पर खड़े हो जाना। वहाँ खड़े होकर चिन्तन करना कि यदि मेरी उम्र का धर्मात्माजीव मुझे ठेले पर टिक्की खाते दिख जाता, मैं उसको आँखों से देखता, तो मैं क्या सोचता? ओह! इतने बुजुर्ग हैं और खड़े-खड़े टिक्की खा रहे हैं? इनको शर्म नहीं आ रही। मुझे तो शर्म आ रही है। क्यों? क्योंकि मेरी समाज के मुखिया लोग ऐसे खड़े दिखेंगे तो युवाओं का क्या होगा? प्रतिष्ठा, बहुमान, लज्जा यह बहुत बड़ा गुण है। 'मूलाचार' जी में योगियों को कहा गया है कि इस गुण को कभी जीवन में भूल मत जाना।

हे मुनीश्वरो! आपने वस्त्र तो उतारे हैं, इसलिये दिगम्बर हो। लेकिन लज्जा उतार कर दिगम्बर नहीं हो, लज्जा पहन कर दिगम्बर हो। यदि लज्जा उतर गई, तो दिगम्बरत्व नंगेपन में बदल जायेगा, नग्नत्व समाप्त हो जायेगा। कई बार जीव के अशुभ भाव आते हैं। कहीं आपके वास्तव में खाने के परिणाम हो गये हों, कि ठेले पर जाकर खाऊँ, पर एक लज्जा गुण है कि मैं समाज में किस दृष्टि से देखा जाऊँगा? यदि आपने लज्जा को सुरक्षित रख लिया, तो आपकी इज्जत बची रहेगी। लज्जा निकल गई तो इज्जत उसी दिन नष्ट हो जायेगी। लज्जा-गुण-विहीन नहीं होना चाहिये। नारी की लज्जा, साधु की लज्जा। नारी की लज्जा है तो दोनों कुल मुस्करायेंगे। मातृपक्ष भी प्रसन्न रहेगा कि मेरी बिटिया

कितनी अच्छी है कि अपनी कुल-परम्परा में जी रही है। ससुराल पक्ष भी मुस्करायेगा कि मेरे घर में ऐसी बहू आयी है जिसने कुल को चमका दिया है। नारी की लज्जा तो मात्र संसार के कुल को प्रसन्न करायेगी, परन्तु साधु की लज्जा तीनलोक में मुस्कराहट फैलाती है। साधु की लज्जा पर सारे जिनशासन को प्रसन्नता आती है। लज्जा तो शील है। कैसे बोलें, कैसे चलें, कैसे बैठें, ये सारे-के-सारे विषय साधु की लज्जा में निहित हैं।

एक ज्ञानी साधु बन गया। कहता है कि अब शरमाने की क्या आवश्यकता है, अब तो मेरे कपड़े खुल ही गये हैं। मेरे मित्र! कपड़े इसलिये नहीं खुल गये कि तुम मर्यादा खोल कर भागने लग जाओ। कपड़े इसलिये खुले हैं कि जो वासनायें वस्त्रों में ढकी थीं, वे वासनायें निकल चुकी हैं। उसका प्रमाणपत्र कपड़े खोलना है, न कि लज्जा को नष्ट करना है। वस्तुव्यवस्था ये है। कहीं ऐसा न हो जाये कि जिनमुद्रा को प्राप्त करके जिनेश्वर के शासन में कलंक लग जाये। जैसे अरहन्त की प्रतिमा, बस, इसी अवस्था की प्राप्ति का लक्ष्य है। यदि आप बैठना नहीं सीख पाये, तो आप गर्दन टेढ़ी करके बैठने लग जाओ, तो चार-पाँच महीने के बाद डाक्टर के पास सीधी कराने भी जाओ तो वह सीधी होने वाली नहीं है। कोई जीव चाहे कि मैं जो चाहूँ वह करूँगा और वैसा करना प्रारम्भ कर दिया, फिर आप चाहो कि मैं भगवान्-जैसा बैठ जाऊँ, तो अब आपको भगवान् बिठालने नहीं आयेंगे, क्योंकि आपने ऐसे संस्कार डाल लिये हैं, जो आपको बार-बार वहीं ले जा रहे हैं। दूसरे के हाथ को मत मोड़ो, दूसरे के परिणामों को मत मोड़ो, दूसरे की गर्दन को मत मोड़ो, मोड़ने की भावना है तो अपने अशुभ में जाते परिणामों को मोड़ लो, तो तुम परमात्मा बन जाओगे। यदि परिणाम नहीं मोड़ पा रहे हो, तो परमात्मा के द्वार पर खड़े रहने पर भी पमात्मा नहीं बन पाओगे। क्या भगवान् के द्वार पर खड़े होने से कल्याण हो जायेगा? नहीं। मन्दिर में रहने मात्र से कल्याण नहीं होगा। यदि कल्याण चाहते हो तो आप जहाँ खड़े होंगे, परिणाम विशुद्ध होंगे, वही स्थान तुम्हारे लिये धर्मस्थान होगा।

वे गुरु चरण जहाँ धरैं, जग में तीरथ जेह।

विभिन्न पर्वतों पर तीर्थ नहीं थे। जिन पर्वतों की चोटियों पर निर्ग्रन्थ तपोधन पहुँच गये, केवलज्ञान प्राप्त किया, निर्वाण प्राप्त किया, वह भूमि सिद्धभूमि बन गई है निषीधिका का प्रभाव है। 'प्रतिक्रमणत्रयी' ग्रन्थ में सत्रह प्रकार की निषीधिकाओ का वर्णन है। दिगम्बर मुनि भी एक प्रकार की निषीधिका हैं। नसिया जी निषीधिका का ही बदला हुआ शब्द है। योगी दिन में तीन बाद निषीधिका की वन्दना करते हैं।

णमो णिस्सहीए, णमो णिस्सहीए णमो णिस्सहीए।

निषिद्धिकाओं को नमस्कार हो। अरहन्त प्रतिमा, सिद्धभूमियाँ, दिगम्बर योगियों की तपस्थली, उसकी निवास उनकी देह भी निषिद्धिका है। उसकी अपन वन्दना कर रहे हैं। हे योगी! चारित्र के नियोग से तुम्हारे शरीर की वन्दना हो रही है। दिगम्बर मुनि के रूप मात्र को देख करके लागों के भाव बदल जाते हैं। तिर्यंच प्राणी भी सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें मालुम नहीं होता कि ये कौन-से लिङ्ग में विराजे हैं, परन्तु जिनलिङ्ग की दृढ़ मुद्रा को देख करके हाथी, सिंह, नेवला जैसे अनेक तिर्यंच प्राणी सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। श्वान जैसे प्राणियों ने दिगम्बर रूप को देखकर सम्यक्त्व को प्राप्त किया है। जब भी मुनिराज बनने के भाव आ जायें, उन भावों से कहना 'हे मेरे परिणाम! जब मेरी दिगम्बर पर्याय पर के लिये सम्यक्त्व का साधन बन सकती है, तो मेरे दिगम्बर मुनि के परिणाम परमात्मा बनने के साधन क्यों नहीं बनेंगे? पर्याय परमात्मा बनने का साधन नहीं बनेगी, परमात्मा बनने का साधन तो परिणाम ही बनेंगे। जब द्रव्यलिङ्ग इतना पूज्य है, तो भावलिङ्ग कितना पूज्य होगा? यहाँ किसी योद्धा की बात नहीं की। जिसने कषायों को जीत लिया है, विद्वानों ने उन्हें ही शूर कहा है। शेष शूर 'शूर' नहीं हैं। जो सहन नहीं कर पाये, वे क्या शूर हैं जिनकी क्षण-क्षण में चार कषाय में से कोई कषाय प्रकट दिखती हो? कषाय और संज्ञा मनुष्यों में भी है, जगत् के प्राणियों के अन्दर भी है। कषाय और संज्ञा छुपाने की ताकत तो मनुष्य रखता

है, लेकिन कषाय और संज्ञा का निग्रह मुनि करता है। कषाय और संज्ञा को लाखों की भीड़ में जो प्रकट कर दे, उसका नाम तिर्यंच है। रास्ते में ऐसे अनेक तिर्यंच मिल जायेंगे, **उनके अन्दर जो भावना उत्पन्न होती है, वो नहीं देखते कि कौन खड़ा है। उसको कोई मतलब नहीं है। वह तो अपनी इन्द्रिय की लिप्सा की पूर्ति में लग जाता है। उसको कोई मर्यादा नहीं है कि देवालय है, कि देवस्थान है, कि श्मसान घाट है, कि जंगल है। तिर्यंच को इस बात का कोई विवेक नहीं होता। जो अपनी आहार, भय, मैथुन, परिग्रह चार संज्ञाओं की पूर्ति कहीं भी खड़े होकर करना प्रारम्भ कर देता है, उसका नाम है तिर्यंच।**

'गोम्मटसार' में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने कहा है कि जो कुटिलता से बहुल है, जिसकी संज्ञायें प्रकट हैं, उसका नाम तिर्यंच है। मेरे मित्रो! यदि तुम भी बाजार में खड़े होकर चाट को चाट रहे हो, तो अपने शुद्ध भावों से कहना, 'मैं इस समय तिर्यंच की पर्याय में जी रहा हूँ।' आकार मनुष्य का है, परन्तु भाव तिर्यंच का है। गोंच जब चलती है तो एक धागा-सा छोड़ती चली जाती है। बुरा लग जाये तो अच्छा रहे। दुनियाँ को भी पता चल जाता है कि यहाँ से गोंच निकल चुकी है। ऐसे ही आज हमारी नव पीढ़ी भी छोड़े बिना कहीं जाती नहीं है। जब मन्दिरों की, धर्मशालाओं की, गलियों की दीवालों पर, मार्ग पर, रोड़ पर गुटकों की पीक दिखाई पड़े, तो समझ लेना कि ये कोई मनुष्य के आकार की गोंच निकल गई है, जो अपनी पहचान छोड़कर चली गई है। जहाँ रोना चाहिये, वहाँ बेचारे हँस रहे हैं। जैसे जीव अपनी पहचान छोड़ गया, ऐसे ही यदि अज्ञानी की संज्ञायें प्रकट दिखाई दे रही हैं, तो वह मनुष्य के आकार में बाहर से तिर्यंच है। चाहे तुम हँसी में संज्ञा की प्रवृत्ति दिखाओ, चाहे मजाक में दिखाओ, परन्तु ध्यान रखना, कर्म कह रहा है कि मेरे मित्रो! मैं बहुत ईमानदार हूँ। कर्म तो कर्म का हित चाहता है। आप हँसी में भी कुछ करोगे तो कर्म कहेगा कि मैं हँसी नहीं जानता, मैं तो साँची में बँधता हूँ। बुजुर्ग दादा! इतना ध्यान रखना कि घर की थाली में भी अपने नाती-पोतों को महसूस नहीं होने देना कि

दादा जी शौक से भोजन करने आये हैं, कि प्राण बचे रहें इसलिये भोजन करने आये हैं, कि प्राण असमय में नष्ट न हों ताकि भगवान् का नाम लेता रहूँ, इसके लिये भोजन कर रहा है? तो छोटा-सा पोता कहेगा कि बूढ़े को शर्म नहीं आ रही है, अभी भी खाने का शौक चढ़ा हुआ है। मरघट याद कर रहा है कि बूढ़ा कब आ रहा है।

जीवन में सबसे बड़ी जटिल समस्या रसना इन्द्रिय है। पहला परीषह क्षुधा परीषह है। जब सिद्धान्त में, चरणानुयोग की भाषा में कहेंगे, वशीकरण की भाषा का प्रयोग करेंगे तो पहली रसना इन्द्रिय है। निरीह जीवों के पहचान की भाषा में तो स्पर्शन इंद्रिय आयेगी।

जिनका रसना पर ही नियन्त्रण नहीं है, उनकी बाकी इन्द्रियों का नियन्त्रण महावीर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा है। परन्तु ध्यान रखना, वे आपकी अशुभ प्रवृत्ति को झलकाने बैठे नहीं हैं। निश्चयनय से केवली आत्मज्ञ हैं, व्यवहार नय से सर्वज्ञ हैं। यदि आपको उस परम दशा की सिद्धि चाहिये, तो आचार्य महाराज पुनः कह रहे हैं—धन्य हो उन योगियों को जो श्वास-श्वास में निर्जरा कर रहे हैं। धिक्कार हो उन प्राणियों को, जो श्वास-श्वास में बन्ध कर रहे हैं। आप अपने घर में बैठे हो, आपके बेटे की माँ वहाँ से निकलती है। वह कहता है माँ, तू कहता है पत्नि। मेरे मित्र! आँखें तेरे पास भी थीं, आँखें उस बेटे के पास भी थीं। बेटे को माँ दिख रही थी, तुझे पत्नि दिख रही थी। यह बताओ, उसमें माँ-पना था कि पत्नि-पना था? वह न माँ थी, न पत्नि थी। वह तो एक जीवद्रव्य था। तेरी देखने की दृष्टि कैसी थी? तूने भी आँखों से देखा, उस बालक ने भी आँखों से देखा। एक ने माँ-पने के भाव से देखा तो उसने अशुभ बन्ध नहीं किया। तूने पत्नि-भाव से देखा है तो अशुभ का बन्ध किया है। एक अरहन्त को देखकर, वीतरागी भगवन्त को निहार कर मस्तक टेकता है और दूसरा कहता है कि ये नंगी प्रतिमा रखी है। दोनों ने आँखों से देखा। एक की आँखें निर्जरा करा रही हैं, दूसरे की आँखें बन्ध करा रही हैं। आँखों में दोष नहीं है, देखनहारे की दृष्टि

में दोष है। ज्ञानियों! जैनदर्शन में वह शिक्षा नहीं दी गई है कि आँखें फोड़ लो तो इन्द्रियाँ वश हो जायेंगी आँखें फोड़ने से इन्द्रियाँ वश नहीं होती हैं, दृष्टि को मोड़ने से इन्द्रियाँ वश होती हैं। इसलिये ज्ञानी! किसी अज्ञानता में डूब मत जाना।

मेरे मित्र! तेरे ससुर की बेटी के बेटे की जो दृष्टि है, एक दिन तू भी वही दृष्टि बनाकर देखले, तो विश्वास रखना, सारा विश्व ब्रह्मचारी हो जायेगा। फिर कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। पुनः आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि निर्जरा-स्थान की प्राप्ति करना है-

नादत्तेऽभिनवं कर्म सच्चारित्रनिविष्टधीः।
पुराणं निर्जयेद्धाढं विशुद्धध्यान सङ्गतः॥ 211॥

लोगों की मानसिकता चल रही है कि मेरे फोड़ा हो गया, मेरे को बुखार आ गया, अब तो अशुभ कर्म का उदय चल रहा है, तो अशुभ का ही बन्ध होगा।

ध्यान दो, अशुभ कर्म के उदय से अशुभ का बन्ध नियत नहीं है और शुभ कर्म के उदय से शुभ का बन्ध नियत नहीं है। एक भुज्यमान समय है, दूसरा बद्धमान समय है। जीव के कषाय के परिणाम असंख्यात-लोकप्रमाण हैं, उन भावों की व्याख्या 'कषायपाहुड' में की गई है। अब जीव की दशा देखना। जिसका पुण्य का उदय है, उसे पुण्य का ही बन्ध होगा, यह आपके भारत में एक नया दर्शन खड़ा हो गया है। वह कहता है कि मनुष्य तो मनुष्य ही बनेंगे, देव तो देव ही बनेंगे, नारकी तो नारकी ही बनेंगे, तिर्यंच तो तिर्यंच ही बनेंगे। यदि ऐसा नियत ही है, नित्य एकान्त, तो आपको धर्म करने की क्या आवश्यकता है? फिर पुण्य-पाप की क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जब मनुष्य से मनुष्य बनना ही है, तो जैसा करना चाहो वैसा करो। बालको! लोक की भाषा से प्रभावित मत हो जाना, इसलिये जैनदर्शन समझना पड़ता है।

रावण का पुण्य का उदय था, त्रिखण्डाधिपति था। पुण्य के उदय से पुण्य का बन्ध हो, ऐसा नियत मत कह देना। पुण्य के उदय के काल में तुम पाप

कर रहे हो तो पाप का ही बन्ध होगा और आगे उसी पाप का ही फल मिलेगा। कुछ लोग इसलिये धर्म छोड़ दिये।

कुछ लोग पचासों वर्ष से पूजन कर रहे थे और उन्होंने देखा कि घाटा लग गया, तो उन्होंने भगवान् का दर्शन-पूजन छोड़ दिया और बेचारे इस अज्ञानता में डूब गये कि जब से धर्म किया, सो ऐसा हो गया। मित्र! धनहानि, जनहानि धर्म का फल नहीं है। इस भ्रम को निकाल दो। भगवान् की भक्ति करने से अशुभ नहीं आये हैं। जो अशुभ पूर्व में कमा कर रखा था, उसका उदय अशुभ में आया है, उसका फल भोग रहे हो। वर्तमान में जो कर रहे हो, उसका फल अच्छा ही मिलेगा। **बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च।** जिसके शक्त्यांश अधिक होंगे, वह दूसरे को अपनेरूप परिणमन करा लेता है। यदि आपके अशुभ के दिन आने लग जायें, तो मेरे मित्र! जहाँ भी हाथ डालोगे घाटा तो लग ही रहा है, नष्ट होते दिखना प्रारम्भ हो चुका है। छींक आने के पहले व्यक्ति को पता चल जाता है, तो वह बाहर चले जाते हैं ताकि सभा में गंदगी न फैले, लेकिन अज्ञानी वहीं करते रहेंगे। शरीर से गैस पास भी होगी तो पहले से पता चल जाता कि कुछ होने वाला है। मित्रो! जब शरीर की गैस निकालने पर तुम्हें मालूम चलता है, छींक आने पर मालूम चलता है, तो तुम्हारे पुण्य-पाप आने का पता भी न चले, ऐसा होता नहीं है, परन्तु आप ध्यान नहीं देते हो। ऐसे ही जब तुमको लगने लगे कि सम्पत्ति घटना प्रारम्भ हो रही है, तो बहुत अच्छा होगा कि तुम देखते-देखते जिनमन्दिर को भेंट करो।

फिर मैं रहूँगा कहाँ? रहने को तो एक महिने बाद वैसे ही नहीं मिलना। गैर रहे वह अच्छा, कि जिनदेव रहें वह अच्छा? इसलिये जब देखो कि अशुभ दिन आने लग गये, समझ में आने लगता है कि मामला गड़बड़ दिख रहा है, तो शीघ्र दान देना प्रारम्भ कर दो। उससे यह होगा कि जो पाप के उदय से सम्पत्ति नष्ट हो रही थी, आपने शीघ्र पुण्य में लगा दी। मित्र! विशुद्ध परिणामों से लगाना। जैसे ही तुमने पुण्य में लगाना प्रारम्भ किया, पाप का द्रव्य संक्रमित हुआ, इधर

आपका पुण्य उदय आना प्रारम्भ हो गया। दूसरे दिन से सम्पत्ति बढ़ना प्रारम्भ हो गई। भारत में आज ऐसे कितने लोग हैं जो ठेलों पर नारियल बेंचते थे, वे आज बड़े-बड़े सेठ बनकर बैठ गये।

एक ज्ञानी बता रहे थे, 'महाराज! मैंने ज्वार की रोटी नमक से खायी है, गेहूँ की सामर्थ्य नहीं थी।' मैंने पूछा, 'ये दिन बदल कैसे गये?' एक दिन भाव बना कि भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी के दर्शन सोनागिर में करूँ। लेकिन घर में कुछ था ही नहीं। एक-एक सिक्का इस भावना से गुल्लक में डालना प्रारम्भ किया कि जब यह पूरा भर जायेगा, तो मैं सोनागिर की वन्दना करने जाऊँगा। जब खोला तो इतने पैसे निकले कि आने-जाने मात्र का किराया था और एक श्रीफल खरीद सकते थे। उस पैसे को लेकर मैं सोनागिर चला गया, चन्द्रप्रभ स्वामी के चरणों में श्रीफल चढ़ाया, वापस आया तो देखा कि जो व्यापार करने में मुझे रोज दस रुपये मिलते थे, उस दिन पचास रुपये मिले। ऐसा समय बदला कि आज पता ही नहीं चलता कि कौन कहाँ से चला आता है। सबके दिन एक-से नहीं होते। पर उन दिनों को याद जरूर रखना। फटी चड्डी और फटी बनियान का ध्यान रखना ही चाहिये। यदि वह भूल गये तो श्रीजी को भूल जायेंगे। श्री के राग में श्रीजी को नहीं भूल जाना।

इतना ध्यान रखना कि अशुभ के दिन आते दिखने लग जायें तो व्यापार में जाने की अपेक्षा से मन्दिर जाना अच्छा है। सिर पर कर्ज ही बढ़ेगा, और-कुछ मिलनेवाला तो है नहीं। आप कहोगे कि दिन नहीं कटता तो कुछ तो करना ही पड़ेगा। भइया! वही तो कह रहा हूँ। करो। बढ़िया माला ले लेना, जिनवाणी ले लेना और जिनालय में आकरके आराधना करना प्रारम्भ कर देना। जब अशुभ समय चल ही रहा है, तो दूसरे काम करने मत जाना।

'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।' विश्वास रखना, समय बदलेगा। समय निकाल दो, समय बदलेगा। सबके दिन एक-से नहीं होते। जो समय निकालना नहीं जानता उसको जीवनभर रोना पड़ता है। अवधपुरी से गये राम, पुनः अयोध्या के राजा

बने कि नहीं? वनवास को गये राम, पुनः राजा बने कि नहीं? समय बदल दिया। जगत् में जितने लोगों के मन में शङ्का हो, प्रश्न हो, इन सबको विराम दे देना और समय दे देना। विश्वास रखना, सारे प्रश्न अपने आप समाधान होते हैं। अन्त में समय ही देना पड़ता है। किसान भी बीज बोकर मेढ़ में बैठ कर चिल्लाने लगे कि मुझे फसल चाहिये। कुछ नहीं, फसल तभी मिलेगी जब समय आयेगा। ऐसे ही आप जो धार्मिक कार्य कर रहे हो, उसके फल की आकांक्षा मत करो, समय दे दो, फल आपको मिलेगा। पाप भी कर रहे हो और मुस्कराकर कह रहे हो कि मैंने ऐसा किया, कुछ हुआ क्या? चिन्ता मत करो, समय दे दो। वह भी दिन आयेगा जब पता चल जायेगा कि मैंने क्या-क्या किया था, उसका फल यह मिल रहा है।

जिन भवनों के द्वारे से जिनराज की यात्रा निकलती थी, उन द्वारों से अर्थी भी उठते दिखती है और जिन भवनों में निर्ग्रन्थों की चर्या होती थी, उन भवनों पर श्वान भी बैठने नहीं आते। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। पुण्य का भी समय होता है, पाप का भी समय होता है। इसलिये समय दे दो, समय दे दो। 'समय' मत दो, 'समय' में समय दे दो।

जो अशुभ के आने पर भी अशुभ भाव नहीं करते, उनके पास अभिनव कर्म नहीं आते हैं। पुण्य-पाप के उदय से पुण्य-पाप नहीं होता। पुण्य-पाप के उदयकाल में हर्ष-विषाद करने से पुण्य-पाप का बन्ध होता है। तपस्या करना कठोर है, उपवास करना सरल है। विधान करना सरल है, पर पूजन-विधान के काल में परिणामों को पूजा में लगा कर रखना कठिन है। इसलिये सद्चारित्रवान के चारित्र के पालन करने से, जिसकी प्रज्ञा प्रशस्त है, जो विशुद्ध जीव है, वह विशुद्ध ध्यान के संयोग से, जो पुराने कर्म हैं उनकी निर्जरा कर लेता है और अभिनव कर्म को आने नहीं देता। कौन? समताशील चारित्रवान पुरुष नवीन कर्म को आने नहीं देता, पुराने कर्म की निर्जरा कर लेता है।

ज्ञानियो! आप सब बनिया पुत्र हो, कभी घाटा लगाकर मत जाना। मनुष्य बन कर आये हो तो देव ही बनना, उसके नीचे मत जाना। मेरा विश्वास है कि देव-शास्त्र-गुरु पर ऐसी श्रद्धा बनी रही तो वह नीचे नहीं जा सकता। मित्र! सम्यग्दृष्टि जीव की अधोगति नहीं होती, यदि पूर्व बन्ध नहीं किया तो। इतना ही ध्यान रखना यदि मैं बहुत ऊँचे स्पर्श न कर सकूँ तो नीचे न जाऊँ और संसार में जब तक पर्याय धारण करना पड़े, तब तक जैनकुल, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु का संयोग मिलता रहे और-कुछ नहीं चाहिये। जगत् में सब जगह सबकुछ मिल जायेगा, पर दिगम्बर मुनि ढाईद्वीप के बाहर मिलनेवाले नहीं हैं। मैं शान्त इसलिये हूँ कि यह भी मालूम चले कि कुछ नहीं करने पर भी आनन्द है।

विश्व का चरमोत्कृष्ट आनन्द अकर्तृत्व भाव में ही है, कर्तृत्व भाव में नहीं है।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"पण्डित और ठग"

संसारावासनिर्वृत्ताः शिवसौख्यसमुत्सुकाः।
सद्भिस्ते गदिताः प्राज्ञाः शेषाः स्वार्थस्य वञ्चकाः॥212॥

अन्वयार्थ-संसारावासनिर्वृत्ताः = जो संसार के भ्रमण से उदास है, **शिव सौख्यसमुत्सुकाः** = तथा कल्याणमय मोक्ष के सुख के लिए अत्यन्त उत्साही है, **ते प्राज्ञाः** = वे ही बुद्धिमान पण्डित, **सद्भिः** = साधुओं के द्वारा, **गदिताः** = कहे गये हैं, **शेषाः स्वार्थस्य वञ्चकाः** = बाकी सब जीव अपने आत्मा के पुरुषार्थ को ठगने वाले हैं।

भावार्थ-ज्ञानी सत्पुरुषों के द्वारा कहा गया है कि जो संसार के भ्रमण से उदास हैं तथा कल्याणमय मोक्षसुख के लिए अत्यन्त उत्साही हैं, वे ही बुद्धिमान पण्डित हैं। इनसे विपरीत सारे प्राणी अपने आत्मा के पुरुषार्थ को ठगने वाले हैं।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञशासन, जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति।मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी वस्तुतत्त्व का अलौकिक व्याख्यान कर रहे हैं। ज्ञानियो! जहाँ-जहाँ कर्त्ताभाव है, वहाँ निश्चित ही बन्धभाव है। स्वामित्व भाव ही संचरण का हेतु है।

मुमुक्षुओ! दुःखों से मुक्त होना चाहते हो तो परिग्रह का त्याग करो। परिग्रह ही परिभ्रमण का कारण है। जहाँ स्वामित्व होगा, परिग्रह होगा, वहाँ निश्चित ही राग होगा।

मुमुक्षुओ! मोक्ष का राग भी तुम्हें मोक्ष नहीं दिला पायेगा, तो फिर भोगों का राग तुम्हें भवातीत कैसे करा पायेगा?

जिस नारी को किसी ने स्वीकार नहीं किया, वह तद्जन्य अवस्था से क्लान्त नहीं है, परेशान नहीं है और आपने अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार किया है, तो अपको तद्जन्य व्यवस्था का विकल्प होगा और तद्जन्य राग का उदय होगा और तद्जन्य बन्ध भी होगा और बन्ध होगा तो आपको रोना भी होगा। रखा द्रव्य बन्ध नहीं करा रहा है। जो आत्मा में पूर्वबद्ध कर्म रखे हुये हैं, उन बद्धकर्मों को यह जीव देखना प्रारम्भ कर दे, जानना प्रारम्भ कर दे, भोगना बन्द कर दे। दो दृष्टियाँ। एक भावों से भोग सहज चल रहा है। भावों का भोग स्वाधीन है। वस्तु को लेकर जो उपभोग किया है, वह बहुत न्यून है। बिना ग्रहण किये जो भोग किया है, वह अत्यन्त प्रचुर है। जिस द्रव्य को आपने खरीदा है, उसका भोग बहुत न्यून है।

सम्यक् रूप से जो सम्पत्ति कमाई है, उसका दान देने के लिये बहुत सोचना पड़ता है। वह समीचीन सम्पत्ति तेरे घर में बहुत अल्प है। यदि मेहमानों को भी बुलाना हो तो तिजोड़ी में देख लेता है। जितनी है, उतनी खर्च करूँगा। समीचीन द्रव्य को पड़ौस वाले को भी खिलाने में सोचना पड़ता है। तुम दोनों हाथों से लुटा रहे हो वह द्रव्य।

व्यक्ति का कितना सारा द्रव्य पूर्व के पुण्य के नियोग से आया है। स्वयं मालूम है कि वर्तमान में मेरी सम्यक् प्रवृत्ति नहीं है। सँभलकर सुनना और अपनी ओर निहारना। पूर्व के नियोग से आपको संयोग अवश्य हो रहा है, लेकिन आप स्वयं चिन्तन करोगे कि सम्यक्प्रवृत्तिपूर्वक मेरा द्रव्य कितना है और असमीचीन वृत्ति से मैंने कितना संग्रह किया है? जो पर का द्रव्य आपने ग्रहण किया है, उसे तो आप बहुत अच्छे से उलीचना जानते हो।

ज्ञानी! जैसे अनीति से प्राप्त धन को अथवा दूसरे के द्रव्य को दूसरों को देने में आपको ज्यादा नहीं सोचना पड़ता, परन्तु स्वयं के द्वारा अर्जित द्रव्य को दूसरे को देने में बहुत सोचना पड़ता है, ऐसे ही आपने स्वयं जिन द्रव्यों को समाज के बीच में स्वीकार किया है, उन द्रव्यों का भोग बहुत न्यून है; लेकिन जो

असमीचीन रूप से अन्यत्र आँखें ले जा रहे हो, उसका भोग असीम है। बन्ध दोनों का होगा।

आप बाजार से निकल रहे थे। किसी भोजनालय से गंध आ रही थी। उस गंध को सूंघने में तूने लम्बी श्वास खींची थी। उसका द्रव्य उसमें भी नष्ट हुआ था। बगीचे के बाजू से निकल रहे थे। चम्पा, चमेली, जूही की सुगन्ध आ रही थी। आपने एक भी पैसा नहीं दिया था, लेकिन सुगन्ध को ग्रहण किया था। आप सोच रहे थे कि ये फीका भोग है। तुमने जितनी लम्बी श्वास खींची थी, उतनी आयु भी नष्ट हुई थी और वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम भी नष्ट हुआ था। तुम जितने राग में खींच रहे थे, उतना तेरा पुण्य का द्रव्य भी नष्ट हुआ था। बिना पुण्य-उदय के तो श्वास लेने की भी सामर्थ्य नहीं है तुम्हारे पास। यह तो तत्क्षण की व्यवस्था है। सूँघ कर अनुभूति लेने में भी बन्ध होता है। अपनी पर्याय के परिणामों से पूछ लो, ईमानदारी से कितने द्रव्य का सेवन किया है? पिताजी ने जिस कन्या के साथ तेरी शादी की थी, वही मात्र तेरे देखने योग्य थी; बाकी तू किसी भी दृष्टि से देख रहा है, तो व्यभिचारी है। चाहे स्वप्न में देख लिया हो, चाहे जाग्रत में देखा हो, किञ्चित् भी पर में दृष्टि गई है, वह बन्धक ही है। देह सँभालने के लिये हमने बहुत पुरुषार्थ किया, देह को सजाने का बहुत पुरुषार्थ किया, परन्तु भावों को सँभालने का पुरुषार्थ नहीं किया और भव को सम्हालने का पुरुषार्थ नहीं किया। जो भावों का सँभालने का पुरुषार्थ कर लेगा, उसके भव के सँभालने का पुरुषार्थ हो जायेगा। जिसको भावों को सँभालने का पुरुषार्थ नहीं है, उनको भव सँभालने का कोई पुरुषार्थ नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जीव अभिनव कर्मों को तो आने ही नहीं देता और पुराने कर्मों को जीर्ण कर देता है। जैसे समझदार पुरुष ने किसी से ऋण ले लिया है, तो उसे तो चुकाता है, परन्तु नवीन ऋण नहीं लेता। क्योंकि ऋण का वजन बहुत बड़ा वजन होता है। जब ऋण का वजन इतना वजनदार है, तो कर्मों का वजन तो महावजनदार होता है। यहाँ किसी वस्तु के त्याग की व्याख्या नहीं कर रहा

हूँ। तू कुछ भी नहीं छोड़ना, लेकिन इतना ध्यान रखना कि कर्मों से आत्मा की रक्षा करते रहना। मेरे मित्रो! जब तू सोचने लगे कि मुझे कर्मों से आत्मा की रक्षा करना है, तो जिन-जिन कारणों से कर्म आते हैं, उन कारणों से दूर रहना। छोड़ना कुछ नहीं। जिन-जिन निमित्तों से कर्म आते हैं, उन निमित्तों से आत्मा की रक्षा करना। किसी भी कार्य को करने के पूर्व, किसी भी भोग को भोगने से पूर्व इतना निर्णय कर लेना कि इसमें कर्म का बन्ध होता है कि नहीं? और कर्म का बन्ध हो रहा है तो उससे दूर हो जाना। बहुत लम्बे चिन्तन की आवश्यकता नहीं है। बहुत गहरा सोचने की आवश्यकता नहीं है। जिन-जिन द्रव्यों का तुम्हें उपभोग करने नहीं मिलेगा, कम-से-कम अपने जीवन में उन्हीं द्रव्यों का परित्याग कर दो।

ऐसा कौन-सा ज्ञानी प्राणी होगा कि जिससे जन्म मिला है, उसे पत्नि बनाने जायेगा? लेकिन जिनागम कह रहा है कि आपने बुद्धिपूर्वक उसका भी त्याग नहीं किया है तो आपको वह भी आस्रव होगा। जिन द्रव्यों का मैं कभी सेवन नहीं करूँगा, जो लोकमर्यादा के विरुद्ध हैं, उनका तो नियम लेकर कायोत्सर्ग कर लो। अपने सगे भाई की सम्पत्ति को ही छीनने का परित्याग कर दो। जो कहते हैं कि परवस्तु तो वस्तु में है, वस्तु में मेरा राग तो है ही नहीं, मैं तो वस्तु के राग से भिन्न हूँ। ज्ञानी! बिल्कुल सत्य है। कि अत्यन्ताभाव है। फिर भी तू भाई की सम्पत्ति को हड़पने का भाव ला रहा है। वह मिले या न मिले, फिर भी तू ऐसी प्रतिज्ञा कर ले कि मैं जीवन में अपने भाई की सम्पत्ति पर कभी खोटी दृष्टि नहीं डालूँगा। इतना त्याग करने की सामर्थ्य किसी में है क्या? तो बताइये राग है कि नहीं? ज्ञानी! धोके की साधना भिन्न विषय है। बहुत सारे पाप तुम कर रहे हो और तुमको मालूम नहीं है। उसे तुम पापरूप में देख नहीं पा रहे हो। अपने भाई की सम्पत्ति को छोड़ने का विचार जीव कर सकता है। उसे जैन सिद्धान्त, जैनदर्शन की अपेक्षा से जैन नहीं कह सकते, (करणानुयोग से बोल रहा हूँ) जो अपने सगे भाई की सम्पत्ति को छोड़ने का भाव नहीं बना रहा है।

यहाँ तक कि अपने माता-पिता से हिस्सा लेने पहुँच जाता है। इसका तात्पर्य आप अन्यत्र भटकने मत जाना, कि महाराज जी ने घोषणा कर दी कि मैं जैन नहीं हूँ। आप जन्म से जैन हो, जाति से जैन हो, बहिरङ्ग क्रिया कर रहे हो तो धर्म से भी जैन हो, लेकिन करणानुयोग से जैन नहीं हो। यदि कोई पिता जी से झगड़ कर कहता है कि मुझे हिस्सा चाहिये, अज्ञानी जीव ही हिस्सा माँगेगा, ज्ञानीजीव कभी हिस्सा नहीं माँगेगा। पिता से हिस्सा मत माँगना। मेरे मित्र! तुझे इतना बोध होना चाहिये कि मेरा पुण्य न होता तो धर्मात्मा पिता के घर में जन्म कैसे हो जाता? यह तू किससे माँग कर आया है कि मुझे धनपति पिता के यहाँ जन्म चाहिये? भगवान् तो किसी की सुननेवाले हैं नहीं। पंचों से कहा था क्या? 'नहीं, किसी से नहीं कहा।' आप पुण्य लेकर आये थे, सो आपको पुण्यात्मा पिता मिला है। जितना तुम्हारा अहोभाग्य था, वह आपको प्राप्त हो चुका है। अब तू कहता है कि मुझे हिस्सा अधिक दो, तुम ऐसे भाव करके अशुभ बन्ध को प्राप्त हो जाओगे। परन्तु जिसको पिता से हिस्सा माँगने का भाव आ रहा है, भाई से हिस्सा माँगने का भाव आ रहा है, उसका पाण्डित्व समाप्त हो चुका है। वह करणानुयोग की दृष्टि से जैन नहीं है। जो करणानुयोग से जैन होगा, वह कहेगा कि हिस्सा न पिता देता है, न भाई देता है। जब पुण्य का उदय होता है, तो अपने आप घर में आता है। ऐसे भी बेटे हुये हैं जिनके पिता ने घर से बाहर निकाल दिया और सबके दिन एक-से नहीं होते हैं, वे ही पिता और भाई लोग छोटे भाई के यहाँ नौकरी करने पहुँचे गये थे। आगम पुराण को देखो।

आत्मासुख और शान्ति चाहिये, तो विश्वास रखना, न धन में सुख है, न शान्ति है। अकिञ्चन भाव में सुख भी है और शान्ति भी है। जैसे ही आपने यह सोचा, तो आप जिसे ग्रहण करने के भाव रख रहे थे, उसको एक क्षण में छोड़ने का भाव करोगे। वस्तु न आपको सुख देगी, न शान्ति देगी। आनन्द तुम्हारे पास है। त्याग कर सकते हो क्या कि अपने वृद्ध माता-पिता से कभी हिस्सा नहीं माँगोगे? मैं अपने भाई की सम्पत्ति पर कभी दृष्टि नहीं डालूँगा? तू जीवनपर्यन्त एक

बार भोजन का नियम ले सकता है। इस प्रतिज्ञा का पालन कर लेना सरल है, लेकिन दूसरे के वैभव को देख करके मन विचलित न हो, इस प्रतिज्ञा का पालन बहुत कठिन है।

ये 'श्री' 'श्रीजी' के सामने परिणाम खराब करा देती है। ज्ञानी सिद्धचक्र विधान करा रहा था। उद्देश्य था कि सम्पत्ति बढ़ जायेगी। लेकिन अशुभ कर्म के उदय से कुछ भी नहीं बढ़ा। विद्वान् तो कहते थे कि सब संकट दूर हो जाते हैं। मैंने तो इतना खर्च कर डाला। जितना था, वह और चला गया। संकट कहाँ दूर हुआ? श्री के राग में तू श्रीजी से ग्लानि कर रहा है। यह तीव्र मिथ्यात्व है।

विश्वास रखना, जो विद्वान् श्रीजी की आराधना श्रावकों को लोभ देकर करा रहा है, वह उनको जिनशासन से दूर कर रहा है। वह जब भगवान् के चरणों में खड़ा था, उसको भगवान् दिखाई ही नहीं दे रहे थे। किसान खेत की मेढ़ पर बैठकर भोजन करता है। उसकी आँखों में फसल लहराती दिखती है। ऐसे ही जो रागी भगवान् की भक्ति करने आया था, भवन भरने के लिये, उसको श्रीजी के चरण दिखते ही नहीं हैं, उसको तो मात्र भवन-ही-भवन दिखते हैं।

आज वर्तमान में यह बहुत चल रहा है। तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ स्वामी को तो इन ज्ञानियों ने शनिदेव बना डाला। वे तेरे देव ही हैं, वे कोई दूसरे देव नहीं हैं। आप अपने असाता को साता में संक्रमण के परिणाम रखो। आप प्रभु से व्यापार करने के भाव मत रखो। भगवान् के साथ व्यापार नहीं छोड़ोगे तो किसके साथ व्यापार छोड़ पाओगे? नहीं छोड़ पाओगे। यदि धर्मक्षेत्र में आकरके आपके ऐसे भाव आ रहे हैं कि मन्दिर में जाऊँगा, सभा में जाऊँगा, सभी के बीच में बैठूँगा, तो कम-से-कम लोग पहचानेंगे, पूछताछ होगी। ज्ञानी! तूने पूरा धर्म पर्याय की पूछताछ में नष्ट कर दिया। यदि ऐसा भाव भी आ रहा है कि चार लोगों के बीच बैठूँगा तो पहचान बनेगी तो आप परिचय के राग में निज से अपरिचित हो गये। मित्र! शरीर के परिचय के राग में जो साधना की भी, उसी के लिये

चले गये। जबकि साधना करोगे तो परिचय अपने आप होगा। जो निर्ग्रन्थ तपोधन जंगल में या पर्वतों पर बैठकर साधना कर रहे थे, जब कैवल्य हुआ, तो तीनों लोकों में परिचय हो गया, जबकि वे तो अपरिचित बैठे थे। जब तक तन का परिचय कराने के परिणाम हैं, तबतक तुम जगत्-परिचय को प्राप्त नहीं हो सकते हो। जो जगत् से अपरिचित होकर अपने परिचय में लवलीन होकरके बैठ रहा है, उसका परिचय स्वयमेव जगत् में हो जाता है। विद्वान् बन कर रहो, पण्डित बनकर रहो, वंचक बन कर मत रहो। मायाधर्म से युक्त प्रवृत्ति है, वह वंचक भाव है। माया से रहित होने के परिणाम हैं, वह पण्डित भाव है। किसी की ओर मत निहारना, परिणामों मात्र को निहारना। यदि हम तत्त्व-उपदेश कर रहे हैं और तत्त्व-उपदेश में भी भाव चल रहे हैं कि सुननेवाले मुझे अच्छा समझ रहे हैं कि नहीं समझ रहे? तो उपदेश करते-करते भी तू वंचक है। तुम्हारा योग उपदेशरूप दिख रहा है, परन्तु तुम्हारा ध्येय यशरूप दिख रहा है।

योग भिन्न है, ध्येय भिन्न है। वचनयोग में अच्छी भाषा का उपयोग हो रहा है, लेकिन भीतर भाव बैठा है कि ये सब मेरे अनुसार चलना प्रारम्भ कर दें। जो मैं कहूँ, उसे ही स्वीकारें। मेरे मित्र! विश्वास रखना, जितना योग पवित्र दिख रहा है, उतना उपयोग पवित्र नहीं है। देखो, मयूरपंख कितने सुन्दर दिखते हैं, पर मयूर के पैर देखना। मयूर के पंख जितने सुन्दर हैं, उतने असुन्दर हैं मयूर के पैर। जिनका योग सुन्दर था, उपयोग असुन्दर था, उनका चरण कैसा था? जैसा अंतरङ्ग का चरण होगा, वैसा भव का परिणमन होगा। बहिरङ्ग चरण मखमली कीड़े समान होगा। उस कीड़े ने मात्र शरीर की साधना में सुन्दरता का वर्तन किया सो सुन्दर मखमली शरीर मिल गया। लेकिन भाव असुन्दर थे, सो कीड़ा बनना पड़ गया। ऐसे ही जिन जीवों की बहिरङ्ग साधना तो बड़ी सुन्दर होती है और अंतरङ्ग साधना में क्रूरता भरी होती है, वे मखमली कीड़े की पर्याय को प्राप्त होते हैं।

'द्रव्यसंग्रह' की ग्यारहवीं गाथा की टीका में ब्रह्मदेव सूरि ने इतना विशद् वर्णन कर दिया। कुछ लोग एकेन्द्रिय जीव हो रहे हैं और ऐसे एकेन्द्रिय जीव हो रहे हैं जिनको पंचेन्द्रिय निहारने जा रहे हैं। सुबह सबसे पहले उद्यान में घूमने जा रहे हैं और पुष्पों को निहार रहे हैं कि कितने सुन्दर हैं? जाग कर जिनदेव को नहीं देखा, माता-पिता को नहीं देखा, लेकिन जाकरके उन फूलों को देखा है। वे फूल पुण्यात्मा जीव हैं जिसको देखने के लिये पंचेन्द्रिय जीव पहुँच रहा है। वे कौन-से पुण्यात्मा जीव हैं? जिन जीवों ने शरीर से सुन्दर साधना की थी, उस सुन्दर साधना का फल सुन्दर पुष्प बनकर जीवों को लुभा रहे हैं; परन्तु मन में माया भाव था, सो एकेन्द्रिय वनस्पति पर्याय को प्राप्त हुये हैं।

भैया! मोक्षमार्ग है, इस मार्ग में आप सुन्दरता मत दिखाओ, सुन्दर बनो। सुन्दर बनने के लिये कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। असुन्दरता से दूर हो जाओ। जो-जो तन को सुन्दर बना रहे हैं, विश्वास रखना, उन सबके मन असुन्दर हैं। मन असुन्दर हुये बिना तन सुन्दर बनाने के भाव आ ही नहीं सकते।

तू अच्छे वस्त्र पहन कर बाजार में निकल रहा है, मन के असुन्दर हुये बिना तूने सुन्दर वस्त्र भी नहीं पहने। बिना माया परिणाम के तूने काँच में चेहरा भी नहीं देखा। घर में तो आप सहज बैठे हुये थे, लेकिन जब बाजार जाने का भाव आया तो ठहरो, जरा कपड़े बदल लूँ। किसके लिये? दूसरे को दिखाने के लिये। आयु के जितने निषेक परजीवी रूप में नष्ट हुये, वे स्वजीवीपने में नष्ट नहीं हुये। तूने सिर पर कन्घी भी फेरी है तो इसलिये कि बाजार में कोई देख लेगा तो क्या कहेगा? यह तेरा सोच है। आज का जीव इतना व्यस्त है कि उसे अपना चेहरा देखने की फुर्सत नहीं है। तेरे चेहरे को कौन देख रहा था? लेकिन तब भी तू सजा कर ही निकलता है। देह को सजाने के परिणाम किञ्चित् भी हैं, वस्त्रों को सजाने के परिणाम हैं, (परमार्थ दृष्टि से व्याख्यान करना) 'कोई क्या कहेगा' इसके राग में उसने ये नहीं देखा कि मेरी गति क्या होगी। जितना समय आपने देह को सजाने में लगाया, वस्त्रों को सजाने में लगाया, उतना समय यदि

भावों को सजाने में लगा देता, तो न वस्त्र होते, न देह होती; अशरीरी सिद्ध परमात्मा होता। बहुत कठिन है राग को छोड़ पाना। सबकुछ उतर जाता है, लेकिन यह चर्म-चादर रहती है। उस चर्म की चादर में भी जीव का तीव्र राग रहता है। इसलिये ज्ञानीपना और अज्ञानीपना, पण्डितपना और वंचकपना, आचार्य महाराज को लिखने की क्या आवश्यकता पड़ गई? किञ्चित् भी संसार में अच्छा लग रहा है, तो अभी मोक्ष के प्रति अनुराग नहीं है।

ज्ञानी! परम्परागत धर्म को पालना भिन्न विषय है और कर्मों की परम्परा को नष्ट करने के लिये धर्म को पालना अलग विषय है। दो प्रकार से धर्म का पालन होता है। एक हमारी परम्परा में धर्म पलता आया है सो परम्परा के निर्वाह के लिये धर्म का पालन करना और दूसरा कर्मों की परम्परा को नष्ट करने के लिये धर्म का पालन करना। मोक्ष की प्राप्ति का धर्म कर्मों की परम्परा को नष्ट करने के लिये है। वही फलित होगा, बाकी का तुम्हारा धर्म लोक के लिये है। किसी से पूछना नहीं। पूरा विषय यह मान कर सुनना कि मैं मेरे द्वारा ही अपने आपकी आलोचना कर रहा हूँ। आलोच्य, निहारो, देखो, विचार करो, अनुभव करो कि ये मेरे परिणामों की धारा चली आ रही है। मैंने जीवन में क्या किया है? किसके लिये किया है, क्यों किया है? जिस दिन यह समझ में आ गया, उस दिन सोचेगा कि यथार्थ है, जीवन जिया तो सही, परन्तु जीवन की शैली से नहीं जी सका। ज्ञानी! जब जीवन जीने की शैली समझ में आयी, तब तक जीवन से जाने का समय आ गया। ऐसा अपने ही साथ हुआ है, यह मत समझना। ऐसा अनन्तों के साथ हुआ है। अपना तो यह अहोभाग्य है कि बहुत जल्दी अपने समझ में आ गया। आवश्यक नहीं कि जो मैं कह रहा हूँ वह सबको समझ में आ ही रहा हो। सुनने में सबको आ रहा है, ज्ञान में सबको आ रहा है, कि जीवन जिया है, लेकिन जीने का तरीका नहीं समझा। तरीका समझने के लिये एक सूत्र याद करना पड़ेगा, 'उपेक्षा'।

सुबह एक बन्दर मानस्तम्भ पर बैठा हुआ था। एक ज्ञानी ने कहा 'महाराज जी! ये बन्दर देखो।' मैंने कहा, 'यह अकेला क्यों है? ये जब तक रहेगा तब तक यहाँ लाल मुख के बन्दर नहीं आयेंगे। इसका काम ही है, यह लाल मुख के बन्दर को भगा देता है। मनुष्य की बुद्धि देखो। मैंने कहा, 'आपने यहाँ क्यों रख दिया?' यदि इसको यहाँ नहीं बिठाऊँगा, तो ये पाण्डाल बचेगा नहीं। काले मुख के बन्दर की लीला सुनो। वह मण्डप की छाया में नहीं बैठा था। वह तो बेचारा धूप में ही बैठा था। उसको छाया मिलने वाली नहीं है, जबकि उसकी स्वतन्त्रता छीनी गई है। जैसे वह स्वतन्त्र होकर विचरण करता है, उसका आनन्द भी गया, फिर भी वह बन्दर मनुष्य के हाथ में आकरके उसको इतना मस्तिष्क में आ रहा है कि मेरे मालिक ने मुझे यहाँ रखा हुआ है ताकि मैं यहाँ दूसरे बन्दर को नहीं आने दूँगा, मैं इस पाण्डाल की रक्षा करूँगा। बुजुर्गो! तुम्हारे जीवन का ऐसा समय प्रारम्भ हो चुका होता है, जैसे कि वह काले मुख का बन्दर। मण्डप में तो बैठने मिलना नहीं है। यहाँ क्या-क्या हो रहा है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो मात्र मण्डप की रक्षा के प्रयोजन से बैठा हुआ है। ऐसे ही तुम्हारे जीवन में वह क्षण आता है कि इन्द्रियाँ शिथिल हो गई, भोगने की सामर्थ्य नहीं बचती है, पचाने की सामर्थ्य नहीं बचती है, यहाँ तक कि घर के जो सुन्दर कक्ष होते हैं उनसे बाहर तुम्हारी खाट डाल दी जाती है। बस, आप देखते रहो। भीतर रागी-भोगी बैठे हैं, उनकी रक्षा करो और कर्म का बन्ध करो, तुम्हें और-कुछ मिलनेवाला नहीं है। बिना जुकाम के खाँस कर भीतर जाना पड़ता है। अब सोचो कि ये हो क्या रहा है?

बिना सन्तुष्टि के बिना आनन्द के आप किसी क्रिया को करना पसन्द करते हो क्या? लोक की भाषा भिन्न है। व्यवहार में तू कहेगा कि पूरे मोहल्ले वालों ने मुझे चुनकर पार्षद बना दिया है, मेरा कुछ नहीं है, ये सब इन लोगों की देन है। ऐसा बोलेगा, लेकिन भीतर क्या होता है? क्या इस भाषा को बोले बिना तेरा काम नहीं चलता? काम तो चलता है, लेकिन अनादि के जो मायाचारी के

संस्कार हैं, वे बुलवा रहे थे। माँ बेटे को मिठाई खिला रही थी और धीरे-से कह देती है कि हउआ ले गया। माँ! बेटा आपका है। तू ये भी तो समझा सकती है कि बेटा! मैं तुझे पुनः खिलाऊँगी। अभी अधिक खा लेगा तो बीमार हो जायेगा।' सीधी भाषा नहीं बोल रही, क्यों? अनादि के मायाचारी संस्कार हैं। उस बच्चे के साथ भी मायाचारी। घर में सामग्री रखी हुई है, परन्तु आपकी पत्नि बोलती है स्वामी! नमक समाप्त हो गया है, लेकर आओ। जबकि दस दिन का नमक घर में और रखा हुआ था, फिर ऐसा क्यों बोला? अभी से नहीं बोलेंगे तो आप लायेंगे नहीं। माताओ! क्या यह परिवार मात्र आपके लिये है? मायाचारी करके, असत्य भाषण करके परिवार के राग में कर्म का बन्ध नहीं होगा क्या? होगा। यदि होगा, तो इस विषय को सुधार लो। बोल दो कि दस दिन तक का तो है, फिर माँगना मत, इसलिये पहले से लाकर रख दो। ये सीधा बोलना क्यों नहीं सीखा? मायाचारी। इसे आप मायाचारी नहीं मानते हो क्या? ये मायाचारी ही है।

जैसे ज्ञानी कहे कि महाराज! मुझे कोई अहंकार नहीं है, परन्तु समाज के बीच में स्वाभिमान तो रखना ही पड़ता है। मेरे मित्र! स्वाभिमान कौन-से भूत की बलाय है? जो-जो भीतर झुलसा रहा है, वह सब कषाय है। भाई! जिसमें आपको सन्तुष्टि होती है, जिसमें आपको आनन्द आता है, उसे आप स्वीकारते हो। हे बुजुर्गो! तुमने जीवनभर तो नाना रागरंग में जीवन नष्ट किया और रमणियों में रमण करके तुमने खजूरे जैसे शरीर को छुहारा बना लिया। भैया! कम-से-कम अब तो अपने पोते का भोग मत भोगो। गहरी बात समझो। नन्हें, घूमते, तोतली आवाज से युक्त, आँगन में खेलते पोते को उठाकरके छाती से लगा करके उसके गालों को चूम रहे थे। तुमको सन्तुष्टि हो रही थी। वह आपने बेटे के गालों का भोग किया है। बन्ध होगा। आँखों से देख-देख करके तुम सन्तुष्ट हो रहे थे, यह नयनों से भोग चल रहा था। तुम कह रहे थे कि मैं बच्चे को खिला रहा था, लेकिन सत्य यह है कि तुम बच्चे के साथ खेल रहे थे। माँ! बच्चा अच्छा

लगता है? हाँ। व्यवहार में कितना झूठ बोल रही हो? 'महाराज! बच्चे को खिला रही हूँ।' माँ! तू बच्चे को नहीं खिला रही है। सत्यता यह है कि अब तेरे जीवन की धारा बदल गई है। यह भारत की परम्परा है कि दूसरे पर ढोल कर बात करना पड़ती है।

जैसे-जैसे मोक्षमार्ग पर बढ़ते चले जाओगे, तो आपको धीरे-धीरे इस माया से भी रक्षा करनी पड़ेगी। मुनिराज बन गये, फिर क्या करोगे? अब नहीं कहना कि नहीं चाहिये, नहीं चाहिये और हाथ कर दिये कि रख दो।

यह गलत परम्परा समाप्त करो। आप को कैंसर या टी.बी. का रोग है। तुम ससुराल गये। उसने दिखावे के लिये प्लेट भरकर मिठाई रख दी। तुमने एक पीस तोड़ा और पूरी सरका दी। उसने आपको देखने के लिये नहीं रखी थी, खाने के लिये रखी थी। अब तुम तो रोगी थे। उसका लोभ उस जूठन को फेंकेगा तो है नहीं, दूसरे बच्चों को खिला देगा। वहाँ तुमने उस परिवार को और रोगी कर दिया। ऐसे ही बहुत सारी लोकपरम्पराएँ जैनसिद्धान्त के विरुद्ध हैं। जिनागम तो यह कहेगा, पाण्डित्य तो यह कहेगा कि आप अपने कपड़े किसी को मत देना। देना है तो नवीन सिलवा कर दे देना, लेकिन अपनी उतरन कभी मत देना। क्यों? 'अधिकरणं जीवाजीवाः।' मैं तो अपनी पिच्छी दूर रखता हूँ, दूसरे मुनि की पिच्छी से स्पर्शित नहीं होने देता हूँ। क्यों? 'अधिकरणं जीवाजीवाः।' इस पिच्छी से मेरे शरीर का मार्जन हुआ है, इसलिये तद्जन्य जीवाणु हो सकते हैं। एक दूसरे के वस्त्र पहनना हिंसा है। और तिगुनी हिंसा है। उन जीवाणुओं का तेरे शरीर की वाष्प से हिंसा हुई, एक। दूसरे, उसका रोग तेरे अन्दर प्रवेश कर गया तो तेरे शरीर का विघात होगा, तेरा परिवार बिलखेगा, तू रोगी हो गया, दूसरी हिंसा। वह वस्त्र धुलेंगे, जीव मरेंगे, वह हिंसा। 'महाराज! हम लोग तो एक थाली में भोजन करने वाले हैं।' महावीर स्वामी ने जिन विषयों की व्याख्या नहीं की है, उन विषयों को आपने कहाँ से लगा लिया? **'मैत्रीभाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे',** ये शब्द आपके शिथिलाचार के लिये नहीं थे। महावीर

स्वामी का तात्पर्य यह था कि मेरे निमित्त से न कोई जीव मन से दु:खी हो, न तन से दु:खी हो, न वचन से दु:खी हो। उसका नाम मैत्रीभाव था। आप रोगी हो करके दूसरे की थाली में खाना प्रारम्भ कर दिये, आपका रोग उस व्यक्ति को लग गया, उसको आपने मन से भी दु:खी कर दिया, वचन से दु:खी कर दिया।

ज्ञानी! ईमानदार होना बहुत कठिन है। कोई कह दे, 'भाई! मैं रोगी हूँ, अलग से थाली में खाऊँगा।' बहुत कठिन है। घर में आये मेहमान को तू सोने की थाली में भोजन करा देना और स्वयं काँसे की थाली में भोजन कर लेना, लेकिन मेहमान के राग में और थाली के राग में एक दूसरे को जूठन न खिलाना, न खाना।

आचार्य शान्तिसागर के सामने एक जटिल प्रश्न आया कि जैनसमाज सारे जगत् को अहिंसा, करुणा, मैत्री की बात करती है और आप शूद्र को भी स्थान नहीं देते हो। ज्ञानी होना महत्त्वपूर्ण नहीं है, शब्द का अर्थ जानना महत्त्वपूर्ण नहीं है, तत्क्षण के प्रयोग के काल में शब्द का अर्थ निकाल पाना महत्त्वपूर्ण है। आचार्य महाराज ने बड़ा सटीक उत्तर दिया। 'भैया! आप बिल्कुल बराबर कह रहे हो। जैनसमाज प्राणिमात्र की मैत्री की बात कर रहा है, लेकिन आप उस मैत्री के अर्थ को नहीं जान सके तो मैं क्या करूँ?' लोक में जो बहुत सारा धर्म चल रहा है, यथार्थ अर्थ को नहीं जानने के कारण विपर्यास चल रहा है।

आचार्य महाराज ने कहा, 'आप क्या चाहते हो? आप जब सबकुछ खा-पी कर तैयार हो जाते हो, पत्तलों में जूठन बचता है, वह तो तुम बेचारों को देते हो और फिर तुम कह रहे हो मैत्रीभाव। अब वे बेचारे जुटा कर लाये, वह भी तुमने उनके साथ खाना शुरू कर दिया, उसे भी नहीं छोड़ रहे हो, यह मैत्री नहीं है। मैत्री वह है कि उनको बिठा कर अपने घर का शुद्ध भोजन खिलाओ, इसका नाम मैत्री है। हम जैनी यही तो कह रहे हैं। शुद्ध भोजन कराओ, आप दूसरे की पत्तल के साथ बैठ कर मत खाओ।' तो जिसने प्रश्न किया था, वह हाथ

जोड़ कर नमस्कार करता है। यह ध्रुव सत्य है, जब जगत् के सारे सोच समाप्त हो जाते हैं, तब जैनदर्शन का सोच प्रारम्भ होता है। जिसने 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रन्थ को अनेक पक्षों से समझ लिया, 'अधिकरणं जीवाजीवाः', अब तैयार हो जाओ।

दूर-दूर बैठो। आपको मालूम होना चाहिये कि आपके शरीर की वर्गणायें भिन्न हैं और बगल वाले के शरीर की वर्गणायें भिन्न हैं। आपको थोड़ी दूरी से बैठना चाहिये। जीवाधिकरण, अजीवाधिकरण। जीव से जीव संघटित होगा तो एक दूसरे के शरीर के जीवाणु की हिंसा होगी। मित्र! यदि आपने दूसरे के वस्त्रों का भी प्रयोग किया है और दूसरे के वस्त्र दूसरे के वस्त्रों में भी रख दिये हैं, तो 'अधिकरणं जीवाजीवाश्च।' यह जिनशासन की अहिंसा है। यदि इस सूत्र के अनुसार जीना प्रारम्भ कर लिया, तो विश्वास रखना, जगत् के सारे आयुर्वेदशास्त्र, सारे चिकित्सालय अपने आप ठण्डे हो जाते हैं। जिसने इतना गहरा समझा हो, उसका जूठन खाना बन्द।

आप किसी के घर गये। आपको मिठाइयाँ प्लेट में रखीं, आपने पूरी खा ली। यदि वह चेहरा देखता है 'अरे! ये कैसा आदमी है? इसने सब खा लिया।' तो धीरे-से कहना, 'दादा! आप मुझे पहले बता देते कि ये देखने के लिये रखी गई है कि खाने के लिये रखी गई है। मैंने महाराज से नियम लिया है कि मैं अपना जूठन किसी को नहीं खिलाऊँगा तो जूठन करके क्यों छोड़ जाऊँ? यदि आपका उद्देश्य यह है कि देख लो, तो मैंने देख लिया, ले जाओ।

आज लोक की व्यवस्था बिल्कुल विपरीत हो चुकी है। लोग बड़े-बड़े स्थान पर जाते हैं, चार-छः मुख मारे, जैसे बकरी होती है। इधर मुख मारा, उधर मुख मारा। पूरा लेकर नहीं जाती है, सब जूठन करके चली गई। बिल्ली जैसे दही की मटकियाँ बिगाड़ कर चली गई। आप बुजुर्गों से मिलो। पहले के बुजुर्ग श्रावक बन कर भोजन करते थे, जाल फैला कर भोजन नहीं करते थे। जो श्रावक थाली में भोजन कर रहा है और थाली में ही छोड़ कर चला गया, वह जाल फैला कर हिंसा करके गया है। जाल इसलिये फैलाया जाता है कि उसमें आकर जीव

फँसे। आपने थाली में भोजन किया और थाली में जूठन छोड़ कर चले गये। उसमें मक्खियाँ गिरेंगी, चीटियाँ लगेंगी, उनकी हिंसा होगी कि नहीं? आपके अहिंसा धर्म का पालन क्या होगा? हमारे बुजुर्ग थाली में उतना ही भोजन रखते थे जितना उनको लेना है। अन्त में पूरी थाली धोकर धोवन को पी जाते थे। आज कोई पीने लग जाये तो लोग कहेंगे कि ऐसा भुखमरा व्यक्ति मेरे घर में आया, वह थाली तक धोकर पीकर चला गया। यह पंचमकाल है, इसमें विवेक नाम की वस्तु नहीं है। आप भौतिकता में इतने आ चुके हैं कि धर्म का नाम ही नहीं बचा। ज्ञानी! अब थाली धोकर पी लेना, अब भिखमँगा कोई नहीं बोलेगा, क्योंकि मैंने सबके सामने बोल दिया है।

धर्म यदि लोक को देखकर करोगे, तो कभी धर्म नहीं कर पाओगे। लोक को देखकर धर्म नहीं करना। 'लोक को देखकर धर्म करना' अर्थ समझ में आया? लोक छः द्रव्य का समूह है। जहाँ छः द्रव्य नहीं हैं, वह अलोकाकाश है। छः द्रव्य में आप द्रव्य हो या नहीं? जीवद्रव्य है। इस लोक में अन्य लोग अवलोकन कर रहे हैं। तू उन्हें देखकर धर्म नहीं करना, आत्मलोक को देखकर धर्म करना। ऐसा करोगे तो निज लोक में लीन हो जाओगे। पर को देखकर धर्म करोगे तो आपको लगेगा कि मैं कपड़े कैसे उतारूँ? मुनि कैसे बनूँ? धोती दुपट्टा कैसे पहनूँ? लोग देखकर हँसेंगे। ज्ञानी! दुनियाँ की हँसी उनके ऊपर है, तू अपने भीतर की प्रीति देख।

धोती-दुपट्टा पहनकर घर से मन्दिर तक आओ तो शर्म लगती है। क्यों? लोग देखेंगे। मेरे मित्र! चर्म की दो आँखों से दूसरे देख रहे हैं, इसलिये तुझे शर्म लग रही है। धोती-दुपट्टा पहन कर तू प्रशस्त भेष में पूजा करने जा रहा था, उसमें मित्र हँसी कर भी देते, तो कोई विकल्प नहीं था। जब तू अपने घर में कोई अशुभ काम करने जाता है, तब क्यों नहीं सोचता कि केवली के कैवल्य में झलक रहा है कि तू किस मुद्रा में बैठा हुआ है, किस मुद्रा में पड़ा हुआ है। हे अभागे! तेरी वह मुद्रा भगवान् के कैवल्य में दिखती। जो जिनेश्वर के रूप में होती, वो

अभागी मुद्रा को बनाये बैठा है। वह भगवान् के ज्ञान में झलक रही है। वहाँ तुझे शर्म क्यों नहीं आती? वहाँ शर्म नहीं आती है।

ये दो कैमरे रखे हुये हैं। यदि ये भैया आपकी ओर कर दें, तो जितने टिके बैठे हैं, वे सब सीधे बैठ जायेंगे। अब हल्ला मचाना तो छोड़ दो। कोई सुनने वाला नहीं है कि ठीक से बैठो, ऐसा करो, वैसा करो। केवल इतना बोल दो कि सभी के फोटो खींच लो, पेपर में छपने की सम्भावना है। फिर देखो कितने अच्छे से सब बैठ जायेंगे। कोई गुस्सा करे तो कहना 'ठीक है, करो, लेकिन गुस्सा करते समय दर्पण देख लेना।' कभी-कभी माता-पिता में झगड़ा होता है तो बच्चों की बड़ी बिडम्बना होती है। इन दो के बीच में बच्चों की बुद्धि भ्रष्ट हो रही है, बच्चे पिस रहे हैं। बालको! जब तुम्हारे मम्मी-पापा लड़ें, तो धीरे-से उनकी फोटो खींचने लग जाना अथवा बड़ा-सा आइना सामने रख देना, 'पिता जी! इसमें देखो।' पर तू दूर खड़ा हो जाना।

पंचमकाल में सारी विद्यायें बदल रही हैं तो आपको अपने तरीके बदलने पड़ेंगे। पंचमकाल के जीव बड़े वक्र परिणामी जीव हैं। भगवान् महावीर स्वामी की शिष्यपरम्परा अत्यन्त वक्र है। भगवान् आदिनाथ की शिष्यपरम्परा अत्यन्त सरल थी। इसलिये दोनों परम्परा के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करना पड़ता है। अजितनाथ से पार्श्वनाथ स्वामी के शासन तक के मुनिराज व श्रावक को मात्र उतना ही प्रतिक्रमण करना पड़ता था जितना दोष लगता था। 'तस्स मिच्छामे दुक्कडं' इतने से काम चल जाता था। लेकिन वर्तमान में पूरा करो। वक्रता की असीम सीमा हो गई। आदिनाथ के शिष्यों के बारे में लिखा हुआ है कि गुरु ने समझाया, 'बेटा! नट का खेल नहीं देखना।' वे खड़े-खड़े नटनी का खेल देख रहे थे। क्यों? बेटा! आपको कहा था कि खेल नहीं देखना? 'आपने कहा था कि नट का खेल नहीं देखना, आपने ये कहाँ कहा था कि नटनी का नहीं देखना?' यानि इतनी सरलता थी। वर्द्धमान के शासन में तो तुम प्रत्यक्ष में देख ही रहे हो, वक्रता है।

संसारावासनिर्वृत्ताः शिवसौख्यसमुत्सुकाः।
सद्भिस्ते गदिताः प्राज्ञाः शेषाः स्वार्थस्य वञ्चकाः॥212॥

यहाँ कह रहे हैं कि जो जीव संसार के वास से तो निवृत होता है, शिवसुख के प्रति उत्साही होता है। जब आप ससुराल जाते हो तो अत्यन्त उमंग होती है जैसे तुम संसार की वधू से मिलने को उत्साहित होते हो। नई वस्तु मिलना हो या जिस दिन तुम्हारा परीक्षा परिणाम खुलना हो, तो उत्साह बढ़ता है। वह उत्साह जीव के अन्दर प्रतिक्षण होना चाहिये कि मुझे मोक्ष जाना है। जो मोक्ष के प्रति उत्साहित है, वह प्रज्ञावान् है, पण्डित है। संसार के सुखों के प्रति उदासीन है और मोक्ष के लिये आनन्दित है, वह पण्डित है। जो मोक्ष के लिये तो अनुत्साहित हो और संसार के काम में उत्साहित हो तथा स्वार्थ-वृत्ति से भरा हो, उसका नाम वंचक है। वह तो ठग है। यह व्यक्तिगत विषय नहीं समझना, यह अपने-अपने में लगा लेना।

जब आपके मन में भाव आये कि मुझे किसी के साथ मायाचारी नहीं करना, ज्यादा पैसे से कोई प्रयोजन नहीं है, अपन को धर्म्यध्यान करना है, ऐसे सहज परिणाम आपके चल रह हों, तो समझना कि मेरा पाण्डित्य काम कर रहा है।

जिस क्षण तुम्हारे भाव आयें कि मुझे तो बड़े भाई की सम्पत्ति छीनना है, तो समझ लेना कि यह तुम्हारी ठगवृत्ति काम कर रही है। पिता का द्रव्य भी बिना अनुमति के स्पर्श मत करना। बूढ़े पिता को परेशान मत करना। मिलना तो तुम्हीं को है। अच्छा है कि उनको शान्ति से जीने दो। कुणिक मत बनना, इतना नियम ले लो। मैं और-कोई नियम नहीं दिला रहा हूँ। जीवन में कभी कुणिक नहीं बनना। औरंगजेब नहीं बनना। चलेगा काम। कुणिक श्रेणिक का बेटा था। राज्य के राग में उसने अपने ही पिता को बंदीगृह में डाल दिया था। और औरंगजेब के बारे में आपको पता ही है। यदि औरंगजेब ने अच्छा नहीं किया, तो ऐसा बुरा आप कभी मत करना।

जैनियों की जितनी परम्परायें हैं, सब परम्परा वाले मैंने एकसाथ बैठे देखे हैं। दिगम्बर, श्वेताम्बर, समैया, स्थानकवासी, देवगढ़, सोनगढ़, तेरा, बीस सब

एकसाथ बैठे देखे। रुढ़ियों में भेद है, सत्य में भेद नहीं है। धर्म में भेद नहीं है। हिंसा में धर्म कौन मानेगा? कोई नहीं। अहिंसा की बात करो। यदि दिगम्बर जैनसमाज को सुरक्षित रखना है तो पंथ वालों से कह देना कि आप श्रमणसंस्कृति की रक्षा नहीं कर पाओगे।

पिता के नाम पर तीन बेटे तीन नाम लेंगे, लेकिन हम तीनों को एकरूप में देखना चाहते हैं तो उनके पिता का नाम नहीं पूछेंगे, उनसे दादा का नाम पूछेंगे। दादा के नाम पर तीनों पिताओं के बेटे एक होते हैं। ऐसे ही समाज और धर्म की अखण्डता चाहिये तो विद्यासागर, विरागसागर मत पूछना। तुम तो यह पूछो कि तुम्हारे दादा महावीर स्वामी एक हैं कि नहीं? अखण्डता चाहते हो तो दादा की बात करो, इसी में सार है। अपने अहंकार में समाज को मत पीसना। जो है, सो है।

सभी भूतों पर समता रखना। भूत यानि प्राणी। प्राणिमात्र के प्रति समता रखना पवित्र मन से युक्त होकर। ममता भाव से रहित होकर जो जीवन जीता है, वही अव्यय पद को प्राप्त होता है, निर्वाणसुख को प्राप्त होता है।

सभी का निर्वाणमार्ग प्रशस्त हो। निर्वाणमार्ग तभी प्रशस्त होगा, जब निर्माण मार्ग से दूर होगा। जैनदर्शन निर्माणमार्ग नहीं है, निर्वाणमार्ग है। यदि निर्वाण दीक्षा लेना हो, तो जितने निर्माण कराना हो, अभी करा लेना। कर्नाटक में मुनियों के लिये बड़ा सुन्दर शब्द का प्रयोग होता है। वे कभी नहीं कहते कि मुनिराज आये हैं। उनसे पूछो कि कितने महाराज आये थे? बोलेंगे कि पन्द्रह तो निर्वाण दीक्षित थे। दिगम्बर दीक्षा निर्वाण दीक्षा है। मोक्षमार्ग निर्माणमार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग निर्वाणमार्ग है। निर्वाण जाना चाहते हो तो जगत् के सभी निर्माणों से दूर हो जाना।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"उत्तम पद को प्राप्त करने वाले"

समतां सर्वभूतेषु करोति सुमानसः।
ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम्॥ 213॥

अन्वयार्थ - यः सुमानसः = जो शुद्ध मनधारी मानव, **ममत्व भाव निर्मुक्तो** = ममता भाव को छोड़कर, **सर्वभूतेषु समतां करोति** = सर्व प्राणी, जीवों पर समता भाव रखता है, **असौ** = वह **अव्ययम् पदं याति** = मोक्ष के अविनाशी पद को प्राप्त करता है।

भावार्थ - जो शुद्धमनधारी मानव सर्व जीवों में समता भावना रखता है वह ममत्वभाव से निर्मुक्त हो अव्यय (अविनाशी) पद प्राप्त कर लेता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन, जयवंत हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण संस्कृति।

मनीषियो! हम सभी अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में सम्यक्त्व की व्याख्या करते हुए कह रहे हैं। अव्यय पद की प्राप्ति का लक्ष्य है तो समत्व पर दृष्टिपात करो। वह परमसुख जिसका कभी व्यय नहीं होता है, उसका नाम अव्यय है।

हमारे पास वर्तमान में जो भी इन्द्रियसुख है, वह नियत व्ययशील है। जो आनन्द पन्द्रह वर्ष पूर्व वृद्ध को अपना चेहरा देखने में आता था, आज वह आनन्द समाप्त हो गया है। जगत् को मत निहारो, स्वयं पर लक्ष्यपात करो। जो किशोर-अवस्था में चेहरा था, आज विलय को प्राप्त हो चुका है। सुख को जीव ने कितने प्रकार से भोगा है, उस पर दृष्टि पात करो। देह का भोग भी सुख का भोग है। जिसको निज की देह का निर्दोष पता नहीं है, वह अन्य सुखों को कैसे भोगेगा? पहले

शरीर का स्वस्थ होना अनिवार्य था, इसके बाद भोग सामग्री का मिलना अनिवार्य था, इन सब के साथ भोगने की इच्छा का होना अनिवार्य था। ये सारी-की-सारी सामग्री आपको पूर्व पुण्य के नियोग से प्राप्त हुई थी, परन्तु **मित्रो! पूर्व पुण्य के नियोग से प्राप्त सामग्री को भोग लेना पुण्य नहीं है। भोग लेना तो पाप है। और पूर्व के पुण्य से प्राप्त सामग्री को छोड़ देना, इसका नाम त्याग है। एक वे पुरुष हैं जो पूर्व के पुण्य के नियोग से प्राप्त सामग्री को भोग करके दुर्गति को प्राप्त होते हैं। दूसरे वे पुरुष हैं जो पूर्व के पुण्य से प्राप्त सामग्री को छोड़ देते हैं और भविष्य में सुगति में मार्ग मोड़ लेते हैं।**

जैसे माँ अपने बालक के बारे में प्रतिक्षण हित सोचती है, अँगुली पकड़ कर चलाती है, खेल सिखाती है, बोलना सिखाती है। जननी हर प्रकार से अपने बच्चे को समझा रही है। वह जन्म देने वाली माँ संसार की प्रक्रिया को ही सिखाती है, परन्तु भगवती माँ जिनवाणी कह रही है-हे मेरे बेटे! यदि तुझे संसारातीत होना है तो यह मार्ग है। नरक जाना है तो ये मार्ग है, स्वर्ग जाना है तो ये मार्ग है, तिर्यञ्च बनना है तो ये मार्ग है, मनुष्य से मनुष्य बनना है तो ये मार्ग है। यदि चारों गतियों से भिन्न अशरीरी भगवान् बनना है तो **'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्राणि मोक्षमार्गः' है।**

एक-एक विषय पर सोचना है, पर बलात्कार किसी विषय पर नहीं है। गंभीर विषय है। जबरदस्ती नहीं है कि आपको मेरे अनुसार चलना पड़ेगा। मेरा पहला सूत्र है- कण कण स्वतन्त्र है, स्वतन्त्रतः कर्त्ताः। जिनवाणी का सूत्र है। हमारे यहाँ ईश्वरवादी जैसे बाँध कर नहीं रखा गया। मित्र! नरक भी जाना हो तो बिना टेंशन के जाना। इच्छा नहीं है जाने की, तो मत जाओ। स्वर्ग भी जाना हो तो बिना तनाव के जाओ, कोई मना नहीं करेगा। तिर्यंच बनना हो तो भी कोई विकल्प मत करना, बड़े प्रेम से हाथी घोड़ा बन्दर भालू बन ही जाओगे, कहीं-न-कहीं तो पहुँच ही जाओगे।

इससे बड़ी स्वतन्त्रता की व्याख्या करने वाला कोई दर्शन नहीं है। आपको स्वतन्त्र छोड़ दिया, मार्ग दिखा दिया है, सारे-के-सारे स्थानों का पूर्ण परिचय दे दिया है। भव से लेकर भावना तक का वर्णन किया है और भावना से लेकर भव तक का वर्णन किया है। निर्णय अपने हाथ पर है। आप तिर्यञ्चों को देख लो, उनकी अनुभूति देख लो। थोड़ा-तो जीते-जीते जीना सीखो। मार्ग में आपको कितने प्रकार के पुरुष मिलते हैं और वे कैसी चेष्टायें करते हैं। जो जो नरों की चेष्टायें हैं वे उनकी गति या सुगति की परिचायक हैं। आज अवधिज्ञानी नहीं हैं, कोई बात नहीं। मनःपर्ययज्ञानी नहीं हैं, कोई बात नहीं। केवली नहीं हैं, कोई बात नहीं। कम-से-कम मति-श्रुतज्ञानी तो हैं, अनुमान ज्ञान तो है, निमित्तज्ञान तो है। निमित्तज्ञान मतिज्ञान का विषय है।

वस्त्र में छेद हो गया है तो अनुमान लगा लेते हो कि चूहा काट गया होगा। ऐसे ही जीव की भव की दशा को देख करके भाव की दशा का बोध होता है और भाव की दशा को देख करके भविष्य की भव की दशा का बोध होता है। यह विषय दूसरे में मत निहारो स्वयं में ही निहारो। आपको प्रतिक्षण ग्रन्थ न मिले और आपका स्वाध्याय का नियम है, तो कोई विकल्प मत करना, आप आगे वाले भइया का चेहरा देखकर पढ़ना शुरू कर देना। विश्वास रखना, मित्र! तेरा स्वाध्याय होगा। लम्बी श्वासें खींच रहा है तो काम, क्रोध, मान, माया, लोभ जरूर किसी विकार से भरा है या भयभीत है, चार संज्ञाओं से ग्रसित है। श्वासें सहज शान्त हैं, नेत्र बन्द हैं, चेहरा दमक रहा है, जिसके भीतर भगवान् का नाम चलता है, उसकी श्वासें मन्द हो जाती हैं। जीव जितना तत्त्व का चिन्तन करेगा, उसकी श्वासें मन्द हो जायेंगी। जितना विषयकषाय का चिन्तन करेगा, उसकी श्वासें बढ़ जायेंगी। इसलिये जो हमारे आगम की गूढ़ विद्यायें हैं, जो विषय यहाँ चल रहा है, वह विशिष्ट कालेजों का विषय है। विदिशा में कॉलेज के प्रोफेसर साहब लगातार नौ महीने उपदेश सुनते रहे। मुझे मालूम नहीं था कि यह जीव क्या कर रहा होगा। नियमसार जी पर प्रवचन चल रहा था।

पुरुषार्थ-सिद्धियुपाय पर प्रवचन चल रहा था। वे जिनालय में प्रवचन सुनते और सीडी ले जाकर कॉलेज में छात्रों को सुनवाते। किसी ने प्रश्न किया, 'प्रोफेसर साब! आप ऐसा क्यों कर रहे हो? उन्होंने प्राचार्य से बोला, अपने डीन से बोला- साब! जो रसायन के सूत्र हम वर्षों से सोच रहे थे, उनके उत्तर नहीं मिल रहे थे, आज आप छात्रों से पूछ लो, उनका समाधान हुआ कि नहीं? कारण क्या है? प्रवचनसार, नियमसार, प ञ्चास्तिकाय इन ग्रन्थों में जो गूढ़ रहस्य भरे हुये हैं, जगत् में इनसे बड़ा कोई रसायनशास्त्र नहीं हो सकता।

जो जैनदर्शन का गूढ़ अध्यात्म है, इन विषयों को छात्रों को समझाने की आवश्यकता है। आजीविका की प्रक्रिया जगत् के सभी लोग जानते हैं। आज जगत् में बोर्ड लगे हुये हैं, कहीं योगा का लगा, कहीं ध्यान का लगा; पर विश्वास रखो, आप यहाँ शान्ति से बैठ कर सुन रहे हो, क्या यह ध्यान नहीं है? अन्दर की अनुभूति अन्दर में गूँजने लग जाये और स्वयं के भीतर स्वयं का वेदन प्रारम्भ हो जाये, यही उज्जवल ध्यान है। जब ध्यानस्थ होता है तो चित्त विशुद्ध होता है, तो श्वासें स्वत: मन्द हो जाती हैं। अज्ञानी श्वासें देखते हैं, ज्ञानी की श्वासें दिखना प्रारम्भ हो जाती हैं। कभी भी अनुभूति कर सकते हो, ये सारी-की-सारी विद्या हमारे जिनागम में हैं। ये निर्ग्रन्थ तपोधन हजारों वर्षों तक जंगलों में बैठे करते क्या होंगे? बिना भोजन के बिना पानी के, चार-चार माह निकालने वाले योगी हुये हैं। यह तो इस काल का दुष्प्रभाव है कि आज चातुर्मास के लिये नगरों में बैठना पड़ रहा है। नहीं तो चार मास का प्रत्याख्यान करके उपवास ले करके, किसी जंगल में वृक्षों के नीचे बैठे होते। कुछ नहीं, मेघ गरजे बरसे देह के ऊपर, लेकिन देह के भीतर आत्मनाद हो रहा है और जिनवाणी की रिमझिम वर्षा हो रही है। भीतर की फुहारों का आनन्द लूट रहे हैं वे योगीश्वर। ऐसी अनुभूति में डूबे जो निर्ग्रन्थ तपोधन हैं, उनका संसार चुल्लूप्रमाण है। यहाँ बैठकर भी वहीं का आनन्द लूट रहे हो। जितने जीव जिनवाणी को भक्तिपूर्वक सुन रहे हैं, वे

सब भव्य हैं। अरहन्त की देशना को भव्य ही सुन सकता है। जो भव्य है, वह नियम से भावी भगवान् है। भूल कहाँ चल रही है?

बुन्देलखण्ड में कोई बच्चा गिर पड़े तो उसकी माँ पीटती नहीं है, दूर से बोलती है—'बेटा! सुन। कुछ नहीं हुआ। तू तो राजा बेटा है। घोड़ा कूद गया, तू तो खड़ा हो जा। 'एक वह माँ है जो बेटे के पैर छिल गये, जमीन पर गिर पड़ा, उससे भी कह रही है कि घोड़ा कूद गया, खड़ा हो जा, तू तो राजा बेटा है। उस माँ ने बहुत अच्छा किया है, बेटा को हीनता में नहीं जाने दिया, उसके अन्दर उत्साह भर दिया कि तू तो राजा बेटा है। एक वह अभागिन माँ है जो कह रही है, 'देखकर नहीं चलता? गिर गया जमीन पर। सारे कपड़े गंदे करके बैठ गया।' उस बेटे के मस्तिष्क में क्या आयेगा? मेरे तो कपड़े गंदे हो गये, मैं तो जमीन पर गिर गया। माँ के शब्द सुनते ही बेटे का सोच बदल गया। जो कुशास्त्र है, कुआगम है, खोटे ग्रन्थ हैं वे यही कहेंगे कि तू गिर गया; मलिन हो गया, लेकिन भगवान् जिनेन्द्र की वाणी कहेगी—बेटे! तू संसार में आकरके भी पर्याय को मत देख, पर्यायातीत को देख। द्रव्यदृष्टि से तू भगवान्-आत्मा है। जब तक तेरे को निज शान्ति का बोध नहीं होगा, तब तक उह्लास होगा कैसे?

भगवान् के पादमूल में भी पूजन करते-करते आपके मन में ये भाव नहीं आ रहे हैं कि हे प्रभो! जैसा तेरा द्रव्य-गुण-पर्याय है, शक्तिरूप से वैसा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरा भी है। मैं आपके द्वार पर पर्याय मात्र को देखने नहीं आया हूँ, पर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की प्राप्ति के लिये आया हूँ। लेकिन यदि ऐसा भाव चल रहा है 'प्रभु! तुम भगवान् हो, मैं तो भक्त हूँ।' तो बैठे रहो तुम। यह दास संस्कृति नहीं, यह स्वामी-सेवक संस्कृति नहीं है। यह दासों का दर्शन नहीं है। ये दर्शन तो यों कहता है कि भक्ति करो, भगवान् बनो। कब तक भगवान् को देखेंगे? भगवान् को देखने नहीं आते हैं, भगवान् में भगवान् को देखने आते हैं। अपने भगवान् को देखने के लिये भगवान् के पास जाना। सन्तुष्ट होकर मत जीना,

जीते-जीते जीना। 'सन्तुष्ट होकर मत जीना' से क्या तात्पर्य है? ज्ञानी ने सोच लिया कि सुबह से पूजन कर, प्रवचन सुन, अंथऊँ कर लूँगा, फिर मंदिर जाकर सामायिक व स्वाध्याय कर लूँगा, सो थक जाऊँगा, सो जाऊँगा। मेरे मित्र! तेरी यात्रा यहीं तक पूरी नहीं है। इतना तो जगत् के सभी धार्मिक लोग कर लेते हैं। यहाँ तक सन्तुष्ट मत होना। ये भी सुख है। इन्द्रियलम्पटता में लिप्त होकर सुख भोगना, एक वह सुख है, अशुभ ही है। एक धार्मिक अनुष्ठानों को करके उनमें सन्तुष्ट हो जाना, उसमें भी सुख मिलता है आनन्द आता है, यह भी सुख है। पर यहाँ तक सन्तुष्ट मत हो जाना।

इस सुख के बाद जरा विश्राम करके निर्णय करना कि जब मैं धार्मिक अनुष्ठानों के नजदीक आया और धार्मिक अनुष्ठान किया, तो इतना आनन्द आया, फिर भी अभी धर्म में नहीं हूँ। मैं समझ रहा हूँ कि आपको मेरी बात समझने में थोड़ी देर लग रही होगी। जिस बात को सभी श्रावक जानते हैं, उसे मुनियों से जानने की क्या आवश्यकता?

ज्ञानी ससुराल गया। वहाँ उसे वही रोटी, कढ़ी, दाल मिली तो ससुराल का कुछ आनन्द नहीं आया। क्यों? दामाद बन कर पहुँचा हूँ, खाने की कुछ अलग से व्यवस्था न हो तो आनन्द नहीं आता। ज्ञानी! जिस बात को श्रावक भी जानता है, विद्वान् भी जानते हैं, उस अनुभूति की व्याख्या सुनने के लिये योगियों के पास जायें तो क्या आनन्द है? ससुराल में कितने ही पकवान होंगे, लेकिन माँ की मिठाई का आनन्द अलग ही होता है। मैं तो माँ भगवती के आँचल के पास आया हूँ। माँ जिनवाणी की मिठाई खाने आया हूँ। निर्ग्रन्थों के श्रीमुख से निर्ग्रन्थों के ग्रन्थ सुनें तो कुछ अलग आनन्द आयेगा। आज क्या हो रहा है? सग्रन्थों के ग्रन्थ निर्ग्रन्थ सुनायें और निर्ग्रन्थ के ग्रन्थ सग्रंथ सुनायें, ये तो धन में ऋण और ऋण में धन मिल गया, सो बल्ब फ्यूज हो गया। अन्दर का जो आह्लाद है, उस पर दृष्टि डालो। धर्म के स्थान पर प्रवेश करके आप जिसे धर्म कह रहे थे, वह धर्म के पास जाने का धर्म था। जो धर्म है, उसमें 'जो है सो है।' वह

स्वरूप है। क्या स्वरूप है? ज्ञान को ज्ञान में लीन कर लेना। एक क्षण को सबकुछ सोचना बंद कर दो, ज्ञान को ज्ञान में लीन कर लो। जिसके माध्यम से तू भगवान् को जान रहा था, गुरु को जान रहा था, जिनवाणी को जान रहा था, उसको ही तुम जानना प्रारम्भ कर दो, यही धर्म है। ये धर्म को धर्म में देख रहा है।

भट्ट अकलंक स्वामी फिर यहाँ कहेंगे-

मुक्तामुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम्।। 1 ।। स्व. मं।।

फिर यहाँ सारी मूर्तियाँ समाप्त हो गईं। मात्र ज्ञानमूर्ति। मैं ज्ञानमूर्ति मात्र हूँ। जब मैं ज्ञानमूर्ति का अवलोकन करूँगा, तो जगत् की सारी मूर्तियाँ मेरे दृष्टिपटल से शून्य हो जायेंगी। यहाँ पर इस समय न आपको रसना इन्द्रिय के भोग की इच्छा चल रही है, न कोई इन्द्रिय के विषयों की इच्छा चल रही है। मैं आपको अनुभव करके इसलिये दिखा रहा हूँ कि आपके मन में जो विकल्प आता है कि क्या यह सम्भव है कि इन्द्रियविषयों से अपने आपको दूर कर सको? मेरे मित्रो! आपको तो यहाँ एक घण्टा हो चुका है। जब आप तत्त्व की गवेषणा में प्रवेश करते हो, तो आपको कोई चिन्ता नहीं सता रही है, यह संभव है क्या? हाँ, ये संभव है। आठ वर्ष का बच्चा भी कह रहा था-जब तक आहार नहीं दे दूँगा, तब तक पानी नहीं पिऊँगा।

मैंने कहा कि तू तो छोटा है, जा, दूध पीकर आजा। बोला, 'नहीं, महाराज! ऐसा होता है क्या कि मेरे गुरु के मुख में कुछ न जाये और मैं दूध पीकर आ जाऊँ? नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं लूँगा। जब सविकल्प धर्म में इतना आनन्द है कि छोटे आठ वर्ष के बच्चे को भूख-प्यास का वेदन करने की भावना नहीं आ रही है, तो वे निर्ग्रन्थ तपोधन ज्ञान में ज्ञान का वेदन करते हैं, तब जगत् के किसी इन्द्रिय की वेदना उनको सताने नहीं आती। होना चाहिये ज्ञान से ज्ञान का वेदन। जो आप सुन रहे हो, यह आँख से दिखनेवाला विषय नहीं है। यह

आत्मा मात्र से दिखनेवाला विषय है। यहाँ तक पहुँचने के लिये आचार्यभगवन् ने 213 नं. का श्लोक कह दिया है। 'समता सर्वभूतेषु' शब्द के उच्चारण से भी भीतर अभिमंत्रणपना प्रारम्भ होता है। सामायिक के पहले इस सूत्र को ध्यान में लाना चाहिए। फिर माला फेरो, ध्यान करो।

समतां सर्वभूतेषु करोति सुमानसः।
ममत्व भावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम्॥ (सा.स. 213)

आप जो कर रहे थे, वह सामायिक नहीं। आप तो माला कर रहे थे, सामायिक नहीं थी वह। तेरे मन में विकल्प चल रहे थे। मैं तो माला फेर रहा था कि उसके भाव बदल जायें। ज्ञानी! तू ही भाव बदल देता, तो तेरा भव बदल जाता। दूसरे के भाव बदलने के लिये ये भगवान् के पास आता है। बाजार के भाव बदल जायें, व्यापारी के भाव बदल जायें, पड़ौसी के भाव बदल जायें। इन सबके पहले तेरे भाव बदल जायें तो इन सबको बदलने की जरूरत क्या पड़ेगी? अपने जीवन के लिये जीव ने सोचा भी नहीं है।

अ से ह तक के 64 वर्णों में से ही मंत्र का संयोजन हुआ है। जब गाली देगा, तो उनका प्रयोग होगा कि नहीं? आप जो प्रतिमा लाये, वे भगवान् कैसे बन गये? इन्हीं 64 वर्णों का प्रयोग सूरिमंत्र में हुआ है। इन्हीं अक्षरों का प्रयोग श्रीजी के अंकन्यास विधि में हुआ है। पूरे संस्कार हो जायें, लेकिन जब तक अंकन्यास विधि नहीं होगी और सूरिमंत्र नहीं दिया जायेगा, तब तक जिनबिम्ब 'जिन' संज्ञा को प्राप्त नहीं होता। उन अक्षरों से, उन बीजाक्षरों से पाषाण की प्रतिमा में भगवत्ता प्रकट करा लेते हैं तो उन बीजाक्षरों/मंत्रों की आराधना से अपने भीतर के भगवान् को प्रकट नहीं कर सकता क्या? ऐसा हो नहीं सकता है। मंत्र-अक्षरों का प्रयोग करते समय भाव बदलते हैं। 'पापा' कहने से कोई ताकत नहीं है। पापा का उच्चारण-स्थान देखो, कोई ताकत नहीं है। हाँ, आज के लोगों को तो पापा ही बोलना चाहिये। क्यों? ये पुत्र को जन्म देना नहीं चाहते थे, वह तो उसने भाग्य से ले लिया। जो मात्र इच्छाओं की पूर्ति के लिये चलते हैं,

वे पापा ही हैं, पापी लोग हैं। हाँ, जब ये जीव सनातन धर्म की रक्षा के लिये सन्तान को जन्म देता है, तब ये पिता होता है, तात् होता है। अब सत्य सुनिये। जब तेरे पिता डाँट रहे हों, तब कैसे शब्दों का प्रयोग करना? उनको भी लगे कि ओह! मेरा भी जीवन सफल हो गया। भो तात्! हे जनक! हे मेरे पिताश्री! पिता जी में हृदय की अनुभूति समाप्त हो गई।

हे तात्! **'समतां सर्वभूतेषु।'** आप अभी श्री जिनालय से पूजा करके आ रहे हो, समवसरण से निकल कर आ रहे हो और ऐसे भाव? समवसरण से निकलने पर तो 'समता सर्वभूतेषु' भाव होना चाहिए थे, आप मुझे डाँट रहे हो? क्या जगत् के भूतों में मैं एक भूत नहीं हूँ? क्या जगत् के प्राणियों में मैं एक प्राणी नहीं हूँ? आप मुझे बेटा बाद में देखना, आप मुझे पहले जीवद्रव्य देखो। पत्नि देखोगे तो कषाय करोगे, पुत्र देखोगे तो कषाय करोगे। मंदिर से आप सारे संबंध छोड़ कर निकलना और जो-जो तुमको रास्ते में दिखें, उनको जीवद्रव्य देखना। **'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्',** इस सूत्र में जितने तत्त्व हैं, यह वही द्रव्य है। जिस पर तू गुस्सा कर रहा था, वह भी एक तत्त्व है। तू पत्नि पर आगबबूला होकर बरस रहा था, तुझे शर्म नहीं लग रही थी, क्या? जगत् में जितने तत्त्व हैं, उन पर श्रद्धान करने पर सम्यक्-दर्शन होता है। एक जीवद्रव्य को तू पैर से मार रहा था, तो तूने जिनवाणी का अनादर किया कि नहीं? मुमुक्षु! अभी तत्त्व को समझना पड़ेगा।

पाषाण के परमात्मा को तू पूज रहा है, ये बन चुके भगवान् हैं। जो तेरे घर में हैं, वे बननेवाले भगवान् हैं, इनका अनादर मत करो। यदि ऐसा भाव नहीं आ पा रहा है, तो अभी तक आपने सामायिक की ही नहीं, माला फेरी है। सामायिक एक दिन भी कर ली होती तो जगत् का प्राणिमात्र दिखता जैसे कुन्दकुन्द स्वामी को एकेन्द्रिय में भी भगवान् दिखते हैं। फिर न प्रान्त का भेद, न पंथ का भेद, न जाति का भेद, न उपजाति का भेद। इन सब भेदों ने तुम्हारी सामायिक भंग की है। माना कि तुम दिगम्बर मुनि भी बन गये और ये विकल्प मन में सताते

रहे- महाराज भेष घूम रहा है, भाव में कुछ नहीं है। अभी तो आपकी द्रव्य सामायिक ही नहीं है, भाव सामायिक तो छोड़ो।

द्रव्यानुयोग की क्या आवश्यकता है? स्त्री, पुरुष, नपुंसक ये जो वेदों के विकार तुम निहार रहे हो, ये द्रव्य में भेद करके देख रहे हो, यह तुम्हारी द्रव्य-सामायिक नहीं है। जब द्रव्यों में अभेददृष्टि दिखेगी, तब कहीं द्रव्य से द्रव्यसामायिक होगी। अभी तो द्रव्य से द्रव्यसामायिक भी नहीं है।

नव लब्धियों की व्याख्या है। नव लब्धियों की प्राप्ति का पुरुषार्थ करने वाले नौ दिनों, नव निधियों के लिये श्रावकों को लगा रहा हो, अब तुमको नौ लब्धियाँ कहाँ से मिलेंगी? हम जगत् की शक्तियों की उपासना में चले गये। ये ज्ञानी जगत् की शक्तियों की उपासना में चला गया तो सैंतालीस शक्तियों को खो ही गया। जगत् में जितनी शक्तियाँ हैं, वे सब बाहर की शक्तियाँ हैं। तेरी आत्मा में सैंतालीस शक्तियाँ हैं। आत्मा की इन सैंतालीस शक्तियों पर दृष्टि चली जाये तो जगत् की सारी शक्तियाँ तेरे चरणों में लोटेंगी। अपनी प्रभुत्व शक्ति को खो गया, अपनी विभुत्व शक्ति को खो गया, उस पर दृष्टि ही नहीं है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने 'समयसार' की आत्मख्याति टीका में आत्मा की सैंतालीस शक्तियों का वर्णन किया है। जिनागम में गूढ़ रहस्यों का वर्णन है। पत्र-पत्र का ज्ञान भिन्न है और जड़ का ज्ञान भिन्न है। मैं जानता हूँ कि इन बालकों को युवाओं को यह विषय पूरा समझ में नहीं आ रहा होगा। हर विषय समझ में आने के लिये नहीं कहना चाहिये।

ज्ञानी! तेरी शादी हो गई क्या? जो मैं पूछूँ, बताना। घबराना नहीं। चोर चोर मौसेरे भाई हैं। इसलिये आप बता देना। मेरे मित्र! जब घर में चर्चा चली थी और तेरे कान में शब्द पड़ गया था, उस दिन की अनुभूति तू बता सकता है क्या? तुझे पता नहीं था कि तेरी धर्मपत्नि कौन बनने वाली है? माता-पिता की सलाह मात्र चल रही थी कि बेटा शादी के योग्य हो गया है। तूने क्या किया था? सिर नीचे किया और धीरे-से खिसक गया था, जैसे कोई समझ न रहा

हो। लेकिन तू तो समझ गया था कि मेरे बारे में बात चल रही है। मेरे मित्र! जब शादी की चर्चा सुनने पर तुझे गुदगुदी हो रही थी, इन योगियों से पूछो, इनकी चर्चा प्रारम्भ हो गई हो, सौधर्म इन्द्र कह रहा हो कि मुक्तिवधू की शादी इनसे होने वाली है, अब सोचो, उस मुनि की दशा से पूछो जिसको अन्तर्मुहूर्त बाद कैवल्य होने वाला हो। इस योगी के आनन्द की क्या कहना? जो आपको पता नहीं है, वह मुझे मालूम है कि दीक्षा के एक मुहूर्त पहले क्या आनन्द होता है। अब मैं मुनि बन जाऊँगा, दीक्षा-मण्डप तैयार है। उस ग्रहस्थ से पूछो जिसका दीक्षामण्डप तैयार है। जबकि उसका उस दिन उपवास होता है, लेकिन जो उमंक जीवन में कभी नहीं आयी होगी, वह उमंक उस दिन आती है। अप्रतिष्ठित मूर्ति में कोई चमक नहीं होती, लेकिन प्रतिष्ठा होते ही उस पाषाण की मूर्ति में चमक आ जाता है। फिर तो ये मुनिराज चैतन्य हैं। दीक्षा होते ही इनके चेहरे में चमक आ जाती है।

जब सम्बन्ध की चर्चा चली, तो तुम्हारे मुख पर चमक चढ़ी। आप मण्डप पर पहुँच चुके थे। जो तेरी पत्नि बननेवाली थी, उससे अभी कोई चर्चा नहीं हुई थी, मात्र सात चक्कर लगा रहे थे, आपस में कोई वार्ता हुई नहीं है, फिर भी बिना बोले सुख महसूस हो रहा था कि नहीं? अन्दर का विषय बोलो। संसार का सुख महसूस हो रहा था कि नहीं? बिना बोले जो आनन्द है, उतना बोलने पर आपको नहीं मिला। अवाच्य दशा है। ऐसे ही जिनवाणी के गूढ़ रहस्य वे सभी इतने समझ में आयें कि मैं पुनः सुना सकूँ, इसकी आवश्यकता नहीं है। बहुत सारा विषय आप जीवन में सीख चुके होते हो, पर ऐसा दिन कभी नहीं आता है कि तुम उसे व्यक्त कर सको। जितने शास्त्र आपने पढ़ लिये, लेकिन ऐसा भी ग्रन्थ रहेगा तेरे जीवन में जिसे तू सभी को बता नहीं पायेगा। एक ही ग्रन्थ में इतना विषय रहता है कि उसे आप बता नहीं पायेंगे। जितना तुमने धन कमा कर रखा है, क्या तुमको विश्वास है कि उतना तुम पूरा उपभोग करके जाओगे? मुझे विश्वास है कि जितना मैंने कमा कर रखा है उतना मैं भोग नहीं पाऊँगा।

भोगने कोई दूसरा आयेगा। तब भी जो कमा कर रखा है, उसकी अनुभूति अव्यक्त रूप से लेता है। आपके मकान के कौन-से कोने पर कौन-सी खुटिया लगी हुई है, तुझे पता नहीं है, पर मेरे मित्र! तू उसका भी भोग भोग रहा है। माना कि आपके यहाँ हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों की सम्पत्ति पड़ी हो और आप मात्र एक कमरे में शान्ति से बैठे हो, तो लोग कहेंगे कि तू कुछ नहीं कर रहा है, पर उस दिन मालूम चलेगा कि कोई तुम्हारे घर की एक खुटिया खींच कर लाये और कहे कि मैं तुम्हारे इस कमरे से खींच कर लाया हूँ। उस दिन देखो तुम्हारे परिणामों में क्या होता है? तब मालूम चलेगा कि मैं इसको भी अव्यक्त रूप से भोग रहा था। पूरी सम्पत्ति को अव्यक्त रूप से भोगता है। ऐसे ही वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन आत्मा के अनन्त गुणों तक न भी पहुँच पाये, तब भी आनन्द के साथ भोगते हैं। वह उनका आत्मभोग है।

ज्ञानी! इतना भीतर जाना पड़ेगा। इसलिये जितने बच्चे यहाँ बैठे सुन रहे हैं, हमारे वक्ताओं ने यह सोच रखा है कि कठिन बोलूँगा तो इनको समझ में नहीं आयेगा। पर इनको इतना आनन्द आ रहा है कि हमारे महावीर की वाणी कैसी होती होगी। उन शब्दों का बोध तो हो रहा है। कुछ समझ में आये या न आये, लेकिन इतना तो समझ में आता है कि यह विषयों से रहित विषय है, वह आत्मसुख है। जो विषयों सहित विषय है, वह इन्द्रियविषय है, वह बंध का कारण है, संसार का कारण है।

आपको किसी पर गुस्सा करना नहीं है, लेकिन कोई आप पर भी गुस्सा करे, तो कह देना—भो ज्ञानी! 'समतां सर्वभूतेषु', जगत् के प्राणिमात्र में मेरा साम्यभाव हो। ऐसा जीव शुद्ध मन से करता है। जब समता आ जायेगी, तो ममत्व अपने आप हट जायेगा। शीतकाल और उष्णकाल एक साथ कभी नहीं होते हैं। जैसे दो मौसम युगपद् कभी नहीं होते, ऐसे ही समता और ममता एकसाथ रह नहीं सकती है। जहाँ ममता होगी, वहाँ समता नहीं होगी और जहाँ समता होगी, वहाँ ममता नहीं होगी। इसलिये एक काम करो, समता को बुला लो तो ममता

अपने आप चली जायेगी। लेकिन समता भाव तभी आयेगा, जब सारे जीवों के प्रति मेरा मैत्रीभाव हो। आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग करके बैठे हो, जब समता आ चुकी है, अब किसी परवस्तु में ममता-भाव जायेगा नहीं। यहाँ से प्रवचन सुन कर जाते हो तो परिवार वालों को लगना चाहिये कि जो जीव प्रवचन सुनने गया था, वह लौट कर नहीं आया है। आप यहाँ से प्रवचन सुन कर गये और घर के लोग यही समझे कि वही आया है, तो तुमने यहाँ आकर क्या किया? जैसे घर से झगड़ कर आये थे, यहाँ आकर बैठ गये और वापस जाकर पुनः झगड़ने लग गये, तो एक अज्ञानी भी यही कहेगा कि तुम तो व्याख्यान सुनने गये थे, लेकिन तुम तो वैसे ही आये हो। वह तो कड़वी तुमड़ी है कि तुमने उसको गंगा में एक हजार बार डुबकी लगवायी, लेकिन जब निकली तो कड़वी-की-कड़वी। इसलिये कड़वी तुमड़ी बन कर नहीं आना। जब प्रवचन सुनकर घर पहुचो तो तुम्हारे परिवारवाले तुम्हें पहचान न पायें। जो कभी आपके लिये डण्डा लिये खड़ा हो, वह हाथ जोड़े खड़ा मिल जाये, तो समझ जाना तुम बदल कर आये हो।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"शूर का लक्षण"

इन्द्रियाणां जये शूराः, कर्मबन्धे च कातराः।
तत्त्वार्थो हितचेतस्काः स्वशरीरेऽपि निस्पृहाः॥ 214॥
परीषह महारातिवननिर्दलनक्षमाः।
कषायविजये शूराः स शूर इति कथ्यते॥ 215॥

अन्वयार्थ-इन्द्रियाणां जये शूराः = जो पाँचों इन्द्रियों के जीतने में वीर हैं, **कर्मबंधे च कातराः** = तथा कर्मों के बाँधने में कायर हैं-जो कर्मबन्ध से भयभीत हैं, **तत्त्वार्थो हितचेतस्काः** = तत्त्वार्थ के मनन में जिनका मन लवलीन है, **स्वशरीरेऽपि निस्पृहाः** = जो अपने शरीर से भी मोहरहित है, **परीषह महारातिवननिर्दलनक्षमाः** = जो 22 परीषह रूपी शत्रुओं के वन को नाश करने में समर्थ हैं, **कषाय विजये शूराः** =जो कषायों के जीतने में शूर हैं, **स शूर इति कथ्यते** = वे ही शूर हैं ऐसा कहा गया है।

भावार्थ - जो पाँचों इन्द्रियों को जीतने में शूर है तथा कर्म बाँधने में कायर है, तत्त्वार्थ के चिन्तन में जिनका मन स्थिर है, जो अपने शरीर में निस्पृह हैं, जो बाईस परीषह रूपी शत्रुओं के वन का नाश करने में समर्थ हैं और जो कषायों को जीतने में योद्धा हैं, वे ही सच्चे शूर कहे जाते हैं।

सद्-देशना

अन्तरंग की उत्तम गहराइयों से युक्त हो करके आचार्य भगवन यहाँ वस्तु-तत्त्व की व्याख्या कर रहे हैं। **जहाँ समत्व प्रारम्भ हो जाता है, वहाँ समकित का जन्म होता है। समकित से सामायिक होती है। बिना समकित के सामायिक होती ही नहीं है। बिना समत्व के सामायिक आती ही नहीं है।** तीनों बातों पर ध्यान रखना। जहाँ समत्व है, वहाँ समकित है और जहाँ समकित है, वहाँ सामायिक हो सकती है। जहाँ समकित का अभाव है, वहाँ सामायिक का भी अभाव है। जब तक हमारे अन्तस् में प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव नहीं आया,

तो सम्यग्दर्शन का जन्म कहाँ से हो जायेगा? देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धा रखने वाला जीव क्या प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य गुण से शून्य होगा।

ज्ञानियो! देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान शुष्क नहीं है अन्यथा मैं देव के नाम पर किसी जीव को भण्ड वचन बोल दूँ, शास्त्र के नाम पर किसी जीव के प्रति क्लेश भाव रखूँ और गुरु के नाम पर किसी जीव के प्रति क्लेश भाव रखूँ। यह आपका राग बोल सकता है, लेकिन समता भाव नहीं है।

जैनदर्शन के मूलभूत बिन्दुओं की व्याख्या करो कि हम देव-शास्त्र-गुरु के पास तो पहुँच गये, पर देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप पर लक्ष्य ही नहीं गया। देव से देव नहीं बनता, शास्त्र से शास्त्र नहीं बनते, गुरु से गुरु नहीं बनता। इस बात को जो प्रथम बार सुनेगा उसे उल्टा लगेगा।

हे ज्ञानी! बहिरात्मा अन्तरात्मा होता है, फिर अन्तरात्मा परमात्मा होता है। जो बहिरात्मा है, वह अन्तरात्मा बनने का पुरुषार्थ करता है। अरहन्त से अरहन्त नहीं बनते, निर्ग्रन्थ से अरहन्त बनते हैं। निर्ग्रन्थ से निर्ग्रन्थ नहीं बनते, सग्रंथ से निर्ग्रन्थ बनते हैं। सबसे पहले सम्यग्दर्शन। सम्यग्दृष्टि निर्ग्रन्थ बनेगा। जो निर्ग्रन्थ बनेगा, वह अरहन्त बनेगा जो अरहन्त की देशना होगी, उससे ग्रन्थ बनेगा। सग्रन्थों के ग्रन्थ दिगम्बर आम्नाय में प्रमाणित नहीं हैं। निर्ग्रन्थ की वाणी दिगम्बर आम्नाय में प्रमाणित है। देशना निर्ग्रन्थों की है। वचन नहीं देखना चाहिये, वक्ता देखना चाहिये। षट्दर्शनों में ऐसे-ऐसे व्याख्याता हुये हैं, उनकी भाषाशैली सुनकर आप कहोगे कि क्या बोल रहे हैं। भाषा का सौष्ठव, साहित्यिक भाषा, संस्कृत व प्राकृत से मिश्रित भाषा, भाषा के महत्त्व को ही मत देखना, सिद्धान्त के महत्त्व को देखना।

भाषा प्रमाण नहीं होती, सिद्धान्त प्रमाण होता है। जो भाषा के माधुर्य में चला गया, तो जिसकी फुंकार से लोक भयभीत हो जाया करते थे, ऐसा कालिया नाग टोकनी में ढक गया। यह किसके कारण ढका? हे नाग! तू नहीं समझ सका, मधुर वीणा की आवाज को सुन करके, बीन की आवाज सुन करके तू फँस गया। ऐसे संगीतभूत सुन्दर शब्दों को सुनकरके मिथ्यात्व की टोकनी में

मत फँस जाना, नहीं तो जैसे कालिया नाग बंधन में फँस गया, वैसे ही तू कर्म के बंधन में फँस जायेगा। हर दर्शन में जिसे आप अच्छी बात कहते हो, नीति वचन तो हर दर्शन वाला बोलता है। नीति सामान्य है, सिद्धान्त विशेष है। मोक्षमार्ग नीति पर नहीं चलता, मोक्षमार्ग सिद्धान्त पर चलता है। इसलिये देव नहीं, शास्त्र नहीं, गुरु नहीं। इतनी ऊँचाइयों पर पहुँचने के लिये सबसे पहले समकित। आप देव बनना चाहते हो, गुरु बनना चाहते हो, कोई शास्त्र बनाना चाहते हो, तो पहले सम्यग्दृष्टि बनो। आज अपने अन्तस् में देखना कि भगवान् के पादमूल में आकर क्या मैं सम्यग्दृष्टि नहीं हूँ?

आचार्य समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं-तीन मूढ़ता से रहित, आठ अङ्ग सहित, छह अनायतन रहित, आठ मद रहित आप्त, आगम, तपोभृत पर जिसकी सच्ची श्रद्धा है, वह व्यवहार सम्यग्दृष्टि है। हिंसा से रहित धर्म, अट्ठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनप्रवचन, यदि इन पर श्रद्धान है, तो जीव व्यवहार सम्यग्दृष्टि है। व्यवहार सम्यग्दृष्टि की चर्चा भी कुछ होगी कि नहीं? होगी। तो उसका नाम है सम्यक्त्वाचरण, न कि स्वरूपाचरण।

माता-पिता यह तो बोल देते हैं कि जाओ, भगवान् के दर्शन करके आओ, जैनकुल में जन्मे हो। आपने अपने बेटे से बहुत अच्छा कहा, लेकिन आपने चरणरूप धर्म की व्याख्या की है, परन्तु परिणतिभूत चतुर्थ गुणस्थान की भी तो व्याख्या करो।

पहला लक्षण है प्रशम। किसी को झाँकना मत, देखना मत। यहाँ निहारना कि विषमता के आने पर मैं कभी समता के भाव भी लाता हूँ, कि शीघ्र अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने खड़ा हो जाता हूँ? यदि आपको अपने शरीर के ऊपर अहं है और अपने सामने तुम किसी को कुछ भी नहीं समझते हो, नगण्य मानते हो, तो ऐसे देव-शास्त्र-गुरु की पूजा तो अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव भी कर सकता है। देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में भद्र मिथ्यादृष्टि अभव्य जीव भी आ सकता है। प्रशम-समकित का वर्णन चल रहा है। सम्यग्दर्शन का विशद् वर्णन समन्तभद्र

स्वामी ने 'रत्नकरण्डक' में किया है। इनकी दृष्टि में चाण्डाल पुत्र भी धर्ममय हो सकता है। इसलिये अपने उच्च कुल को देखकर उच्च विचार तो रखना, पर उच्च कुल में आकरके किसी को नीच कह करके नीच विचार का दर्शन मत करा देना। उच्च मिठाई की उच्च सुगन्ध होती है। उच्चकुलीन पुरुष के मुख से भाषा की सुगन्ध आना चाहिये, लेकिन उसके मुख से दुर्गन्ध नहीं निकलना चाहिये। हम कैसे समझें कि तुम्हारे अन्दर उच्चकुलीनता है? विश्व में ऐसा कौन-सा जीव है जो किसी की नौकरी करना पसन्द करता हो? नहीं, मित्रो! कोई किसी की नौकरी करना पसन्द नहीं करता। जब-जब तुम्हारा नौकर तुम्हारे सामने खड़ा हो, तब उसको जरूर देख लिया करो कि यदि ये दिन मेरे सामने होते, तब कैसा होता? बेचारे को उतना समय प्रभु के सामने हाथ जोड़ने को नहीं मिलता जितना मालिक के सामने हाथ जोड़ता है। एक बालक कह रहा था, 'महाराज जी! कभी पूजन के भाव आते, कभी आपको दान देने के भाव आते हैं, परन्तु मैं जहाँ सर्विस करता हूँ, वे जैन साहब ही हैं, पर यदि में एक मिनिट भी लेट होता हूँ तो वे ऐसे देखते हैं जैसे ज्वालामुखी निकल रहा हो। मैं तो मात्र दान के लिये आता हूँ।' उसकी बातें सुनकरके लग रहा था कि ठीक लिखा है **रविषेण स्वामी ने 'पद्म पुराण' जी में कि किंकर से कूकर श्रेष्ठ है। इसीलिये लिखा है कि कूकर तो पूँछ उठा कर जहाँ विचरण करना चाहे वहीं कर लेता है, परन्तु किंकर बेचारा प्रभु के चरणों में भी आना चाहे तो नहीं पहुँच पाता है।**

युवाओ! नौकरी के लिये पढ़ाई मत करना। तुम सेठपुत्र हो, उच्चकुल में आये हो। यदि तू व्यापार भी करेगा तो दुकान में ताला डालना तेरे हाथ में है और फिर भगवान् की भक्ति में खड़ा हो जायेगा। दौलतराम, बनारसीदास जैसे विद्वानों ने जीविका जीने के लिये व्यापार तो किया था, पर व्यापार के लिये जीवन नहीं दिया था।

एक वे जीव हैं जो धन के लिये जीवन नष्ट कर रहे हैं और दूसरे वे जीव थे जो आजीविका के लिये धन कमा रहे थे। आपका अनुचर आपके सामने खड़ा

हो तो आज के सूत्र का ध्यान रखना। मनुष्य जैसा अहंकारी प्राणी नौकरी करे, संभव नहीं है। आप कह सकते हो, 'महाराज! नौकरों के तो ढेर लगे हैं देश में। आप यूँ बोल रहे हो। मैं ठीक कह रहा हूँ। भीड़ आपको अवश्य दिख रही है, लेकिन मनुष्य मान का पुतला है, ये किसी की नौकरी करना पसन्द नहीं करता। आपका नौकर कोई काम बिगाड़ दे और आपके सामने गिड़गिड़ाने लग जाये और उसे डॉटने का मन बनाये, तो मेरे मित्र! उस समय आज का उपदेश अपने मन में गुंजायमान करना। नौकर कह रहा है, 'सेठ जी! सत्य बताऊँ, मैं आपका नौकर नहीं हूँ। 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से देखो तो सब भगवान्-आत्मा हैं। मैं आपका नौकर नहीं हूँ, मेरी गरीबी आपका नौकर है। पुण्य की क्षीणता है। यदि ये गरीबी न होती, पुण्य की क्षीणता न होती, तो हम तुम्हारे द्वार पर नहीं आ सकते थे। कोई नौकर नहीं होता है, पुण्य की क्षीणता नौकर होती है।

नौकर कह रहा है धीरे-से-**"राजादि होदि रंको"** सम्राट भी रंक हो जाता है और रंक भी सम्राट हो जाता है। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। नौकर को डॉटने की अपेक्षा उसको प्रेम से कह देना, 'भाई! ईमानदारी से काम करो। तुमने पूर्व में मायाचारी की होगी, सो आज टुकड़े-टुकड़े को तरस रहे हो। आज भी मायाचारी करोगे, तो भविष्य क्या होगा? मत डाँटना, भाषा खराब मत करना। ये मत कहना, 'महाराज! कौन सुनेगा इस भाषा को? विश्वास रखना, मैं कह रहा हूँ, इस भाषा को ही सुनेगा। अब तुम गल्ती देखकर मुख मोड़ लेना, फिर देखना कि वह स्वयं में इतना भयभीत रहेगा कि पता नहीं अब डाँट पड़ने वाली है। तुमने डाँट दिया, सो वह फुर्सत हो जाता है कि अब तो पड़ ही गई। प्रशम भाव कह रहा है-क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों पर तुम्हारा कितना नियन्त्रण है, चारों कषायों पर नियन्त्रण होगा तो तुम 'समता सर्वभूतेषु' का पाठ सीख सकते हो। शीघ्र कुपित होने का परिणाम, शीघ्र उद्वेलित होने का परिणाम तुम्हारे अन्तस् में चल रहा है तो समझ लेना कि अभी प्रशम भाव नहीं है। प्रशम

भाव नहीं है तो समकित भाव भी नहीं है। पंचाध्यायी-कार के सूत्र से जिनागम को मत देखना। पंचाध्यायी-कार ने प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये चार गुण मिथ्यादृष्टि में भी घटित किये हैं, लेकिन आचार्य विद्यानन्द स्वामी 'श्लोक वार्तिक' में लिखते हैं कि जब तक सम्यक्त्व प्रकट नहीं होता है और अनन्तानुबंधी का अभाव नहीं होता है, तब तक प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य का उदय ही नहीं होता है। अनन्तानुबंधी मान में शान्त बैठे रहना प्रशम है क्या? नहीं।

यदि तू अपनी दुकान पर शान्त बैठा है, ग्राहकों पर गुस्सा नहीं कर रहा है, तो क्या तू प्रशम-परिणामी है? मैं तो नहीं कहूँगा। मैं जानता हूँ कि क्यों शान्त बैठा है। यदि ग्राहकों पर नाराज होऊँगा तो कल दुकान का क्या होगा? यह लोभकषाय में शान्त बैठा हुआ है। यह लोभकषाय की शान्ति है। कितने उदारमना लोग हैं, ग्राहकों को दूध भी पिला देते हैं। तो ग्राहक कहेगा कि क्या संतोषी, क्या दानी मेरा सेठ है। सेठ दानी नहीं है। ये अभिमानी है, स्वार्थी है। तुमको मालूम होना चाहिये कि खरगोश को फँसाने के लिये शिकारी जाल फैलाता है। इतना दानी कब से हो गया कि अपने घर का द्रव्य देकर दूध पिलायेगा? ये प्रशम, संवेग, अनुकम्पा नहीं है। यह तो स्वार्थवृत्ति है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा जो लक्षण है, इसमें अनहितवृत्ति, अपेतकेतवा, बिना माया के। बिना माया के जो पर की सेवा के परिणाम आये हैं, प्रशम भाव आये हैं, वे ही समकित भाव हैं। एक माया धर्म और एक माया कषाय। तू माया के लिये ही तो माया कर रहा है। प्रतिक्षण अपने भावों को मिलान करना, भावों को प्रमेय बनाना, ज्ञेय बनाना और भावों को ज्ञेय बना कर देखना कि इस समय मेरे परिणाम क्या हो रहे हैं? सामने की दुकान पर ग्राहक जा रहा है, उस समय देखना परिणाम क्या हो रहे हैं? कैसे भाव आ रहे हैं? 'इधर चला गया, इधर नहीं आया।' जिन जीवों की पण्डिताई आजीविका हो जाये, आप लोग अन्यथा मत समझना, उसकी दुर्गति का टिकट नियत हो चुका है। डर लगे तो तुम्हें रहना है आगरा में, मुझे कौन रहना है। आगम वचन सुनो-

मेरे मित्र! भीख माँग कर खा लेना, पर जिनवाणी को बेचकर जीवन मत जीना, क्योंकि मुझे मालूम है कि जिनवाणी का ज्ञान कितने पुरुषार्थ से मिलता है। जब सारे लोग चैन की नींद सोते हैं, तब विद्यार्थी तपस्या करके याद करता है। स्लेटों पर लिख-लिखकर याद किया मैंने। मुझे पता है कि ज्ञान की गरीबी कैसी होती है। जिस भगवती की आराधना इतने श्रम से की हो, उस भगवती को टुकड़ों में कैसे बेचा जा सकता है? कुछ विद्वानों ने मुझे पकड़ लिया था, चलो, मैं तुम्हें जयपुर ले चलता हूँ, वहाँ तुम्हें पण्डित बनायेंगे। मैंने कहा, मैं जिनवाणी माँ को बेचूँगा नहीं, मुझे वह पण्डित नहीं बनना है। मैंने धीरे-से कहा 'मुझे महाराज बनना है।' उन्होंने मुझे ऐसे छोड़ दिया जैसे बनारस में पण्डे पकड़ लेते हैं 'जजमान् साव।' तुम धीरे-से बोल देना 'मैं जैन हूँ' सो छोड़ देते हैं। ऐसे उन्होंने मुझे छोड़ दिया। वे मुमुक्षु विद्वान् थे, बोले—भैया! अब तुमको नहीं रुचता, तो जाओ। मैं तो ये सोचता था कि मैं तुम्हें उच्च कोटि का, नम्बर एक का विद्वान् बनाता, तुम्हारा नाम देश में चलता। मुमुक्षु! तेरे विद्वान् बनाने से नाम नहीं चलता है। ये तो अज्ञान की भूल है। नाम भी चलेगा है, तो यश:कीर्ति के नाम पर चलता है। तेरे चाहने से चलने लग जाये तो हर व्यक्ति नाम चाहता है, लेकिन सबके नाम क्यों नहीं होते हैं? जीवन में यह भ्रम निकाल देना। नाम का कारण न गुरु होता है, न प्रभु होता है। एक गुरु के बहुत सारे शिष्य होते हैं। सभी के नाम क्यों नहीं हो रहे हैं? यह कुटिल अज्ञानधारा है कि मेरे गुरु के नाम पर यश फैल जायेगा, मेरा शास्त्र के नाम पर यश फैल जायेगा। ज्ञानी! अभी जैनत्व के ज्ञान की हीनता है, तत्त्व के गहरे निर्णय नहीं हैं, परजीवी है, जबकि जैनदर्शन परजीवी नहीं है। भाग्य से तुझे बुद्धि मिली है, ज्ञान मिला है, सुन्दर देह मिली है। कोई विद्वान् का सहयोग करे तो ले लेना। कोई कहे 'पण्डित जी! कितने चाहिये?' बोलना, 'भैया! मैं तेरे यहाँ आ नहीं पाऊँगा, क्योंकि मैं जिनवाणी बेंचनेवाला विद्वान् नहीं हूँ। कोई फोन पर भी पूछे 'मैं प्रवचन को बुलाना चाहता हूँ, कितने का लिफाफा देना पड़ेगा? बोल देना-'भैया! क्षमा करना। हम

आपके यहाँ आ नहीं पायेंगे।' क्यों?' मैं उपदेश देने आऊँगा। तुम मुझे कषाय की बात बता रहे हो, हम आपके यहाँ नहीं आ पायेंगे, क्षमा करना।' शास्त्रजीवी और शस्त्रजीवी, इन दोनों का कल्याण नहीं होता। जिनेन्द्र की वाणी को बेंच कर आजीविका करने वाला कहाँ कल्याण करेगा? नहीं होता। कारण? लोभकषाय से भरा जीव सत्य भाषण नहीं कर पायेगा। आवश्यक नहीं है कि धन का ही लोभ हो। यश, कीर्ति का भी लोभ हो सकता है कि जैसा तुम कहलवाना चाहते हो, मैं वैसा कह देता हूँ। नहीं। पूजा करने वाला कोई मिले या न मिले, परन्तु अपनी पूज्यता अपने हाथ से मत खो देना।

चारों कषायों का उपशमन प्रशम है। भीतर-भीतर खोजना। माताओ। गृहस्थी चलाते हुये भी खोजना कि मेरा प्रशम भाव है या नहीं?

ज्ञानियो! समकित का दूसरा गुण है- संवेग। धर्म और धर्मात्मा को देख करके अन्तरंग में गद्गद् परिणाम होते हैं कि नहीं? यदि नहीं हो पा रहे हैं, तो विश्वास रखना, अभी सम्यग्दर्शन नहीं है। क्योंकि देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति बहिरंग पर आँखों का विषय नहीं है, यह आत्मा का विषय है। देखते ही गद्गद् परिणाम हो जायें कि अहोभाग्य, आज हमारे नगर में त्यागी पधारे हैं, आज हमारे नगर में विधान हो रहा है, आज हमारे नगर में कोई विद्वान् पधारा है। उसको देख करके 'चलो, भैया! आज हमारे यहाँ भोजन करने चलो। एक वह जीव है जो सोचता है कि धीरे-से खिसक चलो, अपन परिचित हैं, कहीं बोलना न पड़ जाये। यथार्थ मानो, ये जीव के भाव हैं। जब तक पेट भरा होता है, तब तक सब देखते हैं। नहीं-तो एक अभक्ष्य को खिलानेवालों की तो भीड़ है और खानेवालों की भी भीड़ है। शुद्ध भोजन करने वाला एक त्यागी पधार जाये तो श्रावकों के सिर पर आपत्ति पड़ती है कि अब इनकी व्यवस्था कहाँ से बनाऊँ?

मेरे मित्र! जीवन में इतना नियम ले लेना- तू अरबों-खरबों कोटि-कोटि द्रव्यों की बोली ले या मत ले, उसका तो प्रत्याख्यान भी कर दे, कोई विकल्प नहीं है, परन्तु जीवन में इससे बड़ी कोई बोली नहीं होगी कि आपके यहाँ कोई

ब्रह्मचारी भी क्यों न आ जाये, पहले उसके भोजन की व्यवस्था देखना। उस जीव को आपने भोजन करा दिया, वह दिन भर साधना करेगा। धीरे-से खिसकना मत। एक लाख का दान दे देना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कुए से पानी लाकर त्यागी को पिला देना महत्वपूर्ण है। निज में निहारकर देखो कि संवेग भाव कितना है। जगत् के जीवों के शरीर की सुन्दरता या वस्त्रों की सफेदी कोई मोक्षमार्ग का प्रतीक नहीं है। भीतर झाँक कर देखो कि मेरे अन्दर संवेग भाव कितना है?

जैसे राजगृही का मेंढक प्रसन्न हो करके कुसुम की पंखुड़ी लेकरके तीर्थंकर के समवसरण में दौड़ कर चल दिया था, ऐसे ही धर्मात्मा को देख करके जिनका मन प्रमुदित होकरके खिलने लग जाये, समझ लेना कि मेरे भीतर संवेग भाव है।

प्राणिमात्र पर करुणादृष्टि/दयादृष्टि होना चाहिए। धन्य हो हमारी माँ को, जो सुबह से जाग कर आटा भी पीस रही है तो पाट उठा कर देख रही है कि कोई जीव तो नहीं है। आपने तो रात्रि के चार बजे बटन चटका दिया इलेक्ट्रिक मशीन का, तो सब पिस जायेंगे, सब स्वाद उसी में चला जायेगा। अनुकम्पा गुण कहाँ गया? पानी छान लिया, थैली को दवा दिया। ओ हो...?

एक माँ के हाथ से एक बूँद पानी की बिलछानी गिर गई तो सात बार कूकरी बनी, सात बार सूकरी बनी, सात बार गधी बनी। अब विचार करो, आपने कितना पानी फैलाया होगा? जो मैं कह रहा हूँ, वह सत्य है क्या? हाँ। यदि सत्य है तो इन बेचारों पर करुणा किया करो। इनको घर में बोल दिया करो कि एक बूँद बिलछानी की जमीन पर धोके से गिर गई थी, उसका परिणाम दुर्गति हुई, आप तो बाल्टी-की-बाल्टी उड़ेल रहे हो। नल की टोंटी खोली और कितना पानी फैलाया? तुम्हारा सम्यक्त्व कहाँ गया? जब चर्या का सम्यक्त्व ही नहीं पल रहा है, तो परिणति का सम्यक्त्व कहाँ होगा? अब तो ऐसे-ऐसे यंत्र चले हैं कि छन्ने भी नहीं लग रहे हैं। डायरेक्ट वर्तन पर ही टोंटी खुल रही है, गरम पानी हो रहा है। महाराज! व्यवस्था है। बिल्कुल सही कह रहा हूँ। कहाँ

की? यदि ऐसा नहीं करूँगा, तो नरक की पूर्ति कैसे होगी? बुरा तो नहीं लग रहा? नहीं। लो, बुरा ही नहीं लग रहा, तो मैं इतनी देर से बोल क्यों रहा हूँ? कम-से-कम बुरा तो लगना ही चाहिये। घर में थैली भी टाँग दी, कह दिया कि जैनी की पहचान है। ज्ञानी! बिलछानी कब करोगे? तुम कहोगे महाराज जी! आज छोटे से विषय को लेकर बैठे हो।

मैं छोटा विषय लेकर नहीं बैठा हूँ। समझो मैं क्या कह रहा हूँ। यहाँ से ही तो तुम्हारा प्रारम्भ होगा। मैं चरणानुयोग सुनाता हूँ तो लोगों को पचता नहीं है। अब कहता है कि कैसे जिऊँ? गंदे हाथ को धोने के लिये टोंटी खोल ली, शुद्ध हो गये। कोटि-कोटि जीव तो वहीं मसल दिये, हाथ कहाँ से शुद्ध हो गये? कह रहा था, महाराज! हाथ धोकर आया हूँ, पैर छू लूँ? पैर मत छूना। इन हत्यारे हाथों से पैर छुयेगा तो क्या करेगा? बिना छने पानी से हाथ धो लिये, उनमें तो सारे जीव चले गये। भिलाई में मैं प्रवचन कर रहा था, मातायें आपस में बतियाने लग गईं कि इनके तो न कोई आगे, न पीछे। हम कैसे जियें? मैंने कहा, माँ! जिनवाणी जीने के लिये नहीं बताई जा रही है, जिनवाणी तो जीवन-मरण के अभाव के लिये बताई जा रही है। आज घर जाकर क्या करोगे? बचा भोजन करोगे? जरा भी जैनत्व होगा तो आज तो भोजन नहीं कर पाओगे। क्योंकि सब बाजार का मसाला मिला होगा, समुद्र का नमक पड़ा होगा, उसमें कोटि-कोटि जीव बन चुके हैं, कैसे भोजन करोगे? जैनी तो ऐसा भोजन करता नहीं। और बाजार का घी आया होगा, जिस जीव के दूध का घी बना होगा उसी जाति के सम्मूर्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उसमें पड़े होंगे। जो बाजार का घी खाता है, वह अपने को सम्यग्दृष्टि कहने की चेष्टा न करे। जिनवाणी में अठ-पहरे घी की बात है। यदि वो नहीं है और यदि तुम महाराजों को भी खिला रहे हो तो वह महादोष का कारण है।

साधुओं को सूखी रोटियाँ खिला देना, लेकिन दस दिन की मलाई निकाल करके वह घी उनको मत देना, क्योंकि वह माँसाहार हो जायेगा। मैं चरणानुयोग

भी कहूँ तो आप लोगों के चेहरे उतरने लगते हैं, तो मुझे दया आने लगती है, सो मैं शान्त हो जाता हूँ। सत्य तो यही है। जो है, सो है। बाजार का घी खाने वाला सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। चार महामद हैं मद्य, माँस, मधु, मक्खन महाविकार हैं, ऐसा वट्टकेर स्वामी ने 'मूलाचार' जी में लिखा है। मक्खन अभक्ष्य है। आज मक्खन खाने का बहुत प्रचलन हो चुका है। ये मत कहना कि जीऊँगा कैसे? आप तो ये पूछो-जीऊँ कैसे? खाना खाने लग गये, तुम्हारी संस्कृति ही विलीन हो गई। जैनी की भाषा मैंने तो आज तक दीपक बुझाते नहीं सुना, बढ़ाते सुना है।

मुमुक्षु! आपके घर में साग बनती है, कि छिलती-कटती है? बनती है। चलो यह भी अच्छी बात है कि कम-से-कम बन रही है। अहिंसक की भाषा भी अहिंसक होती है। उच्चकुलीन पुरुष कभी साग छीलता नहीं है, काटता नहीं है। बनाता है, सुधारता है।

संसार की भौतिकता में जैनत्व की सिद्धि नहीं होगी। कम-से -कम घरों में तो प्राचीन पद्धति चलना ही चाहिये। अंथऊ करते हो, कि व्यारू करते हो?

एक जीव दोपहर में भोजन करके कर्म की निर्जरा कर रहा है और दूसरा जीव दोपहर में भोजन करके कर्म का बंध कर रहा है, आपका नाम किसमें लिखा है? एक जीव इसलिये दोपहर में भोजन कर रहा है कि ऐसे समय भोजन कर लो तो दोनों टाइम का काम बन जायेगा, एक टाइम का भोजन बच जायेगा, एक का लक्ष्य ये है। दूसरे का लक्ष्य ये है कि दोपहर में कर लो, फिर रात्रि में करूँगा। एक लक्ष्य ये है, सबको देखने में आयेगा कि ये तो एक ही टाइम खाता है। बहुत सारे लक्ष्य हो सकते हैं। एक लक्ष्य ये है कि मैं व्यर्थ में अपने पेट को अशुद्ध स्थान बनाना नहीं चाहता हूँ। **महापुरुष दिन में एक बार भोजन करते हैं। योगी एक बार करते हैं, भोगी दो बार करते हैं, रोगी बार-बार करते हैं।** अब बताओ आप क्या हो? पानी भी भोजन है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा। जगत् पर अनुकम्पा न हो, कम-से-कम स्वयं पर ही अनुकम्पा कर लो।

आस्तिक्य, यह महान् गुण है। सात तत्त्व, पंचास्तिकाय जो जिनदेव ने कहे, वही ध्रुव सत्य है। देव, शास्त्र, गुरु सत्य है। आत्मा नाम की वस्तु है। जगत् के लोगों ने अपको नास्तिक बोल रखा है, परन्तु सच्चा नास्तिक तो वही है जो जैनियों को नास्तिक बोलता है। हम आत्मा की सत्ता को मानते हैं और आत्मा से परमात्मा बनना जानते हैं। परमात्मा के नाम पर पंथ में जीना कोई आस्तिकपना नहीं है। निज के पुरुषार्थ से निज को भगवान् बनाने की सामर्थ्य किसी में है तो जैनदर्शन में है। आस्तिक्य गुण अत्यन्त विशाल है। बिलखने का, रोने का कोई टेंशन नहीं है यदि आपके मित्र ऊपर जाने लग जायें तो। बस, जब तक संयोग था, सो अच्छे से रखो और जब जाने लग जायें तो अच्छे से भेजना, रोने की आवश्यकता नहीं है। आस्तिक्य गुण कह रहा है- अस्तित्त्व को समझो।

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं।

आत्मा त्रैकालिक है। यह परिवर्तनशील है, परिणमनशील है। पर्याय बदलेगी, लेकिन द्रव्य का नाश नहीं होगा, तो फिर रोने की क्या आवश्यकता? जो उसके साथ हुआ है, वही तो नियम से आपके साथ भी होना है, इसलिये रोने की क्या आवश्यकता? आने लगे तो आने दो, जाने लगे तो जाने दो। जानो, देखो, जाने दो। आ रहा है, उसे भी देखो। जा रहा है, उसे भी देखो, जाने दो। आप कर क्या सकते हो? रोकर भी अशुभ बंध करोगे, हँस कर भी अशुभ बंध करोगे। ज्ञानीजीव न हर्षित होता है, न विषाद करता है। बस, देखता है। प्रमेय बनाता है, ज्ञेय बनाता है। ज्ञान का विषय बनाता है। उत्कृष्ट साधना है हर विषय को ज्ञेय बनाकर देखना कि क्या हो रहा है? बालक को पीटने से नोट आ जायेंगे? नहीं। फिर पिता क्यों डाँट रहा था, क्यों पीट रहा था? पंचमकाल में लोगों की सर्वाधिक साधना यह चल रही है कि शुद्ध भोजन कर लो, पानी पी लो। अच्छी बात है, करना चाहिये। लेकिन परिणामों की शुद्धि पर कोई विचार नहीं चल रहा है। त्यागी-व्रतियों से, प्रतिमाधारियों से आज के युवा दूर क्यों होते जा रहे हैं? जबकि मैं ये मानता हूँ कि पंचमकाल में सर्वाधिक श्रद्धा है। विश्वास रखो आज

भी धर्म पर युवाओं को श्रद्धा है। वृद्धों से मेरा कहना है कि युवाओं को बदनाम करना बन्द कर दो।

आप परम्परा का निर्वाह कर रहे हो जबकि ये तो श्रद्धा से आते हैं। परन्तु श्रद्धा को दृढ़ करने वाला चाहिये। अब यहीं देख लो, साधु सामायिक कर रहे हैं, अपनी चर्या में लगे हैं, वहाँ आपको कोई नहीं दिखेगा। यहाँ लघुशंका भी जाओ तो बच्चे खड़े मिलते हैं, किसने सिखाया? ये सिखाये हुये नहीं हैं, ये हृदय से सीखे हुये हैं। इनको मार्गदर्शन चाहिये। मार्ग दिखानेवाला चाहिये, चलना इनके हाथ में है। आप जिधर ले जाना चाहो, ये चल देंगे। यह मत कहना कि पंचमकाल में धर्म नहीं है। पंचमकाल में धर्म कूट-कूट कर भरा हुआ है। पूर्ण आस्थायें हैं, पूर्ण विश्वास है। बस, सत्यता नजर आना चाहिये, वास्तविकता नजर आना चाहिये। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं-प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये चार गुण तेरे अन्तस् में उतर आये हैं तो समकित है। कब? 'समता सर्वभूतेषु' प्राणिमात्र के प्रति आपके अन्दर मैत्रीभाव आया। मैत्री आते ही परिणाम ऋजु हो जाते हैं। ऋजु परिणाम होंगे तो समकित भाव आयेगा। अब आप बैठोगे तो सामायिक में मन लगेगा।

जब भी सामायिक करने जाओ, कोई कहे कि मुझे आपसे काम है, तो कहना कि अभी मैं तेरे काम के लिये अकिञ्चित्कर हूँ। कैसे? जैसे वीर पुरुष, शीलवन्त पुरुष परनारी के लिये नपुंसक होता है, ऐसे ही सामायिक को जाते समय आप किसी के काम करने के लिये अकिञ्चित्कर हो जाना, मैं अभी कुछ करने लायक नहीं हूँ, क्योंकि मैं सामायिक करने जा रहा हूँ। अब मैं एक घण्टे एकान्त में बैठूँगा। उस समय वह विषय मन में आ गया, तो मेरी पूरी सामायिक भङ्ग हो जायेगी।

साधु का जीवन ही सामायिक है। श्रावक की तो तीन बार की सामायिक है। साधु का तो जीवन ही सामायिक है। जैसे आप सामायिक को जाते वक्त कहते हो कि अभी कुछ मत बताओ, मैं सामायिक करने जा रहा हूँ। ऐसे ही श्रमण

को कोई बताने आये तो कहना कि अभी मुझे कुछ मत बताओ, ये पर्याय मेरी सामायिक जीवन की है, अगली पर्याय में मिलूँगा, तो बात करूँगा। इस पर्याय में मैं आपसे कुछ नहीं कहना चाहता हूँ। **देह की रक्षा करने में जिनता पुरुषार्थ लगाते हो, उससे कोटि-कोटि पुरुषार्थ आपको परिणामों की रक्षा में लगाना चाहिये। जरा-सी चिंगारी दिख जाये तो अँगुली हटा लेते हो। जैसे अँगुली हटा लेते हो, वैसे ही आपको परिणाम कलुषित होते दिखें तो, तुरन्त ही परिणामों की रक्षा करो। मेरा विश्वास है कि जिसने अपने परिणामों की रक्षा का नियम ले लिया तो अन्य जीवों की रक्षा उससे नियम से होगी।** यही कारण है कि जगत् के जो अनेक-अनेक लोग हुये हैं, उनके इतिहास लिखे गये। किसी ने किसी की रक्षा की, किसी ने किसी की रक्षा की। किसी ने प्रश्न किया कि महावीर स्वामी के जीवन में तो ऐसी कोई घटना नहीं दिखती है कि उन्होंने किसी की रक्षा की हो, तब भी इतने अहिंसक कैसे? यही तो रहस्य है। तुम इतने पवित्र परिणामी नहीं थे, तुम्हारा इतना हीन भाव रहा कि तुम्हें तन से दूसरे की रक्षा करने जाना पड़ गया। वर्द्धमान इतने विशुद्ध परिणामी थे कि उनकी परिणति के प्रभाव से ही जगत् के जीवों में साम्यता छा गई, कोई जीव दु:खी हुआ ही नहीं, तो किसी की रक्षा करने जाना ही नहीं पड़ा।

आपकी जितनी विशुद्धि बढ़ेगी, उतना प्रभाव विशुद्ध हो जायेगा। ऐसे ही बैठे रहो, शक्ति का संचय करो। लोग देह बाँध कर रख भी दें, लेकिन मुख नहीं बंधते। जेल में भी लोग चिल्लाते मिलते हैं। पर हे वर्द्धमान! आपकी समवसरण सभा में तीन गति के जीव तो आते हैं, नारकी आ नहीं सकता। जन्मजात-विरोधी एकसाथ किस साँकल से बंधे थे? माँ! ये घर की व्यवस्था करना बन्द करो। जितनी व्यवस्था आप बना रहे हो, उतनी अव्यवस्था फैल रही है। शान्त होना सीखो। माँ! विश्वास रखो, व्यवस्था बन जायेगी। गजरथ पंचकल्याणक में लाखों लोगों की भीड़ लगती है, मैं तो बोल देता हूँ कि जितने वालेन्टियर हैं, सब साम्य हो जाओ, व्यवस्था करना बंद कर दो। नहीं तो लोग ऐसी व्यवस्था बनाते हैं कि

व्यवस्थापक ही एक दूसरे के हाथ-पैर तोड़ते हैं। उठा-उठा कर फेंकते हैं। कहते हैं कि हम व्यवस्था बना रहे हैं। काहे की व्यवस्था बना रहे हो? तीर्थंकर का महोत्सव है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म जैसा संचालक बैठा हो, उसके शासन में तुम ऐसा कैसे कर रहे हो? कुछ नहीं करना। सभी अपने आप में व्यवस्थित हो जाइये, अब कौन किसके लिये व्यवस्था बनायेगा? यहाँ कौन-सा बालेन्टियर आपको चुप किये है। यदि किसी को खड़ा कर दो तो वह जरूर हल्ला करेगा। इसलिये कुछ नहीं, व्यवस्थित हो जाओ तो व्यवस्था बन जायेगी। यह सूत्र जीवन में याद कर लेना।

व्यवस्था बनाना भूल जाओ, व्यवस्थित होना सीख जाओ, तो व्यवस्था बनी ही है। व्यवस्था अनवस्थित लोगों के लिये बनाई जाती है। व्यवस्थित के लिये क्या व्यवस्था? धन्य हो भद्रवाहु स्वामी महाराज को। नमस्कार कर लो अंतिम श्रुतकेवली को। हे प्रभो! चौबीस हजार योगियों का संचालन आपके हाथ में था, पर सत्यता यह है कि वे आत्मानुशासन में जीते थे, सो उनके अनुशासन में पूरे यति जीते थे। जिसके पास आत्मानुशासन नहीं है, वह जगत् में किसी पर अनुशासन कर नहीं सकता है। चौबीस हजार मुनि जहाँ से निकलते होंगे, कैसा दृश्य होता होगा? (कहीं बारह हजार का उल्लेख है, कहीं चौबीस हजार का उल्लेख है।) पूरा नगर मुनिमय होता होगा। वे भव्य जीव धन्य हैं जिनको ऐसे योगियों के दर्शन करने का अवसर मिला हो। व्यवस्थित रहे, उन्होंने व्यवस्था नहीं की। जितने अधिक व्यवस्थित रहोगे, अंतिम श्वास उतनी व्यवस्थित निकलेगी। आज से व्यवस्थित होना प्रारम्भ कर दो, व्यवस्थाओं से अपने आप को दूर कर दो, तो अंतिम श्वास व्यवस्थित निकलेगी।

आचार्य भगवन्त भी अपने आप को संघ की व्यवस्थाओं से दूर कर लेते हैं कि मुझे अपनी श्वास व्यवस्थित निकालना है। आचार्य पद तक छोड़ देते हैं। अंतिम श्वास व्यवस्थित निकालना है तो परिवार (पर्याय) की व्यवस्थाओं से अपने आपको दूर करना प्रारम्भ कर दो। पर्याय की रक्षा के लिये दुनियाँ खड़ी

मिल जायेगी। नाती, पोते, सब हाथ पैर दबाने आ जायेंगे। परन्तु परिणामों की रक्षा के लिये एक भी मिलने वाले नहीं हैं। परिणामों की रक्षा परिवार नहीं करायेगा, परिणामों की रक्षा करना है तो निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में पहुँच जाना। निर्ग्रन्थ तपोधन इन्द्रियों की विजय करने में तो शूर हैं, कर्मबन्ध में डरने वाले हैं और तत्त्वार्थ के चिन्तन करने में जिनका चित्त लगा है।

कायोत्सर्गपूर्वक णमोकार पढ़ो। लोगों ने यह समझ लिया है कि नौ बार णमोकार पढ़ना कायोत्सर्ग है। ज्ञानी! कायोत्सर्गपूर्वक णमोकार पढ़ो यानि शरीर का उत्सर्ग कर दो, शरीर का ममत्व छोड़ दो, अब नौ बार णमोकार पढ़ो। अब दोनों का एकसाथ/युगपद् उपचार हो जाता है, सो अपन कहते हैं कायोत्सर्ग। यथार्थ कायोत्सर्ग वही है कि शरीर से ममत्व छोड़ दो। अब चाहे साँप घूमे, चाहे चींटी काटे, चाहे मच्छर काटे, करो कायोत्सर्ग। ऐसे ही साधना का क्षेत्र है। कहीं स्वप्न में भी मुनि बनने के भाव आ रहे हों तो उपाधियों से दूर रहना। ये तो प्रशंसक हैं। अपनी प्रशंसा तू तब मानना जब तू स्वयं अपनी साधना में सन्तुष्ट हो। तब मानना कि मैं सन्त हूँ। ये लोग मेरी कितनी भी प्रशंसा करें, लेकिन एक भी सत्य नहीं है। सत्यता वह है- जब तेरा हृदय कह दे कि तुम सत्य हो। मेरे बारे में आप कुछ नहीं जानते हो। आप तो मात्र पर्याय तक के धर्मात्मा को देखते हो। परिणामों का धर्मात्मा मुझे मालूम है कि मैं अपने आप में सन्तुष्ट हूँ। बस, जो है, सो है। लोक की प्रशंसा भी सत्य नहीं है, लोक की निन्दा भी सत्य नहीं है। जिससे तेरा स्वार्थ बनेगा, तू उसकी प्रशंसा कर देगा और जिससे नहीं बनेगा, उसकी तू निन्दा कर देगा। अपनी हानि देखेगा तो उसकी निंदा करेगा, उत्कर्ष देखेगा तो उसकी प्रशंसा करेगा यह लोक सत्य नहीं है। आत्मलोक का अवलोकन करो। निर्ग्रन्थ मुनि बनकर जीना चाहते हो तो पर को देखना बन्द करना पड़ेगा। वे अपने शरीर के प्रति भी निष्पृह हैं, जगत् की उपाधियाँ व्याधियाँ छोड़िये। परीषह जीतने में जो महान् समर्थ हैं और कषायों को जीतने में समर्थ हैं, कषायों के विजय में शूर हैं, वही दिगम्बर तपाधन शूर हैं।

ज्ञानियो! जो तरुणियों के कटाक्ष रूपी बाणों से नहीं बिंधते हैं, वे ही शूर 'शूर' हैं रणाङ्गन में लड़ने वाले कोई शूर 'शूर' नहीं हैं। ऐसे योगी की व्याख्या यहाँ पर है।

माताओ! आज से पानी छान कर पीना बिलछानी की रक्षा करते हुये।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परमपद को प्राप्त करनेवाले"

संसारध्वंसिनीं चर्यां, ये कुर्वन्ति सदा नराः।
रागद्वेषहतिं कृत्वा, ते यान्ति परमं पदम्॥ 216॥

अन्वयार्थ - ये नराः = जो मनुष्य **सदा** = हमेशा **संसारध्वंसिनीं चर्यां कुर्वंति** = संसार को नाश करने के लिए आचरण पालते हैं, **रागद्वेषहतिं कृत्वा** = राग-द्वेष को नाश करके **ते** = वे **परमं पदम् यान्ति** =परमपद को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - जो मानव निरन्तर संसार-नाशक क्रिया करते हैं और चारित्र का पालन करते हैं, वे राग-द्वेष का नाश कर परमपद को प्राप्त करते हैं।

"ज्ञानाभ्यास का पात्र"

मलैस्तु रहिता धीराः, मलदिग्ध्वाङ्गयष्टयः।
सद्ब्रह्मचारिणो नित्यं, ज्ञानाभ्यासं सिषेविरे॥ 217॥

अन्वयार्थ - मलैस्तु रहिताः = जो रागादि मलों से रहित हो जाते हैं, **मलदिग्ध्वाङ्गयष्टयः** = परन्तु स्नानादि के त्याग से शरीर के अंग-उपांग मल से लिप्त दिखाई देते हैं, तथापि **सद्ब्रह्मचारिणः** = सच्चे ब्रह्मचारी होते हैं, ऐसे योगी ही, **नित्यं ज्ञानाभ्यासं सिषेविरे** = सदा ज्ञान का अभ्यास करते रहते हैं।

भावार्थ - मल से व्याप्त शरीर वाले होते हुए भी जो रागद्वेष मिथ्यात्व आदि विभाव रूपी मैल से रहित हैं और सदा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, ऐसे योगी ही सदा ज्ञानाभ्यास करते रहते हैं।

॥ सद्-देशना॥

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन। जयवंत हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन्, वीतराग श्रमण-संस्कृति। मनीषियो! हम सभी अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी परम दशा की प्राप्ति का बहुत गहरा उपदेश दे रहे हैं। समरसी भाव पर दृष्टि है तो समरसता लाओ। यदि रसवन्ती में रस है, तो सारे लोग उसकी ओर निहारते हैं। जलेबी में रस है तो आपकी जिह्वा से भी रस टपकने लगता है। रसवन्ती (जलेबी) देखकर व्यक्ति का मन उस ओर जाने लगता है। आचार्य कह रहे हैं कि जैसे एक जड़ जलेबी आपके चित्त को चुराने की सामर्थ्य रखती है, तो आपका पवित्र रसवान् जीवन, सरसता का जीवन, वात्सल्य का जीवन, संवेग का जीवन प्राणिमात्र को आकर्षित कर लेता है। शुष्क वृक्ष के ऊपर तोता भी नहीं बैठता। वृक्ष हरा है, फलों से लदा है, तो पक्षी भी जाकर बैठ जाते हैं।

मित्रो! जीवन में सूखा वृक्ष बनने का भाव मत करना। धन सूख जाये, तन सूख जाये, भूमि सूख जाये, इसका विकल्प मत करना; लेकिन भावों की मृदुलता न सूखने पाये, इसका ध्यान रखना। धर्मात्मा के प्रति आपका अनुराग न सूखने पाये। तन को हरा-भरा रख नहीं सकते हो।धन हरा बना रहे, कोई नियत नहीं है; क्योंकि वह पुण्य पर आलम्बित है। तन आयुकर्म पर अवलम्बित है। धन व धरती पुण्य पर अवलम्बित है, लेकिन भावों की विशुद्धि स्वाधीन है। तन के राग में अशुभ भाव ला सकते हो, मित्रों आदि के निमित्त से शुभ-अशुभ भाव ला सकते हो, लेकिन ये सब अशाश्वत् हैं, विनाशीक हैं। धन और तन से अपनी पहचान बनाने वाले बहुत हैं, लेकिन वात्सल्य अंग से पहचान बनाने वाले बहुत कम हैं। बछड़ा गाय के नीचे आता है, वह धन से नहीं आता, तन से नहीं आता, वह माँ के वात्सल्य से आता है। हे गाय! तुझे अपने बछड़े से कुछ भी नहीं चाहिये। कवियों ने मनुष्य के बेटे का नाम नहीं लिया। पण्डित दौलत राम जी ने छहढाला में यों लिखा है- 'धर्मी सों गौ-वच्छ प्रीति सम।' आपका नाम क्यों नहीं लिया? उनको मालूम है कि नारी की प्रीति स्वार्थ से पूर्ण है। मनुष्यनी के मन में भाव होता है कि बेटा बड़ा होकर कुछ करेगा, काम में आयेगा, लेकिन ज्ञात है कि बड़ा होने पर चला जायेगा। निस्वार्थ दृष्टि, अन्तरङ्ग

की प्रीति, शल्य रहित प्रेम है, उसका नाम वात्सल्य है। जिसमें माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य गूँज रहे हैं, वहाँ प्रेम हो सकता है, स्नेह हो सकता है, राग हो सकता है, लेकिन वात्सल्य नहीं होता। प्रीति में, प्रेम में, स्नेह में सर्वत्र राग भाव है। वात्सल्य में धर्मभाव है।

जैसे वायु शल्यरहित विचरण करती है, ऐसे ही वायु के समान जो धर्ममय प्रीति है, उसका नाम वात्सल्य है। जिस व्यक्ति को स्वयं पर वात्सल्य नहीं, वह किसी दूसरे धर्मात्मा पर वात्सल्य नहीं कर सकता। निज गुणों पर वात्सल्य होना चाहिये। निज गुणों पर वात्सल्य होगा तो पर गुणों में वात्सल्य हो पायेगा। शीतल होने की आवश्यकता है, ठण्डे होने की आवश्यकता है। गर्मी में कोई निर्णय नहीं होता। यदि मस्तिष्क गर्म है, कोई चिन्ता सता रही है, तो कोई पाठ याद नहीं होगा। तुम्हारे गुरु पढ़ाते रहेंगे, वे बोलते रहेंगे, लेकिन तुम्हारे मस्तिष्क में कुछ नहीं जायेगा। यदि तुम्हें किसी से लड़ना भी हो तो जब बड़े ठण्डे होकर लड़ने जायेगा तो लड़ाई होगी क्या? फिर तो प्रेम बढ़ेगा, वात्सल्य उमड़ेगा। जब भी किसी से आपके लड़ने के परिणाम हों, तो पहले ये खोजना कि ये कोई धर्मात्मा तो नहीं है। तू धर्मात्मा खोजने चला जायेगा तो तेरे भीतर धर्म आ जायेगा और जब धर्म आ जायेगा, तो लड़ने क्यों जायेगा?

जब-जब आदमी किसी से लड़ने जाता है, तो वह धर्मशून्य हो जाता है। बिना उन्मत्त हुये अशुभ हो ही नहीं सकता। आज तक किसी भइया ने अपने भइया को गाली नहीं दी। यद्यपि आप मेरे से नहीं कह पा रहे हो, पर आपका मन कह रहा है कि महाराज! कल ही तो सुन कर आया हूँ अपने भैया की गाली। आप बोल रहे हो कि गाली नहीं दी। ज्ञानी! यही तो जिनवाणी का रहस्य है। आप भइया की बात कर रहे हो, मैं तो कह सकता हूँ कि आज तक शत्रु ने भी शत्रु को गाली नहीं दी। जब कायोत्सर्गपूर्वक णमोकार पढ़ सकते हो, तो यह भी समझ में आना चाहिये- यह ही सत्य है कि किसी शत्रु ने भी शत्रु को गाली नहीं दी। घी से अँगुली जलती है क्या? आगरा में घी का घड़ा है क्या? धन्य

हो उस मिट्टी को, जो घी का घड़ा बना रही हो या उस घी को धन्य हो जो घड़ा बना रहा है।

अमृतचन्द्र स्वामी 'अध्यात्म अमृत कलश' में लिख रहे हैं-

घृत कुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत्।
जीवो वर्णादिमज्जीवजल्पनेऽपि न तन्मयः॥ भ.भ.क.40॥

लगता है कुन्दकुन्द स्वामी यदि 'समयसार' न लिखते, तो आज ये भूमि सत्यार्थ/भूतार्थ विद्या से विमुख रहती और अमृतचन्द स्वामी 'आत्मख्याति' टीका न लिखते तो हम कुन्दकुन्द के रहस्य से अनभिज्ञ रहते।

जब मैं यह कह रहा हूँ कि शत्रु ने शत्रु को गाली नहीं दी, तो भइया गाली कैसे दे सकता है? बेटा! घी का घड़ा बनता है क्या? नहीं। लेकिन कल माँ कह रही थी कि घी के घड़े से घी निकाल कर लाओ। बेटा निकाल कर भी ले गया। यह आधार में आधेय का उपचार है, कारण में कार्य का उपचार है। घृत में घट नहीं है, पर घट में घृत है। घृत का घट बनता नहीं है। घड़ा मिट्टी का है, पर व्यवहार से कहा जा रहा है-घृत का घट। ऐसे ही एक माँ बेटा से कह रही है बेटा! दूर रहना, जल जायेगा। किससे? यदि घी से जलते हैं, तो घी तो जिह्वा पर भी रख लेते हैं, लेकिन जीभ नहीं जली। घी तो आप खाते हो, लेकिन आज तक मुख नहीं जला। एक बालक रोते-रोते चला आ रहा था, 'मेरे हाथ जल गये', किससे? घी से। यह भी बात सत्य है। आज तक आपने घी से हाथ जलते देखे क्या? घी से हाथ नहीं जलते। ध्यान दो, विषय चल रहा है भैया ने भैया को गाली नहीं दी। यदि भैया भैया को गाली देते दिख जाये, तो ठण्डे हो जाना। भाई भाई को गाली नहीं देता, यदि इतना नहीं समझ पाये, तो चार अनुयोगों का अध्ययन कोई कार्यकारी नहीं। जिनवाणी पढ़ने का सार मात्र इतना ही है- इसे पहचानो। भाई ने भाई को गाली दी है क्या? घृत ने अंगुली जलाई है क्या? पर घृत के द्वारा अँगुली जलते तो देखी गई है। यह घृत अग्नि के सम्पर्क में नहीं आता, अग्नि के सहचर न होता, अग्नि पर न तपता,

तो क्या किसी की अँगुली जलती? अँगुली जली अवश्य है, पर घी से नहीं जली। यह अग्नि की सोपाधिक दशा है। यदि घृत अग्नि के सम्पर्क में नहीं आता, अग्नि के सहचर न होता, अग्नि पर न तपता, तो क्या किसी की अँगुली जला सकता था? उपचार से कथन कर रहे हो कि घी से अँगुली जल गई। पर सत्यता क्या है? अग्नि के संयोग से घी में उष्णता आयी है।

ज्ञानी! साधु का नेत्र आगम होता है। जिसने कानों सुनी और आँखों देखी का निर्णय कर लिया, वह मोक्षमार्ग में चल नहीं सकता। कानों से सुना और आँखों का देखा सत्य नहीं होता। सत्य तो मात्र अरहन्त की देशना है। जो तुम आँखों से देख रहो हो, वह सत्य है ही नहीं। आपकी आँखों पर चश्मा है। सबके नम्बर अलग अलग हैं तो सभी अलग-अलग प्रकार से देखोगे। सभी कहेंगे-जो मैंने देखा, सो सत्य है। लेकिन वास्तव में तीनों सत्य नहीं है। तुम अपने नम्बर से देख सकते हो, लेकिन वस्तु किसी नम्बर की नहीं है, वस्तु अपने स्वभाव की है। जो है, सो है। इसलिये तुम्हारा देखना सत्य नहीं है। जो जिनदेव ने कहा, वह सत्य है। जिस दिन तुम जगत् की सुनी और जगत् की देखी मान लोगे उसी दिन तुम सम्यक्त्व से दूर हो जाओगे।

पंचम काल में सम्यग्दर्शन की रक्षा करना है तो जिनवाणी में जो कहा है मात्र इस पर श्रद्धान रखना। जो जिनवाणी में नहीं कहा, उस पर श्रद्धा का विषय मत ले जाओ। जिनवाणी वह है, जो हमारे पूर्वाचार्यों ने कही है। कागज-कलम है तो हर व्यक्ति जिनवाणी लिखने बैठ जायेगा। हमारे यहाँ तीन ही कर्ता हैं, तीन ही वक्ता हैं। मूलवक्ता-सर्वज्ञदेव, उत्तरवक्ता गणधरदेव, प्रत्युत्तर ग्रन्थकर्ता आचार्य देव। हमारे यहाँ तो वन्दना-पूजन भी होती है तो पूर्वाचार्यानुक्रमेण। जैसी पूर्व-आचार्य की परम्परा से प्राप्त है, मैं तो उसे ही मानता हूँ। वर्तमान की सोच 'सोच' तो हो सकती है, परन्तु 'शौच' नहीं है। हमारे पूर्वाचार्य छद्मस्थ अवश्य थे, परन्तु आज-जैसे नहीं थे।

ज्ञानी! बुद्धि में ह्रास हुआ है। यह कार्य है, कारण नहीं है। मित्रो! बुद्धि में ह्रास क्यों हुआ है? विशुद्धि में ह्रास हुआ है। बुद्धि से बुद्धि नहीं बढ़ती। बुद्धि से ज्ञान नहीं बढ़ता, विशुद्धि से ज्ञान बढ़ता है। जितनी प्रकृष्ट विशुद्धि होगी, उतना ज्ञान विशुद्ध होगा। इस काल में अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञान क्यों नहीं होता? 500 या 1000 वर्ष में किसी एकाध योगी को होगा। लेकिन सामान्य रूप से क्यों नहीं होता? सर्वावधि, परमावधि तो होता ही नहीं है। क्योंकि बुद्धि की प्रकर्षता से विशुद्धि बनती है और विशुद्धि की प्रकर्षता से ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है। अध्ययन तो करना, लेकिन चौबीस घण्टे आँखों से पुस्तक लगाये मत बैठे रहना। भावों को अच्छा रखना। जैसे-जैसे तुम्हारे परिणाम अच्छे होंगे, उतनी जल्दी विषय तैयार होगा।

ज्ञानियो! खाली छोड़ना सीखो और खाली होना सीखो। विशुद्धि बढ़ाओ विशुद्धि पराधीन नहीं है, स्वाधीन है। विशुद्धि क्यों नहीं हो रही है? क्योंकि हमने भाई के द्वारा गाली स्वीकार कर ली है, जबकि भाई ने गाली नहीं दी, गाली तो उसकी कषाय की सोपाधिक दशा थी। यही समझ में आ जाये तो भाई ठण्डा हो जायेगा, वही क्षमा माँगेगा। वैदिक दर्शन में आता है कि एक स्थान से राम लक्ष्मण सीता गुजर रहे थे, जहाँ लक्ष्मण ने राम के लिये अपूज्य शब्द प्रयोग किये, तो सीता कहने लगी, 'स्वामी! इतना सबकुछ बोलते जा रहे हैं, आप कुछ क्यों नहीं बोलते हो? हम जैनियों के पास कितने रहस्य थे। हम लोग चौके में आहार लेने जाते हैं और भोगी किचिन में जाता है। किचिन में जायेगा तो क्या करेगा? जहाँ भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक नहीं है, अशुद्धि की किच-किच पड़ी हो, किचिन में उसके परिणाम क्या रहेंगे? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चार की जहाँ शुद्धि है, उसका नाम चौका है।

ज्ञानियो! गवेषणा करो कि-कितने प्रकार से लोग मूल तत्त्वों में भ्रमित हो रहे हैं। ज्ञानी भाई को गाली देता रहा, तूने मुझे गाली दी, सत्यता कोई समझा नहीं। भाई ने किसी को गाली नहीं दी। तुम वर्तमान के मुख की अवस्था को

देख रहे हो। सोपाधिक दशा को देखो। जैसे घी को नहीं फेंकते हो, वैसे भाई को मत फेंको। वही घी ठण्डा होने पर स्वाद देता है, ऐसे ही भैया ठण्डा हो जायेगा तो वही तुमको साथ देगा।

सीता तो गर्म हो गई। राम का नाम मर्यादापुरुषोत्तम ऐसे-ही नहीं हो गया। कुछ-न-कुछ तो विशेषता रही होगी। रविषेण स्वामी ने इतना महान् ग्रन्थ लिखा है।

जैन परम्परा में दिगम्बरों के पास पवित्र, निर्मल, विशद, सबसे प्राचीन यदि कोई पुराण है, तो वह 'पद्मपुराण' है। पद्मपुराण पढ़ते-पढ़ते अनेक बार आँखें डबडबा जाती हैं, कण्ठ रुँध जाता है।

सीता कहती है, 'स्वामी! कुछ तो बोलो।' राम बोले- 'क्या बोलूँ? सीता! थोड़ा धैर्य रखो। यहाँ की मिट्टी उठा लो और साड़ी के पल्लू में बाँध लो। चलो, आगे चलते हैं।' जैसे ही क्षेत्र बदला, लक्ष्मण चरणों में गिर पड़े, भैया! क्षमा कर दो। मैंने इतना सबकुछ बोल दिया, आपने कुछ भी नहीं कहा।' राम सीता से कहते हैं, 'देखो, क्या हुआ?' समयसार में जीना है तो समय दे दो।

हे मुमुक्षु! परम पद को प्राप्त करना है तो राग-द्वेष से दूर होना ही पड़ेगा। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं-

संसारध्वंसिनीं चर्यां, ये कुर्वन्ति सदा नराः।
रागद्वेषहतिं कृत्वा, ते यान्ति परमं पदम्॥ (सा.स.)

हे भव्य! जो मानव निरन्तर संसार-नाशक कुशल क्रियाओं को करने में अनुरक्त रहते हैं तथा चारित्र का पालन करते हैं, वे राग-द्वेष का नाश करके परम पद को प्राप्त करते हैं।

ज्ञानी! भूत में चला जायेगा तो युवावस्था दिखने लगेगी। समझ में आ जायेगा कि इसकी गलती नहीं है, युवावस्था की आँधी है। भविष्य में जायेगा तो इसका बूढ़ापन दिख जायेगा। चिन्ता मत करना। बेटा! तू देदे धक्का। सबके दिन एक-से

नहीं होते। तुझे भी ऐसा देखना पड़ेगा। ज्ञानीजीव हर बात को ज्ञान से निहारता है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में कह रहे हैं-

मलैस्तु रहिताः धीराः, मलदिग्ध्वाङ्गयष्टयः।
सद्ब्रह्मचारिणो नित्यं, ज्ञानाभ्यासं सिषेविरे।। 217।।

मल से व्याप्त शरीर वाले होते हुए भी जो राग-द्वेष, मिथ्यात्वादि विभाव रूपी मैल से रहित हैं और सदा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, ऐसे योगी ही सदा ज्ञानाभ्यास करते रहते हैं।

ज्ञानियो! ज्ञानाभ्यास ही श्रेष्ठ है। पंचमकाल में अपने मन को भटकने से बचाना चाहते हो तो शास्त्र-स्वाध्याय में अपने को लगाये रखो। जितना श्रेष्ठ ज्ञान होगा, उतना श्रेष्ठ ध्यान होगा।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"आत्महित की प्राप्ति"

ज्ञानभावनया सिक्ता, निभृतेनान्तरात्मनः।
अप्रमत्तं गुणं प्राप्य, लभन्ते हितमात्मनः॥ 218॥

अन्वयार्थ - अन्तरात्मनः = सम्यग्दृष्टि महात्मा साधु **ज्ञानभावनया सिक्ता** = आत्मज्ञान की भावना से सींचे हुए एवं **निभृतेन** = दृढ़ता रखते हुए **अप्रमत्तं गुणं प्राप्य** = अप्रमत्त गुणस्थानों में चढ़कर, **आत्मनः हितं** = अपने हित को **लभन्ते** = प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - अत्यन्त ज्ञान-भावना से सिक्त सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त कर अपनी आत्मा का हित करते हैं।

॥ सद्-देशना॥

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण-संस्कृति। मनीषियो! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्य प्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में सतत् ज्ञानाभ्यास का उपदेश देते हुये ज्ञानी की पात्रता का व्याख्यान कर रहे हैं।

अमृतचन्द्र स्वामी की दृष्टि में अरहन्त देशना को सुनाने का पात्र, व्याख्यान करने का पात्र तो बहुत ऊँचा है, **प्रवचन सुनने का पात्र/अधिकारी वह है जिसने अष्ट मूल-गुणों को धारण किया है। जो अभक्ष्य आदि का त्यागी है, वही जीव जिनप्रवचन सुनने का अधिकारी है। जो अष्ट मूलगुण से शून्य है, उस व्यक्ति को तो यहाँ प्रवचन सुनने का पात्र ही नहीं कहा। बर्तन साफ है, तो दुग्ध स्वच्छ रहेगा। बर्तन स्वच्छ न होने से आपका स्वच्छ दूध भी विकृत हो जायेगा। पुराने पात्र में यदि दूध भर दोगे, कड़वी तुमड़ी में दूध भरोगे तो तुम्हारा दूध कड़वा हो जायेगा। ऐसे ही जिस जीव का अन्तःकरण दूषित है, उस व्यक्ति के अंतरङ्ग में अरहन्त की देशना पुष्कल फल को प्राप्त नहीं हो सकती है।**

कुन्दकुन्द स्वामी ने जब तत्त्व व्याख्या प्रारम्भ की, तो सबसे पहले कहा—**'दंसणमूलो धम्मो'** धर्म का मूल दर्शन है। सम्यक्त्व की दृष्टि, सम्यक्त्व का आचरण और सम्यक्त्व का चरण इन तीन शब्दों पर ध्यान रखना। सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि देखो—जैसे यमुना का पानी किसी जीव में भेद नहीं करता है। चींटी भी यमुना के पानी को पीती देखी जाती है। यमुना के पानी को सुअर भी पीकर आता है, आप अपने आप को पवित्र मानते हो, उस पानी का पान आप भी कर लेते हो। वायु, पानी, धूप, जिनवाणी ये किसी में भेद नहीं करते हैं। यदि ये भेद करने लग गये, तो जगत् के जीवों का जीना मुश्किल हो जायेगा। पर्यायदृष्टि से पर्याय में भेद दिखा देते हैं, परन्तु करुणा दृष्टि में कोई भेद नहीं होता है। 'मैत्री' शब्द में कोई भेद नहीं है। नगर, देश, प्रान्त, भाषा आदि में कोई भेद नहीं करता है, उसका नाम 'मैत्री' है। **सत्त्वेषु मैत्रीं।** सत्त्व यानि प्राणी। यहाँ यह भेद नहीं किया कि कौन-से प्राणी पर मैत्री रखना। प्रमोद में भेद है, अनुकम्पा में भेद है, लेकिन मैत्री में कोई भेद नहीं है। आगम को बहुत गहरे समझने के पूर्व यदि 'सत्त्वेषु मैत्रीं' को समझ लिया तो सम्पूर्ण आगम के सार को समझ लिया। विद्वानों की भूल चल रही है। हम करुणा करने पहुँच जाते हैं, हम मध्यस्थ होना सीख लिये हैं, लेकिन मैत्रीभाव नहीं है तो तुम्हारे पास कुछ नहीं है। सत्त्वेषु मैत्रीं यानि प्राणिमात्र के लिये मैत्रीभाव है। **किसी जीव को मेरे निमित्त से पीड़ा न हो, इसका नाम मैत्री है। किसी को अभक्ष्य खिला देना मैत्री नहीं है। किसी की थाली में बैठकर भोजन कर लेना मैत्री नहीं है।** जगत् के प्राणिमात्र को किसी प्रकार की पीड़ा न हो, उसका नाम मैत्रीभाव है।

ज्ञानी! जिसको मैत्रीभाव समझ में आ गया है, वह कभी अभक्ष्य सेवन कर ही नहीं सकता। क्यों? मेरे मित्र! जिस आलू को तू सेवन करने गया था, उसमें सत्त्व थे कि नहीं? प्राणी थे कि नहीं? तेरी तो जगत् के प्राणिमात्र से मैत्री है। मैं आपसे महाव्रतों की बात नहीं कर रहा, मैं आपसे अणुव्रतों की बात न कर रहा, आप तो मात्र इतना नियम ले लो कि मैं जगत् के प्राणिमात्र से मैत्री करूँगा।

जब तू मैत्रीभाव रखेगा, तो आलू के अन्दर जो जीव हैं, उनसे मैत्रीभाव रखेगा कि नहीं? मैत्री का अर्थ हाथ मिलाना नहीं है। हाथ मिलाने में तो और जीवों को मार दोगे। कण्ठ लगना नहीं है। वहाँ तो एक दूसरे के पसीने के जीव मर जायेंगे।

हे ज्ञानी! निज के द्वारा पर प्राणियों को पीड़ा न हो, इसका अर्थ मैत्री है। 'सर्वार्थ-सिद्धि'-कार पूज्यपाद स्वामी ने यह 'मैत्री' की परिभाषा लिखी है। आलू खायेगा तो जीवों को कष्ट होगा। जिसने नियम लिया है प्राणिमात्र पर मैत्री रखूँगा, वह आलू नहीं खायेगा। जब प्राणिमात्र से मेरी मैत्री है, अब यहाँ कहना चाहिये- जिसको मैत्रीभाव नहीं है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। जिसके अन्दर मैत्रीभाव नहीं, वह सम्यग्दृष्टि कैसा? 'मेरी-भावना'-कार ने जो लिखा है, वह मेरी-भावना-कार की पंक्तियाँ नहीं हैं, ये आगम ग्रन्थों का पद्यानुवाद है। ध्यान दो- तुम लोग भविष्य के विद्वान् हो। तुम्हारी व्याख्या शब्दों की न हो, भावात्मक व्याख्या हो। आज शब्दों की व्याख्या उच्च हो रही है, लेकिन भाव शून्य है। ताली बज जाती है, लेकिन परिणामों में विशुद्धि नहीं आ रही है।

उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थसूत्र' के छः अध्याय लिख लिये, इसके बाद लिख रहे हैं— **" मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक क्लिश्यमाना विनयेषु"** इस सूत्र के अभाव में न महाव्रतों का पालन हो सकता है, न अणुव्रतों का पालन हो सकता है, न सम्यग्दर्शन का आगमन हो सकता है।

जीभ के किसी भी अंश पर मिश्री रख लेने से मीठा स्वाद नहीं आता। हमारी जिह्वा पर भी अलग-अलग कोशिकायें हैं, तन्तु हैं। नमक का स्वाद लेने का स्थान भिन्न है, मीठे का स्वाद लेने का स्थान भिन्न है। यदि कड़वी औषधि होती है तो आप कहते हो बेटा! भीतर रख लो, क्योंकि वहाँ स्वाद का स्थान नहीं है। सम्पूर्ण जिह्वा के ऊपर हर पदार्थ का स्वाद नहीं आता। जहाँ जो तन्तु है, वहीं स्वाद आयेगा। ऐसे ही ध्यान रखना, धर्म का स्वाद सम्पूर्ण क्रियाओं में नहीं होता, धर्म का स्वाद सम्पूर्ण अनुभूतियों में नहीं होता, धर्म का स्वाद मात्र

संवेदनशीलता में होता है। उमास्वामी महाराज ने गहनतम सूत्र लिखा। पताञ्जलियोग-कर्ता ने इस सूत्र का ज्यों-का-त्यों विवेचन किया। अष्टाङ्ग योग में प्रत्याहार आदि पाँच महाव्रतों की व्याख्या है, उनमें सबसे पहला सूत्र 'मैत्री' ही है।

गाय को आपने पीट दिया, कुपित कर दिया, दाना नहीं दिया, तो उसका दूध सूख जायेगा। किसान जब दूध लगाने जाता है तो पहले दाना डाल देता है, ताकि वह खाना प्रारम्भ कर दे, जिससे जब प्रसन्नचित्त हो जायेगी, हार्मोन्स बदलेंगे, पलायेगा और फिर दूध निकालना प्रारम्भ कर देगा। बच्चा होता है तो उसको सामने खड़ा कर देता है, माँ अपने बच्चे को दुलार करती है। बच्चे के दुलार से दूध निकलता है। बच्चे को पर्याप्त दूध भी दो और भोजन भी दो। किञ्चित् भी अहिंसक हो तो, जिस गाय-भैंस को इंजेक्सन लग रहा है, उसका दूध पीना बन्द कर दो। साधुओं को तो ये सब करना नहीं है। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, ज्ञानी! काहे की शुद्धि? इंजेक्शन से आया दूध तीव्र पीड़ित करके निकाला जाता है। जो बच्चे को सामने रख कर आया है, वह दुलार का दूध है। ज्यादा खिला कर निकाल रहे हो, अप्रसन्नचित्त करके निकाल रहे हो। एक तिर्यञ्च प्राणी को यदि आपने अप्रसन्न कर दिया तो उसके परिणाम बदल जाते हैं, उसके हार्मोन्स बदल जाते हैं, उनके थनों का दूध सूखने लगता है।

मेरे मित्र! संवेदनाशून्य भाषण, संवेदनाशून्य बातें, संवेदनाशून्य चर्चायें आपके भीतर की संवेदना को नष्ट करने वाली वस्तु है। व्याख्यान में सबसे पहले 'सत्त्वेषु मैत्रीं' दृष्टि आनी चाहिये। हम प्राणिमात्र पर मैत्री रख सकते हैं क्या? यदि प्राणिमात्र पर मैत्री की दृष्टि है, तो नल की टोंटी में डायरेक्ट पानी पीने नहीं जा पायेगा, क्योंकि उसके भीतर भी जीव हैं। आप कितना आचरण कर सकते हो, यह तो आपका विषय है, परन्तु व्याख्यान तो सम्पूर्ण सर्वाङ्गीण होना चाहिए, जो चिंतन में आना चाहिये। अभी तो 'सत्त्वेषु मैत्रीं' पर ही तुम्हारी दृष्टि नहीं है। यदि आपकी दृष्टि में 'सत्वेषु मैत्रीं' आ गया है, तो मेरे मित्र! पानी की बूँद-बूँद में कोटि-कोटि

जीव हैं। वैज्ञानिकों की गणना भिन्न कर दो, जैनदर्शन से गणना करो। अनन्त जीव हैं। वे जीव प्राणी हैं कि नहीं? सत्य है कि नहीं? है। फिर बिना छने पानी का प्रयोग क्यों? आप क्रूर परिणामी जीव हो, आपको प्राणिओं पर मैत्रीभाव नहीं है। पर की पीड़ा को आपने जाना ही नहीं है।

जैनधर्म, ये ओढ़ने वाला धर्म नहीं है। 'सत्त्वेषु मैत्रीं' पर दृष्टिपात करो। किसी भी अभक्ष्य द्रव्य का सेवन कर रहा है, बाजार में खड़ा-खड़ा चाट चाट रहा है, जलेबियाँ खा रहा है, उस मटकी में कोटि-कोटि जीव कब से मरे हुये हैं, तू उनको चबा रहा है और कहता है कि मैं जैन हूँ, 'सत्त्वेषु मैत्रीं', मैत्रीभाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे और नित्य ठेले पर चाट चाटे। जिसके घर में मर्यादा के बाहर का आटा भी प्रयोग हो रहा है, मसालों का प्रयोग हो रहा है, उसके 'सत्त्वेषु मैत्री' भाव कहाँ?

माँ! इन बातों की चर्चा घर में भी करना, रिश्तेदारी में भी करना। अभी तक हमने यही समझ रखा था कि अपन जैनकुल में जन्मे हुये हैं तो उच्च आचरण को प्राप्त हो गये। कुलाचरण भी तभी सम्यक् होगा, जब 'सत्त्वेषु मैत्रीं' पर दृष्टि होगी। जो 'सत्वेषु मैत्रीं' को लेकर चलेगा, उसको नियम से करुणा आयेगी, उसको नियम से प्रमोद भाव आयेगा, मध्यस्थ भाव भी आयेगा। मध्यस्थ भाव का अर्थ किसी से दुश्मनी नहीं है। मेरे द्वारा उस जीव के परिणाम खराब न हों और उस जीव के द्वारा मेरे भी परिणाम खराब न हों, उसका नाम मध्यस्थ भाव है। न कि दुश्मनी मान लेना मध्यस्थ भाव है।

उस जीव का प्रबल पुण्य होता है जिसको कोई सुनना पसन्द करे। इसे भी अपना पुण्य मानना कि लोग आपका स्वाध्याय सुनना पसन्द करते हैं। जब तुझे मौका मिला ही है, जब कोई मेहमान आपके घर में आ जाये और कहीं अतिथि के रूप में दिगम्बर मुनि पधार जायें, तो मैंने जहाँ तक श्रावक का चित्त पहचाना है:-अरे! आज ही तो आये हैं। अब क्या मालूम कब आयेंगे? अन्य मेहमानों को तो हाथ पकड़ कर बिठाल सकते हैं, इनको तो हाथ पकड़ कर भी नहीं ले

जा सकते। आज ये आ गये हैं सो जितना बन सके उनको दे दो, अच्छे से दे दो। ऐसा भाव तेरे मन में आता है। जैसे श्रावक को साधु के लिये आहार देने का मन करता है, ऐसे ही ज्ञानी विद्वानों को, त्यागियों को, वक्ताओं को उसी रुचि से श्रावक को जिनवाणी का पान कराना चाहिये। जब प्रवचन करने बैठें तो मुँह लटका कर न बैठें, प्रसन्नचित्त होकरके, मन में ऐसा भाव लायें-माँ जिनवाणी ही परम औषधि है, जितनी पिला सको अच्छे से पिला दो, और अच्छे-से-अच्छे से पिला दो। बाहर की कोई बात करने का समय ही नहीं है। आगम में इतने सूत्र भरे हुये हैं कि बाहर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक बौद्ध ग्रन्थ है 'धम्मपद', उसमें भी 'सत्त्वेषु मैत्री' को आधार बनाकर पूरी बात लिखी है। जिसने 'सत्त्वेषु मैत्री' सूत्र समझ लिया, वह दूसरे को पीड़ा नहीं देता है, अब आप बिना देखे पैर कैसे रख सकते हो? वहाँ जीव हो सकते हैं। 'सत्त्वेषु मैत्रीं' सीख लिया है, माँ! तुम घर जाकर बहू को कैसे डाँट सकती हो? वह भी जीव है कि नहीं? यदि जीव है, तो अपने पुण्य-पाप पर दृष्टिपात करो। दहेज आदि के राग में आ करके पर की बेटियों को परेशान मत करो। आपको घोर हिंसा का बंध होगा। न रोहणी व्रत काम आयेगा, न पर्युषण काम में आयेंगे। यही 'सत्त्वेषु मैत्रीं' काम में आयेगा। ध्यान रखो, आगम में पर्यायदृष्टि से जीवों में भेद की व्याख्या है, पर किसी को परेशान करने के लिये भेद नहीं है। जो जिस पर्याय में है, उस पर्याय की प्रत्यासत्ति है। अहिंसा के लिये तो अखण्डत्व है। 'सत्त्वेषु मैत्रीं' यानि प्राणिमात्र पर मैत्रीभाव रखना। आपको किसी पर गुस्सा आ रही है तो पहले आप जिस पर गुस्सा आ रही है उसको एक क्षण के लिये विराम दे दो। पहले यह देखो कि मैंने तो 'सत्त्वेषु मैत्रीं' की प्रतिज्ञा की है, तो जगत् के प्राणियों के मध्य मैं भी तो एक जीव हूँ। जीव दूसरे की रक्षा के भाव लाते हैं, अपनी रक्षा पर दृष्टि क्यों नहीं है? आपने नियम लिया था कि मैं जगत् के प्राणिमात्र को दु:खी नहीं करूँगा।

भैया! जगत् के प्राणियों के मध्य में आप प्राणी हो कि नहीं? आप कषाय करके स्वयं को पीड़ित कर रहे हो तो आप हिंसक हो या नहीं? स्वयं के द्वारा ही पीड़ा दी जा सकती है, दूसरे के द्वारा तो पीड़ा दी ही नहीं जा सकती। आज समझ में न आये तो सीमन्धर स्वामी के समवसरण में जाकर पूछ लेना, पर मेरा विश्वास है कि यदि वर्तमान की जिनवाणी सत्य है तो सीमन्धर स्वामी भी इसके आगे कुछ नहीं बोलेंगे। यही कहेंगे जो कि मैं कह रहा हूँ। आगम त्रैकालिक शाश्वत है। तीर्थंकर बदल जायेंगे, केवली बदल जायेंगे, मुनि बदल जायेंगे, परन्तु सिद्धान्त नहीं बदलेंगे, क्योंकि वे सनातन हैं। 'सत्त्वेषु मैत्रीं'—अब मेरी समझ में आ गया। यथार्थ में पूर्ण मैत्री का पालन तो दिगम्बर मुनि ही कर पायेगा। जो कपड़ेधारी हैं, वे पूर्ण रूप से 'सत्त्वेषु मैत्रीं' का पालन नहीं कर सकते हैं। आपने शरीर से वस्त्र उतारा, तब भी हिंसा है और धारण किया, तब भी हिंसा है। धूप में डाला, तब भी हिंसा। धन्य हो निर्ग्रन्थों की 'सत्त्वेषु मैत्रीं।' धूप से छाया में और छाया से धूप में भी जायें, तब पिच्छी से मार्जन करते हैं। 'सत्त्वेषु मैत्रीं।' जिस जीव ने प्राणिमात्र पर करुणादृष्टि रखी है, वह गुणियों को देखकर प्रमुदित हो जाएगा। आचार्य उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' के सातवें अध्याय में कथन क्यों किया? क्योंकि शुभ-आस्रव का प्रकरण था, संवेग और वैराग्य की बातें थीं। मित्र! निज के भावों की हिंसा से बचने का लक्ष्य है तो इस सूत्र को तो अहर्निश याद रखना। कुछ लोग अपने पॉकेट में भक्तामर जी रखे हुये हैं, कुछ णमोकार मंत्र रख लेते हैं। अच्छी बात है जो आप कर रहे हो। इसकी अपेक्षा से ज्ञानी!

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥ (भा.द्वा.)

यह सूत्र अपनी पॉकेट में नहीं, अपने अन्तस् में रख लो। क्षण-क्षण में पल-पल में तेरी रक्षा होगी और क्षण-क्षण में पल-पल में पर की भी रक्षा होगी। आज से कोई भी काम करना तो जैसे वैद्य औषधि बनाता है तो मंत्र उच्चारण

करके बनाता है। आयुर्वेद की भाषा में इसको भावना कहते हैं। ऐसे ही मोक्षमार्ग में कोई भावना है तो सत्त्वेषु मैत्रीं।

कोई तुम्हारी बात न सुने तो ज्यादा सुनाने की चेष्टा मत करना। उसका भाग्य नहीं है कि वो तुम्हारी बात सुन पाये। ऐसा भाव करोगे तो तुझे अहंकार आ जायेगा। उसके प्रति हीन भावना, अपने प्रति अहं भावना। तो कैसा भाव करें? यदि मैं सर्वज्ञ तीर्थंकर होता, तो इसके अन्दर की इतने मिथ्यात्व की इतने कड़ी को तोड़ने की सामर्थ्य रखता। ये मेरा कोई दोष है। पंचमकाल में आया हूँ, छद्मस्थ अवस्था को प्राप्त हुआ, अल्प ज्ञान मिला। मेरे ज्ञान में इतना उत्कर्ष क्यों नहीं है कि इसको ठीक कर देता?

ध्रुव सत्य यह है- तीर्थंकर भगवान् कहते भी हैं, बताते भी हैं, लेकिन ठीक कर नहीं पाते। यदि ठीक कर लेते होते, तो पंचमकाल में न हम होते, न तुम होते। ये पंचमकाल में इतने जीव दिख रहे हैं, ये प्रमाणपत्र है कि तीर्थंकर भगवन्तों की देशना भी निमित्तभूत तभी बनती है, जब उपादान प्रबल होता है। उपादान कार्यकारी नहीं है, तो अरहन्त की देशना भी निमित्त नहीं है। क्या तुमको आज तक तीर्थंकर नहीं मिले होंगे? सर्वज्ञ-जैसा वक्ता मेरा कुछ नहीं कर सका, तो विशुद्धसागर क्या कर पायेंगे? जगत् के प्रत्येक जीव का परिणमन अपने उपादान पर है। निमित्त मात्र रह सकते हैं, लेकिन उपादान सशक्त होना चाहिये। जिसे हम प्रवचन का विषय बना रहे हैं, उसे मात्र विषय बना कर मत छोड़ देना। उसे जीवन का विषय बनाना प्रारम्भ हो जाये तो घर-घर में आनन्द छा जायेगा। घर-घर में आनन्द देखना चाहते हो, घट-घट में आनन्द देखना चाहते हो, तो ध्यान रखना, समझाने तक की सीमा बनाओ, सुधारने की सीमा मत बनाओ। बालकों को समझा तो सकते हो, पर सुधार नहीं सकते हो। सुधरने की योग्यता होती है तो अपने आप सुधर जाते हैं।

आचार्य महाराज कह रहे हैं- 'सत्त्वेषु मैत्रीं' को जीवन में ला कर फिर ज्ञान की आराधना प्रारम्भ करना। जो मन से सहित है, वही ज्ञान-आराधना कर सकता

है। जो मल से रहित है, वही ज्ञान आराधना कर सकता है। तन निर्मल, मन समल, ये कैसे ज्ञानी?

तन निर्मल, मन मलिन, वह है बगुला। तन मलिन, मन निर्मल, वे हैं निर्ग्रन्थ योगी। मल परीषह है। धन्य हैं वे योगी, जो तन को साफ करने के लिये पानी की एक बूँद का भी प्रयोग न करते हों। जिनका अस्नान नाम का मूलगुण है। सारी दुनियाँ स्नान से पवित्र होती है, ये निर्ग्रन्थ योगी अस्नान से पवित्र होते हैं। जिनके मन अपवित्र हैं, वे तन को स्नान करायें। जिनके मन पवित्र हैं, वे चैतन्य का स्नान ज्ञानगंगा के नीर से करते हैं।

देह की गन्दगी को साफ करने का पुरुषार्थ बहुत किया है, लेकिन उसे तो साफ नहीं कर सकोगे। वह तो नव-मलद्वारों का स्थान है। यदि तुम साफ कर सको तो भावों की गन्दगी को साफ कर लो, तो परमात्मा हो जाओगे। जगत् में ऐसे कितने सारे लोग हैं जो स्नान मात्र को ही धर्म मानते हैं। नहीं देख रहे कि उन जलचर जीवों पर क्या बीत रही होगी? कहीं सरोवरों में डुबकियाँ लगाईं, कभी सरिताओं में डुबकियाँ लगाईं, कभी सागरों में डुबकियाँ लगाईं। उन डुबकियों के लगाने से यदि परमात्म पद की प्राप्ति होती, तो जल में रहनेवाले जीव सबसे पहले परमात्मा हो जाना चाहिये। हे श्रावको! आपके लिये द्रव्यशुद्धि की जो व्याख्या है, वह भावों की शुद्धि के निमित्त से है। परन्तु यदि आपने सोले के कपड़े डाल दिये और बच्चे ने धोके से छू लिये, तो आप क्या करेंगे? कपड़े तो उसने धोके से छुये हैं, सो असोले के हो गये; लेकिन उस बच्चे पर आप आँखें दिखा कर बरस रहे हो तो जो मन का सोला बिगड़ रहा है, वह धोके से नहीं बिगड़ रहा है, यह जानकर बिगड़ रहा है।

वस्त्रों के सोले को तो पानी में डुबोकर पुनः शुद्ध कर लोगे (व्यवहार से), लेकिन मेरे मित्र! जो बच्चे के गाल पर तूने चाँटा मार दिया, सो उसका भी सोला गया, आपका सोला तो जा ही चुका था। इस सोले को ठीक करने के लिये क्या करेगा? ये युवा, ये बच्चे आप लोगों से क्यों घृणा करने लग गये हैं? आपके

सोले से घृणा नहीं है, आप जो छू-छू करते हो यह अच्छी बात नहीं है। घृणा को हटाना चाहिये, निर्विचिकित्सा अङ्ग का पालन करना चाहिये। बल्कि आपको यों कहना चाहिये कि बेटा! कोई बात नहीं। अब मैं भोजन नहीं करूँगा, लेकिन आगे ध्यान रखना। इतना कहने में क्या जाता था? इतना कहने के लिये भी ताकत चाहिये। जिसका वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा, वही यह बात कह पायेगा। जिसका वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम प्रबल नहीं होगा, वह तो गुस्सा ही कर पायेगा और हजार बातें सुनायेगा। अपना परिचय दे देगा कि मेरे अन्दर कितनी कषाय है। ज्ञानी! बाहर का सोला भी करो, परन्तु भीतर के भावों के सोले का भी ध्यान रखो। यदि वह निकल गया, तो बगुले-जैसी दशा होगी। बाहर इतना स्वच्छ शरीर क्यों मिला? उसने भी इतना पुण्य किया, उसने बहिरङ्ग से बहुत स्वच्छता बरती थी, परन्तु अंतरङ्ग में मलिनता रखी थी, सो उसकी हालत देखो क्या हो रही है।

मिथ्यात्व, माया, निदान ये त्रिशल्य मल हैं। वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन इस मल से दूर रहते हैं। ये पाप प्रकृतियाँ हैं, काषायिक भाव हैं। इन मलों से रहित हो करके योगी अस्नानादि गुणों से युक्त हैं जिससे कि किसी भी प्रकार जीवों को पीड़ा न हो जाये। शरीर को सजाने में जितना समय लगायेंगे, उतने समय में ज्ञान, ध्यान, अध्ययन करेंगे। आप जितना समय शरीर के सजाने में लगा देते हो, कंघी करने में समय लगाया, मालिस करने में समय लगाया, इतना सारा समय तुम्हारा बरबाद हुआ कि नहीं? ज्ञान-उपयोग से आप अपने आप को दूर कर लिये हो। ये निर्ग्रन्थ पतोधन कोई स्कूल कॉलेज का मुख देखने न गये हों, तब भी इतने ज्ञानी हो जाते हैं। कारण क्या है? आप अपना समय पर में डालते हो, निर्ग्रन्थ तपोधन अपना सारा समय स्वाध्याय में लगाते हैं, इसलिये अपने आप ज्ञानी हो जाते हैं। ज्ञानी! अंधे लोग बहुत तेज दिमाग वाले क्यों होते हैं? वो दुनियाँ को नहीं देखते हैं, दुनियाँ की नहीं सोचते हैं। उनका ज्ञान में ही ज्ञान रहता है, सो उनका दिमाक तेज हो जाता है। ऐसे ही ये निर्ग्रन्थ तपोधन जगत्

को देखना बन्द कर देते हैं और देखनहार को देखते हैं, तो वे कैवल्य को प्राप्त हो जाते हैं। कौन? जो दुनियाँ को देखना बन्द कर देते हैं।

ज्ञानियो! ज्ञानी बनना है तो अज्ञानी बन जाओ। जो जगत् से अज्ञानी बन कर जियेगा, वह ज्ञानी बन जायेगा। जो सारे जगत् को जानने की चेष्टा करेगा, वह अज्ञानी बन कर ही रहेगा।

एक सज्जन मुझसे पूछ रहे थे कि आपने ये गाथायें कब याद कर लीं? ललितपुर में तो एक श्रावक कह रहा था, 'महाराज! ऐसा लगता है कि आप कोई मंत्र करते हो, क्योंकि जब आप प्रवचन करते हो तो छोटे-छोटे बच्चे भी शान्त बैठ जाते हैं। आप कोई स्तम्भन बगैरह करते हो क्या? मैंने तो ऐसा कभी नहीं देखा कि ये मातायें शान्त बैठी रहें। ये भी बोल नहीं रहीं हैं। आखिर बात क्या है?

मैंने कहा—तुम बिल्कुल सही कह रहे हो। तेरे बच्चे हैं क्या? 'हाँ, चार हैं।' उनको लेकर कभी मेला गये? 'हाँ!' यदि माँ आगे-पीछे हो जाये, तो बच्चा रोने लगता है। तू कुछ भी दे, वह चुप नहीं होता। माँ जैसे ही मिलती है, वह छाती से लगाती है, बिना कुछ दिये बच्चा चुप हो जाता है। ये घर की बातें मैं नहीं कर रहा। निज घर की सुन। यदि सच्चे माता-पिता हो, तुम्हारी संतान सच्ची हो, तो उनको घर में सुन्दर मिठाइयाँ बनाकर खिला देना, लेकिन बच्चों को पैसा देकर कोटि-कोटि जीवों की हिंसा मत कराना। कितने लोग नियम ले रहे हैं कि बच्चों को पटाखों के लिये पैसे नहीं देंगे? कितने बच्चे हैं जो पटाखे नहीं फोड़ेंगे?

भगवान् की भक्ति करते हुये दीपावली मनाना, लेकिन व्यर्थ में पटाके फोड़ कर जीवों की हत्या मत कराना। उन बेचारों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम उन पर धमाका कर रहे हो? माताओ! बच्चों को समझाओ—बेटा! पटाका मत फोड़ो।

जैसे बालक माँ के पास जाकर स्तम्भित हो जाता है, ऐसे ही कोई मंत्र से स्तम्भित नहीं कर रहा हूँ। ये सारे-के-सारे लोग माँ जिनवाणी के आँचल के पास आकर अपने आप स्तम्भित हो जाते हैं। ज्ञान की सिद्धि करनी है तो ब्रह्म की सिद्धि करनी पड़ेगी। जिसका ब्रह्म सिद्ध नहीं है, उसको ज्ञान सिद्ध नहीं हो सकता। शब्दज्ञान सिद्ध कर सकते हो, पर आत्मज्ञान तभी सिद्ध होगा जब ब्रह्म सिद्ध होगा। शासन कहता है कि पानी की बूँद-बूँद की रक्षा करो, परन्तु जिनशासन कहता है कि अपने शरीर की शक्ति की बूँद-बूँद की रक्षा करो यदि विद्वान् बनना है तो।

ऐसे छोटे-छोटे सूत्र बच्चों को रटा देना। न स्टोरियाँ, न संगीत की ध्वनियाँ, कुछ नहीं। आपके मुख से कुन्दकुन्द की गाथायें, समन्तभद्र की कारिकायें, पूज्यपाद की परिभाषायें निकलेंगी तो ये श्रमणसंस्कृति मुस्करायेगी, माँ जिनवाणी आशीष देगी, बेटा! तू मेरी बात कर रहा है, मेरी गद्दी पर बैठकर किसी अन्य की बात नहीं कर रहा है। रक्तदान श्रद्धा को उत्पन्न नहीं कराते, भीड़ बढ़ा सकते हैं। भीड़ तो डमरू बजाने वाला भी बुला सकता है। भीड़ बुलाना सरल है, पर श्रद्धा को बुलाना सरल नहीं है। मोक्षमार्ग जादू का डमरू नहीं है। यह मोक्षमार्ग इन्द्रजालियापना नहीं है। मोक्षमार्ग भूतार्थदृष्टि है। जो सदा ब्रह्मचर्य में लीन है, ऐसा जीव ही सदा ज्ञानाभ्यास करता है।

ज्ञानभावनया सिक्ता, निभृतेनान्तरात्मनः।
अप्रमत्तं गुणं प्राप्य, लभन्ते हितमात्मनः॥ (सा.स.)

सीधा रास्ता है। अप्रमत्त दशा को प्राप्त करना है यानि सप्तम गुणस्थान में जाना है, तो प्रथम गुणस्थान से ही प्रक्रिया प्रारम्भ करना पड़ेगा। प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव का मंद कषायपना ही उसको चतुर्थ में ले जाता है और चतुर्थ गुणस्थान के दर्शन की विशुद्धि ही देशव्रत और महाव्रत की ओर ले जाती है। आप जब-जब स्वाध्याय करने बैठो, ऐसे भाव बना कर बैठना कि तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में हम दिव्यध्वनि सुन रहे हैं। कभी यह निहारना कि मैं श्रावकों की सभा में

हूँ, तो कभी यह भी निहारना कि मैं निर्ग्रन्थों की सभा में हूँ। गणधर परमेष्ठी तीर्थंकर वाणी को झेल रहे हैं और फिर समझा रहे हैं। जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त करके अपने आत्मा का हित प्राप्त कर लेते हैं।

यह ध्रुव सत्य है कि इस पंचमकाल में श्रद्धा और चारित्र को बचाने की सामर्थ्य यदि किसी में है, तो वह ज्ञानशक्ति में है, सम्यग्ज्ञान में है।

जब आप साधु को आहार देते हो तो कहना, 'स्वामी! पर्याय की रक्षा के लिये तो मेरा भोजन है। परिणामों की रक्षा के लिये माँ जिनवाणी के पास जाना, उनके आँचल में जीना।

जब भी साधु को आहार देते हैं तो माँ बन कर देना चाहिये। माँ से मीठा भोजन कोई करा ही नहीं सकता है।

जैसे बच्चा माँ की अँगुली पकड़ करके मुस्कराता हुआ मेले में पहुँच जाता है, वैसे ही माँ जिनवाणी की अँगुली पकड़करके मुस्कराते-मुस्कराते ज्ञानस्वरूप में, शिवालय मेले में पहुँच जाते हैं, फिर आनन्द में लीन होकर वहीं रह जाते है।

"**आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"प्रशंसनीय जीवन"

संसारावास-भीरूणां त्यक्तान्तर्बाह्य-सङ्गिनाम्।
विषयेभ्यो निवृत्तानां, श्लाघ्यं तेषां हि जीवितम्॥ 219॥

अन्वयार्थ - संसारावास भीरूणां = जो महात्मा संसार के भ्रमण से भयभीत हैं **त्यक्तान्तर्बाह्य सङ्गिनाम्** = तथा रागादि अन्तरङ्ग परिग्रह और क्षेत्र मकानादि बाहरी परिग्रह के त्यागी हैं, **विषयेभ्योनिवृत्तानां** = तथा पाँचों इंन्द्रियों के विषयों से विरक्त हैं, **तेषां हि जीवितम् श्लाघ्यं** = उन साधुओं का ही जीवन प्रशंसनीय है।

भावार्थ - संसार-भ्रमण से भयभीत, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह के त्यागी और पंचेन्द्रिय विषयों से विरक्त महात्माओं का जीवन ही प्रशंसनीय है।

॥ सद्-देशना॥

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण-संस्कृति। मनीषियो! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के हित की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि यह जीव ज्ञान-भावनाओं से युक्त है। नित्य ही निज के भावों का सिंचन अरहन्त की वाणी से जो करता है, उसका कल्याण सुनिश्चित है। शरीर पर लगे हुये मल को पानी से धो लेते हो, चेहरे पर लगे कारोंच को रूमाल से पोंछ लेते हो, ऐसे ही परिणामों के मल को धोने का कोई साधन है, तो वह अरहन्त की देशना है।

अन्तस् आत्मा में लगी कालोंच को धोने का उपाय भेदविज्ञान है। जिसके पास भेदविज्ञान की परम प्रज्ञा छैनी है, वह जीव अन्तस् के मल को समाप्त करने की योग्यता रखता है। जिसके पास भेदविज्ञान की प्रज्ञा नहीं है, वह शास्त्रपाठी तो हो जायेगा, परन्तु आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकेगा। निज

को वश करने का मार्ग, चलायमान चित्त को एकाग्र करने का उपाय, विशाल हाथी को भी एक मनुष्य वश कर लेता है छोटे से अंकुश से। इस मन को वश करने का अंकुश सम्यग्ज्ञान है। जो चित्त को यूँ ही वश करना चाहते हैं, वे नहीं कर सकते हैं, क्योंकि चित्त हाथ से पकड़ने की वस्तु नहीं है। स्थिरता लाने का भाव है तो उसको विषय देना सीखो। विषयों से मन को रोकना है, विषयों के भ्रमण से अपने आपको भिन्न करना है, तो आप अपने मन को विषय देना सीखो। श्रुत एक अवलम्बन है, ज्ञान एक अवलम्बन है। ज्ञान के माध्यम से, स्वाध्याय के माध्यम से मन वश किया जा सकता है। आप चाहो कि मैं माला फेर कर मन को वश कर लूँ, आप चाहो कि मैं ध्यान करके मन को वश कर लूँ, **ध्यान का विषय नहीं होगा तो ध्यान किसका? ध्यान का विषय ध्यान नहीं है, तो यह संभव नहीं। ध्यान का विषय ज्ञान है। ज्ञान की एकाग्रता ही ध्यान है। उपयोग को ज्ञान में लगा दो, ज्ञान को ज्ञान में लगा दो। आपका जो ज्ञान परज्ञेयों में जा रहा है, परपदार्थों में जा रहा है, उस ज्ञान को परपदार्थों के पास ले जाने की अपेक्षा स्व के पास ले जाओ, यही तुम्हारा ध्यान है।** चित्त को बलात् वश करने का प्रयास करोगे तो आप नहीं कर पाओगे। अधिक खींचने से मस्तिष्क अव्यवस्थित हो सकता है। विषय को समझो। अन्तस् में नहीं पहुँच सके और मन को जबरजस्ती वश करने का विचार करने बैठ गये और इतना ज्यादा खींचा कि मालूम चला कि ध्यान तो नहीं हो सका, परन्तु पागल हो गया। बहुत सारे लोग उन्मत्त हो चुके हैं, विक्षिप्त हो गये, किसके राग में? ध्यान करा, परन्तु यह मालूम नहीं था कि ध्यान कौन-सी वस्तु है। बार-बार प्रयास कर रहे थे कि मन को वश करूँ। किसमें वश करो?

यहाँ काले मुख का बन्दर बैठा रहता है। उसके बैठने का कारण है। उसके गले में रस्सी पड़ी हुई है। वह फँसा हुआ है। नहीं-तो वह भाग जाता। इतना चंचली बन्दर भी एक स्थान पर बैठा मिल रहा है, क्योंकि उसके गले में रस्सी है। सूत्र है कि जब सूत में बन्दर फँस सकता है, तो जिनसूत्र में मन-बन्दर क्यों

नहीं फँस सकता है? आप गले में जिनसूत्र डाल लो, ये मन-बन्दर वश हो जायेगा। आप चाहते हो मैं खुले आकाश में मन-बन्दर को वश कर लूँ, तो तीनकाल में सम्भव नहीं है। उसको सूत्र देदो। **बन्दर दो ही जगह बैठता है। या तो गले में रस्सी बंधी है सो एक स्थान पर ही उछलता रहता है या फिर उसके हाथ में फल दे दो, जब तक फल खायेगा, तब तक बैठ जायेगा। केला हाथ में दे दो तो छील-छील कर खाता है। छिलका फेंक देता है। हाथ में फल है तो बन्दर शान्त हो जाता है। श्रुत एक स्कन्ध है, नय व प्रमाण के पुष्प लगे हैं, निक्षेप के पत्र हैं, मोक्ष का फल है, उसको फल का रस चखने को दे दो तो मन-बन्दर शान्त हो जायेगा। जब तक नय-प्रमाण के पुष्प से युक्त निक्षेप के पत्रों से युक्त, वृक्ष पर उस मन-बन्दर को नहीं चढ़ाओगे, तब तक वह शान्त होने वाला नहीं है।** आपको श्रुत-स्कन्ध पर चढ़ाना ही पड़ेगा।

आचार्य गुणभद्र स्वामी ने 'आत्मानुशासन' ग्रन्थ में जब मन-मरकट को वश करने की बात की है, तो उन्होंने यही कहा है कि इस मन-मरकट को वश करना है तो आप उसे श्रुत-स्कन्ध पर चढ़ा दो। वह जैसे ही श्रुत-स्कन्ध पर चढ़ेगा, विश्वास रखना, ये अपने आप शान्त हो जायेगा।

ज्ञानियो! जला और कच्चा भोजन दोनों अभक्ष्य हैं। भूखे रह लेना, पानी मात्र लेकर आ जाना, लेकिन जला भोजन कभी मत करना और कच्चा भोजन कभी मत करना। जिनागम में सुपाच्य व्यवस्था को व्रतों के अन्दर रखा है। श्रावक के व्रतों में भोगोपयोग परिमाण नाम का व्रत है। जला व कच्चा भोजन करना उसका अतिचार है। दान के अतिचारों में भी इसको रखा गया है। अर्द्धस्थान पर कच्चा था, अर्द्ध स्थान पर पक चुका था, वहाँ पर मिश्र योनि बन चुकी है, वहाँ तज्जाति के सम्मूर्छन जीव उत्पन्न हो चुके हैं। जहाँ जल गया, वहाँ उष्ण योनि बन चुकी है, वहाँ तज्जन्य जीव उत्पन्न होंगे, उनका तुम सेवन करोगे, इसलिये जले का भी प्रत्याख्यान और कच्चे का भी प्रत्याख्यान। इसमें दोष अग्नि का था क्या? अग्नि तो अपने स्वभाव में है। वह न पका रही थी, न जला रही

थी। वह अपने दैदीप्यमान स्वभाव में थी, परन्तु जलाना या पकाना तुम्हारे विवेक के साथ था। ऐसे ही जो ध्यान करना है, कितनी सीमा तक आपको ज्ञान को एकाग्र करना है, यह आपके विवेक पर होना चाहिए। जो पूजन का समय है, उस समय ध्यान करने बैठ गया या स्वाध्याय का समय है तो ध्यान करने बैठ गया, चौबीस घण्टे आँखें बन्द करना प्रारम्भ कर रहा है, तो एक समय ऐसा आयेगा जब तेरा आँख खोलने का विकल्प ही समाप्त हो जायेगा, तब आप क्या ध्यान कर सकोगे?

उत्तम संहनन वाले पुरुष के लिये ध्यान का उत्कृष्ट समय अन्तर्मुहूर्त मात्र है। आपने उसको खेल बना लिया है। जब चाहो आप कहो कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। इतना लम्बा ध्यान होता ही नहीं है। ध्यान का काल अन्तर्मुहूर्त है। जिसने अन्तर्मुहूर्त तक स्पर्श कर लिया, वह तो बहुत बड़ा ध्याता हो गया। **साधना का समय अधिक है। साधु का समय अधिक है, योगी का समय बहुत कम है। जो निज में निज को जोड़ रहा है, वह योगी है। जो निज में निज को जोड़ने का पुरुषार्थ कर रहा है, वह साधु है। उत्कृष्ट साधना योगी की है।** मार्ग में बैनरों और बोर्ड पर लिखे मिलते हैं, उस योगी की यहाँ व्याख्या नहीं चल रही है। जिसके घर में नारियाँ निवास कर रहीं हों, जिसके घर में परिग्रह भरा हुआ हो, वह योगी कैसा?

हे ज्ञानी! जिसके नयनों में मृगनयनी का निवास हो, वहाँ ब्रह्म कैसा? जहाँ ब्रह्म है, वहाँ मृगनयनी कैसे? जहाँ ध्यान है, वहाँ ब्रह्म की प्राप्ति है। जो ब्रह्म की प्राप्ति है, 'अप्पा अप्पम्मि रओ' आत्मा को आत्मा में रमण कराना ध्यान है। जब तक आत्मा को आत्मा में रमण कराने की सामर्थ्य नहीं है, तब तक पंचपरमेष्ठी को ध्येय बनाइये। आप परमात्मा की प्रतिमा पर स्थिर हो जाइये। आप निर्ग्रन्थ योगी का ध्यान करो। आप महामंत्र का चिन्तन करो, बीजाक्षरों का ध्यान करो, जिनेन्द्र की आज्ञा पर चिन्तन करो, जिनसूत्रों पर चिन्तन करो। देह का चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं है। श्वास को रोकने की आवश्यकता नहीं है। नाक

दबाने की आवश्यकता नहीं है। मंदिर में बैठकर नाक दबाओगे तो हाथ और गंदे हो जायेंगे। कुछ नहीं, हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओ, आँख से नाक देखना प्रारम्भ कर दो। जब तक आँख से नाक दिखती रहे, तब तक आप साधना करना। जिस दिन आँख से नाक दिखना बन्द हो जाये, उस दिन समझ लेना कि मेरा अंतिम दिन है। बहुत बड़ी विद्या है। जब तक स्वयं की आँख से स्वयं की नाक दिख रही है, तब तक जीवन है।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि ज्ञान की लीनता ध्यान है। ज्ञान की चंचलता ही अज्ञान है। ज्ञान को परज्ञेयों में ले जाया जा रहा है, उसका नाम अज्ञान है। ज्ञान जब तक परज्ञेयों में ले जाया जाता है, ज्ञान जब तक पर को जानता है, तब तक अज्ञान है। वही ज्ञान जब निर्विकल्प आत्मस्थ हो जाता है, परवस्तु के जानने के पक्ष से रहित आत्मग्राही दर्शन है। भेददृष्टि से आत्मज्ञान-दर्शन-स्वभावी है। अभेद दृष्टि से आत्मा ज्ञायकस्वभावी मात्र है। विशेष ग्राही ज्ञान है। ज्ञान परज्ञेयों को जानना बन्द कर देता है। ज्ञान ज्ञाता को जानने लगता है, सिद्धान्त की दृष्टि से वही दर्शन है। जब तक स्वाध्याय नहीं है, गहरा चिन्तन नहीं है, उनको शीघ्र स्वीकार करने में ऐसा लगता कि क्या बोल दिया? आगम पढ़ोगे, धवला जी, बृहद् द्रव्यसंग्रह, सिद्धि विनिश्चय जैसे ग्रन्थों को पढ़ोगे, तब समझ में आयेगा कि जो विषय-विषयी का सन्निपात है, वह दर्शन है। जब तक ज्ञान परज्ञेय को निहार रहा है वही दर्शन है। जब परज्ञेयों से शून्य होता है, निर्विकल्प होता है, तब वह ज्ञान 'दर्शन' ज्ञान आत्मस्थ हो जाता है।

संसार में ध्यान की जितनी व्याख्या चल रही है, वह अभी जैनदर्शन के ध्यान के नजदीक भी नहीं पहुँची। वे पुरुषार्थ कर रहे हैं कि एकाग्र हो जाओ। ध्यानस्थ पुरुष मितभाषी होता है। पहले बुद्धिपूर्वक मितभाषी बनेगा। ध्यानी पुरुष मितभाषी होता है, ध्यानी पुरुष मितभोजी होता है। उसका भोजन भी सीमित हो जाता है। वह अल्प बोलता है। उसकी श्वास-निःश्वास स्वयमेव मंद हो जाती है। उसको व्यर्थ का प्राणायाम नहीं करना पड़ता। जब कषाय में होगा, विकार

में होगा, मन में कोई अशुभ भाव होगा, भय होगा, तो आपकी श्वासें बढ़ जायेंगी। काम-विकार होगा तो श्वासें बढ़ जायेंगी। कोई भी कषाय होगी तो श्वासें खिंचना प्रारम्भ हो जायेंगी। जितने भद्र होंगे, शान्त होंगे, श्वासें मन्द हो जायेंगी। यह तो सहज है कि जो दौड़ेगा, उसकी श्वासें बढ़ जायेंगी। आप बोलते हो कि हाँफ रहा है, साँस फूल रही है। जो दौड़ता है, उसी की श्वास बढ़ती है। जो मंथर गति से बढ़ रहा है, उसकी कभी श्वास नहीं बढ़ती। जिसका चित्त मंथर गति में चल रहा है, उसकी श्वासें मंद हो जायेंगी। दोनों हाथ बाँध दें, फिर तू दौड़ नहीं पायेगा। जब दौड़ेगा तो दोनों हाथ हिलेंगे, जबकि चलना पैरों से पड़ता है। लेकिन हाथ क्यों चल रहे हैं? हाथ बाँध दो तो पैर का चलना मंद हो जायेगा। जितनी ज्यादा जीभ हिलाओगे, उतना चित्त दौड़ेगा। जीभ को जितना शान्त कर लोगे, उतना मन भी शान्त हो जायेगा। जो मुख से बोल-बोल करके णमोकार पढ़ते हैं, उनके चित्त स्थिर नहीं होते हैं। ओष्ठ भी न हिले, दाँत भी न चले, जिह्वा भी न हिले, आप एक बार मंत्र पढ़कर देखो। विद्या का बोध नहीं है। आप मन को जबरदस्ती नियन्त्रित करना चाहते हो, पर हेतुओं पर ध्यान नहीं दे रहे हो। लोगों ने ध्यानकेन्द्रों का प्रवेश-शुल्क दे दे करके बुद्धि में विपर्यास कर लिया है। कोई हँस रहा है, कोई नाच रहा है, कोई ठिलठिला रहा है। कोई गा रहा है। क्या कर रहे हो? ध्यान में जा रहा हूँ, ध्यान केन्द्र में जा रहा हूँ। ज्ञानी! जो केन्द्र में ही नहीं है, वह ध्यान क्या करेगा? क्या मठों में ध्यान लगता है? यह ध्यान नहीं है। राग है, राग। हमारे यहाँ वक्ताओं ने बोलना बंद कर दिया, श्रोताओं ने यह समझ लिया कि जो बोला जा रहा है, वही सही है। यथार्थ में जैनदर्शन में चरम साधना ध्यान है। जब भी निर्वाण होगा, ध्यान से ही होगा। अन्य किसी क्रिया से निर्वाण नहीं होगा।

नरक भी जाना चाहेगा तो ध्यान से जायेगा, स्वर्ग भी जायेगा तो ध्यान से जायेगा, मोक्ष भी जाना चाहेगा तो ध्यान से जायेगा। आर्त्त-रौद्र ध्यान करेगा तो नरक चला जायेगा। धर्म्यध्यान करेगा तो स्वर्ग चला जायेगा। शुक्लध्यान में लीन

होगा तो निर्वाण को प्राप्त करेगा। हमारा प्रारम्भ ही यहाँ से होता है। नरक जाने के लिये भी ध्यान करना पड़ता है। ऐसा ध्यान में रहता है कि बड़े-बड़े जुलूस निकल जायें, राजा-महाराजा की सवारियाँ निकल जायें, जब तू इष्ट को निहारता है तो पता नहीं चलता। एक व्यक्ति का बेटा खत्म हो गया तो वह उन्मत्त हो गया। बेटे की माँ न भोजन कर रही है, न पानी पी रही है। उसको बच्चा इधर दिखता, उधर दिखता है। जैसे माँ को गया-हुआ बच्चा आँखों से दिख रहा है, ऐसे ही तुझे गये महावीर दिख जायें, तब तू कहना कि मुझे ध्यान प्रारम्भ हो रहा है। तब कहीं सविकल्प धर्म्यध्यान प्रारम्भ होगा। महावीर को देखते-देखते महावीर भी चले जायें और निज का महावीर दिखने लग जाये, तब निर्विकल्प योगी को निर्विकल्प ध्यान होगा।

कोई दूसरा व्यक्ति कहे कि भले ही निमन्त्रण में यहाँ आये, मैं यही कहूँगा कि आप जाओ, क्योंकि मुझे अपनी प्रभावना नहीं चाहिये, अपने शरीर की प्रभावना नहीं चाहिये, मुझे जैनदर्शन की प्रभावना चाहिये। एक समय था जब हमारे यहाँ बड़े-बड़े विद्वान् थे, मक्खन लाल शास्त्री, गोपाल दास बरैया जिन्होंने जैनत्व के लिये कुछ किया है, न कि जैनसमाज के टुकड़े किये। आज तुम्हारी शक्ति कहाँ जा रही है? फूल-पत्ती के राग में तुम आपस में ही झगड़ रहे हो। किसी को हटाने का राग है, किसी को फेंकने का राग है। राग-द्वेष में ये हो रहा है। तुम्हारे मस्तिष्क का जो प्रयोग होना चाहिये था, तुम्हारे अन्दर जो सिद्धान्त विद्या प्रवेश हुई है, वह सारे देश को मिलना चाहिये थी। एक राग के पीछे तुम्हारी विद्या का कोई लाभ नहीं ले पा रहा है। मुझे तो किसी का डर लगता नहीं है। मेरा तो एक निर्णय है कि मुझे समाधि लेना है। जैसा होगा, वैसा होगा। जितना प्रभावी वक्तव्य है, उतना व्यक्ति का धैर्य है क्या ? निडरता के साथ गंभीरता। व्यक्ति को बीच में नहीं टोकना, नहीं तो उसकी गलती छुप जायेगी। वह कहेगा कि मुझे पूरा कहाँ बोलने दिया। धैर्य चाहिये। आप तो पूरा बोलिये। जब पूरा बोल लोगे, तब देखता हूँ कि क्या बोला है। दूसरे के प्रश्न उत्तर सुनने की सामर्थ्य चाहिये, धैर्य चाहिये।

ज्ञानी! तुम अपनी बात किसी को देना चाहते हो तो जो पुराने बड़े-बड़े वक्ता इतिहास में हो चुके हैं, उनके बारे में जानकारी लो। और कोई भी छात्र आपसे मिलने आये तो आप उसे एक बार 'कुरल काव्य' पढ़ने को जरूर कहिये। जीवन में एक बार कुरल काव्य पढ़ने की आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि नीति, धर्मनीति इन सबको जीवन में वही उतार पायेगा, जिसका जीवन सुनीतिमय होगा। पढ़ने से भी कुछ काम बननेवाला नहीं है। कई लोग बड़े-बड़े लेक्चर देना जानते हैं, व्याख्यान करना जानते हैं, लेकिन वैसा अपना जीवन जीना नहीं जानते। विषय को जानने का और क्षयोपशम प्रकट होने का विषय भिन्न है और तदनुकूल जीवन जीने का पुण्य भिन्न है। आपके उपदेश से अनेक लोग व्यवस्थित जीवन जी रहे हैं, परन्तु आप अपने उपदेश को अपने ऊपर लागू नहीं कर पा रहे हो। ऐसे लोग बहुत हैं।

आज मैं कहूँ ज्ञानी! आपको मौन पर भाषण करना है तो आप एक घण्टे अच्छे से मौन पर भाषण कर सकते हो और तेरे से कहूँ कि मौन लेलो, तो सोचना पड़ेगा। मैं व्यवहार की बात कर रहा हूँ। प्रभावी व्यक्तित्त्व बनना है "प्रभवो मित-भाषणं" सीमित बोलना पड़ेगा। **आप मुख से तो नहीं बोल रहे हो, लेकिन आपकी सर्वाङ्ग की चंचलता बता रही है कि तुम जबरदस्ती मौन लिये बैठे हो परन्तु तुम बोलना चाहते हो। वह तिर्यञ्चवृत्ति है।** बन्दर को बाँध कर रख दो, सभी को मालूम है कि बाँध कर रखा है, परन्तु वह ठहरना नहीं चाहता। किसी को मौन देदो तो वह मौन रस्सी में बंधे बन्दर के समान है, परन्तु अपने हाव-भाव से प्रकट कर रहा है कि मेरे से मौन लिया नहीं जाता। कुछ लोगों का तो मौन में ही सिर दर्द करता है, पेट फूल जाता है। हर मुनि को एक-एक विषय में निष्णात होना चाहिये। ह**र जीव का क्षयोपशम सभी विषयों में नहीं चलता। लोग ज्ञानी क्यों नहीं बन पाते हैं? क्योंकि वे हर विषय में प्रवेश करना चाहते हैं।** इसलिये वे कहीं के नहीं होते। विद्वान् बनना है तो आपकी चौकी पर एक ही ग्रन्थ होना चाहिये।

अध्ययन के काल में तुम जिस ग्रन्थ को पढ़ रहे हो, उस काल में आपके मुख्य स्थान पर एक ही पुस्तक होगी तो तुम तैयार कर लोगे। आप अनेक पुस्तकें रख लोगे तो मुख्य विषय तैयार नहीं करोगे। यह भी देख लूँ, यह भी देख लूँ, इसमें ही समय निकल जायेगा। निर्ग्रन्थों के पास तो एक ही विषय होना चाहिये, मात्र रत्नत्रय धर्म का पालन। नाना विषय रख लेंगे तो समय निकल जायेगा, लेकिन 'समय' से नहीं मिल पायेंगे। साधक अपने आप में क्यों भ्रमित हो गये हैं? क्योंकि मूल विषय से हट कर उन्होंने सामाजिक विषय ले लिया है, सो समाज की जब तक अर्थ सिद्धि होती है, तब तक तो महाराज के गुण गायेगी, पर महाराज! ये भवन, ये धर्मशालायें, इनमें रागी-भोगी आयेंगे। आपने अपनी साधना का जीवन इन रागियों को दे दिया, जबकि आपको निज भवन में रह करके अपनी समाधि करके सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त होना चाहिये था।

सर्वार्थसिद्धि से तात्पर्य सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि है। आत्मानुभूति है।

ज्ञानी! आज के युग में जो चल रहा है, वही दृष्टांत दोगे तो जल्दी समझ में आयेगा। आज सर्वाधिक विषय क्रिकेट का चल रहा है। भारत में 10-15 लोग होंगे जो टीम में होंगे। उनके बाहर जाने पर देश की दृष्टि क्या होती है? यह कोई नहीं कहता कि अमुख खिलाड़ी जीत कर आया है। कथन यह होता है कि भारत जीत गया है। यहाँ तक कि प्रधानमंत्री तक वहीं कुर्सी डाल कर बैठ जाते हैं, कहते हैं कि यह हमारे देश की आन, बान, शान है। ऐसे ही हमारे आगम में लिखा हुआ है कि कोई मुनि किसी से शास्त्रार्थ करने बैठ जाये और परास्त हो जाये, तो इनकी हँसी नहीं होगी, पूरा जैनत्व नीचे आ जायेगा। कोई प्रश्न करे, तो हर किसी को उत्तर देने की आज्ञा नहीं है। आपका प्रश्न बहुत बढ़िया है। हमारे गुरु महाराज विराजमान हैं। चलो, उत्तर आप भी सुनना, मैं भी सुनूँगा। जबकि उनसे बनता था, तब भी उत्तर नहीं दिया। एक उत्तर तो बनता है, चार प्रश्न और कर दिये, फिर क्या करूँगा? 'पद्मपुराण' में श्रुतसागर महाराज का उल्लेख आया। सम्राट जाता है और श्रुतसागर महाराज से कहता है कि मुझे

ये समझा दो। उन्होंने कहा कि हमारे आचार्यभगवन्त विराजमान हैं, आप चलो, हम अपने गुरु महाराज से उत्तर दिलायेंगे। आप भी सुनेंगे, मैं भी सुनूँगा। ये आगम के रहस्य हैं। सारे लोक और राज्य की व्यवस्था आगम से है। जब एक क्रिकेटर के हारने से सारा देश मुँह बना सकता है। एक निर्ग्रन्थ तपोधन कहीं किसी को उत्तर नहीं दे सका तो पूरे जैनत्व का ह्रास होता है। इसलिये हर संघ में स्वाध्याय ही परम्परा है और हर अनुयोग के ज्ञान का होना आवश्यक है।

भोपाल के पास सिलवानी में मोटे भगवाँ कपड़े पहने बनारस के चार पण्डे पधारे। जैनसमाज के अध्यक्ष के पास सूचना आयी कि उन्हें महाराज से चर्चा करना है। अध्यक्ष ने मेरा कद देखा और कहा, महाराज! ऐसे मोटे-मोटे लोग हैं। कहीं कुछ हो गया तो क्या होगा? वे हाँफते-हाँफते आये, कहते हैं, महाराज जी! वे पण्डे मंदिर के द्वार तक आ ही चुके हैं। कहते हैं कि उन्हें महाराज जी से चर्चा करना है। आप चर्चा करोगे क्या? 'पूछ लो क्या चर्चा करना है?' वे बोले, महाराज से ही करूँगा। उन्होंने आकर 'प्रणाम स्वामी!' कह कर नमस्कार किया। बैठ गये, कहने लगे, मुझे जैनदर्शन के स्याद्वाद को समझना है। हमारे बुजुर्गों ने कहा है, कि जैनियों का स्याद्वाद तो संशयवाद है, क्योंकि शंकराचार्य जी ने ऐसा बोल दिया था। तीस मिनिट तक उन्होंने स्याद्वाद को सुना। उनके मुख से निकला 'ये स्याद्वाद संशयवाद नहीं है, यह स्याद्वाद सत्यवाद है।' कक्ष के बाहर तक तालियाँ बज रही थीं, प्रसन्नता व्यक्त हो रही थी। जब उनको विदा करके अध्यक्ष जी आये, बेचारे लोट गये जमीन पर, 'मैं तो ये सोच रहा था कि कहीं हमारे महाराज से नहीं बना तो हमारे धर्म का क्या होगा?'

यदि कोई साधु वास्तव में पढ़ना चाहता है समाज के लोगों को यह व्यवस्था करना चाहिये। जैसे कुन्दकुन्द भारती में व्यवस्था है। मुझे टीकमगढ़ की याद है मूलचन्द शास्त्री जी की। आचार्य विरागसागर जी महाराज मुझे 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' पढ़ा रहे थे। मैं क्षुल्लक था। बोले—महाराज क्या कर रहे हो? 'क्षुल्लक जी को पढ़ा रहा हूँ।' क्यों आप क्षुल्लक जी को पढ़ाने में इतना समय लगा रहे

हो? आचार्यश्री बोले-पण्डित जी! यदि हमारा एक साधु ज्ञानी हो जाता है, तो लाखों विद्वानों के बराबर एक साधु होता है। विद्वान् के पास तो नियत लोग आते हैं, लेकिन साधु जिस नगर में पहुँचता है वहाँ सभायें लगती हैं। साल में तीन बार पर्युषण आता है, लेकिन एक बार बहुत अच्छे से मनाते हो, नगर में जितने दिन साधु रहते हैं, उतने दिन पर्युषण चलते हैं।

आचार्यों से कहना—स्वामी! मैं कुन्दकुन्द की वाणी को निर्ग्रन्थों के मुख से ही सुनना चाहता हूँ। अष्टशती, अष्टसहस्री को मुनियों के मुख से ही सुनना चाहता हूँ। बुन्देलखण्ड में किसी का चौका खाली जाता है तो वह यह नहीं कहती कि महाराज! मेरे घर आ जाना। यह तो अनर्थ हो जायेगा। वह सुन्दर भाषा बोलती है—'महाराज! विलात् दिन हो गये, पाय पखारवे नहीं मिले।' अब आप समझ लो कि माँ क्या कह रही है।

जब सेंट भरी रुई एक-दो दिन तक गंध दे सकती है, तब जिनेन्द्र की वाणी की सुगन्ध भव-भव तक न चले, यह हो ही नहीं सकता। आगम का वचन है कि यदि किसी जीव ने अशुभ का बंध कर भी लिया और प्रवचन उसके अन्तस् में रख गये, तो वह आज की देशना नरक में भी देशनालब्धि का काम करेगी। इसलिये सब काम छोड़कर उपदेश सुनना। कभी-कभी स्वयं के द्वारा पढ़ा गया श्रुत काम में नहीं आता, गुरुमुख से पढ़ा हुआ ही काम में आता है। सिम कितनी छोटी होती है, फिर भी कितने विषय को भरे रहती है। हमारे आचार्यों के मस्तिष्क की सिम कितनी विशाल होगी, कुन्दकुन्द स्वामी ने चौरासी पाहुड लिख दिये। ये मस्तिष्क बहुत महत्वपूर्ण है। कल शाम को एक सज्जन बोले, 'महाराज का सिर दवा दूँ?' एक बालक तुरन्त बोला-'हाथ मत लगाना, सब कुछ इसी में है।' मस्तिष्क को स्वच्छ रखो और चित्त को पवित्र रखो तो तेरा काम बन जायेगा। अधिक सोचना नहीं, ध्यान पर भी ज्यादा ध्यान नहीं देना। ध्यान करना।

जो बच्चे परीक्षा के अंतिम समय तक पढ़ते रहते हैं, वे ही अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। वे इतने गरम हो जाते हैं कि उन्होंने अपने आपको सोचने का समय ही नहीं दिया। इसलिये परीक्षा के पहले पढ़ाई बन्द कर देना चाहिये।

हमारे आगम की यही विद्या है। समाधि के काल में सब काम बन्द। मात्र ध्यान करो। जो स्वाध्याय पूर्व में किया है, उसी का स्वाध्याय करो। सामायिक का काल तीन बार इसीलिये दिया जाता है कि ठण्डे होके बैठो। वे अज्ञानी साधक हैं जो सामायिक में भी पढ़ने बैठ जायें। **जो साधक सामायिक में भी पढ़ाई कर रहे हैं, वे नियम से या तो संयम से भ्रष्ट हो जायेंगे या फिर संघ से बाहर चले जायेंगे। जो साधक सामायिक में स्वाध्याय करते हैं- या तो गुरु से वियोग होगा या कलह होगा या संयम छूट जायेगा।** सामायिक के काल में संधि-बेला है। सन्धि-बेला में स्वाध्याय नहीं करना पड़ता। किसी भी ग्रन्थ का, चाहे वह प्रथमानुयोग हो, चाहे कोई भक्ति के ग्रन्थ हों। 'भक्तामर स्तोत्र' भी सामायिक में नहीं पढ़ना। सामायिक में सामायिक करो। नहीं तो कहो कि 'तत्त्वार्थ सूत्र' भी सुन लेती हूँ, माला फेर लेती हूँ। अनर्थ हो जायेगा।

जिस व्यक्ति को जो विषय अच्छे से पकड़ में आता हो, उसी में और बढ़ना चाहिये। वह पूर्ण हो जाये, तब दूसरे विषय में हाथ लगाना चाहिये। जहाँ नींव भरी होती है, वहाँ महल जल्दी खड़ा हो जाता है। इस पर्याय से विहार हो, उससे पहले जिनागम में विहार करो।

"आत्म स्वभावं, परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

संदर्भ ग्रंथ सूची

संक्षेप	ग्रंथ नाम	ग्रंथकर्ता
अ.स्.	अकलंक स्तोत्र	आचार्य भगवन् अकलंकस्वामी
अ.अ.क.	अध्यात्म अमृत कलश	आचार्य भगवन् अमृतचंदस्वामी
इष्टो.	इष्टोपदेश	आचार्य भगवन् पूज्यपादस्वामी
त.सू.	तत्त्वार्थसूत्र	आचार्य भगवन् उमास्वामी
त.सा.	तत्त्वसार	आचार्य भगवन् देवसेनस्वामी
गो.स्तुति.	गोम्टेश स्तुति	आचार्य भगवन् नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती
ध.टी.	धवला टीका	आचार्य भगवन् वीरसेनस्वामी
स्व.स्.	स्वयंभू स्त्रोत	आचार्य भगवन् समन्तभद्रस्वामी
स्व.स.	स्वरूप संबोधन	आचार्य भगवन् अकलंकस्वामी
सा.स.	सार-समुच्चय	आचार्य भगवन् कुलभद्रस्वामी
सर्वा.सि.	सर्वार्थसिद्धि	आचार्य भगवन् पूज्यपादस्वामी
द्र.सं.	द्रव्य संग्रह	आचार्य भगवन् नेमिचंदस्वामी
प.मु.सू.	परीक्षामुख सूत्र	आचार्य भगवन् माणिक्यनंदीस्वामी
पु.सि.च्यु.	पुरूषार्थसिद्धियुपाय	आचार्य भगवन् अमृतचंदस्वामी
प्र.पा.	प्रतिक्रमण पाठ	आचार्य भगवन् गणधरगौतमस्वामी
र.सा.	रयणसार	आचार्य भगवन् कुन्दकुन्दस्वामी
मूला.	मूलाचार	आचार्य भगवन् वट्टकेरस्वामी
आ.पा.	अलोचना पाठ	पं. जौहरीलालजी
छ.ढा.	छहढाला	पण्डित प्रवर दौलतराम जी

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री माँगीलालजी किशोरजी पहाड़िया, हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर,
श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,
श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर
श्री टी.के. वेद जी, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर
श्री हेमचंदजी झांझरी, तिलक नगर, इंदौर
श्री धनकुमार संजय गंगवाल, वैशाली नगर, भिलाई

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन, (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन, (जैनको), इंदौर
श्री चक्रेशकुमार जी जैन, (बड़कुल) इंदौर,
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,
श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर
श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर
श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पंकलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाड़िया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोदिया
श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल
श्री मनोजजी प्रधान, भोपाल
श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल
श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल
श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल
श्री मनोहरलालजी टोंग्या, भोपाल
श्री हरीशकुमार प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल
श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल
श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल
डॉ. सुभाषजी जैन (लखारिया), भोपाल
श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी बांझल, विदिशा
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर

श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई
श्री सनतकुमारजी अरविन्द सतभैया परिवार
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी लुहाड़िया, भिलाई
श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा
श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा
श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा
श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा
श्री सोहनलालजी गंगवाल, भीलवाड़ा
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा
श्री संजय राजू जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री किशोर अमित जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री वेदप्रकाश भाईजी, मरोरमागंज, सागर

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी कासलीवाल, भिलाई
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर

श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्झौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन
श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्री विद्युतकुमारजी करणमलजी डोसी
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया)
श्री कैलाशचंदजी रवीन्द्रकुमारजी जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी
श्री महावीरप्रसादजी जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन
श्रीमती वीणाजी जैन
श्री विमलकुमारजी राजमलजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)

श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा...
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर....
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन (नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोभितजी जैन, ग्यासपुर
श्रीमती सुनीताजी भरतकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री जेठालाल कुबेरदास शाह, मुंबई
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा